५४वें शेर में लिखा है—

लिखा हुआ पत्र पहुंच गया है। मौखिक भी कह दिया है। (तुम्हें) चाहिए कि उसे सुख से पूरा करो।

सिख-इतिहासों में इसका उल्लेख है कि औरंगजेब ने गुरु गोबिन्दसिंह को प्रत्यक्ष भेंट करने के लिए बुलाया था। उस पत्र के उत्तर में ही यह पत्र लिखा गया होगा।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह ने यह पत्र खिदराणा के युद्ध के पूर्व, जब वे दीना नामक स्थान पर थे, लिखा था। पत्र में इस बात का संकेत है। ५८वें शेर में वे लिखते हैं—

'आप कांगड़ गाँव में तशरीफ लाइए। वहाँ भेंट हो जाएगी।'

दीना ग्राम कांगड़ जमींदारी का ही एक गाँव था। यहाँ के निवासी अधिकांश बैराड़ जाति के थे, जो गुरु के अनन्य शिष्य थे। ५९वें शेर में उन्होंने इस ओर भी संकेत किया है—

इस मार्ग पर आपको कण मात्र भी भय नहीं (होना चाहिए, क्योंकि) सम्पूर्ण बैराड़ जाति मेरी आज्ञा में है।

इस पत्रके प्रारम्भिक १२ शेरों में गुरु गोबिन्दसिंह ने निराकार सर्वव्यापी ईश्वर का गुणगान किया है। आगे के शेरों में उन्होंने औरंगजेब और उसके सेनापतियों की सौगन्धों पर अविश्वास प्रगट किया है। उन्होंने इस पत्र में चमकौर के उस युद्ध का भी संकेत किया है, जब क्षुधा-पीड़ित चालीस सैनिकों पर असंख्य मुगल सेना ने आक्रमण कर दिया था। २२वें शेर में उन्होंने अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त वाक्य कहा—

'जब नीति के सभी साधन असफल हो जाएँ तो तलवार का सहारा लेना सभी दृष्टियों से उचित है।'

आगे के अनेक शेरों में उन्होंने चमकौर युद्ध का वर्णन किया है, किस तरह मुगल सेनापतियों ने अपनी प्रतिज्ञाओं को भूलकर उन पर आक्रमण किया, किस तरह उन्होंने (गुरु गोबिन्दसिंह ने) उस युद्ध में नाहरखान को मौत के घाट उतार दिया और ख्वाजा महमूद ने किस प्रकार छिपकर अपनी जान बचाई, किस तरह उन्होंने रात्रि के अंधेरे में चमकौर दुर्ग का त्याग किया।

४९वें शेर में वे कहते हैं—

न तुम में ईमानपरस्ती है, न कोई उचित ढंग ही। तुमने न साहब को पहचाना है न तुम्हें मुहम्मद पर विश्वास है।

फिर वे औरंगजेब को पंजाब आने के लिए आमन्त्रित करते हैं। साथ ही यह भी लिखा है कि यदि मेरे पास हुक्म आ जाए तो मैं प्राण और तन से तुम्हारे पास आ जाऊँगा। उसे यह भी स्मरण कराते हैं कि उनके चार पुत्र मार डाले गये हैं, परन्तु उसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं क्योंकि कुण्डलदार साँप (खालसा) अभी भी शेष है।

औरंगजेब को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—तुम में अनेक गुण हैं। पर उन अनेक गुणों के रहते हुए तुम धर्म (दीन) से बहुत दूर हो। अर्थात् तुम 'दीन' का अपने आपको पालक समझते हो परन्तु उसकी वास्तविकता से बहुत दूर हो।

---

१. सिख इतिहास बारे, डा० गंडासिंह, पृ० ३५।

१०५वें और १०६वें शेर मे उन्होंने लिखा है कि यदि तुम्हारी दृष्टि अपनी सेना और धन की ओर है तो मेरी दृष्टि ईश्वर की कृपा पर है। यदि तुम्हे अपने राज्य और धन का अहकार है तो मुझे ईश्वर का सहारा है।

अन्त के दो शेरों मे वे ईश्वर पर अपनी पूर्ण आस्था प्रगट करते हुए कहते हैं कि यदि वह सहायक हो तो सैकड़ो शत्रु भी कुछ नहीं कर सकते। यदि कोई शत्रुता निभाने के लिए हजारों व्यक्ति अपने साथ ले आए तो उसका बाल भी बाका नहीं किया जा सकता।

इस पत्र को गुरु गोविन्दसिंह ने भाई दयासिंह द्वारा औरगजेब के पास भिजवाया जो उस समय अहमदनगर में था। कुछ समय की प्रतीक्षा के पश्चात् भाई दयासिंह यह पत्र औरंगजेब के पास पहुंचाने मे सफल हो गए। उस समय के ऐतिहासिक सूत्रों से ज्ञात होता है कि औरंगजेब ने तत्काल यह आज्ञा प्रसारित करा दी कि गुरु गोविन्दसिंह को कोई कष्ट न दिया जाए और सम्मान सहित बादशाह के पास लाया जाए।

बादशाह के खास मुंशी मिर्जा इनायतवुल्ला खान 'इनसी' द्वारा सपादित 'अहिकामि आलमगीरी' (हस्तलिखित) की एक प्रति रामपुर के पुस्तकालय मे सुरक्षित है। उसके सातवें-आठवें पृष्ठ पर शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम (बहादुरशाह) सूबेदार पंजाब, मुलतान और काबुल के दीवान और नायक सूबेदार लाहौर, मुनइम खान के लिए बादशाह का फारसी मे जो हसबुल-हुक्म दर्ज है, उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"इस समय बादशाह की ओर से वजीर साहब को लिखने की आज्ञा हुई है कि नानक-पूजो के सरदार गोविन्द की ओर से वकील के द्वारा बादशाह के दरबार मे हाजिर होने का इरादा और शाही फरमान प्राप्त करने की इच्छा के विषय मे अर्जदास्त पहुँची थी। बादशाह ने आज्ञा प्रसारित कर उन्हें सम्मान दिया है। गुरजबरदार और मुहम्मद यार मनसबदार, जो फरमान लेकर आ रहे हैं, को यह हुक्म आप तक पहुँचाने की आज्ञा दी गई है। आपको चाहिये कि उनको दिलासा और तसल्ली देकर अपने पास बुलाओ और फरमान पहुँचने के पश्चात् एक विश्वासी व्यक्ति जो मिलनसार और चतुर हो, गुरजबरदार और मनसबदार के साथ देकर उन्हें बादशाह के हुजूर मे पहुँचाओ। इस सम्बन्ध में बादशाह की ओर से अत्यन्त ताक़ीद समझना।।"

सेनापति ने 'गुरु शोभा' मे भी इस बात की पुष्टि की है—

गुरजदार फ़ुरमान लै दयासिंह कै सगि।।
बिदा किये ताही समे बादसाह औरग।।

(पृ० ७८)

दक्षिण की ओर

भाई दयासिंह अहमदनगर मे औरगजेब को पत्र दे सकने में सफल हुए या नहीं, इस बात का पता गुरु गोबिन्दसिंह को बहुत समय तक नही लगा और वे पंजाब से दक्षिण की ओर चल दिए। गुरु गोविन्दसिंह किस उद्देश्य से दक्षिण की ओर चले, इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद है, परन्तु अधिकाश इतिहासकारों का मत है कि वे औरगजेब

गुरु गोविन्दसिंह
और
उनकी हिन्दी कविता

गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता

डॉ. महीपसिंह

सरदार बहादुर करनैल सिंह जी

को

सादर

आमुख

इतिहास के पृष्ठों में जो महान् व्यक्तित्व एक रणनीति-कुशल योद्धा, राष्ट्र-निर्माता और सर्वस्व त्यागी महात्मा के रूप मे प्रख्यात है, वह अनेक भाषाओं का पडित और हिन्दी का एक महान् कवि भी था, इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर दीर्घ-काल तक विद्वानों एव साहित्य-रसिकों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। इधर गत कुछ वर्षों मे गुरु गोबिन्दसिंह के कवि-व्यक्तित्व की ओर अनुसधानकर्त्ताओं एवं समालोचकों का ध्यान गया है। यह शोध-प्रबन्ध भी उस दिशा मे किया हुआ एक प्रयास है।

गुरु गोबिन्दसिंह जी हिन्दी (ब्रज), पंजाबी और फारसी भाषाओं पर समान अधिकार रखते थे। उन्होंने इन तीनों ही भाषाओ में साहित्य-रचना भी की, परन्तु हिन्दी में किया हुआ उनका सृजन-कार्य गुण एवं परिमाण की दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखता है। 'दशमग्रंथ', जिसमे गुरु गोबिन्दसिंह जी की सभी रचनाएँ सगृहीत हैं, गुरुमुखी लिपि में १४२८ पृष्ठो में मुद्रित है। इन १४२८ पृष्ठो मे पंजाबी और फारसी भाषाओं में रचित साहित्य लगभग ५० पृष्ठों मे ही सीमित है। शेष विशाल भाग उनकी विविध प्रकार की हिन्दी रचनाओं का ही सग्रह है।

इस शोध-प्रबध मे गुरु गोबिन्दसिंह जी की हिन्दी रचनाओं को ही अध्ययन का विषय बनाया गया है। उनकी विशिष्ट पजाबी रचना 'चण्डी दी वार' हिन्दी में उनके रचे हुए चण्डी-चरित्रो से बहुत भिन्न नही है। फारसी मे लिखी हुई उनकी हिकायतें, हिन्दी 'चरित्रोपाख्यान' के एक लघु अश जैसी हैं और औरगजेब को लिखा हुआ उनका पत्र 'जफरनामा' साहित्य की अपेक्षा ऐतिहासिक दृष्टि से अपना अधिक महत्त्व रखता है।

अपने इस शोध-प्रबन्ध को मैंने छ वर्ष पूर्व आगरा विश्वविद्यालय में पी-एच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया था। मेरी अपनी अनेक व्यस्तताओं के कारण ही इसके प्रकाशन मे इतना विलम्ब हुआ है, परन्तु प्रकाशन के पूर्व मैंने इसे पूरी तरह संशोधित किया है। मुझे विश्वास है कि गुरु गोबिन्दसिंह के विशाल काव्य-भण्डार के साहित्यिक

मूल्यांकन से हिन्दी साहित्य की मध्यकालीन साहित्य-धारा (विशेष रूप से वीरकाव्य-धारा) में अति महत्त्वपूर्ण एवं अचम्भित कर देनेवाली अभिवृद्धि होगी। इस दृष्टि से अब यह भी बहुत आवश्यक है कि संपूर्ण 'दशमग्रंथ' का देवनागरी लिपि में विधिवत् संपादन एवं प्रकाशन किया जाए।

आदरणीय डा० (कुँवर) चन्द्रप्रकाश सिंह जी के सुयोग्य निर्देशन में मैंने यह कार्य पूर्ण किया है। पूज्य डा० मुंशीराम शर्मा, पं० अयोध्यानाथ शर्मा, डा० प्रेमनारायण शुक्ल, डा० मोहनसिंह दीवाना, डा० हरिभजनसिंह, संत इन्द्रसिंह चक्रवर्ती आदि अनेक विद्वानों से समय-समय पर मैं इस शोधकार्य में परामर्श लेता रहा हूँ। सभी का मैं हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ।

खालसा कालेज
नई दिल्ली-५
२६ जनवरी, १९६९

अनुक्रम

हम इह काज जगत मो आए ॥ धरम हेत गुरुदेव पठाए ॥
जहां तहा तुम धरम बिथारो ॥ दुस्ट दोखियन पकरि पछारो ॥
याही काज धरा हम जनमं ॥ समझ लेहु साधू सभ मनमं ॥
धरम चलावन संत उबारन ॥ दुस्ट सभन को मूल उपारन ॥

—गुरु गोबिन्दसिंह

गुरु गोविन्दसिंह

और

उनकी हिन्दी कविता

परिस्थितियों की पृष्ठभूमि

राजनीतिक परिस्थिति

वैसे तो प्रत्येक युग और कवि का काव्य अपने युग की राजनीतिक परिस्थितियों से न्यूनाधिक रूप से प्रभावित होता है परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओ पर अपने युग की राजनीतिक स्थिति की जितनी स्पष्ट और गहरी छाप है, उतनी सामान्यत. अन्य कवियों पर नहीं दिखायी देती। इसका कारण भी स्पष्ट है। गुरु गोबिन्दसिंह के पूर्ववर्ती भक्ति-परम्परा के कवियों का राजनीति से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं के बराबर था। निर्गुण धारा के कवियों की रचनाओं में देश के राजनीतिक जीवन के परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं की ओर ध्यान देने की प्रवृत्ति थोड़ी-बहुत है परन्तु सगुण भक्त इस दृष्टि से निरपेक्ष-से ही हैं। उदाहरणस्वरूप कबीर की रचनाओ मे हिन्दू और मुस्लिम सस्कृति के सघर्षण की प्रतिक्रिया अनेक स्थानो पर देखी जा सकती है। गुरु नानक ने तो अपनी वाणी मे देश की राजनीतिक स्थिति का पर्याप्त वर्णन किया है। बाबर के आक्रमण से उत्पन्न स्थिति का वर्णन करते हुए वे अपने एक शिष्य लालो से कहते हैं :

हे लालो, वह (बाबर) पाप की बारात लेकर काबुल से दौड़ा आया है और सबसे बलपूर्वक धन ले रहा है। शर्म और धर्म दोनो ही छिपकर खड़े हो गये हैं। प्रधानता मिथ्या को प्राप्त हो गयी है। काजियो और ब्राह्मणो को कोई नही पूछता। विवाह के मत्र शैतान पढ़ता है।[1]

दिनकरजी के शब्दो में—'इस काल के सन्तो और कवियों को यह जानने की तनिक भी उत्सुकता नही है कि देश मे राज्य किसका चल रहा है। वे हरि-भजन मे मस्त हैं और जनता में भक्ति-भावना का प्रचार कर रहे हैं। सदियो का सचित ज्ञान और धार्मिक अनुभूति जनता को देश-भाषाओ मे उपलब्ध की जा रही है और जनता भी इसी धार्मिक आवेश में मग्न है। उसमे भक्ति के लिए तो उत्साह है किन्तु विदेशियों को भगाने की तनिक भी चिंता नही है। तुलसीदास और राणा प्रताप कुछ समय के लिए समकालीन थे किन्तु तुलसीदास ने राणा प्रताप का नाम सुना था या नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस काल मे

---

१. पाप की जंञ लै काबलहुँ धाइआ जोरी मंगै दान वे लालो।
भरमु धरमु दुइ छप खलोए कूड़ु फिरै परधानु वे लालो।
काजीआ बामणा की गल थकी अगदु पड़ै सैतानु वे लालो।
(तिलंग महला १)

राजनीति प्रमुख है। धर्म और संस्कृति प्रधान है। सन्त बड़ी आसानी से कह देते हैं—

सन्त को कहा सिकरी सों काम ?
आवत जात पनहियाँ टूटी बिसरि गये हरिनाम।[1]

गुरु गोविन्दसिंह का जन्म जिस समय हुआ, उस समय मुगल शासन अपनी राजनीतिक शक्ति के चरमोत्कर्ष पर था। अपने पिता को बन्दी बनाकर, अपने भाइयों को मौत के घाट उतारकर और स्वयं 'आलमगीर' की उपाधि ग्रहण कर औरंगजेब को मुगल-भारत का सम्राट् बने लगभग आठ वर्ष हो चुके थे।

औरंगजेब को लगभग नब्बे वर्ष की दीर्घायु प्राप्त हुई थी। तत्कालीन भारत के दो महान् पुरुषों, छत्रपति सिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह की सम्मिलित आयु उसकी आयु के लगभग बराबर थी। दस सिख गुरुओं में से अन्तिम पाँच, गुरु हरगोबिन्द, गुरु हरिराय, गुरु हरिकृष्ण, गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह उसके समकालीन थे।[2] अन्तिम चार को उसने अपनी बादशाहत के दिनों में गुरु-गद्दी पर बैठे देखा था।

जिस समय औरंगजेब सिंहासनारूढ़ हुआ उस समय मुगल साम्राज्य सिंध के लहिरी बन्दरगाह से आसाम में सिलहट तक और अफगान प्रदेश के बिस्त किले से लेकर दक्षिण में औसा तक फैला हुआ था। अपनी उदार नीति, दूरदर्शितापूर्ण व्यवहार और सदाशयता के कारण अकबर देश में आन्तरिक शान्ति स्थापित करने में सफल हुआ था। यद्यपि जहाँगीर धार्मिक दृष्टि से अपने पिता जैसा उदार नहीं था और अपने शासन-काल में उसने अपनी इस असहिष्णुता के कारण ही सिखों के पाँचवें गुरु, गुरु अर्जुनदेव, का वध भी करवा दिया था[3], परन्तु अपनी विलासी मनोवृत्ति के कारण उसने अपने आपको

---

१. संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २७०

२. औरंगजेब का जन्म २४ अक्तूबर, सन् १६१८ में हुआ। (जदुनाथ सरकार—शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृ० ७) और गुरु हरगोबिन्द का देहावसान ३ मार्च सन् १६४४ को हुआ (तेजासिंह-गंडासिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिख्स, पृ० ४६)

३. सर जदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' (पृ० १५५) पर लिखा है कि "औरंगजेब के शासन के पूर्व सिखों को कभी धार्मिक आधार पर दण्डित नहीं किया गया और जहाँगीर के समय उनका जो संघर्ष मुगल शासन से प्रारम्भ हुआ उसका कारण पूर्णतया लौकिक था।" इसी क्रम में वे लिखते हैं कि गुरु अर्जुन ने किसी दुर्बल क्षण में मुगल सिंहासन के लिए जहाँगीर के प्रतिद्वन्द्वी खुसरो को आशीर्वाद दे दिया और कुछ धन भी उसे दिया। खुसरो के पराजित होने पर जहाँगीर ने राजद्रोह के आधार पर उन पर दो लाख रुपये का जुर्माना कर दिया। गुरु ने वह जुर्माना देने से इन्कार कर दिया और परिणामस्वरूप उन्हें अनेक यातनाएँ दी गयीं, जो उस युग में कर न देने वालों को बहुधा दी जाती थीं और उन्हीं यातनाओं के परिणामस्वरूप सन् १६०६ ई० में लाहौर में उनकी मृत्यु हो गयी। (पृ० १५६)

गुरु अर्जुन के बलिदान के सम्बन्ध में इतिहासकारों में यह भ्रम कहाँ से फैला, कहा नहीं जा सकता। जदुनाथ सरकार के अतिरिक्त अन्य अनेक इतिहासकारों ने भी इस घटना का उल्लेख इसी प्रकार किया है। लगता है इन्होंने जहाँगीर की आत्मकथा 'तुज़के जहाँगीरी' का वह अंश नहीं पढ़ा जिसमें इस घटना का उल्लेख है और जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि खुसरो को आशीर्वाद देना अथवा उसकी आर्थिक सहायता करना तो मात्र एक बहाना था, वास्तव में तो उस कृत्य की पृष्ठभूमि पर धार्मिक असहिष्णुता ही काम कर रही थी।

(क्रमशः)

अधिकांशतः सुरा-सुन्दरी और शिकार में ही व्यस्त रहा।

औरंगज़ेब ने अपने शासनकाल में जिस धार्मिक असहिष्णुता की नीति को अपनाया, वस्तुतः उसका सूत्रपात शाहजहाँ के ही शासनकाल में हो चुका था। सन् १६३२ ई० में शाहजहाँ ने फर्मान निकाला था कि अब आगे से नये मन्दिर नहीं बनवाये जायें और जो मन्दिर बनाये जाने के क्रम में हों, वे तोड़ दिये जायें। गो-हत्या की मुमानियत भी जो अकबर के समय से चली आ रही थी सन् १६२६ ई० के आसपास ढीली हो गयी।[1] इस धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप मुग़ल सत्ता के प्रति हिन्दुओं का राजनीतिक विरोध शाहजहाँ के काल में ही प्रारम्भ हो गया था जिसका चतुर्मुखी विस्फोट औरंगज़ेब के शासनकाल में हुआ।

भारत में शताब्दियों से स्थापित मुसलमानी राज्य की नीतियों के विरुद्ध हिन्दुओं का सभी मोर्चों पर प्रभावशाली और सुनियोजित विरोध सर्वप्रथम सिख-गुरुओं के नेतृत्व में ही प्रस्तुत किया गया। मनुष्य मात्र की समता, एकेश्वर की सत्ता में विश्वास, मूर्तिपूजा के खण्डन और स्वत्व के जागरण के सदेश द्वारा गुरु नानक उस मुसलमानी सत्ता के विरुद्ध अपना परोक्ष विरोध प्रस्तुत कर चुके थे। भाई परमानन्द के शब्दों में सदियों की गुलामी के पीछे गुरु नानक पहले हिन्दू थे जिन्होंने अन्याय और असमानता के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई।[2]

मुसलमान अपने एक हाथ में तलवार और दूसरे में कुरान लेकर इस देश में आए थे। उन्होंने हिन्दुओं को अपने धर्म में दीक्षित किया। अपनी रक्षा के लिए हिन्दुओं ने अपने आपको जातिभेद के अभेद्य दुर्ग में बन्द कर लिया। परिणाम यह हुआ कि जबकि हिन्दू

'तुज़ुके जहांगीरी' के इस फारसी अंश का भावानुवाद इस प्रकार है :

'गोइंदवाल में जो कि विआह (व्यास) नदी के किनारे पर है, पीरों और बुजुर्गों के भेस में अर्जुन नाम का एक हिन्दू था। उसने बहुत से भोले-भाले हिन्दू, बल्कि बेसमझ और मूर्ख मुसलमानों को भी अपने रहन-सहन का अनुगामी बनाकर अपनी बुजुर्गी और ईश्वर से निकटता का ढोल बहुत ऊँचा बजाया हुआ था। लोग उसे गुरु कहते थे। सभी ओर से फरेबी और फरेब के पुजारी उसके पास आकर उस पर पूरा विश्वास प्रकट करते थे। तीन-चार पीढ़ियों से उनकी यह दुकान गर्म थी। कितने समय से मेरे मन में यह विचार आ रहा था कि इस झूठ के व्यापार को बन्द करना चाहिए या उसे मुसलमानों के मन में लाना चाहिए। यहां तक कि इन्हीं दिनों में खुसरो यहीं से नदी पार हुआ। इस जाहिल और हकीर आदमी ने सोचा कि सदा उसके निकट रहे। उस स्थान पर जहाँ उसका निवास-स्थान था, खुसरो ने पड़ाव किया। वह उसे मिला और कई पहले से निश्चित की हुई बातें सुनाईं और केसर से एक उगली उसके मस्तक पर लगायी, जिसे हिन्दू तिलक कहते हैं और अच्छा सगुन समझते हैं।

यह बात मेरे कान में पड़ी। पहले ही मैं इसके झूठ को अच्छी तरह जानता था। मैंने आज्ञा दी कि उसे हाजिर किया जाए और उसके घर द्वार तथा बच्चों को मुरतजा खान को सौंप दिया और उसकी धन-सम्पत्ति जब्त करके आज्ञा दी कि उसे डराएँ, मारें, सजा दें और यातना देकर वध कर दें।

१. देखिए—संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३०८ तथा ए शॉर्ट हिस्ट्री आफ सिख्स, पृ० ४२।

२. वीर वैरागी, पृ० ११

द्विजों में से अधिकांश बचा लिये गये, जो शेष रहे उनमें से अधिकांश इस्लाम के धर्मप्रचार रूपी उत्साह की महज भेंट हो गये।[1] ऐसे व्यक्तियों को पुनः अपने धर्म मे वापस लाने का हिन्दुओ मे कोई विधान नही था। इस देश मे यह साहस सर्वप्रथम सिख-गुरुओं ने ही प्रदर्शित किया। जहाँगीर ने अपनी 'तुजके' मे गुरु अर्जुन के सम्बन्ध में अपना रोष व्यक्त करते हुए लिखा है कि बहुत से हिन्दू ही नही वरन् मुसलमान भी गुरु अर्जुन के उपदेशो से प्रभावित हो गये थे। गुरु हरगोबिन्द ने तो बहुत से मुसलमानों को अपना सिख बनाया था—विशेष रूप से उन मुसलमानो को जो कुछ समय पूर्व ही हिन्दू से मुसलमान बने थे।[2] शाहजहाँ ने गद्दी पर बैठते ही मुसलमानो के किसी अन्य धर्म में परिवर्तित होने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।[3] यह प्रतिबन्ध वस्तुतः गुरु हरगोबिन्द के उस कार्य की प्रतिक्रियास्वरूप ही था। यह बात यही नही रुकी। शाहजहाँ के ही शासनकाल मे सिखों का मुगलों से सशस्त्र संघर्ष प्रारम्भ हुआ। गुरु हरगोबिन्द और मुगल सेना के मध्य पहली मुठभेड़ सन् १६२८ ई० मे हुई। उन्हें अपने जीवनकाल मे मुगलों से कई युद्ध करने पड़े और इस सशस्त्र संघर्ष को व्यापक रूप आगे चलकर उनके पौत्र गुरु गोबिन्दसिंह ने दिया।

दक्षिण मे शिवाजी के अभियान का प्रारम्भ भी शाहजहाँ के शासनकाल में ही हुआ। बीजापुर राज्य के 'तोरणा' दुर्ग पर उन्होने सन् १६४७ के आसपास अपना अधिकार जमा लिया था[4] और मुगल सेना से उनकी पहली टक्कर सन् १६५७ ई० में हुई।[5]

गुरु गोबिन्दसिंह का जन्म देश की उन राजनीतिक परिस्थितियों के मध्य हुआ जब अकबर द्वारा प्रस्थापित राजनीतिक शान्ति पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी। औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण देश मे हिन्दुओं के अन्दर प्रतिरोध का भाव जाग्रत हो रहा था। पंजाब और महाराष्ट्र मे तो इस संघर्ष का सूत्रपात हो ही चुका था। जब अभी गुरु गोबिन्द-सिंह की अवस्था कुल तीन वर्ष की ही रही होगी कि तब मथुरा के एक जमीदार गोकुल के नेतृत्व में उस प्रदेश के जाटों ने (सन् १६६९ ई० में) उस मुगल फौजदार और उसके सिपाहियों को मार डाला जिन्होंने मथुरा के मन्दिरो को तोड़ा था। यद्यपि यह विद्रोह उस समय दबा दिया गया किन्तु आग अन्दर ही अन्दर सुलगती रही। सन् १६८६ में राजाराम के नेतृत्व मे जाटो ने फिर विद्रोह किया और अन्त मे औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् चूरामन के नेतृत्व मे यह विद्रोह प्रभावशाली ढंग से आगे बढा।

गुरु गोबिन्दसिंह की अवस्था उस समय पाँच वर्ष की होगी जब छत्रसाल के नेतृत्व मे (सन् १६७१ ई० मे) बुन्देलो ने औरंगजेब के विरुद्ध अपने आपको सन्नद्ध किया और उनकी आयु के छठे वर्ष मे ही (सन् १६७२ ई० मे) दिल्ली के निकट नारनौल के सतनामी सम्प्रदाय के अनुगामियो ने मुगल शासन के विरुद्ध इतना बड़ा विद्रोह किया कि उनके अद्भुत

---

१. डॉ० नारंग—ट्रान्सफारमेशन ऑफ सिखिज्म, पृ० ३०।

२. He (Guru Hargobind) made many converts to Sikhism from the Hindus and the Muslims. In Kashmir particularly he converted thousands who had gone over to Islam. (Teja Singh.—Ganda Singh : A Short History of Sikhs, p. 41)

३. वही, पृ० ४०।

४. जदुनाथ सरकार : शिवाजी (हिन्दी रूपान्तर), पृ० २१।

५. वही, पृ० २६।

साहस को देखकर तो मुग़ल सैनिक उनमें दैवी शक्तियों का सन्देह करने लगे और स्वयं औरंगज़ेब को, जो मुसलमानों का जिन्दा पीर समझा जाता था, (आलमगीर-जिंदापीर) अपने हाथों से दुआएं और आयतें लिख-लिखकर शाही झंडों में टांकनी पड़ी। अपनी तेरह वर्ष की अवस्था में गुरु गोबिन्दसिंह ने राजस्थान में वीर दुर्गादास और महाराणा राजसिंह की मुग़ल सेनाओं के विरुद्ध किये गये वीरतापूर्ण संघर्ष की गाथाएं सुनी होंगी।

गुरु गोबिन्दसिंह ने केवल नौ वर्ष की आयु में ही दिल्ली में अपने पूज्य पिता का बलिदान होते हुए देखा। इस अबोध-सी लगने वाली आयु में उन्होंने गुरु-गद्दी का वह गुरुतर भार सभाला जो दिल्ली के मुग़ल शासन की आंखों में कांटे की तरह खटक रही थी। देश के अनेक भागों में हिन्दू उस अन्यायी शासन के विरुद्ध सिर उठा रहे थे। विशाल और शक्ति-सम्पन्न मुग़लवाहिनी बड़ी क्रूरतापूर्वक उन विद्रोहों का दमन कर रही थी। उस दमन के परिणामस्वरूप उस विद्रोहाग्नि पर कुछ समय के लिए राख पड़ती किन्तु समय पाकर अन्दर छिपी हुई चिनगारी फिर उभड़ पड़ती।

उस समय पंजाब की राजनीतिक अवस्था देश के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक विषम थी। डॉ० नारंग के शब्दों में उस समय पंजाब के हिन्दुओं की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। भारत का यह प्रान्त अन्य सभी प्रान्तों के पहले ही पराजित हो चुका था। यह प्रदेश मुसलमानों की दो प्रबल राजधानियों अर्थात् दिल्ली और काबुल के बीच में था। मुसलमानी राज्य यहाँ अत्यन्त दृढ़ता के साथ जमा हुआ था। दूसरे धर्म को अपनाने की तरंग यहाँ बड़े वेग से चल चुकी थी और पंजाब में ही सबसे अधिक संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्होंने अपना धर्म छोड़कर इस्लाम स्वीकार कर लिया था। हिन्दू मन्दिरों को गिराकर बराबर कर दिया गया था और हिन्दू पाठशालाओं तथा विद्यालयों की जगह मस्जिदें खड़ी कर दी गयी थीं, अर्थात् हिन्दू गौरव के समस्त चिह्न मिटा दिए गए थे। पंजाब के अन्तिम हिन्दू सम्राट् राजा अनंगपाल के परास्त होने के समय से गुरु नानक की उत्पत्ति के समय तक, साढ़े चार शताब्दियों के इतिहास में पंजाब के किसी भी हिन्दू का नाम नहीं आता। जो लोग धर्म-परिवर्तन से किसी प्रकार बच गए थे उनसे भी प्रायः वे समस्त पदार्थ छीने जा चुके थे जो कि मनुष्य-जीवन के मान तथा गौरव को बनाए रखते हैं और वास्तविक धर्म को अंधविश्वास से तथा कपट से पृथक् करते हैं।[1]

राजनीतिक दृष्टि से यह युग घोर अव्यवस्था का युग था। मुग़ल सैनिक तो जनता के ऊपर अत्याचार करते ही थे, बजारों और पिंडारियों ने भी उनका जीवन दूभर कर रखा था। राजनीतिक कार्य पर जाते हुए राजदूत भी मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों को उजाड़ते और नष्ट-भ्रष्ट करते जाते थे। भ्रष्टाचार की मात्रा सीमा का अतिक्रमण कर गयी थी। राजकीय करों की वसूली के लिए जागीरदारों के अनेक प्रतिस्पर्धी कर्मचारी अपने राज्यकाल की अवधि में अधिक से अधिक धन कमा लेने की लालसा में कृषकों का रक्त शोषण करते थे।[2]

इस युग में राजनीतिक दृष्टि से यह बात बड़े आश्चर्य की है कि शाहजहां और औरंगज़ेब के शासन-काल में हिन्दू वर्ग में से जिन लोगों ने मुग़लों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा

---

१. ट्रान्सफरमेशन आफ सिक्खिज्म, पृ० २८-२९।
२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० १२।

ऊँचा किया उनमें मेवाड़ के महाराजा राजसिंह को छोड़कर तत्कालीन हिन्दू राज्यों का एक भी व्यक्ति नहीं था। शिवाजी और छत्रसाल सामान्य-से जागीरदारों के लड़के थे। गोकुल एक साधारण-सा जमींदार था और सतनामी तथा सिख तो धार्मिक सम्प्रदाय ही थे। उस युग के हिन्दू राजा गौरव-शून्य हो चुके थे। कोई उच्चादर्श तो उनमें था ही नहीं और मिथ्याभिमान उनमें इस मात्रा तक था कि जहाँ मुगलों की जी-हजूरी करना, उनका मनसब स्वीकार करना और उन्हें झुक-झुक सलाम करना वे अपना गौरव समझते थे वहीं दूसरी ओर हिन्दू-जागरण के सभी प्रयासों को कुचलने में मुगलों की सहायता करने में वे सदैव तत्पर रहते थे। शिवाजी को अपने चारों ओर के मराठा सरदारों के सतत् विरोध का सामना करना पड़ा और जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह तथा आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह उन्हें दबाने के लिए दक्षिण गए। राजा जयसिंह ने शिवाजी के साथ पुरन्दर की जो संधि की थी उसमें प्रमुख शर्त यह थी कि शिवाजी बादशाह की प्रजा कहलायेंगे और उनके आधीन होकर काम करेंगे।[1] बुन्देलखण्ड के अनेक राजाओं ने छत्रसाल का विरोध करते हुए मुगल सेना के साथ होकर उनसे युद्ध किया। पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों के हिन्दू राजा तो गुरु गोबिन्दसिंह का सदा विरोध करते रहे और बार-बार पत्र लिखकर औरंगजेब को उनके विरुद्ध चढ़ाई करने के लिए प्रेरित करते रहे।

इन हिन्दू राजाओं की स्थिति का विश्लेषण करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है[2]—राजस्थान में इस समय मुख्य चार राजवंश थे—आमेर के कछवाहे, मेवाड़ के सिसोदिए, मारवाड़ के राठौर और कोटा बूँदी के हाडा। राजस्थान का इतिहास भी इस समय पतन का इतिहास है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि मुगल साम्राज्य के इस विनाश काल में भी ये लोग अपनी शक्तियों को संचित और एकत्र कर हिन्दू प्रभुत्व स्थापित न कर पाए। और, करते भी कैसे ? राजपूतों की अनादिकाल से चली आयी हुई फूट इस समय तो और जोरों पर थी। बहुपत्नीक राजपूत राजाओं के रनिवासों में मुगल हरमों की तरह आतंरिक कलह और ईर्ष्या का नग्न नृत्य होता था—एक-एक राजा की कई विवाहित रानियाँ और अनेक रक्षिताएँ होती थीं। अहंकार इन राजपूतों में इतना भयंकर था कि उसके सम्मुख कोई भी आदर्श, कोई भी सम्बन्ध टिक नहीं सकता था। पिता-पुत्र में अधिकार के लिए युद्ध होना यहाँ भी मामूली बात थी। अगर दिल्ली का औरंगजेब पिता को कैद कर सकता था, तो मारवाड़ का अमरसिंह अपने पिता की हत्या भी कर सकता था। मेवाड़ में चन्द्रावत और शक्तावत वंशों में भयंकर गृह-कलह थी जिससे मेवाड़ की सम्पूर्ण शक्ति जर्जर हो गई थी। मुगलों की पराधीनता से उनका नैतिक बल नष्ट हो चुका था, अतएव उनमें स्थिरता और सच्ची देशभक्ति का प्रायः अभाव ही था।

धार्मिक अवस्था

अपने युग की धार्मिक अवस्था का वर्णन करते हुए गुरु नानक ने एक स्थान पर लिखा है: "कलियुग कटार के समान है, राजे कसाई हैं और उनके राज्य में धर्म पंख लगाकर

---

१. जदुनाथ सरकार—शिवाजी (हिन्दी संस्करण), पृ० ६४।
२. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० ७।

उड़ गया है। चारों ओर असत्य की अमावस छायी हुई है, उसमें सत्य का चन्द्रमा कहाँ उदय हुआ है, दिखाई नहीं देता। जीव उस अँधेरे में सत्य की खोज करता हुआ भ्रमित घूम रहा है, अंधकार में कोई मार्ग नहीं सूझता।"[1]

इस प्रकार उस युग में, जब चारों ओर धर्म का ढोल पूरे जोर से बजाया जा रहा था, धर्म के वास्तविक स्वरूप की हत्या करना ही सबसे बड़ा धर्म समझा जा रहा था, नैतिक तथा बौद्धिक ह्रास के इस युग में धर्म की उदात्त भावना पूर्ण रूप से लुप्त हो गई थी। धर्म का उद्देश्य होता है व्यक्ति और समाज के नैतिक स्तर को उच्च बनाना तथा जनता में लौकिक संघर्षों से टक्कर लेने की शक्ति उत्पन्न करना। परन्तु इस काल में धर्म के नाम पर भी अनेक विकृतियाँ ही अवशिष्ट रह गई थीं। उस युग में अन्धविश्वास, रूढ़ियों का अनुसरण और बाह्याडंबरों का पालन ही धर्म की परिभाषा थी। ईश्वर और खुदा की प्रेरणामयी भावनाओं के स्थान पर पंडितों और मुल्लाओं का स्थूल और लौकिक अस्तित्व स्थापित हो गया था जिनकी सम्मति और वाणी अंधविश्वास से युक्त अशिक्षित जनता के लिए वेदवाक्य अथवा खुदा की आवाज का काम करती थी। यही नहीं, ईश्वर और खुदा के प्रतिनिधि एक-दूसरे को अपना प्रतिद्वंद्वी समझते थे, अतः दोनों में समझौते की भावना का पूर्ण अभाव हो गया था।[2]

डा० नारंग के शब्दों में वास्तविक धर्म के स्रोत निरर्थक रीतियों, अवनतिमूलक अन्धविश्वासों, पुरोहितों की स्वार्थबुद्धि तथा जनसमूह की उदासीनता रूपी घासपात से बंद कर दिए गए थे। सच्चे धर्म का स्थान केवल कर्मकाण्ड के नियमों ने ले रखा था और हिन्दू धर्म का उच्च आध्यात्मिक स्वरूप मत-मतान्तरों के आडम्बरी स्वरूप के नीचे दब गया था। शताब्दियों के आक्रमणों तथा विदेशियों के कुशासन और प्रजा-पीड़न ने लोगों के हृदयों को सर्वथा मुरझा रखा था और धार्मिक परतन्त्रता तथा निश्चलता ने लोगों की आचारभ्रष्टता तथा उत्साहहीनता को भयंकर रूप से बढ़ा रखा था।[3]

मुसलमान इस देश में शासक थे, हिन्दू शासित थे। मुसलमानों में दो प्रकार के लोग थे। एक वे जिन पर सूफी-संतों का प्रभाव था। ऐसे लोग विचारों में उदार थे। धार्मिक कट्टरता उनमें नहीं थी और हिन्दुओं से उनके सम्बन्ध निकटतर थे। राजनीतिक दृष्टि से इस उदारता का परिचय अकबर के शासनकाल में मिला था और शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह तो धार्मिक और राजनीतिक उदारता और समन्वय का जीवन्त प्रतीक था। कहते हैं उसकी अँगूठी पर नागरी अक्षरों में 'प्रभु' शब्द अंकित रहता था। रसखान, आलम, जमाल, रसलीन, कादिर, मुबारक और रहीम आदि मुसलमानों ने हिन्दी में उच्चकोटि की रचनाएँ लिखी थीं।

धार्मिक सहिष्णुता के निर्माण करने और विभिन्न धर्म-मतों में समन्वय स्थापित

---

१. कलि काती राजे कसाई धरमु पंख कर उडरिया।
कूडु अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चड़िया।
हउ भार विकुन्नी होई। आधेरै राहु न कोई।
(वार माझ महला १)

२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० १७।

३. ट्रान्सफर्मेशन आफ सिक्खिज्म, पृ० ३१।

करने की दृष्टि से सिख गुरुओं ने सर्वाधिक प्रयास किये थे। गुरु नानक ने जहाँ सभी हिन्दू, बौद्ध और जैन तीर्थों की यात्रा की वहाँ मक्का-मदीना की भी यात्रा कर मुस्लिम संतों से विचारों का आदान प्रदान किया था। सुप्रसिद्ध सूफी-सन्त शेख फरीद की गद्दी से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे और जब गुरु अर्जुन ने 'ग्रन्थ साहब' का सपादन किया, तो उसमें शेख फरीद की वाणी को सकलित करना नहीं भूले। सिखों के सर्वोच्च तीर्थस्थान अमृतसर के हरि-मन्दिर की नीव लाहौर के सुप्रसिद्ध सूफी फ़क़ीर मियाँ मीर ने रखी थी और सिढौरा के मुसलमान सूफी सत पीर बुद्धुशाह से गुरु गोबिन्दसिंह की घनिष्ठ मैत्री थी। परन्तु मुसलमानों मे एक दूसरा वर्ग भी था जो धार्मिक कट्टरता और तमस्सुब को ही वास्तविक धर्म समझता था। सूफियों की प्रेम-वाणी उन्हें अच्छी नहीं लगती थी, अकबर की उदारता उन्हें बुरी तरह खलती थी और दाराशिकोह को वे अपना सबसे बड़ा दुश्मन समझते थे। मुगल दरबार मे मौलवियो और काजियो से प्रभावित इस कट्टरपथी वर्ग का ही अधिक प्रभाव था और अकबर के बाद के मुगल बादशाह जानते थे कि यदि उन्हें दिल्ली के सिंहासन पर बने रहना है तो इन कट्टरपथियों को प्रसन्न करने के लिए इस्लाम-प्रचार का ढोंग अवश्य रचना पड़ेगा। कदाचित इसीलिए जहाँगीर जैसे विलास मे डूबे हुए शराबी-कबाबी बादशाह ने भी अपनी 'तुजक' मे गुरु अर्जुन के सम्बन्ध मे यह लिखा—"कितने समय से मेरे मन मे यह विचार आ रहा था कि उसे मुसलमानी मत मे लाना चाहिए।" कदाचित् इन्हीं मौलवियो और मुल्लाओ के प्रभाव मे आकर शाहजहाँ ने मदिरो का निर्माण रुकवाने और गौ-वध की अनुज्ञा देने का कार्य किया था।

औरंगजेब और दाराशिकोह का सघर्ष वास्तव मे इस कट्टरपथी और उदार विचार-धारा का सघर्ष था और यह देश का दुर्भाग्य ही था कि उस सघर्ष मे कट्टरता विजयी हुई और उदारता पराजित हुई। "जिस दिन दाराशिकोह मारा गया और औरंगज़ेब गद्दी-नशीन हुआ, सामासिक संस्कृति का कलेजा, असल मे, उसी रोज़ फटा और तब से, यद्यपि, हम इस फटन को बार-बार सीने की कोशिश करते आ रहे हैं, किन्तु वह ठीक से सिल नहीं पाती।"[1]

औरंगज़ेब ने सिंहासनारूढ होते ही अपने पूर्वज बाबर की उस नसीहत को भुला दिया जो उसने अपने पुत्र हुमायूँ को अपनी वसीयत के रूप में दी थी। उसमें उसने हुमायूँ को ये उपदेश दिये थे—"हिन्दुस्तान मे अनेक धर्मों के लोग बसते हैं। भगवान को धन्यवाद दो कि उसने तुम्हें इस देश का राजा बनाया है। तुम तमस्सुब (साम्प्रदायिकता) से काम न लेना, निष्पक्ष होकर न्याय करना और सभी धर्मों के लोगों की भावना का खयाल रखना। गाय को हिन्दू पवित्र मानते हैं। अतएव जहाँ तक हो सके, गोवध नहीं करना और किसी भी सम्प्रदाय के पूजा के स्थानो को नष्ट नहीं करना।[2]

अपनी इस तमस्सुबी नीति के कारण औरंगज़ेब ने इस देश मे धार्मिक दृष्टि से वह परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिसकी मिसाल ससार के इतिहास मे ढूँढ़ना दूभर है। सन् १६४४ ई० में अपनी दक्षिण की सूबेदारी के समय ही उसने अहमदाबाद मे चिंतामणि के नवनिर्मित

---

१. संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३०९।
२. वही, पृ० २७१ पर उद्धृत।

मंदिर मे गोवध कर उसे अपवित्र किया था और फिर उसे मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया था।[1] अपने राज्य के प्रारम्भिक वर्षों में ही उसने उड़ीसा के सभी स्थानीय अधिकारियों को बुला कर आज्ञा दी कि पिछले १०-१२ वर्षों मे बने सभी मंदिर और मठ गिरा दिए जाएं और किसी भी पुराने मंदिर की मरम्मत न होने दी जाए।[2] ९ अप्रैल, १६६९ में उसने एक आज्ञा प्रसारित की कि विधर्मियों (हिन्दुओं) के सभी मंदिर और विद्यालय नष्ट कर दिए जाए और उनकी धार्मिक शिक्षा तथा क्रिया को पूरी तरह रोक दिया जाय।[3] उसके विनाशकारी हाथ फिर सम्पूर्ण भारत के हिन्दुओं के पूज्य मंदिरो, जैसे सोमनाथ का द्वितीय मंदिर, बनारस का विश्वनाथ मंदिर और मथुरा का केशवराय का मंदिर, पर आ पड़े।[4]

१४ अक्तूबर, १६६६ को यह जानकर कि मथुरा कि केशवराय के मंदिर मे दाराशिकोह की भेंट की हुई पत्थर की एक चार दीवारी लगी है, औरंगजेब ने आज्ञा दी कि उसे वहाँ से निकाल लिया जाय और अंत मे जनवरी सन् १६७० मे उसने उस मंदिर को पूर्णतया नष्ट करने और मथुरा का नाम बदल कर इस्लामाबाद रखने के लिए एक फौज भेज दी।[5] सभी तहसीलों और नगरो मे उसने मुहतासिबों की नियुक्ति की। हिन्दू मंदिरों को नष्ट करना इनका प्रमुख कर्तव्य था।[6]

२ अप्रैल, १६७६ ई० को औरंगजेब की आज्ञा से विधर्मियों पर पुनः जजिया (कर) लगाया गया। इस कर का सबसे अधिक बोझा निर्धन लोगो पर पड़ा जिनकी सम्पूर्ण आय का कम से कम ६ प्रतिशत इस कर द्वारा ले लिया जाता था। इस्लाम स्वीकार न करने का मूल्य उन्हें इस प्रकार अपने वर्ष भर भोजन के पूरे मूल्य के रूप मे चुकाना पड़ता था।[7]

१० अप्रैल, १६५५ ई० को एक अध्यादेश द्वारा घोषित किया गया कि बाहर से बिक्री के लिए लायी जाने वाली चीजों पर मुसलमानो के लिए ढाई प्रतिशत और हिन्दुओं के लिए ५ प्रतिशत महसूल लगेगा। ६ मई, १६६७ ई० को बादशाह ने मुस्लिम व्यापारियों पर से महसूल पूरी तरह हटा लिया पर हिन्दुओं पर पुरानी दर से बना रहा।[8]

सन् १६७१ मे एक अध्यादेश द्वारा सभी सूबेदारो और तालुकेदारो को आज्ञा दी गयी कि हिन्दू पेशकारो और दीवानियो को बरखास्त कर दिया जाए और उनके स्थान पर मुसलमानों की नियुक्ति की जाय।[9]

मार्च, १६९५ में राजपूतो को छोड़कर सभी हिन्दुओं के लिए पालकी, हाथी और घोड़े पर चढ़ने की और हथियार लेकर चलने की मुमानियत कर दी गयी।[10]

---

१. सरकार—शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ० १४७
२. वही।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० १४८।
६. वही।
७. वही।
८. वही।
९. वही।
१०. वही।

हिन्दुओ मे भी धार्मिक दृष्टि से इस युग मे दो वर्ग स्पष्टतः दिखायी देते हैं। एक वह जो राम और कृष्ण (विशेष रूप से कृष्ण) की उपासना मे बड़े भक्ति भाव से लीन हैं। राजनीतिक दृष्टि से देश पर किसका शासन है और धार्मिक दृष्टि से उसकी क्या नीति है आदि प्रश्न उन्हे अधिक व्याकुल नही करते। जैसा कि राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा गया है, वे केवल हरि भजन में मस्त हैं और जनता में भक्ति भावना का प्रचार कर रहे हैं। दिनकर जी के शब्दो मे[1]—तुलसीदास के बारे मे कहा जाता है कि उन्होने इस्लाम से हिन्दुत्व की रक्षा की किन्तु उनकी रचना मे कही भी यह भाव नही दीखता कि वे मुसलमानो से क्षुब्ध थे। क्षोभ उनमे था तो निर्गुनियाँ साधुओं पर जिनके उपदेश की मार से वर्णाश्रम धर्म दुर्बल पड़ता जा रहा था।[2]

कृष्ण भक्ति की परम्परा तो नैतिक दृष्टि से भी बहुत नीचे गिर चुकी थी। भक्ति-कालीन माधुर्य भक्ति की उदात्त भावनाएँ और उसके सूक्ष्म तत्व इस काल तक आते-आते पूर्ण रूप से तिरोहित हो चुके थे। लीला पुरुष श्री कृष्ण के प्रति माधुर्य भक्ति अब राधा-कृष्ण के स्थूल मांसल शृंगार का रूप धारण कर चुकी थी। कृष्ण भक्ति परम्परा के अनेक सम्प्रदायो मे माधुर्य भक्ति की स्निग्ध मधुर उपासना के नाम पर स्थूल शृंगार-परक उपासना शेष रह गयी थी, जिसकी आड़ मे नैतिक भ्रष्टाचार धर्म के पवित्र क्षेत्र में उतनी ही प्रबलता से व्याप्त हो रहा था जैसे समाज के अन्य क्षेत्रो मे। रागात्मिका भक्ति की उदात्त भावना को समझने और उसका अनुसरण करने की न तो तत्कालीन जनता के मस्तिष्क मे परिष्कृति थी, न उदात्त भावना। प्रेम लक्षणा भक्ति को माधुर्य भक्ति और शृंगार रस को उज्ज्वल रस की संज्ञा देकर चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य श्री रूप गोस्वामी ने अपने ग्रन्थों मे लौकिक शृंगार और प्रेम के उन्नमित रूप की अभिव्यक्ति की थी और कृष्ण-भक्ति का एक दिव्य रूप स्थापित करके शृंगार तत्व की स्थूलताओ का परिमार्जन भी किया था, परन्तु आगे चलकर इस भक्ति मे से भाव तत्व तो पूर्ण रूप से लुप्त हो गया। केवल स्थूल काम चेष्टाओ की अभिव्यक्ति मे ही भक्तिपरक ग्रन्थो की रचना की जाने लगी। पुण्य प्रेम के स्थान पर कामुक लोलुपता, धार्मिक साहित्य और धर्म के ठेकेदार महन्तो के जीवन मे भी व्याप्त हो गई। चैतन्य और राधावल्लभ सम्प्रदायों की गद्दियाँ रसिक जीवन का केन्द्र बन गयीं। राम भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों की भी यही गति थी। दनुजदलन, लोकरक्षक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र अब सरयू किनारे काम क्रीड़ा करने लगे। धनुष उनका शृंगार बन गया और सीता के व्यक्तित्व का मार्दव और आदर्श, युग की शृंगारिकता मे लुप्त हो गया और सीता का भी केवल रमणी रूप ही शेष रह गया। रसिक सम्प्रदाय के भक्त उनकी सयोग लीलाओ को भी सखी बनकर निहारने लगे। माधुर्य साधना मे निहित पुण्य भावना पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी, केवल भक्तजनो का स्त्री रूप, उनकी स्त्रैण चेष्टाएँ और

---

१. संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २७०।

२. साखी सबदी दोहरा, कहि कहिनी उपखान,
भगत निरूपहिं भगति कलि, निन्दहिं बेद-पुरान।
हम लख हमहिं हमार लख हम हमार के बीच,
तुलसी अलखहि का लखै, राम नाम जपु नीच।

शारीरिक स्थूल आकाक्षाएँ धर्म की विकृति बनकर रह गयी। इन विकृतियों को 'उन्नयन' का नाम देना ईश्वर भावना का अपमान करना होगा। प्रायः सर्वत्र भक्ति का आध्यात्मिक रूप तिरोहित हो गया और सभी ओर एक स्थूल पार्थिवता व्याप्त दिखाई देने लगी। कुछ सम्प्रदायों में गुरु पूजा को जो महत्त्व प्रदान किया गया उसमे गोपी भाव के प्राधान्य के कारण अनाचार के प्रचार मे बहुत सहायता मिली। भक्ति मे वित्त-सेवा का भी बड़ा महत्त्व था, फलस्वरूप बड़े-बड़े महन्तो की गद्दियाँ छत्रवान् राजाओ के वैभव से टक्कर लेने लगी। एक प्रसिद्ध इतिहासकार के शब्दो मे "उनके विलास के लिए जो साधन एकत्रित किए जाते थे, अवध के नवाब तक को उनसे ईर्ष्या हो सकती थी या कुतुबशाह भी अपने अन्तःपुर मे उनका अनुसरण करना गर्व की बात समझते। मन्दिरों और मठो मे देवदासियों का सौन्दर्य और उनके घुंघुरुओ की झनकार मठाधीशो की सेवा और मनोरजन के लिए सवदा प्रस्तुत रहती थी। सूक्ष्म आध्यात्मिकता की विकृति का यह स्थूल रूप वास्तव मे धर्म के इतिहास मे एक अधकारपूर्ण पृष्ठ है।"[1]

निर्गुण भक्ति परम्परा के अनुयायी अपेक्षाकृत अधिक सगठित, सयमी और अपने चारो ओर के वातावरण के प्रति अधिक सचेत थे। सत्रहवी शताब्दी मे सतनामी, लालदासी, नारायणी और सिक्ख-पथ उत्तर भारत मे प्रमुख थे। ये पथ भेदभाव से रहित होने के कारण पूर्णतः सुसगठित थे और आवश्यकता पड़ने पर अपनी शक्ति का परिचय भी दे सकते थे। इन पथो के आचार्य या गुरु ऐसे थे जो सयत रूप से सासारिक जीवन व्यतीत करते थे। घर बार छोड़कर जगल मे धूनी रमाना इन्हें प्रिय नही था। ये विवाहित होते थे और स्त्री-पुरुषो को समान रूप से उपदेश देते थे। समाज के निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखने के कारण इनमे मिथ्याचार और बाह्याडबर अधिक नहीं था, इसलिए उपेक्षित जनता पर इनका अधिक प्रभाव था।

इन सभी पथो में सिख-पथ कहीं अधिक प्रभावशाली, व्यापक, सगठित और जीवन सम्पन्न था। यद्यपि गुरु-गद्दी की सम्पन्नता और वैभव को देखकर गुरु-परिवारो मे काफी ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न होना प्रारम्भ हो गया था, फिर भी ऐसे स्वार्थी तत्व गुरु-गद्दी पर अधिकार जमाने मे कभी सफल नही हो सके। गुरु नानक ने अपने दोनों पुत्रो मे से किसी को अपना उत्तराधिकारी न बनाकर अपने एक प्रिय शिष्य को वह स्थान दिया था। द्वितीय गुरु अंगददेव ने भी अपनी सतान की अपेक्षा अपने शिष्य अमरदास को उत्तराधिकारी बनाया। चौथे गुरु, गुरु रामदास के समय से गुरु-गद्दी पैतृक हो गयी, फिर भी गुरु अपने पुत्रों मे 'ज्येष्ठ' पुत्र का चुनाव न कर 'योग्य' पुत्र का चुनाव करते रहे। गुरु अर्जुन गुरु रामदास की तीसरी सतान थे और सप्तम गुरु हरिराय ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रामराय की अपेक्षा अपने कनिष्ठ पुत्र हरिकृष्ण को अपना उत्तराधिकारी बनाया था।

सिख गुरुओ का प्रभाव उत्तर-पश्चिम मे ईरान तक, पूर्व मे आसाम तक, दक्षिण मे महाराष्ट्र और पश्चिम मे गुजरात तक फैला हुआ था और हर स्थान पर उनकी 'सगतें' सक्रिय रूप से काम करती थीं। श्री जदुनाथ सरकार के शब्दों मे—"सत्रहवीं शताब्दी मे सिख अपनी बन्धुत्व भावना और एक दूसरे के प्रति प्रेम के कारण प्रसिद्ध थे।"[2]

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० १७-१८।
२. ए शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ० १५७।

है—इसका राजनीतिक और नैतिक प्रभाव देश पर पड़ा। राजनीतिक और नैतिक दृष्टि से औरंगजेब की विजय का देश पर कितना ही प्रभाव पड़ा हो, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से वह प्रभाव हमें अधिक दृष्टिगत नही होता। रीतिकाल के कवि जिस प्रकार की शृंगारी रचनाएँ इस घटना के पूर्व लिख रहे थे, कुछ को छोड़कर अन्य सभी कवि औरंगजेब की नीति, हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचार और सम्पूर्ण देश में उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाले विस्फोट के प्रति पूर्णतया उदासीन रहकर उसी प्रकार की रचनाएँ उसके पश्चात् भी लिखते रहे।

रीतिकाल के अधिकाश प्रमुख कवि चिंतामणि, बिहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र और देव, सभी औरंगजेब के समकालीन थे किन्तु आश्चर्य की बात है कि इनमे से किसी ने भी अपने युग की राजनीतिक स्थिति की अपने काव्य मे झलक तक नही दी। सन् १६८० ई० मे औरंगजेब ने जयपुर के हिन्दू मंदिर तुड़वा दिए परन्तु जयपुर के महाराजा रामसिंह के दरबारी कवि कुलपति मिश्र ने अपनी किसी रचना मे उसके विरुद्ध रोष प्रकट नही किया।

उस युग की साहित्यिक स्थिति को पृष्ठभूमि मे रखने के पश्चात् ही गुरु गोविन्दसिंह के कार्य और उनकी काव्य रचना का विधिवत् मूल्यांकन किया जा सकता है। गुरु गोविन्दसिंह के समकालीन कवियों (भूषण और लाल को छोड़कर) के सम्मुख जीवन का कोई महत् आदर्श नही था। "काव्य का परिशीलन और सृजन इनका शगल नही था स्थायी कर्त्तव्य-कर्म था।"[1] और इस कर्त्तव्य कर्म की पूर्ति के लिए उन्हे कोई न कोई आश्रयदाता चाहिए होता था। उस युग के अधिकांश कविगण काव्य रचना के 'काम की तलाश' मे इधर-उधर घूमते रहते थे और जहाँ कही उन्हे अपने योग्य कोई आश्रयदाता मिल जाता वहीं टिककर उसकी इच्छा और आदेशानुसार वे काव्य-रचना प्रारम्भ कर देते थे।

आश्रयदाता का राजा, राव या रईस होना तो आवश्यक था ही। ये राजा और रईस अधिकाशतः हिन्दू या हिन्दू रीति-रिवाजों मे घुले-मिले हिंदी रसिक मुसलमान थे। इनमे से अधिकाश का जीवन सामयिक राजनीति से पृथक अवकाश और विलास का जीवन था। शताब्दियो की दासता ने इनके जीवन को पूर्णतया गौरवशून्य कर दिया था। औरंगजेब के शासन-काल मे जब अपने धर्म पर आया हुआ सकट देखकर जनता मे से नेता उत्पन्न होकर जनक्रान्ति की योजना कर रहे थे तो ये राजा और राव लोग सुबाला, सुराही और प्याला के साथ तानतुल ताला का आनन्द लेते हुए काम की साधना मे पूरी तरह लीन थे और रीतिकालीन कवि इनकी स्तुति करते हुए इनकी विलास वृत्ति को अधिकाधिक सतुष्ट करने का प्रयास किया करते थे। "शृंगार के वर्णनो को बहुतेरे कवियो ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता राजा महाराजाओ की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।"[2]

इन कवियों की शृंगारिक वृत्ति को उनके युग की कृष्ण-भक्ति परम्परा और मुगल दरबार द्वारा पोषित फारसी सस्कृति और साहित्य की शृंगारिकता से भी पर्याप्त प्रोत्साहन

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १४६।
२. आ० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२३।

मिला था। डा० नगेन्द्र के शब्दों में—"पराभव के और भी युग भारतीय जीवन में आए, पर उन सभी में काम की ऐसी सार्वभौम उपासना नहीं हुई। कारण यह था कि उन युगों में नैतिक आदर्श दृढ़ और कठोर थे, जो इस प्रवृत्ति के प्रतिकूल पड़ते थे। परन्तु रीति-काल में कृष्ण-भक्ति की परम्परा से नैतिक अनुमति भी एक प्रकार से इसे प्राप्त हो गई थी। अतएव अब किसी प्रकार के अप्राकृतिक संकोच अथवा दमन की आवश्यकता भी नहीं पड़ी। काम की उपासना जीवन के स्वीकृत सत्य के रूप में होती थी। वातावरण के अतिरिक्त साहित्यिक परम्पराएँ और प्रभाव भी इसके अनुकूल थे। फ़ारसी संस्कृति और साहित्य की शृंगारिकता अब तक भारतीय संस्कृति में घुलमिलकर उसका एक अंग बन गई थी। वह नागरिकता का एक प्रधान अलंकरण थी, अतएव इसका प्रभाव चेतन और अचेतन दोनों रूपों में हिन्दी कविता पर पड़ रहा था।"[1]

इस काल के कवियों में से जिन्होंने स्थापित छोटे-बड़े राज्यों में आश्रय ढूंढा, जैसे चिन्तामणि ने मुग़ल सम्राट शाहजहाँ और चित्रकूट के राजा रुद्रसाहि सोलंकी के दरबार में, बिहारी और कुलपति ने जयपुर के दरबार में, मतिराम ने बूंदी और देव ने औरंगजेब के पुत्र आजमशाह और राजा भोगीलाल आदि के पास—ये कवि तो शृंगारिक रचनाएँ करते रहे या रीति ग्रंथ लिखते रहे। इनके अतिरिक्त कुछ कवि ऐसे भी थे जिन्होंने मुगल-राज्य के विरोधी केन्द्रों में आश्रय ग्रहण किया था। इन केन्द्रों के नायक उस समय विधिवत् राजा नहीं थे परन्तु उनका परिवेश और इनके दरबारों का रंग-ढंग राजाओं जैसा ही था। औरंगजेब के शासन काल में शिवाजी, छत्रसाल और गुरु गोबिंदसिंह इस प्रकार के प्रमुख नायक थे और इनके आश्रय में उस काल की प्रचलित परम्परा के प्रतिकूल भूषण, लाल और सेनापति[2] आदि कवि वीर रसपूर्ण रचनाएँ लिख रहे थे। सम्पूर्ण देश पर जिस समय संकट छाया हुआ था, हिन्दुओं के मानबिन्दु नष्ट किये जा रहे थे, उनका बलात् धर्म परिवर्तन किया जा रहा था, उन्हें आर्थिक दृष्टि से तोड़ देने के लिए उन पर नये कर लगाए जा रहे थे, ऐसे समय में विलासी और गौरवशून्य राजाओं के दरबारों की शोभा बढ़ाते हुए ये शृंगारी कवि नायिका भेद की सूक्ष्मतम परिभाषाएँ करते हुए शृंगार को रसराज सिद्ध करने में लगे हुए थे। केशव ने तो शृंगार को केवल रसों का नायक ही घोषित किया था,[3] परन्तु देव ने तो मूल रस शृंगार ही माना और वीर और शान्त आदि मुख्य रसों को भी

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १७३-७४।

२. सेनापति नाम के ये कवि कवित्त रत्नाकर के रचयिता सुप्रसिद्ध कवि सेनापति (जन्मकाल संवत् १६४६ वि०) नहीं थे। गुरु गोबिन्दसिंह के दरबारी कवि सेनापति (या सेनापत) कोई दूसरे ही कवि थे। गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन पर लिखी इनकी प्रबन्ध-रचना 'गुरु शोभा' को गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन के प्रामाणिक अध्ययन का बड़ा प्रमुख आधार माना जाता है। इस अध्ययन में गुरु गोबिन्दसिंह का जीवन-वृत्त लिखते समय इस रचना से पर्याप्त सहायता ली गई है।

ऐतिहासिक प्रमाणों के अतिरिक्त इस रचना का साहित्यिक महत्व भी पर्याप्त है। इस अध्ययन के परिशिष्ट में सेनापति तथा गुरु गोबिन्दसिंह के अन्य दरबारी कवियों की संक्षिप्त चर्चा की गई है।

३. नवहू रस को भाव बहु, तिनके भिन्न बिचार।
सबको केशवदास हरि, नायक है सिंगार। — (रसिकप्रिया)

अन्त में शृंगार में ही लीन कर दिया था।[1] बिहारी सांसारिक भोग और ऐश्वर्य को ही जीवन का चरम लक्ष्य मान रहे थे[2] और उनके लिए "राधा हरि" और "हरि राधिका" शब्द भक्ति के प्रेरक न होकर विपरीत रति का संकेत करने वाले हो गये थे।[3]

ऐसी परिस्थिति में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कुछेक कवियों ने उन जन नायकों के पास आश्रय ढूंढ़ा, जो काव्य रसिक तो थे ही परन्तु उनकी यह रसिकता उनमें 'काम' तीव्र करने की अपेक्षा 'उत्साह' तीव्र करने की ओर अधिक थी और ऐसे जन नायकों में गुरु गोबिन्दसिंह सबसे प्रमुख थे। उनमें कवियों के आश्रयदाता होने और स्वयं-सिद्ध कवि होने का अद्वितीय संयोग था।

---

१. भूलि कहत नव रस सुकवि, सकल मूल शृंगार।
तेहि उछाह निर्वेद ले वीर सांत संचार।
भाव सहित सिंगार में, नवरस झलक अजस्र।
ज्यों कंकन मनि-कनक को ताही में नवरत्न॥
(भवानी विलास)

२. तंत्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥
(बिहारी सतसई)

३. राधा हरि, हरि राधिका बनि आये संकेत।
दंपति रति विपरीत सुख सहज सुरत हू लेत।
(बिहारी सतसई)

जीवन वृत्त

गुरु गोबिन्दसिंह का सम्पूर्ण जीवन जितनी विविधता और विशालता से भरा हुआ है उतनी ही विविधता और विशालता उनके जन्म-स्थान, कार्यक्षेत्र और देहावसान के स्थान मे दिखायी देती है। जन्म-स्थान सुदूरपूर्व पटना मे, कार्यक्षेत्र उत्तर-पूर्व के पहाडी अचलों में और देहावसान दक्षिण (महाराष्ट्र) में। उनके जीवन कार्यों की भाँति प्रकृति ने मानो उनकी जीवनावधि को भी भारत की एकता एव अखडता का प्रतीक बना दिया था।

वह सम्वत् १७२३ विक्रमी की पौष सुदी सप्तमी[1] थी जब गुरु गोबिन्दसिंह का जन्म हुआ था। उनके पिता गुरु तेगबहादुर अपनी पत्नी गूजरी तथा कुछ शिष्यों सहित उन दिनो पूर्वी भारत की यात्रा कर रहे थे। अपनी गर्भवती पत्नी तथा कुछ शिष्यों को पटना मे छोड़कर गुरु तेगबहादुर असम की ओर चले गए थे। वहीं उन्हे पुत्र-प्राप्ति का शुभ समाचार प्राप्त हुआ था। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने जन्म का वर्णन अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'विचित्र नाटक' के सप्तम अध्याय मे इस प्रकार किया है—

मुर पित पूरब कियसि पयाना। भाँति-भाँति के तीरथ नाना ॥
जब ही जात त्रिबेणी भये। पुन्न दान दिन करत बितये ॥
तहीं प्रकास हमारा भयो। पटना शहर बिखे भव लयो ॥[2]

गुरु तेगबहादुर अपने परिवार को पटना की सिख सगत के सरक्षण मे छोड़कर पूर्व की ओर चले गए थे। मुगेर से प्रस्थान करने के कुछ समय पश्चात् उन्होने पटना की संगत को एक पत्र लिखा था कि वे 'राजाजी' के साथ आगे जा रहे हैं और वे (सगत के लोग) उनके परिवार के निवासादि का उत्तम प्रबध कर दें।[3] यह राजा कौन था जिसके साथ गुरु तेगबहादुर सुदूरपूर्व की ओर गए? 'सूरजप्रकाश' के रचयिता भाई सतोखसिंह ने इसका नाम बिशनसिंह लिखा है। मैकालिफ आदि परवर्ती लेखकों ने लिखा है कि यह राजा, मिर्जा राजा जयसिंह का पुत्र रामसिंह था। किन्तु ऐतिहासिक प्रकाश मे यह बात सत्य नहीं लगती। क्योंकि गुरु तेगबहादुर ने अपने जिस पत्र में किसी राजा के साथ पूर्व की ओर जाने का सकेत किया है, वह गुरु गोबिन्दसिंह के जन्म के पूर्व का है। गुरु गोबिन्दसिंह का जन्म १६६६ ई० में हुआ जबकि राजा रामसिंह ने असम के शासक के विरुद्ध अपना अभियान उसके दो वर्ष

---

१. २६ दिसम्बर, १६६६।
२. दशम ग्रथ, पृ० ५६।
३. गुरु तेगबहादुर का यह तथा अन्य ६ पत्र आज भी पटना के गुरुद्वारे में सुरक्षित हैं।

बाद किया ।[1]

कुछ लेखकों ने इस राजा का नाम सबल सिंह सिसौदिया लिखा है[2] जो शाइस्ता खान के पुत्र बजर्ग उम्मेदखान के साथ चटगाँव के अभियान में गया था। किन्तु श्री जदुनाथ सरकार के अनुसार यह अभियान ढाका से, गुरु गोबिन्दसिंह के जन्म के ठीक एक वर्ष पूर्व २४ दिसम्बर, १६६५ को आरम्भ हुआ। इस समय गुरु तेगबहादुर अपने परिवार-सहित त्रिवेणी आदि की ही यात्रा कर रहे थे।

किस राजा के साथ गुरु तेग़बहादुर पूर्व की ओर गये, न तो इसका उल्लेख गुरु ने अपने पत्र में ही किया और न इस गुत्थी को इतिहासकार सुलझा सके हैं।[3]

गुरु तेग़बहादुर मुंगेर से ढाका गये जो मुगल राज्य का सम्पत्ति-भण्डार होने के साथ ही साथ सिख-मत का एक प्रमुख केन्द्र था।

उन दिनों सिख-गुरुओं का संदेश पूर्व में पर्याप्त रूप से पहुँच चुका था। श्री जी० बी० सिंह अपने एक लेख 'सिख रेलिक्स इन ईस्टर्न बंगाल'[4] में लिखा है—"वहाँ (पूर्वी बंगाल में) सभी ओर समृद्ध सिख संगतों और मठों का अच्छा जाल फैल गया था। पश्चिम में राज-महल से लेकर पूर्व में सिलहट तक और उत्तर में ढुबरी से लेकर दक्षिण में बन्सखाली और फतेकचेहरी तक मुगलों के शासनकाल में कठिनाई से ही कोई ऐसा प्रमुख स्थान होगा जहाँ कोई सिख-मन्दिर न हो या किसी सिख-सन्यासी ने अपने आपको बसा न लिया हो और अपने चारों ओर श्रद्धालुओं की एक अच्छी संख्या एकत्रित न कर ली हो। यह आन्दोलन शाहजहाँ के समय में सन्दीप आदि कुछ द्वीपों में भी फैल गया था। ये संगतें केवल पूजा-स्थल ही नहीं थीं वरन् मार्ग की धर्मशालाओं का उपयोगी काम भी करती थीं और वहाँ निर्धन तथा साधनहीन यात्रियों को भोजन और निवास उपलब्ध कराया जाता था।"

ये संगतें अलमस्त और नाथे साहब द्वारा भली प्रकार संगठित की गई थीं। ढाका इस भाग की 'हजूरी संगत' या प्रधान संगत थी, जिसके अधीनस्थ अन्य संगतें थीं। इन स्थानीय संगतों में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त पंजाब और सिंध के सिख व्यापारियों की एक अच्छी संख्या सदैव उपस्थित रहती थी। जैसा कि उन्हें गुरु तेगबहादुर द्वारा लिखे गये पत्रों से यह स्पष्ट है, वे अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शक से सम्बन्ध रखने को सदैव उत्सुक रहा करते थे और समय-समय पर अपनी भेंट भेजा करते थे।[5]

गुरु तेगबहादुर ढाका में ही थे जब उन्होंने पटना में अपने पुत्र के जन्म का शुभ समाचार सुना। उन्होंने पटना की संगत को अपने परिवार की भली प्रकार देखभाल करने के लिए धन्यवाद का एक पत्र लिखा। ढाका से उन्होंने उस प्रदेश का विस्तृत दौरा किया

१. डॉ० बनर्जी : इवोल्यूशन ऑफ खालसा, पृ० ५७।
२. सन् १९१५ के ढाका रिव्यू (पृ० २२६) में प्रकाशित गुरुबक्श सिंह का लेख।
३. साप्ताहिक 'स्पोक्समैन' के गुरु गोबिन्दसिंह जन्म त्रिशताब्दी विशेषांक में प्रकाशित एक लेख में डॉ० फौजासिंह ने गुरु तेगबहादुर का राजा रामसिंह के साथ ही असम की ओर जाना माना है और ऐतिहासिक तिथियों की संगति की दृष्टि से उन्होंने गुरु गोबिन्दसिंह का जन्म अधिकांश इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत तिथि के दो वर्ष बाद माना है।
४. जुलाई, १९१५ के सिख रिव्यू और सन् १९१५ और १९१६ के ढाका रिव्यू में प्रकाशित।
५. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिख्स, पृ० ५४।

ग्रोर ग्राज भी सिलहट, चटगाँव, सन्दीप, लश्कर ग्रादि स्थानो पर उनके ग्रागमन के प्रमाण प्राप्त होते हैं। इन क्षेत्रो मे ग्रवश्य ही उनके लगभग दो वर्ष व्यतीत हुए होगे।

वहाँ से वे उत्तर की ग्रोर गये ग्रौर ग्रसमवासियों मे ग्रपने मत का प्रचार करते रहे। फरवरी, सन् १६६६ ई० मे रगामती मे उनकी भेंट राजा राम सिंह (मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र) से हुई जो मुगलो की ग्रोर से ग्रसम के राजा के विरुद्ध ससैन्य ग्रभियान पर ग्राए हुए थे। राजा रामसिंह को उन लोगो का भाग्य ज्ञात था जो उनके पूर्व ग्रसम भेजे गये थे। दूषित जलवायु ग्रौर ग्रसमियों की जादू-टोने की बहु-प्रचारित शक्ति के कारण उन्हें ग्रपने ग्रभियान की सफलता की बहुत कम ग्राशा थी। उन्हें विश्वास था कि इन विपरीत परिस्थितियों मे उन्हें समाप्त कर देने के लिए ही मुगल दरबार ने उन्हें ग्रसम भेजा है। कामरूप के जादू से ग्रपनी रक्षा करने के लिए उन्होने गुरू तेगबहादुर की ग्राध्यात्मिक सहायता चाही। ऐसा लगता है कि गुरु तेगबहादुर राजा रामसिंह ग्रौर ग्रसम के शासक के मध्य एक शान्तिपूर्ण समभौता कराने में सफल हो गये।[1] मुगलो ग्रौर ग्रसमियो के मध्य इस शान्तिपूर्ण निदान की स्मृति मे ब्रह्मपुत्र के दाहिने किनारे, ढुबरी मे, जहाँ एक बार गुरु नानक के चरण पड़ चुके थे, एक स्मृतिचिह्न बनाया गया। ग्राज भी वहाँ एक गुरुद्वारा स्थापित है।

गुरु तेगबहादुर लगभग दो वर्ष तक ग्रसम मे रहे। फिर वे शीघ्रता से पजाब की ग्रोर मुड़े। इस शीघ्रता का ठीक कारण क्या था, यह ज्ञात नही है। किन्तु उनकी यह शीघ्रता ग्रसम से पटना की सगत को लिखे गये एक पत्र मे स्पष्ट परिलक्षित होती है। देश की धार्मिक, राजनीतिक ग्रवस्था में ग्रौरगजेब की धार्मिक नीति के कारण एक तूफान-सा ग्रा गया था। पजाब को इस नीति का विशेष रूप से शिकार होना था क्योंकि गत ग्रनेक शताब्दियो के मुसलमान शासन ने उस प्रदेश मे इस्लाम धर्मानुयायियो की सख्या काफी बढा दी थी इसलिए जिस नीति का पोषण शासन की ग्रोर से किया गया था उसे स्थानीय मुसलमान जनता का भी सहयोग मिल रहा था।

पंजाब की ग्रोर लौटने की, गुरू तेगबहादुर की शीघ्रता का कारण इसके ग्रतिरिक्त ग्रौर क्या हो सकता था? उनका प्रान्त ग्रौर उसके निवासी ग्रौरगज़ेब की दमन नीति के शिकार हो रहे थे। गुरु ने ग्रपने परिवार को पटना मे ही रहने दिया ग्रौर स्वय पजाब की ग्रोर चले गये। निश्चित है कि पहिले वे स्वय वहाँ की परिस्थितियो का ग्रध्ययन करना चाहते थे। बालक गोबिन्द की ग्रवस्था भी बहुत छोटी थी। गुरु तेगबहादुर के सम्मुख शासक-वर्ग के विरोध का ही प्रश्न नही था, उन्हें स्वय ग्रपने सम्बन्धियों तथा गुरु-गद्दी के ग्रन्य प्रतिद्वन्द्वियों के विरोध का भी सामना करना था। यह विरोध भी बड़ा तीव्र था। गुरु-गद्दी के निराश-प्रत्याशी गुरु तेगबहादुर तथा उनके नवजात पुत्र के प्राणो के भी ग्राहक थे।

ग्रौरंगज़ेब की धार्मिक नीति

गुरु तेगबहादुर जब पंजाब लौटे, ग्रौरगज़ेब की धार्मिक नीति ग्रपने पूरे ज़ोर पर

१. ए शार्ट हिस्ट्री ग्रॉफ सिक्स, पृ० ५५।

थी। वह भारत में एक कट्टर सुन्नी राज्य स्थापित करना चाहता था। उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य में धर्म-परिवर्त्तन का आन्दोलन छिड़ गया था। ऐसी अवस्था में यह अपेक्षा निराधार थी कि गुरु तेगबहादुर जैसा आध्यात्मिक और सामाजिक महत्त्व का व्यक्ति इस आन्दोलन से अछूता रहता, जबकि सिख-गुरुओं का मुगल शासकों से सीधा संघर्ष उसके पूर्व ही आरम्भ हो चुका था।

मैकालिफ ने लिखा है कि धर्म-परिवर्तन का यह विशाल प्रयोग सर्वप्रथम कश्मीर से *प्रारम्भ किया गया। इसके दो प्रमुख कारण थे। पहली बात तो यह है कि कश्मीरी* पंडित शिक्षित माने जाते थे और सोचा गया कि यदि इनका धर्म-परिवर्त्तन कर लिया गया तो शेष देश के लोग स्वयं ही इनका अनुसरण करेंगे। दूसरी बात काबुल और पेशावर जैसे प्रमुख मुसलमान केन्द्र कश्मीर के निकट ही थे और यदि कश्मीरियों ने किसी प्रकार का प्रतिरोध किया तो इन प्रदेशों के मुसलमान उनके विरुद्ध जिहाद छेड़कर उन्हें समाप्त कर देंगे। सम्राट (औरंगजेब) ने यह भी सोचा (जो आगे चलकर निर्मूल सिद्ध हुआ) शायद कश्मीरी ब्राह्मणों पर धन और सरकारी नौकरियों का लालच काम कर जाए क्योंकि उस प्रदेश की गरीबी और अभावग्रस्तता सब ओर प्रसिद्ध थी।[1]

'गुरु विलास' के रचयिता *भाई सुक्खासिंह ने लिखा है कि कश्मीर के सूबेदार शेर* अफगान खान के अत्याचारों से पीड़ित कश्मीरी ब्राह्मणों का एक समूह आनन्दपुर में गुरु तेगबहादुर के पास आया और उन्हें हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों का हाल सुनाया। गुरु तेगबहादुर जो अहो-रात्रि इस परिस्थिति का सामना करने की दिशा में चिंतित थे, कश्मीर के ब्राह्मणों से उस प्रदेश के समाचार सुनकर विचारमग्न हो गये और गम्भीर होकर उन्होंने कहा—इस समय धर्म-रक्षा का एक ही उपाय है कि कोई बड़ा ही धर्मात्मा पुरुष अपना बलिदान दे। कहते हैं कि नौ वर्ष के बालक गोविन्द, जो उन्हीं के पास बैठे यह चर्चा सुन रहे थे, यह सुनकर बोले, "पिताजी, इस समय आपसे बढ़कर दूसरा धर्मात्मा पुरुष कौन है?" गुरु तेगबहादुर इस उत्तर से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कश्मीरी ब्राह्मणों से कहा कि—"जाओ, औरंगजेब से कहो कि गुरु नानक की गद्दी पर इस समय नवम् गुरु तेगबहादुर हैं। यदि वे इस्लाम स्वीकार कर लेंगे तो हमें भी अपना धर्म परिवर्त्तन करने में कुछ संकोच नहीं होगा।"

इतिहासकार *डॉ० जदुनाथ सरकार* ने इस बात की पुष्टि करते हुए लिखा है कि उन्होंने (गुरु तेगबहादुर ने) कश्मीर के हिन्दुओं को इस्लाम में जबरदस्ती परिवर्तित करने का खुला विरोध किया था। दिल्ली में बुलाए जाने पर उन्हें इस्लाम-धर्म ग्रहण करने के लिए विवश किया गया और अस्वीकार करने पर उन्हें पांच दिन तक यातना देने के पश्चात् उनके बलिदान कर दिया गया।[2]

---

१. सिख रिलीजन, भाग ४, पृ० ३६१।

२. He encouraged the resistance of the Hindus of Kashmir to forcible conversion *to Islam and openly defied the Emperor. Taken to Delhi,* he was cast in prison and called upon to embrace Islam and on his refusal was tortured for five days and then beheaded on warrant from the Emperor. (History of Aurangzeb, p. 313)

जिस समय गुरु तेग़बहादुर वदी बनकर दिल्ली आये, उनके साथ उनके पाँच शिष्य थे।

गुरु तेग़बहादुर का बलिदान

दिल्ली में मुग़ल सम्राट ने उनके सम्मुख सभी प्रकार के प्रलोभन एव भय का प्रदर्शन कर धर्म-परिवर्तन के लिए कहा किन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। उनके एक शिष्य भाई मतीदास को उनके सम्मुख आरे से चीर दिया गया किन्तु वे अविचलित रहे। उनसे कोई चमत्कार दिखाने को कहा गया किन्तु उनका उत्तर था—चमत्कार-प्रदर्शन ईश्वरेच्छा के विरुद्ध कार्य है। अन्त मे, जब औरंगज़ेब सभी प्रकार के प्रयत्नो के पश्चात् उन्हें धर्म-परिवर्तन के लिए मना नहीं सका तो उसने वध की आज्ञा दे दी। इस प्रकार ११ नवम्बर, सन् १६७५ ई० को गुरु तेगबहादुर का चाँदनी चौक, दिल्ली में वध कर दिया गया। चाँदनी चौक में बलिदान-स्थान पर निर्मित शीशगज का भव्य गुरुद्वारा आज भी गुरु तेग़बहादुर के अनुपम बलिदान का स्मृति-चिह्न बनकर खड़ा है। एक अनन्य शिष्य उनका सिर आनन्दपुर ले जाने मे सफल हो गया और एक अन्य दिल्ली-निवासी शिष्य ने उनका शव लेकर नगर के बाहर बने अपने मकान मे रखकर पूरे मकान को ही अग्नि की भेंट कर उनका अन्तिम सस्कार कर दिया। मुगल अधिकारियों की दृष्टि से शव को बचाने के लिए जिस शिष्य ने अपने घर की आहुति दी, उसकी स्मृति मे आज उसी स्थान पर नई दिल्ली मे रकाबगज का भव्य गुरुद्वारा बना हुआ है।

गुरु तेग़बहादुर के बलिदान का महत्व

नवम् गुरु ने शासक वर्ग के अत्याचारो से प्रपीड़ित जनता की स्वतत्र चेतना के जागरण के लिए अपना बलिदान दिया। ससार का इतिहास साक्षी है कि महान आन्दोलनों और क्रान्तियों की नींव शहीदों के खून से भरी जाती है। बलिदानी आत्माएँ अपने प्राणों का दान दे अपनी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं। सघर्षों के अथाह समुद्र मे वे अपने अनुगामियो के मार्ग दर्शन के निमित्त दीप-स्तम्भ बन जाते हैं जिनसे प्रकाश पा सुप्त और पराश्रित जातियाँ जाग उठती हैं और एक अद्भुत शक्ति और प्रेरणा से आगे बढ़ती हुई, अत्याचारों का दमन करती हुई, विजय की मजिल तक पहुँच जाती है। गुरु तेग़बहादुर महापुरुषों के बलिदान के इस महत्व को जानते थे। इसीलिए उन्होंने अपने बलिदान को स्वय आमन्त्रित किया। डॉ० बनर्जी ने इसे स्वय इच्छित बलिदान कहा है। उनके शब्दों में "इस प्रकार गुरु का बलिदान स्वाहूत था, धर्म के लिए स्वेच्छा से दिया हुआ बलिदान। बादशाह (औरंगज़ेब) की शक्ति और उसकी तुलना मे अपने असामर्थ्य को जानते हुए भी उन्होंने पीड़ित हिन्दुओं के कार्य को अपने हाथ में लिया। बादशाह की आँखों मे इस प्रकार उनका अपराध बहुत गम्भीर था और यह आश्चर्यजनक नहीं है कि उन्होंने प्राणदण्ड के रूप मे अपनी मृत्यु को स्वीकार किया।"[1]

गुरु गोविन्दसिंह ने विचित्र नाटक के अपनी-कथा प्रश मे अपने पिता के इस बलिदान का इन शब्दों में वर्णन किया है—

---

१. एवोल्यूशन आफ खालसा, भाग २, पृ० ६०-६१.

तिलक जंञू राखा प्रभु ताका ।।
कीनो बडो कलू महि साका ।।
साधनि हेति इती जिनि करी ।।
सीसु दीया परु सी न उचरी ।।१३।।
धरम हेत साका जिनि कीम्रा ।।
सीस दीम्रा पर सिरड न दीम्रा ।।
नाटक चेटक कीए कुकाजा ।।
प्रभु लोगन कह म्रावत लाजा ।।१४।।
ठीकरि फोरि दिलीस सिरि, प्रभुपुर कीयो पयान ।।
तेगबहादुर सी क्रिया करी न किन हूं म्रात ।।१५।।
तेग बहादुर के चलत भयो जगत को सोक ।।
है है है सभ जग भयो जै जै जै सुरलोक ।।१६।।
(दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५४)

बलिदान की प्रतिक्रिया

अपने पिता के बलिदान के समय गुरु गोबिन्दसिंह की आयु केवल नौ वर्ष की थी। इस अल्पायु में ही गुरु-पद का गुरुतापूर्ण उत्तरदायित्व उनके कन्धों पर आ गया। उनके सम्पूर्ण भावी जीवन, काव्य-रचना, पथ-निर्माण आदि कार्यों में इस महत् बलिदान का व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है। जिस उद्देश्य से गुरु तेगबहादुर ने इस प्रकार के बलिदान को आमन्त्रित किया था, वह उद्देश्य भी सफल हुआ। जनसाधारण में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। डॉ० नारंग के शब्दों में—"समस्त उत्तरी भारत में उन्हें (गुरु तेगबहादुर को) सब जानते थे। राजस्थान के राजपूत राजा उनका अत्यन्त आदर करते थे और पंजाब के कृषक सचमुच उनकी पूजा करते थे। इसलिए समस्त हिन्दू जाति ने उनकी हत्या को अपने धर्म के नाम पर एक बलिदान समझा। समस्त पंजाब में क्रोध और प्रतिकार की अग्नि भड़क उठी। माझा तथा मालवा के बलवान जाटों को केवल एक नेता की आवश्यकता थी जिसकी पताका के नीचे लड़कर वे उस अपमान का बदला ले सकते जो उनके धर्म का किया गया था। नव-वयस्क गोबिन्द उन्हें इस प्रकार का नेता दिखाई दिया।'[1]

प्रारम्भिक वर्ष

पिता के बलिदान के पश्चात् गुरु गोबिन्दसिंह लगभग आठ वर्ष तक आनन्दपुर में रहे। इन आठ वर्षों का उनके भावी जीवन के निर्माण में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी विधिवत् शिक्षा का प्रबन्ध गुरु तेगबहादुर ने स्वयं किया था। पंजाबी, फारसी और संस्कृत के लिए उनके पृथक्-पृथक् शिक्षक नियुक्त किए गये थे। पिता द्वारा किये गये शिक्षा-प्रबन्ध का उल्लेख 'विचित्र नाटक' में प्राप्त होता है—

कीनी अनिक भान्ति तन रच्छा ॥
दीनी भाँति भाँति की सिच्छा ॥[2]

---

१. ट्रान्सफारमेशन आफ सिखिज्म, पृ० ११६।
२. दशम ग्रंथ, पृ० ५६।

इन आठ वर्षों मे उन्होने शास्त्र और शस्त्र दोनों प्रकार की शिक्षा से अपने को सुयोग्य बनाया। उस युग में शास्त्र-शिक्षा की अपेक्षा शस्त्र-शिक्षा का अधिक महत्व था। और गुरु गोबिन्दसिंह को जिन परिस्थितियो मे कार्य करना था उनमे शस्त्र-शिक्षा की उपयोगिता पूर्णतः स्पष्ट थी। यह आश्चर्यजनक ही है कि उन्होने दोनों प्रकार की शिक्षा का अपने जीवन मे पूर्ण समन्वय स्थापित किया।

शस्त्र और युद्ध-नीति की शिक्षा मे आखेट का भी बडा प्रमुख स्थान है। 'विचित्र *नाटक' मे गुरु गोबिन्दसिंह ने इसका उल्लेख किया है—*

भाँति भाँति बन खेल शिकारा॥
मारे रीछ रोझ झखारा॥१॥[1]

इन आठो वर्षों मे अपनी व्यक्तिगत शिक्षा के साथ ही साथ गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी शक्तियो को केन्द्रित किया। गुरु तेगबहादुर के बलिदान के पश्चात् गुरु गोबिन्दसिंह और सम्पूर्ण सिख-समुदाय बड़ी कठिन अवस्था मे आ पड़े थे। डॉ० बनर्जी ने इस अवस्था का विश्लेषण करते हुए लिखा है[2]—"गुरु तेगबहादुर ने सिखो को बडी विचित्र अवस्था मे छोड़ा। निस्सदेह, उन्होने अपने एकमात्र पुत्र गोबिन्दराय को, दिल्ली प्रस्थान के पूर्व गुरु-पद पर आसीन कर दिया था परन्तु नये गुरु, मात्र नौ वर्ष के बालक थे और उन्हे अभूतपूर्व कठिनाइयो मे डाल दिया गया था। आतरिक विभेद और बाह्य-सकटो ने समान रूप से सिखों को खतरे मे डाल रखा था और ऐसा लग रहा था कि यह शिशु-सम्प्रदाय उस स्थिति मे पहुँच गया है जहाँ से उसकी बचत का कोई मार्ग नही है।"

डा० नारग ने उस अवस्था पर बहुत अच्छे ढंग से प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं[3]—*"पजाब का प्रात सबसे पहले विजय किया जा चुका था और यदि मुगल राज्य किसी स्थान* पर भी दृढ़ता के साथ स्थापित था तो पजाब मे। काबुल और दिल्ली के बीच होने के कारण इस प्रात का पूरी तरह निरीक्षण किया जाता था और अत्यन्त दृढ़ता तथा बल के साथ वहाँ का शासन होता था। वहाँ पर मुसलमान प्रजा की संख्या सबसे अधिक थी और बहुधा कृषक होने के कारण पजाब मे ये लोग सबसे अधिक बलवान थे' 'उनसे यह आशा रखना कि वे किसी ऐसी चेष्टा के साथ सहमत हों जिसका उद्देश्य मुसलमानी राज्य को उखाड़ फेंकना हो, सर्वथा असम्भव था। इन बाधाओ के अतिरिक्त गुरु गोबिन्दसिंह को अपने ही कुटुम्बियो के साथ भी विवाद करना पड़ा। क्योकि ये लोग व्यक्तिगत द्वेष के कारण गुरु के शत्रुओ की ओर चले गये थे और गुरु को बाधा, हानि तथा दुःख पहुँचाने मे कोई प्रयत्न उठा न रखते थे।"

इस अवस्था मे बाल-गुरु ने अपनी शक्तियों का केन्द्रीयकरण किया। उन्होंने अपनी शिक्षा के साथ ही साथ अपने शिष्यो की भी सभी प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध किया। सुदूर प्रदेशो से आये हुए कवियो को अपने यहाँ आश्रय दिया। दूर-दूर तक फैले हुए अपने *सिख-समुदाय को 'हुक्मनामे' भेजकर उनसे धन और* अस्त्र-शस्त्र का सग्रह किया। एक छोटी-सी सेना एकत्र की और उसे युद्ध-नीति मे कुशल बनाया।

---

१. दशम ग्रथ, पृ० ६०।
२. एवोल्यूशन आफ खालसा, पृ० ६४।
३. ट्रान्सफार्मेशन आफ सिखिज्म, पृ० १२२।

पाँवटा की ओर

कुछ समय के पश्चात् गुरु गोबिन्दसिंह निकट के ही एक पहाड़ी राज्य सिरमौर मे चले गये। यहाँ उन्होने यमुना के किनारे पाँवटा नामक स्थान पर अपना डेरा जमाया। यहाँ वे लगभग तीन वर्ष रहे।

पावटा निवास के इन तीन वर्षों का गुरु गोबिन्दसिंह के साहित्यिक जीवन मे बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन थोड़ी-सी रचनाओं मे उन्होने रचना-काल और स्थान का उल्लेख किया है, उनमें कृष्णावतार जैसी बृहद् रचना पाँवटे में ही रची गयी। कृष्णावतार में दो स्थानो पर इसका स्पष्ट उल्लेख है। गोपी-विरह खण्ड में गोपी-उद्धव सवाद अध्याय की समाप्ति पर लिखा है—

सत्रह सै चवताल मै सावन सुदि बुधवार ॥
नगर पाँवटा मो सु मैं रचियो ग्रन्थ सुधार ॥६८३॥

फिर सम्पूर्ण कृष्णावतार की समाप्ति पर लिखा है—

सत्रह सै पैंताल महि सावन सुदि थिति दीप।
नगर पाँवटा सुभ करण जमना बहै समीप ॥२४९०॥
दसम कथा भागोत की भाखा करी बनाइ ॥
अवर वासना नाहि प्रभ धरमजुद्ध को चाइ ॥२४९१॥

भंगाणी का युद्ध

अप्रैल, सन् १६८९ (वैशाख सम्वत् १७४६ वि०) मे गुरु गोबिन्दसिंह को अपने जीवन का प्रथम युद्ध लड़ना पड़ा।[1] गुरु गोबिन्दसिंह ने विचित्र नाटक और उनके दरबारी कवि सेनापति ने अपनी रचना 'गुरु सोभा' मे इस युद्ध का कोई विशेष कारण नहीं दिया है। 'विचित्र नाटक' में माखोवाल (आनन्दपुर) से पाँवटा आना, वहाँ रहना और श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा फतेशाह से युद्ध छिड़ने का वर्णन बहुत सक्षेप मे दिया हुआ है—

---

१. तेजासिंह गंडासिंह ने अपनी पुस्तक 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिख्स' में लिखा है कि यह युद्ध फरवरी, १६८६ में हुआ (पृ० ६४)। डॉ० इन्दुभूषण बनर्जी ने मैकालिफ का समर्थन करते हुए इस युद्ध को १६८७ ई० में माना है (एवोल्यूशन आफ खालसा, भाग २, पृ० १७०)।

लगता है इन इतिहासकारों ने इस सम्बन्ध में दशम ग्रथ के अन्त:साक्ष्य पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। पाँवटे में सन् १६८८ ई. (सम्वत् १७४५ वि) में कृष्णावतार का रचना-कार्य पूर्ण किया जाना असंदिग्ध है। उधर भंगाणी का युद्ध समाप्त होते ही गुरु गोबिन्दसिंह पाँवटा छोड़कर काहलूर आ गये। आनन्दपुर की स्थापना का उल्लेख वे 'विचित्र नाटक' में स्वय करते हैं—

युद्ध जीति आए जबै टिकै न तिन पुरि पाव।
काहलूर महि बाँधियो, आनि, आनदपुर गाव ॥३६॥

(अध्याय ८, छन्द ३७)

इससे यह स्पष्ट है कि भंगाणी का युद्ध कृष्णावतार की रचना के पश्चात् हुआ।

भाई सुक्खासिंह ने अपने 'गुरु विलास' (जिसकी रचना सन् १७९७ में हुई) में इस युद्ध का सन् १६८६ में होना माना है।

भाई काहनसिंह ने अपने महान कोष में (पृ० ७७७४) भी इस युद्ध की तिथि अप्रैल, सन् १६८६ ई. दी है जो दशम ग्रंथ के अन्त:साक्ष्य के आधार पर उचित ज्ञात होती है।

देस चाल हम ते पुनि भई । शहिर पावटा की सुधि लई ॥
कालिन्द्री तटि करे बिलासा । अनिक भाँति के पेख तमासा ॥
तँहि के सिंह घने चुनि मारे । रोभ रीछ बहु भाँति बिदारे ॥
फतहशाह कोपा तब राजा । लोह परा हमसो बिनु काजा ॥
(अध्याय ८, छन्द २-३)

'गुरु शोभा' में भी फतेहशाह का प्रकारण ही गुरु गोबिन्दसिंह से युद्ध करने का उल्लेख है—

अनिक भाँति लीला तह करी ॥
फतेहशाह सुनि के मनि धरी ॥
बहुत कोप मन माहि बसायो ॥
फउज बनाइ जुद्ध कउ आयो ॥६॥५०॥

सिख-इतिहास के लेखको ने इस युद्ध के अनेक कारण दिये हैं। गुरु गोबिन्दसिंह के पिता गुरु तेगबहादुर ने हिमाचल प्रदेश के एक राज्य कहिलूर के मोखोवाल ग्राम को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया था। धीरे-धीरे यह स्थान सिखो का प्रमुख केन्द्र स्थान बन गया। गुरु तेगबहादुर के बलिदान के पश्चात् गुरु गोबिन्दसिंह ने इसी स्थान को अपनी सामरिक तैयारियो तथा जातीय संगठन का केन्द्र बनाया। सिख-शक्ति का मुगल राज्य से प्रकट विरोध गुरु तेगबहादुर के बलिदान से स्पष्ट हो ही चुका था। गुरु गोबिन्दसिंह का बढ़ता हुआ संगठन मुगल राज्य से लोहा लेने की तैयारी का द्योतक था। और यह बात कहिलूर तथा आस-पास के अन्य राजाओ को भयकर आशका में डाल रही थी। वे गुरु की शक्ति पर अपना नियत्रण स्थापित करना चाहते थे।

मैंलकम, लतीफ, आर्चर, गारडन तथा बनर्जी आदि सभी इतिहासकारो ने यह बात भी स्पष्ट रूप से स्वीकार की है कि गुरु गोबिन्दसिंह के, निम्न कही जाने वाली जातियों को ऊपर उठाने के प्रयासो और उन्हें अपने संगठन मे, सवर्ण कहे जाने वाले वर्गों के, बराबर स्थान देने के क्रान्तिकारी प्रयत्नो ने परम्परागत जाति अभिमानी पहाडो प्रदेश के राजपूत नरेशो को क्रुद्ध कर दिया गया था। बनर्जी ने लिखा है[1]—

"वे (गुरु गोबिन्दसिंह) एक ऐसे मत का प्रतिनिधित्व करते थे जो उदार विचारो का प्रचारक था और जिसके अधिकाश अनुगामी जाट थे जिन्हे राजपूत छोटी जाति का समझते थे। राजनीतिक सुविधाओं, सामाजिक उच्चता और जाति-अभिमान आदि बातो ने मिलकर पहाड़ी राजाओं को गुरु के विरुद्ध सयुक्त मोर्चा बनाने के लिए प्रेरित किया।"

यह वह कारण था जो पहाड़ी राजाओं के मनोविज्ञान मे काम कर रहा था। तात्कालिक प्रत्यक्ष कारण कुछ अधिक स्पष्ट रहा होगा।

सिख-इतिहास में यह बात सर्वत्र मिलती है कि कहिलूर का राजा भीमचन्द (जिसके राज्य में गुरु गोबिन्दसिंह अपने शक्ति-केन्द्र आनन्दपुर को स्थापित कर रहे थे) गुरु गोबिन्दसिंह से बहुत खार खाने लगा था। उनकी बढ़ती हुई सैनिक शक्ति, अछूत जातियों का उत्थान, मुगल शासन के प्रकोप का भय आदि अनेक कारण इसकी पृष्ठभूमि पर थे।

उन्ही दिनों राजा भीमचन्द के पुत्र अजमेर चन्द का विवाह गढ़वाल के राजा फतेह-

---

१. एवोल्यूशन आफ खालसा, भाग २, पृ० ७३।

शाह की लडकी से निश्चित् हुआ। गुरु गोबिन्दसिंह इस समय सिरमौर राज्य के पांवटा नामक स्थान पर थे। इस विवाह के अवसर पर आस-पास के अनेक पहाड़ी राजा अपनी सेनाओं सहित एकत्र हुए। विवाहोपरान्त उन्होने गुरु गोबिन्दसिंह पर आक्रमण करने की योजना बनाई। उन्हे राजाओ की इस योजना का आभास हो गया था, इसलिए पांवटा से छ: मील के अतर पर, युद्ध की दृष्टि से एक उपयुक्त स्थान, भगाणी में, उन्होने प्रतिरोध की तैयारी की।

'विचित्र नाटक' मे गुरु गोबिन्दसिंह ने इस युद्ध का सजीव वर्णन किया है। परतु इस वर्णन मे इतिवृत्तात्मकता का पूर्ण अभाव है, केवल युद्ध-क्रियाओ का ही अधिक वर्णन है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक विवरणो के संचय मे यह अश हमारी अधिक सहायता नही करता। इस वर्णन मे गुरु गोबिदसिंह ने अपने इन सेनानियों का उल्लेख किया है—श्री शाह[1] (सगोशाह), जीतमल[2], गुलाब[3], माहरीचद[4], गगाराम[5], लालचद[6], दयाराम[7], कृपालदास[8], नदचद[9], मामा कृपाल[10], साहिबचद[11]।

शत्रु-पक्ष के इन राजाओ या सेनानियो का उल्लेख हुआ है—हयातखान[12], राजा गोपाल[13], हरीचद[14], जसवालका राजा (केसरीचंद)[15], डडवाल का राजा मधुकर शाह[16]। राजा चन्देल[17], निजावत खान[18], भीखन खान।[19]

इस युद्ध मे गुरु गोबिन्दसिंह ने स्वय भाग लिया। उनका वीर सेनापति सगोशाह,

---

१. तहां शाह श्री शाह सग्राम कोपे॥
२-३. हठी जीत मन्ल सु गाजी गुलाबं।
४-५. हठ्यो माहरी चद गंग राम।
६. कुपे लालचद किए लाल रूपं॥
७. कुपियो देववेश दयाराम जुद्धं।
८. किरपाल कोप्य कुतको सम्भारे।
६. तहां नन्दचंद कियो कोपु भारो।
१०. तहां मतिलेयं कृपालं करुद्ध।
११. हठ्यो साहबचंद खेत खत्रियाणं॥
१२. हठो खान हैयात के सीस भारी।
१३. नृपं गोपाल खरो खेत गजि।
१४. तहां एक वीरं हरीचंद कोप्यो।
१५-१६. जसो उडवाल मधुक्कर सुसाहं।
१७. चकित चोपयो चद गाजी चन्देलं।
१८. तहां खान नैजाबतो आन कै कै।
१९. सुखं भीखनं खान के तान मार्यो।

जिसे उन्होंने इस रचना में श्री शाह संग्राम नाम से सम्बोधित किया है, नजाबत खान को मारकर स्वयं युद्ध मे वीरगति को प्राप्त कर गया, तब उन्होने स्वय अपना धनुष-बाण संभाला। उनके बाणों ने युद्ध मे अनेक खानो को काले साँपो की तरह डस लिया—

लखे साह संग्राम जुज्झे जुझार ॥
तव कीट बाण कमाण सम्भार ॥
हन्यो एक खान ख्याल खतग ॥
डस्यो शत्रु को जान श्याम भुजग ॥२४॥

राजा हरिचद[2] से अपने युद्ध का वर्णन उन्होंने कुछ अधिक विस्तार से किया है। हरीचद धनुर्विद्या मे बड़ा कुशल था। उसकी कुशलता का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है —

दुय वान खेंचे इक बार मारे ॥
बली वीर बाजी न ताजो बिचारे ॥
जिसे वान लागं, रहे न सभार ॥
तनं बेधि कं ताहि मार सिधार ॥२७॥

हरीचद ने गुरु गोविन्दसिंह पर भी बाणो की वर्षा की। एक बाण से उसने उनके घोड़े को घायल किया। दूसरा बाण उनकी ओर चलाया जो उनके कान को स्पर्श करता हुआ निकल गया। तीसरा बाण उसने कमरबंद पर मारा जो उसे छेदता हुआ चर्म को स्पर्श कर गया। इस बाण के लगने पर उनका क्रोध जाग्रत हुआ। उन्होंने बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। शत्रु-सेना के लोग भागने लगे। स्वय हरीचद उनके बाण की चोट से युद्धभूमि मे

---

१. अधिकाश सिख-इतिहासों में लिखा है कि पजाब में सिढौरा स्थान के मुसलमान फकीर सैयद बुद्धशाह, जिससे गुरु गोविन्दसिंह के बड़े मधुर सम्बन्ध थे, की सिफारिश पर गुरु गोविन्दसिंह ने ५०० पठानों को अपनी सेना में नौकरी पर रख लिया था। इन पठानों के चार सरदार थे—हैयात खान, भीखम खान, नजाबत खान और काले खान। भगाणी युद्ध के अवसर पर ये पठान उन्हें धोखा देकर शत्रु सेना में मिल गये। केवल काले खान अपने कुछ अनुयायियों सहित गुरु गोविन्दसिंह के साथ रहा। 'विचित्र नाटक' में गुरु ने यद्यपि इस घटना का कोई उल्लेख नहीं किया है परन्तु धोखा देने वाले तीनों पठान सरदारों की चर्चा की है। इनमें हैयात खान महत कृपालदास के हाथों मारा गया। नजाबत खान को संगो शाह ने मारा और भीखम खान गुरु के बाण से घायल होकर युद्धभूमि से भाग गया।

जब सैयद बुद्धशाह को यह ज्ञात हुआ कि वे पठान युद्ध के बीच गुरु को धोखा देकर शत्रु की ओर मिल गये हैं तो वह अपने ७०० शिष्यों और चार पुत्रों सहित उनकी सहायतार्थ युद्धभूमि में आ उतरा। इस युद्ध में उसके अनेक शिष्य तथा दो पुत्र मारे गये।

युद्ध के उपरान्त गुरू गोविन्दसिंह ने उसकी सामयिक सहायता के लिए सिरोपाव के रूप में पगड़ी, कंघा, कृपाण और एक 'हुक्मनामा' प्रदान किया था।

२. अनेक सिख-इतिहासकारों ने हरीचद को हडूर (नालागढ़) का राजा लिखा है। परन्तु डा० इन्दुभूषण बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'एवोल्यूशन आफ खालसा' में लिखा है कि हरीचंद को नालागढ़ का राजा मानने में अनेक कठिनाइयां हैं। नालागढ़ गजट में लिखा है कि धर्मचद नामक राजा ने नालागढ़ पर सन १६१८ से १७०१ तक लगभग ८३ वर्ष राज्य किया। उसके पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र हिम्मतचद गद्दी पर बैठा। राजाओं की लम्बी सूची में हरीचंद नाम कहीं नहीं है। संभव है हरीचद, धर्मचद का कनिष्ठ पुत्र हो, जिसे उसने राजा फतेहशाह की सहायता के लिए भेजा हो।

मारा गया।[1]

अन्त में पहाड़ी राजाओं की सेनाएं मैदान छोड़कर भाग गयी। युद्ध जीतकर गुरु गोबिन्दसिंह अपने स्थान कहिलूर (आनन्दपुर) में वापस आ गये।

आनन्दपुर आकर उन्होंने सामरिक तैयारी की दृष्टि से चार दुर्ग लोहगढ़, आनन्दगढ़, केशगढ़ और फतेहगढ़ बनवाए।

नादौन का युद्ध

नादौन के युद्ध का गुरु गोबिन्दसिंह से सीधा सम्बन्ध नही था। यह युद्ध कहिलूर के राजा भीमचंद, उसके सहयोगी राजाओं और जम्मू के सूबेदार मियां खान के सेनानायक अलिफ खान के मध्य हुआ। अलिफखान की सहायता कांगड़ा के राजा कृपाल और बिभड़याल के राजा दयाल ने की थी।

नादौन युद्ध का कारण

डॉ० नारंग[2] ने इस युद्ध के कारण का विश्लेषण करते हुए लिखा है—(भंगाणी के युद्ध के पश्चात्) राजाओं ने गुरु के बढ़ते हुए बल को देख लिया और इस बात को पहचान लिया कि गुरु किस प्रकृति के बने हुए हैं। तब वे लोग गुरु के महान कार्य का गम्भीरता के साथ चिन्तन करने लगे। इन लोगों ने अब शीघ्रता के साथ मिलकर गुरु के साथ एक संधि कर ली, जिसके अनुसार उन्होंने गुरु के आक्रमणों तथा उनके शत्रु निवारक युद्धों में गुरु का साथ देने की प्रतिज्ञा की। अभी तक इन लोगों के लिए मुगल सरकार के ऊपर स्वयं आक्रमण करने का समय न आया था। किन्तु अब इन्होंने उस स्थिति को ग्रहण करने मे क्षणभर भी संकोच न किया। गुरु के सहारे पर राजाओं ने निष्क्रिय प्रतिरोध प्रारम्भ कर दिया और सम्राट की सेवा मे अपना वार्षिक कर भेजने से इन्कार कर दिया। औरंगजेब उस समय दक्षिण में था और गोलकुण्डा की छोटी सी किन्तु स्वर्णमयी रियासत को अपने अधीन करने में लगा हुआ था। इस कारण कई वर्ष तक राजाओं के साथ किसी ने झगड़ा न

---

१. हरीचंद कोपे कमाणं सम्भारं
प्रथम बाजयं ताण बाणं प्रहारं ॥
दुतीय ताक कै तीर मोको चलायं ॥
रखिउ दईव मै कान छ्वैकै सिधायं ॥२६॥
तृतीय बाण मारियो सु पेटी मझारं ॥
बिधिऊ चलिकतं दुआल पारं पधारयं ॥
चुभी चिंच चरमं कछू घाइ न आयं ॥
कलं केवलं जान दासं बचायं ॥३०॥
जबै बाण लागियो ॥ तबै रोस जागियो ॥
करं लै कमाणं ॥ हनं बाण ताणं ॥३१॥
सबै बीर धाए ॥ सरोघं चलाए ॥
तबै ताकि बाणं ॥ हनियो एक जुआणं ॥३२॥
हरीचंद मारे ॥ सु जोधा लतारे ॥
सु कारोड़ रायं ॥ वहै काल घायं ॥३३॥

२. ट्रान्सफारमेशन आफ सिखिज्म, पृ० १४८

किया। किन्तु ज्यों ही औरंगज़ेब उस काम से छुट्टी पाकर दिल्ली वापस आया उसने मिया खाँ, अलिफ खा और जुलफिकार खाँ के अधीन एक बहुत बडी सेना विद्रोही राजाओं से पिछले वर्षों का कर उगाहने के लिये भेजी। नादौन के निकट एक घोर संग्राम हुआ जिसमे राजाओं ने खालसा की सहायता से सम्राट की सेनाओं को पूर्णतया परास्त कर दिया।

अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से भी यही पता लगता है कि पहाड़ी राजाओं के विद्रोह का दमन करने के लिए मुगल सेना आयी और राजाओं की प्रार्थना पर गुरु गोबिन्दसिंह ने सैना सहित उसमे भाग लिया था। डॉ० बनर्जी ने मेकालिफ का हवाला देते हुए लिखा है कि यह अधिक संभव लगता है कि (औरंगज़ेब के राजधानी से अनुपस्थित होने के कारण) मुगल राज्य के प्रशासन मे उत्पन्न हुई शिथिलता ने पहाड़ी राजाओं को कर देना बन्द कर देने के लिए प्रोत्साहित किया, यद्यपि इसमे कोई सन्देह नहीं कि बाद की घटनाओं मे गुरु ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया, जैसा कि हम पाते हैं कि दिलावर खान का पहला और दूसरा अभियान सीधा गुरु के ही खिलाफ था।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने 'विचित्र नाटक'[2] और सेनापति ने अपनी 'गुरु शोभा'[3] मे भी राजा भीमचद के निमन्त्रण पर युद्ध मे सम्मिलित होने की बात लिखी है।

इस युद्ध में पहाड़ी राजाओं और गुरु की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख मुगल सेना को पराजित होना पड़ा। गुरु गोबिन्दसिंह ने 'विचित्र नाटक' मे लगभग २२ छन्दों मे युद्ध का वर्णन किया है।

सम्मिलित शक्ति से इस युद्ध मे विजय प्राप्त कर लेने पर भी राजाओं ने इस बात को अनुभव कर लिया कि वे अधिक समय तक मुगल शक्ति का प्रतिरोध नहीं कर सकेंगे। इसलिए वे सधि की तैयारियाँ करने लगे। 'विचित्र नाटक' मे गुरु गोबिन्दसिंह ने

---

१. एवोल्यूशन आफ खालसा, पृ० ८०

२. बहुत काल इह भान्ति बितायो ॥
मीयां खान जम्मू कह आयो
अलफ खान नादौन पठावा ॥
भीमचन्द तन बैर बढावा ॥१॥
जुद्ध काज नृप हमै बुलायो ॥
आपि तवन की ओर सिधायो ॥
तिन कठ गड नवरस पर बांधो ॥
तीर तुफग नरेसन साधो ॥२॥
(विचित्र नाटक)

३. राजन के हित कारने कीउ जुद्ध इम जान ॥
कथा जुद्ध नदवण को बरनत ताहि बिधान ॥१॥६२॥
मीयां खान की तरफ तै अलफ खान सिरदार ॥
आय नादवण मै रहिउ कीनी धूम अपार ॥२॥६३॥
भीमचद कहलूरिआ हुतो राव इक जान ।
तिहसो तिहकी नहि बनी रचिउ जुद्ध घमसान ॥३॥६४॥
देसदेस के राव सब लीने निकट हकार ॥
सतिगुरु को कीना लिखा दया करो करतार ॥४॥६५॥
(गुरु शोभा, पृ० १५)

इसका उल्लेख किया है।[1] परन्तु मुगल शक्ति के विरुद्ध इस युद्ध में सक्रिय सहयोग देने के कारण गुरु गोविन्दसिंह स्वयं मुगल राज्य के विद्रोही घोषित हो चुके थे। गुरु की बढ़ती हुई शक्ति से औरंगजेब बहुत सशंक हो चुका था।[2] वे अपने शिष्यों के सम्मेलन न कर सकें, इस भाव के आदेश वह पहले ही भेज चुका था। अब लाहौर के सूबेदार दिलावर खान के पुत्र रुस्तम खान को सशस्त्र सैन्य सहित गुरु पर आक्रमण करने के लिए भेजा। रात्रि को खानजादे की सेना नदी के उस पार आ गयी। गुरु को उनके एक नगर-रक्षक ने आकर यह समाचार दिया। युद्ध के नगाड़े बजा दिए गये और सम्पूर्ण आनन्दपुर नगर शीघ्र ही युद्ध के लिए तत्पर हो गया। इसी समय नदी में भयंकर बाढ़ आ गयी और खानजादे की सेना बुरी तरह उसकी लपेट में आ गयी। परिणाम यह हुआ कि मुगल सेना बिना युद्ध किये ही भाग खड़ी हुई।

हुसैनी युद्ध

रुस्तम खान ने जाकर यह समाचार अपने पिता दिलावर खान को दिया तो बहुत क्रोधित हुआ। उसने अपने एक गुलाम सेनापति हुसैन खान को गुरु पर आक्रमण करने के लिए भेजा। गुरु गोविन्दसिंह ने इस युद्ध का वर्णन 'विचित्र नाटक' में 'हुसैनी युद्ध' नाम दिया है। यह सेना पहाड़ी राजाओं से कर वसूल करने के लिए और गुरु की बढ़ती हुई शक्ति का दमन करने के लिए भेजी गयी थी। हुसैन खान की सेना ने इन राज्यों की सीमा में घुसते ही लूटमार शुरू कर दी। डडवाल का राजा मधुकरशाह पराजित हुआ। कहिलूर का राजा भीमचंद और कटोच का राजा कृपालचंद नजराना लेकर हुसैन खान से जा मिले। परन्तु गुलेर के राजा गोपाल से नजराने की रकम को लेकर संघर्ष प्रारंभ हो गया। राजा गोपाल ने इस युद्ध में गुरु की सहायता चाही। गुरु ने सगतियासिंह के साथ कुछ सेना उसकी सहायता के लिए भेज दी। युद्ध में हुसैन खान पूरी तरह पराजित हुआ और युद्ध में मारा गया। गुरु गोविन्दसिंह का भेजा हुआ सेनापति सगतियासिंह अपने कुछ साथियों सहित वीर-गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार मुगल सेना से गुरु का सीधा संघर्ष इस युद्ध में भी नहीं हुआ।

'विचित्र नाटक' में इस युद्ध का वर्णन बड़े विस्तार से दिया हुआ है। ६९ छंदों में युद्ध के कारण और युद्ध-प्रसंग का वर्णन किया गया है। अंत में कवि ने ईश्वर को धन्यवाद दिया है कि उसने हमारी रक्षा की और जो घटा हमारे ऊपर आयी थी वह अन्यत्र बरस कर

१- इन इम होइ बिदा घर आए ॥
सुलह निमित्त वै उतहि सिधाए ॥
सधि इनै उन कै सगि कई ॥
हेत कथा पूरन इत भई ॥२३॥
(अध्याय ६)

2. Akhbarat-i-Darbar-i-Mualla (R A. S., London) Vol. I, 1677 1695: 1693, November 20: News from Sarhind Gobind declares himself to be Guru Nanak. Faujdars ordered to prevent him from assembling (his Sikhs).
'ए शार्ट हिस्ट्री आफ सिक्स' (पृ० ६४) में दिया हुआ उद्धरण।

चली गई।[1]

पहाड़ी राजाओं के विद्रोह और गुरु की बढ़ती हुई शक्ति से पंजाब का सम्पूर्ण मुगल शासन चौकन्ना हो चुका था। दक्षिण के युद्धों में व्यस्त औरंगजेब को ये समाचार नियमित मिल रहे थे। पंजाब में स्थिति सँभलती न देख उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम को भेजा जो आगे चलकर बहादुरशाह के नाम से औरंगजेब का उत्तराधिकारी बना।[2] मुअज्जम ने अपना डेरा लाहौर में लगाया और अपने एक सेनापति मुर्जाबेग को सेना सहित उपद्रवग्रस्त क्षेत्र की ओर भेज दिया। इस विशाल मुगल सेना के आगमन से चारों ओर भय छा गया। गुरु गोबिन्दसिंह के आश्रय में आए हुए लोग भी भय-त्रस्त होकर पहाड़ों में छिपने लगे। मुगल सेना ने विद्रोही पहाड़ी राजाओं को बुरी तरह कुचल दिया। गाँव के गाँव नष्ट कर दिए गये। परन्तु इस भयंकर विनाश से गुरु का केन्द्र आनन्दपुर पूरी तरह सुरक्षित रहा।

आनन्दपुर इस आक्रमण से किस प्रकार सुरक्षित रह सका, 'विचित्र नाटक' में इस प्रसंग के सम्बन्ध में इतना ही लिखा है कि जो लोग गुरु का आश्रय छोड़कर भाग गये, उन्हें अनेक प्रकार की आपत्तियाँ झेलनी पड़ीं,[3] जो लोग गुरु पर अपनी अडिग आस्था लेकर उन्हीं के साथ रहे वे सर्व प्रकार से सुरक्षित रहे।[4] सिख इतिहास के ग्रन्थ सभी संदर्भों में इस कार्य का श्रेय भाई नंदलाल को दिया जाता है। इस बात का प्रारंभिक उल्लेख भाई सुक्खा सिंह के 'गुरु विलास' में है। भाई नंदलाल गुरु गोबिन्दसिंह के एक अनन्य शिष्य थे। वे फ़ारसी भाषा के बड़े विद्वान थे। अपनी रचनाओं में उन्होंने गुरु के प्रति बड़ी श्रद्धापूर्ण अभिव्यक्ति की है। दूसरी ओर वे शाहज़ादा मुअज्जम के व्यक्तिगत सचिव (मीर मुंशी) थे। उन्हीं के सद्प्रयासों से गुरु गोबिन्दसिंह पर उस समय कोई आँच नहीं आयी और उन्हें अपने संगठन दृढ़तर करने का अवसर मिला।[5]

---

१. जीत भई रन भयो उभारा ॥
   सिमृति करि सम धरी सिधारा ॥
   राखि लयौ हमको जगराई ॥
   लोह घटा अनतै बरसाई ॥६६॥ (अध्याय ११)

२. तब अउरंग मन माहि रिसावा ॥
   मद्र देश को पूत पठावा ॥१॥ (विचित्र नाटक, अध्याय १३)

३. गुरु पग ते जे बिमुख सिधारे ॥
   ईहाँ ऊहाँ तिनके मुख कारे ॥७॥

४. जै जै गुरु चरनन रत ह्वै हैं ॥
   तिन को कष्ट न देखन पै है ॥

५. शाहजादे का निजी मंत्री नन्दलाल गुरु के अनुयायियों में से था। उसने इस सिख नेता की महत्ता धार्मिकता तथा उसके उच्च चरित्र को शाहजादे के सम्मुख बड़े प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया और शाहजादे को समझा बुझाकर उससे इस धर्मात्मा पुरुष को कष्ट देने का विचार छुड़वा दिया" " धन्य है नन्दलाल की नातिकता जिसके द्वारा गुरु को अपना बल फिर से प्राप्त करने तथा फिर अपने युद्ध-साधनों को बढ़ाने का अवसर मिल गया।

(ट्रान्सफारमेशन ऑफ सिखिज्म, पृ० १४६-१५०)

पंथ निर्माण

गुरु गोविन्दसिंह के जीवन की पंजाब मे शाहजादे के आगमन तक की घटनाओ का मुख्य कथा-स्रोत हमे उन्हीं की रचना 'विचित्र नाटक' से प्राप्त होता चलता है, परन्तु आगे की घटनाओ के लिए घटनाविद का यह प्रमुख सूत्र हमारे हाथ से छूट जाता है। 'विचित्र नाटक' की कथा यहीं समाप्त हो जाती है। इस रचना के अन्त में कवि केवल कुछ रचनाओं को लिखने की ओर सकेत मात्र करता है।[1] अन्य घटनाओं के लिए हमें अन्य ऐतिहासिक सूत्रो एव उनके दरबारी कवि, सेनापति रचित 'गुरुशोभा' का सहारा लेना पड़ता है।

'विचित्र नाटक' का रचना-काल ग्रथ मे नहीं दिया हुआ है। भाई रणधीरसिंह[2] और डॉ० इंदुभूषण बनर्जी[3] इस ग्रन्थ का रचना-काल सन् १६६८ ई० मानते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह अपनी एक अन्य रचना 'रामावतार' में ग्रंथ का रचना-काल सम्वत् १७५५ विक्रमी (सन् १६९८ ई०) दिया है।[4] इसके पूर्व कुछ वर्ष गुरु के जीवन काफी तनावपूर्ण अवस्था मे व्यतीत हुए थे। शाहजादे के पजाब से चले जाने और नवीन सघर्ष के प्रारम्भ होने के बीच का कुछ समय उनके जीवन मे शान्तिपूर्ण दृष्टिगत होता है। इस काल में उन्होने अनेक साहित्यिक रचनाओं को जन्म दिया होगा। इस कार्य का संकेत उन्होंने 'विचित्र नाटक' की अन्तिम पक्तियो मे किया भी है। इसलिए 'विचित्र नाटक' को 'रामावतार' के पूर्व की रचना माना जा सकता है। सभव है इसकी रचना सन् १६९८ के प्रारम्भ मे हुई हो।

गुरु गोविन्दसिंह के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य उनके 'खालसा निर्माण' का है। ३० मार्च, सन् १६९९ ई० को वैशाखी के दिन उन्होंने आनन्दपुर मे अपने शिष्यों का एक विशाल सम्मेलन किया। सिख-गुरुओं का शिष्य वर्ग सम्पूर्ण भारत में और अफगानिस्तान-ईरान तक फैला हुआ था। इस सम्मेलन मे दूर-दूर से आए हुए लोगो का एकत्रीकरण हुआ।

गुरु गोबिन्दसिंह के धार्मिक गुरु-जीवन को बड़ी सरलता से दो विभिन्न कालों में विभाजित किया जा सकता है, जिनमें उन्होने कुछ भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति की। केशगढ़ (आनन्दपुर) मे सन् १६९९ ई० मे आयोजित विशाल सम्मेलन और 'पहुल'[5] के प्रारम्भ को उनके जीवन का एक मोड मानना चाहिए, इस प्रकार दोनो कालों को 'पूर्व खालसा' और 'उत्तर खालसा' कालो मे विभाजित किया जा सकता है। हमने देखा कि 'पूर्व खालसा' काल मे गुरु का उद्देश्य पहाड़ी राजाओं के साथ बन्धुता निर्माण करने का और अपने

---

१. पहिले चडी चरित्र बनायो। नख सिख से क्रम भाख सुनायो॥
छोर कथा तब प्रथम सुनाई। अब चाहत फिर करों बड़ाई॥११॥
(अध्याय पन्द्रहवाँ).

२. शबदि मूरति, पृ० २३।

३. एवोल्यूशन ऑफ खालसा, भाग २, पृ० १७०।

४. संवत सत्रह सहस पचावन॥
हाड वदि प्रिथम सुख दावन॥
त्व प्रसादि करि ग्रंथ सुधारा॥
भूल परी लहु लेहु सुधारा॥८६०॥ (दशम ग्रथ, पृ० २५४)

५. सिख-धर्म में दीक्षित करने की विशेष सस्कार-विधि।

को उनके समकक्ष प्रस्तुत करने का लगता है। जब ये राजा मुगल राज्य के विरुद्ध विद्रोह के लिए खड़े हुए, उन्होंने उनके साथ अपनी पूर्ण सहमति प्रकट की और उस साझे कार्य की पूर्ति के लिए जो कुछ भी किया जा सकता था, किया। परन्तु गुरु और पहाड़ी राजाओं में आधारभूत अंतर था। इसलिए जब पहाड़ी राजाओं का विद्रोह पूरी तरह दबा दिया गया और वे मुगल शासन के फिर से राज-भक्त बन गए तब गुरु ने अपने आप को सबसे अलग पाया। शाहजादे की सहनशीलता ने निस्संदेह उन्हें कुछ अस्थायी अवकाश दे दिया परन्तु युद्ध की झंझा कभी भी फूट सकती थी। और तब वे अपने और अपने शिष्यों के अतिरिक्त और किसी पर निर्भर नहीं रह सकते थे। इसलिए वे तुरन्त अपनी स्थिति को और अपने शिष्यों में एक सैद्धांतिक परिवर्तन लाने के लिए व्यस्त हो गये। गुरु का यह मार्ग बाह्य सहायता रहित, अपनी शक्ति से स्थिति का सामना करने के लिए था और इसी से 'खालसा'[1] अस्तित्व में आया।

गुरु गोबिन्दसिंह अच्छी तरह जानते थे कि मुग़ल शासन से सशस्त्र संघर्ष अपरिहार्य है। सशस्त्र संघर्ष तो उनके पितामह छठे गुरु, गुरु हरिगोबिन्द, के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। सिख गुरुओं ने लोगों में आध्यात्मिक बल भरा था। जिस जाति में आध्यात्मिक शक्ति का संचार हो जाए, वह लौकिक अत्याचारों एवं अन्यायों को भी अधिक समय तक सहन नहीं करती। परिणामस्वरूप प्रतिरोध प्रारम्भ होता है, बलिदान दिए जाते हैं और बलिदान देती हुई जाति अपने स्वत्व की रक्षा के लिए शस्त्र उठाने पर बाध्य हो जाती है। गुरु नानक से लेकर गुरु गोबिन्दसिंह तक का सिख इतिहास इस सहज प्रक्रिया की कहानी है। जो इतिहासकार इस प्रक्रिया को समझने में असमर्थ रहे हैं, उन्हें गुरु गोबिन्दसिंह तथा उनके पूर्ववर्ती गुरुओं के कार्य एवं आदर्श में बहुत विरोध दृष्टिगत हुआ है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि "गुरु गोबिन्दसिंह ने सिखों को विशेष मनोरथ के लिए संगठित किया। उनकी मानवीय शक्तियों को अन्य सभी ओर से हटाकर केवल एक दिशा में मोड़ दिया। सिख पूर्ण और स्वतंत्र व्यक्ति न रहे। गुरु गोबिन्द-सिंह ने सिखों की आध्यात्मिक एकता को सांसारिक सफलता का माध्यम बनाकर उन्हें राजनीतिक उन्नति का साधन बना दिया। इस प्रकार सिख जो शताब्दियों से सच्चे और पवित्र मनुष्य बनने की ओर प्रगति कर रहे थे, अचानक रुक गये और मात्र सिपाही बनकर रह गये।"[2]

श्री जदुनाथ सरकार ने गुरु गोबिन्दसिंह के कार्य को अन्य गुरुओं के कार्य से बहुत भिन्न प्रकार का समझा पर ऐसे इतिहासकार धार्मिक या आध्यात्मिक चेतना को राजनीतिक अथवा लौकिक चेतना से पूरी तरह पृथक् मानकर चलते हैं। कदाचित यह तथ्य उन्हें हृदयंगम नहीं होता कि सभी धार्मिक आन्दोलन अततोगत्वा राजनीतिक आन्दोलन बन जाते हैं क्योंकि कोई भी सजग धर्मगुरु अपने अनुयायियों की सांसारिक अधोगति की ओर सदैव आँखें बंद करके नहीं रह सकता।

सिख गुरु जनता के मात्र आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक ही नहीं रहे। गुरु नानक के समय

१. एवोल्यूशन ऑफ़ खालसा, भाग २, पृ० ६२।
२. हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग ३, पृ० ३०१-३०२।

से ही आध्यात्मिक उन्नति के साथ ही साथ सामाजिक, सांसारिक जीवन की स्वस्थता के प्रति भी जागरूकता का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। गुरु नानक ने सत्पथ को पहचानने का उपाय बताया था—

घाल खाय किछु हत्थहुँ देई।
नानक राह पछानसि सेई॥

जो श्रमपूर्वक उपार्जन करता है, फिर उसमें से कुछ दान करता है वही सत्पथ को पहचानता है।

इस प्रकार सामाजिक-लौकिक जीवन की ओर सिख गुरुओं का कभी उपेक्षा भाव नहीं रहा। सिख-समुदाय अपने समय के सर्वसाधारण समाज का सर्वाधिक प्रबुद्ध एवं सजग वर्ग था। श्री जदुनाथ सरकार ने ही लिखा है[१] कि सत्रहवीं शताब्दी में सिख आपसी भ्रातृत्व भाव एवं एक दूसरे के प्रति प्रेम के लिए बहुख्यात थे।

जब चारों ओर अत्याचार की झंझा चल रही हो, जब एक धर्मान्ध शासक सामान्य जनता की धार्मिक-सामाजिक स्वतंत्रता का अपहरण कर रहा हो, जनता के जाग्रत वर्ग में उसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। सिख गुरुओं की कार्य-पद्धति में जो परिवर्तन आया वह इसी सचेतन प्रतिक्रिया का प्रभाव था।

गुरु गोबिन्दसिंह अच्छी तरह जानते थे कि भावी संघर्ष में तन, मन और धन से उनका साथ देने वाला वर्ग कौन-सा होगा। समाज का विशेष स्थिति प्राप्त वर्ग कभी भी क्रान्ति का साथी नहीं बनता। उल्टे, यह वर्ग सदैव ऐसे प्रयासों का विरोध करता है, क्योंकि किसी भी प्रकार के संघर्ष से उसे अपनी विशेष स्थिति के छिन जाने का भय बना रहता है। क्रान्ति का साथ सदा निम्न वर्ग के सर्वहारा लोग ही दिया करते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह पहाड़ी राजपूत राजाओं द्वारा किया हुआ सतत् विरोध प्रथम वर्ग की प्रतिक्रिया का प्रतीक था। अब उनकी दृष्टि एकमात्र उस वर्ग पर थी जिसे उनके आन्दोलन का वाहक बनना था।

वैशाखी के उस ऐतिहासिक अवसर पर सहस्रों शिष्यों के समुदाय के सम्मुख हाथ में नंगी तलवार लेकर गुरु ने प्रश्न किया—"है कोई ऐसा जो धर्म के लिए अपने प्राण दे सके ?" यह वाक्य सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। उन्होंने अपनी बात दुबारा कही—सन्नाटा और गहरा हो गया और जब बड़ी तीखी आवाज में उन्होंने तीसरी बार अपनी बात को कहा तो लाहौर के एक खत्री, दयाराम ने अपने स्थान पर खड़े होकर कहा—"मैं प्रस्तुत हूँ।" गुरु उसे साथ के खेमे में ले गये, जहाँ पहले से कुछ बकरे बांध रखे गए थे। दयाराम वहाँ बैठाया गया और उन्होंने एक बकरे का सिर काट दिया। खून से टपकती हुई तलवार को लेकर वे बाहर आए और अधिक गम्भीरता से बोले—"कोई और शिष्य है जो बलिदान के लिए अपने आपको भेंट कर सके ?" इस पर दिल्ली के जाट धर्मदास ने अपने आपको प्रस्तुत किया। गुरु उसे भी साथ के खेमे में ले गये और दूसरे बकरे का वध कर दिया गया। इसी प्रकार तीन और व्यक्तियों ने अपने आपको बलिदान के लिए प्रस्तुत किया—एक था द्वारिका का एक धोबी मोहकम चंद, दूसरा था जगन्नाथपुरी का एक

१. शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृ० १६६।

रसोइया हिम्मत और तीसरा था बीदर का नाई साहब चद्र।

गुरु ने इन पाचो आत्मोत्सर्गियो को सुन्दर वस्त्रों से विभूषित किया और इन्हे 'पज प्यारे' कहकर संबोधित किया। "गुरु इस वीरतापूर्ण भक्ति तथा आत्म-त्याग के प्रमाण को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उन पाचो सिखों को जीता-जागता स्वस्थ तथा प्रसन्न वदन अपने डेरे से निकाल कर सभा के सामने ले आए। सभा मे उपस्थित सभी को बडा आश्चर्य हुआ। गुरु ने सबसे कहा कि यह शकुन बड़ा शुभ है और खालसा की विजय निस्सदेह होगी। जितने सिख वहा बैठे थे, सब अपनी कायरता पर बड़े लज्जित हुए और अपने नेता के चरणों पर अपने आपको स्वेच्छापूर्वक भेंट न कर देने के लिए उन्हे बडा शोक एव पश्चाताप हुआ।"[1]

गुरु के इन 'पज प्यारो' मे केवल एक खत्री था और चार ऐसे थे जिन्हें शूद्र ही समझा जाता था। अन्तिम तीन की गणना तो नीची जातियों मे ही की जाती थी। परन्तु गुरु ने सर्वप्रथम इन्हें दीक्षित किया और सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह कि अपने आपको उनसे दीक्षित कराया। वे करबद्ध उनके सामने खड़े हुए और उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हे इस नये पथ मे उसी प्रकार दीक्षित करें जैसे उन्होंने उन पाच को किया है। उन्होने 'खालसा' को 'गुरु' का स्थान दिया और 'गुरु' को 'खालसा' का।

डा० नारग ने इस बात का विवेचन करते हुए लिखा है—"गुरु ने उन सबको एक से कर्त्तव्य बताए, एक से ही अधिकार उन्हें दिए और नये भ्रातृत्व मे सम्मिलित होने के चिह्न-रूप उन सबने एक साथ बैठकर भोजन किया। परन्तु सार्वलौकिक समता के विषय मे गुरु के विचार इतने बढ़े हुए थे कि केवल अपने अनुयायियों के बीच की समता से वे सन्तुष्ट न हो सकते थे। उनकी पद्धति में नेता और मुखिया के विशेषाधिकारो के लिए भी कोई स्थान न था। गुरु का यह विश्वास था कि नेता उस समय तक नेतृत्व करने योग्य नही हो सकता जब तक कि उसके अनुयायी उसे न चुनें और अपना नेता न स्वीकार करें। इतिहास से पता लगता है कि कोई व्यक्ति अथवा वर्ग जिसे धर्म सबधी अथवा पुरोहिताई सम्बन्धी श्रेष्ठता प्राप्त हो, अपने विशेष अधिकारो में से अणु मात्र भी छोड़ना नहीं चाहता। परन्तु गुरु, जिनको उनके श्रद्धालु अनुयायी ससार के सभी पैगम्बरो मे सबसे बडा मानते थे, और ही प्रकृति के बने हुए थे। उनकी राजनीतिक अतर्दृष्टि उन्हें कदापि इस बात की अनुमति नही देती थी कि वे अपने अनुयायियो से पृथक एक अनन्य उच्चासन पर खड़े हो जाएं। इसलिए जब उन्होने अपने पहले पाच शिष्यो को अर्थात 'पंज प्यारो' को दीक्षा दे ली तो फिर उनसे स्वय दीक्षा ली, जो प्रतिज्ञाए उनसे करायी थीं, वे ही स्वय की और जो अधिकार उनको दिए थे, उनसे अधिक कोई भी अधिकार अपने लिए नहीं रखें[2]।

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पूर्व की नौ पीढ़ियो के सिख-समुदाय को 'खालसा' मे परिवर्तित किया, उन्ही के शब्दो मे—"जो सत्य की ज्योति को सदैव प्रज्ज्वलित रखता है, एक ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को नही मानता, उसी मे उसका पूर्ण प्रेम और विश्वास है और भूल कर भी मृत व्यक्तियों की समाधियों-दरगाहों पर नहीं जाता।

१. ट्रान्सफारमेशन आफ सिखिज्म, पृ० १३२।
२. वही, पृ० १३३।

ईश्वर के निश्छल प्रेम में ही उसका तीर्थ, दान, दया, तप और संयम समाहित है, इस प्रकार जिसके हृदय में पूर्ण ज्योति का प्रकाश है वह पवित्र व्यक्ति ही 'खालसा' है।[1] पन्द्रह दिन के अन्दर ही आनन्दपुर में लगभग अस्सी हजार लोग एकत्र हुए जिन्हें उन्होंने इस नये मार्ग पर दीक्षित किया।[2] उन्होंने ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद नष्ट किया और सब के लिए समानता की घोषणा की। उन्होंने सबको आज्ञा दी कि वे अपने नाम के साथ 'सिंह' शब्द का प्रयोग करें।[3] इस प्रकार गुरु ने अपने विनीत शिष्यों को शेर बना दिया और क्षणभर में उनकी पदवी भारतवर्ष की सर्वोत्कृष्ट तथा सबसे अधिक वीर जाति के समान उच्च कर दी क्योंकि उस समय तक केवल राजपूत ही अपने नामों के साथ "सिंह" का प्रयोग करते थे।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम ने लिखा है कि गुरु गोविन्दसिंह बड़े तत्त्ववेत्ता थे और वे इस बात को खूब समझते थे कि लोगों की कल्पनाशक्ति से किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है। वे कतिपय बाह्य क्रियाओं तथा चिह्नों की जादूभरी शक्ति को अच्छी तरह पहचानते थे और जानते थे कि प्रायः मनुष्यों के हृदयों पर उनके बाहरी स्वरूप के बदल जाने का कितना अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रतिज्ञाओं तथा प्रणों, तपों तथा यम नियमों और शक्ति के उपासकों के तिलक तथा वैष्णवों की तुलसी की माला आदि साम्प्रदायिक चिह्नों से लोगों के ऊपर प्रभाव पड़ने का यही भेद है। यही हिन्दुओं के उपनयन और ईसाइयों के बपतिस्मे का भेद है। यही गुरु गोविन्दसिंह के चलाए हुए दीक्षा-संस्कार 'पहुल' का वास्तविक तात्पर्य था।

गुरु गोविन्दसिंह ने सिखों में यह विश्वास उत्पन्न किया कि वे लोग एक ईश्वरीय कार्य के सम्पन्न करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने एक नया जयघोष दिया—

वाहै गुरु जी का खालसा,
वाहै गुरु जी की फतेह।

(खालसा ईश्वर का है और ईश्वर की विजय सुनिश्चित है।)

डा० नारंग के शब्दों में—"किसी व्यक्ति में इस बात का दृढ़ विश्वास होना कि वह परमात्मा का विशेष उपकरण है तथा विश्वास में उत्पन्न हुई श्रद्धा, ये दोनों विजय-प्राप्ति की सबसे पक्की गारण्टी हैं और गुरु ने अपने अनुयायियों को यह गारण्टी प्रदान की।"[4]

अपने इस अभियान में गुरु गोविन्दसिंह को सामान्य जनता का पूरा सहयोग मिला परन्तु ऊँची कही जाने वाली जातियों का उन्हें विरोध भी सहन करना पड़ा। छुआछूत से रहित, ऊँच-नीच के भेद-भाव से परे उनके सामाजिक संगठन को कथित ऊँची जातियों के

---

१. जागत जोत जपै निस बासर एक बिना मन नैक न आनै॥
पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत गोर मढ़ी मट भूल न मानै॥
तीरथ दान दया तप संजम एक बिना नह एक पछानै॥
पूरन जोत जगै घट में तब खालस ताहि न खालस जानै॥१॥
(३३ सवैया—दशम ग्रन्थ, पृ० ७१२)

२. डा० मुहम्मद लतीफ कृत हिस्ट्री आफ पंजाब, पृ० २६३।

३. इसी समय स्वयं गुरु गोविन्द राय से गोविन्दसिंह बने।

४. ट्रान्सफारमेशन आफ सिखिज्म, पृ० १३७।

लोग सहन नही कर सके । पहाड़ी राज्यो के राजपूत राजाओ का गुरु से विरोध बहुत कुछ इस भाव से प्रेरित था इस बात का सकेत इसके पूर्व भी किया जा चुका है।

'पहुल' सस्कार मे सभी व्यक्ति उस जल को चखते हैं जिसे एक विशेष प्रक्रिया के पश्चात् 'अमृत' नाम से पुकारा जाता है। इस प्रणाली का ब्राह्मणो और क्षत्रियो ने विरोध किया था इस बात का सकेत गुरु गोबिन्दसिंह के दरबारी कवि 'सेनापति' ने अपनी रचना 'गुरु शोभा' मे भी दिया है।[1] गुरु गोबिन्दसिंह ने स्वयं अपनी रचनाओ मे इस विरोध का उल्लेख किया है। किन्ही मिश्रजी को सबोधित करते हुए दो-तीन पद दशम ग्रथ मे संग्रहीत हैं। इन पदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मिश्रजी ने गुरु गोबिन्दसिंह से निम्न जातियो को अपने संगठन मे इतना उच्च स्थान देने का विरोध किया, साथ ही उनके कृत्य पर अपना रोष भी प्रगट किया। अपने उन्ही नीच जातियो मे से बने अनुयायियों की प्रशसा करते हुए वे कहते हैं—

जुद्ध जिते इनही के प्रसादि इनही के प्रसादि सु दान करे ॥
अघ अउघ टरैं इनही के प्रसादि इनही की कृपा पुन धाम भरे ॥
इनही के प्रसादि सु विदिआ लई इनही की कृपा सभ सत्रु मरे ॥
इनही की कृपा ते सजे हम है नही मो सौ गरीब करोर परे[2] ॥२॥

संसार के शायद ही किसी महापुरुष ने अपने अनुयायियो की महत्ता प्रदर्शित करते हुए इतनी विनम्रता का परिचय दिया हो।

दूसरे छद मे कहते हैं—

सेव करी इनही की भावत अउर की सेव सुहात न जी को ॥
दान दयो इन ही को भलो अरू आनको दान न लागत नीको ॥
आगै फलै इनही को दयो जग में जमु अउर दयो सम फीको ॥
मो गृह मो तन ते मन ते सिर लउ धन है सब ही इनही को[3] ॥३॥

डा० बनर्जी के अनुसार उस युग के एक सवाददाता ने लिखा है कि जाति और वश को भूल जाने का जो उपदेश गुरु ने दिया उसके परिणामस्वरूप ब्राह्मण और खत्री उस सभा को छोड़ कर चले गये।[4] इतना होने पर भी लगभग बीस हजार लोगो ने उसी समय अपने को 'खालसा' पंथ मे दीक्षित करने के लिए प्रस्तुत किया।[5]

---

१. करि पाहुल सब सगति चासां।
पाच पाच मिल कीए खासो।
खत्री ब्रह्मण दुर रहे निहारा।
उन अपने मन माहि बिचारा ॥५॥२०१॥
ब्रह्मण होइके मदर न कीजै।
जग में नोभ कवन विधि लीजै।
इह विधि अनक भरम भरमानै।
करनहार के बचन भुलाने ॥६॥२०२॥ (गुरु शोभा, पृ० २६)

२. दशम ग्रन्थ, पृ० ७१०

३. वही।

४. एवोल्यूशन ऑफ खालसा, पृ० १२०।

५. मैकालिफ, सिख रिलीजन, भाग ५, पृ० ६४।

कनिंघम ने लिखा है : "सिखों के अन्तिम गुरु ने पराजित लोगों की सुप्त शक्तियों को जगाया और उन्नत करके उनमें सामाजिक स्वातंत्र्य और राष्ट्रीय प्रभुता से भर दिया जो नानक द्वारा बताए पवित्र भक्ति भाव से जुड़ा हुआ था।"[१]

एक शान्तिपूर्ण धार्मिक सम्प्रदाय से एक सुसंगठित योद्धा-शक्ति में सिखों के परिवर्तित होने पर दृष्टिपात करते हुए डा० नारंग ने लिखा है— "यद्यपि इस बात की सत्यता में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि सिखों की राजनीतिक आकांक्षाओं ने दसवें गुरु के नेतृत्व में अधिक स्पष्ट रूप धारण किया तथापि यदि सिखों के इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाए तो उससे इस बात का स्पष्ट पता लगता है कि सिखों के धार्मिक सम्प्रदाय से राजनीतिक सम्प्रदाय में परिवर्तित होना गुरु गोबिन्दसिंह के समय से बहुत पहले ही प्रारम्भ हो चुका था। वास्तव में स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह तथा उनका कार्य, दोनों उस विस्तारक्रम का स्वाभाविक फल था जो सिख मत की स्थापना के समय से ही बराबर चला आता था। वह फसल जो कि गुरु गोबिन्द-सिंह के समय में पक कर तैयार हुई, गुरु नानक की बोई हुई थी तथा गुरु नानक के उत्तराधिकारियों ने उसे सींचा था। निस्सदेह वह तलवार जिसने खालसा के मार्ग को साफ कर उन्हें विजय का भागी बनाया गुरु गोबिन्दसिंह की गढ़ी हुई थी किन्तु उस तलवार के लिए इस्पात गुरु नानक का दिया हुआ था। और गुरु नानक ने, मानो हिन्दुओं के कच्चे लोहे को पिघला कर तथा उस धातु से जनसमूह की उदासीनता, अंधविश्वास तथा पुरोहितों के कपट दम्भ रूपी मल को जलाकर उस इस्पात को तैयार किया था।[२]

'खालसा' निर्माण की प्रतिक्रिया

'खालसा' निर्माण की चारों ओर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। 'पहुल' संस्कार से दीक्षित होने के पश्चात् आनन्दपुर में एकत्र हुए सिख अपने-अपने घरों को लौट कर नवपथ का प्रचार करने लगे। सरहिंद और लाहौर के मुगल सूबेदार और पहाड़ी प्रदेशों के राजा इससे बहुत चौकन्ने हुए। इसमें सबसे अधिक चिंता कहिलूर के राजा को हुई, जिसके क्षेत्र में आनन्दपुर पड़ता था। "यह सत्य है कि गुरु उनसे (पहाड़ी राजाओं से) युद्ध नहीं करना चाहते थे, परंतु जैसा कि हमने देखा है कि इन राजाओं से उनका मतभेद न्यूनाधिक रूप से आधारभूत था और वे गुरु के सुधारों से बुरी तरह घबरा गये थे।"[३]

कहिलूर के राजा ने हंडूर के राजा की सम्मति से एक पत्र गुरु गोबिन्दसिंह को भेजा, जिसमें लिखा कि या तो वे आनंदपुर की वह भूमि छोड़कर कहीं और चले जाएं अथवा उसका किराया दें।[४] गुरु गोबिन्दसिंह ने उत्तर दिया कि यह भूमि मेरे पिता ने पूरा मूल्य

---

१. हिस्ट्री ऑफ सिख्स, पृ० ८४।
२. ट्रान्सफारमेशन ऑफ सिखिज्म, पृ० २५।
३. एवोल्यूशन आफ खालसा, पृ० १२६।
४. राजन सो रच जुद्ध विरुद्ध को साज कीउ मु यहै कल धारी॥
   ताते बसो जीअ में उहि राव के बाधके वेग करी असवारी॥
   भेज दियो लिख के उहि ने अब छाडो गुरु जी भूमि हमारी॥
   के कछु दाम दया कर देव के जुद्ध करो यह बात हमारी॥८॥
   (गुरु शोभा, पृ० ४१)

देकर खरीदी है। इसके पूर्व इसका कोई किराया नहीं दिया गया और न भविष्य मे दिया जायगा। इस विवाद को लेकर संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

पहाड़ी राजाओं ने पैंदे खान और दीनाबेग नामक दो पंचहज़ारी मुग़ल सरदारों की सहायता से गुरु पर आक्रमण किया। डा० नारंग के कथनानुसार[1] पहाड़ी राजाओं और मुग़ल सरदारों की सम्मिलित शक्ति लगभग बीस हज़ार योद्धाओं की थी। गुरु गोबिन्दसिंह के पास उस समय केवल आठ हज़ार सैनिक थे। शत्रु सैनिकों ने आनन्दपुर के चारों ओर घेरा डाल दिया और भयानक संघर्ष प्रारम्भ हो गया। पहाड़ी राजाओं की ओर से राजा भीमचंद, राजा अजमेर चंद, राजा जसवालिया, राजा केसरी चंद, राजा धमंडसिंह आदि अपनी सेना का संचालन कर रहे थे। गुरु की ओर से शेरसिंह और नाहर सिंह लोहगढ़ की रक्षा कर रहे थे। उदयसिंह फ़तेहगढ़ की रक्षा कर रहा था। स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह और उनका ज्येष्ठ पुत्र अजीत सिंह खालसा सेना का संचालन कर रहे थे।

पहले दिन के युद्ध मे कुंवर अजीत सिंह के बाण से राजा केसरी चंद घायल हो गया और जगतुल्लह नामक मुग़ल सरदार उदयसिंह के हाथों मारा गया।

दूसरे दिन शत्रु सेना ने आनन्दपुर का मुख्य द्वार तोड़ने के लिए एक हाथी को शराब पिलाकर मस्त किया और उसके मस्तक पर तेज-बर्छी भाले आदि लगाकर उसे आगे भेजा। इधर से एक सिख सैनिक, विचित्र सिंह उस मस्त हाथी का मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा। उसके बर्छे के तीव्र प्रहार से शत्रु सेना का हाथी चिंघाड़ता हुआ वापस मुड़ गया और उसने अपनी सेना के बहुत से सैनिकों को रौंद डाला[2]।

इस युद्ध में गुरु गोबिन्दसिंह के हाथों मुग़ल सैनिक पैंदे खान मारा गया तथा दीना बेग बुरी तरह घायल होकर युद्धभूमि से भाग गया। उदय सिंह ने राजा केसरी चंद का सिर काट लिया। अंत में शत्रु सेना युद्ध से भाग खड़ी हुई। विजयी खालसा सेना ने शत्रुओं का रोपड़ तक पीछा किया।

यह युद्ध सन् १७०० ई० में हुआ था।

राजाओं ने अपने इस युद्ध मे अनेक मुग़ल एवं पठान सरदारों की सहायता ली थी। इस असफलता ने उनके अन्दर गहरी निराशा भर दी। उन्होंने अपने एक प्रतिनिधि को औरंगज़ेब के पास एक आवेदन पत्र सहित भेजा[3], जिसमें लिखा—"गुरु ने राजत्व के चिह्न धारण कर लिये हैं; वह अपने को 'सच्चा बादशाह' कहता है। सहस्रों धर्मोन्मत्त अनुयायी

---

१. ट्रान्सफ़ार्मेशन ऑफ़ सिखिज़्म, पृ० २५०।
२. विचित्रसिंह का वह बर्छा आनन्दपुर में सुरक्षित है।
३. इस घटना का वर्णन सेनापति ने इन शब्दों में किया है—
सबै राज कहलूर के कीनो एक उपाउ॥
बिदा किउ प्रधान को अबै तुरक पै जाउ॥६॥३४५॥
जाहि कहो सुलतान हो सौं हमसो इन जोरनि जोर करी है॥
मारि लिए तिह साथ सबै जु भबै केहलूर पै चोट परी है॥
आनि न ब्याधि करैंगी यहा सु यहै बिधि जानि कै लिरिट करी है॥
कीजै अबै उपराचो हमारा सु किउ न करो तुमहू सु सरी है॥१०॥३४६॥
(गुरु शोभा, पृ० ४७)

प्रतिदिन आ-आकर उसके झण्डे के नीचे एकत्रित होते हैं। हमें (राजाओं को) स्वयं गुरु का बल तोड़ने में सफलता प्राप्त नहीं हुई है और विजय से फूलकर वे प्रतिदिन अधिक उद्यत तथा भयकर होते जा रहे हैं। वे सम्राट् की प्रभुसत्ता को स्वीकार करने से इन्कार करते हैं और अपने अबोध अनुयायियों को आशाएँ देकर उत्तेजित करते हैं कि शीघ्र ही सम्राट् का शासन मिट्टी में मिल जाएगा और देश में खालसा का राज्य होगा।"[1]

इस आवेदन पत्र से मुगल शासन के कान खड़े हो गये। औरंगजेब उस समय दक्षिण के युद्धों में व्यस्त था। संभवत उसने वहीं से सरहिंद और लाहौर के सूबेदारों को गुरु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। दोनों सूबेदारों की सेनाएं सरहिंद में एकत्र हुईं और उन्होंने गुरु गोबिन्दसिंह के विरुद्ध कूच किया। गुरु को इस परिस्थिति का भान हो चुका था। उन्होंने प्रतिरोध की पूरी तैयारी की।

युद्धारम्भ

लाहौर और सरहिंद की सम्मिलित सेनाओं ने एक ओर से गुरु पर आक्रमण किया और पहाड़ी राजाओं की सेना ने दूसरी ओर से। गुरु गोबिन्दसिंह इस समय निरमोह नामक स्थान पर थे। गुरु ने अपनी सीमित शक्ति से उन सेनाओं का सामना किया। युद्ध एक पूरा दिन और रात चलता रहा। अंत में शत्रु सेना को बाध्य होकर पीछे हटना पड़ा। गुरु ने भी अपनी सेना सहित निरमोह को छोड़कर आनन्दपुर की ओर प्रस्थान किया। अभी उन्होंने नदी पार ही की थी कि शत्रु सेना ने उन पर फिर आक्रमण कर दिया। नदी तट पर फिर भयानक संघर्ष हुआ। इस युद्ध में भी गुरु की पूर्ण विजय हुई और शत्रु सेना मार कर भगा दी गयी। 'गुरु शोभा' के रचयिता के शब्दों में—

> गोबिन्द सिंह महाबलधार बिदार दए दल तुरकन केरे ॥
> ऐसी भई प्रभु की रचना सभि भाज गए फिरि आए न नेरे[2] ॥

इस युद्ध की समाप्ति पर बिसाली के राजा ने उन्हें अपने राज्य में आमन्त्रित किया। उसका निमन्त्रण स्वीकार कर गुरु ने बिसाली में कुछ समय तक निवास किया। यहां उनकी शक्ति कम समझकर कहिलूर के राजा ने उन पर पुन: आक्रमण कर दिया। परन्तु इस युद्ध में भी गुरु ने उसे पूरी तरह पराजित करके भगा दिया।

कहिलूर का राजा अजमेर चंद अपनी लगातार हार से बहुत निराश हो चुका था। अपना अभिमान छोड़कर वह बिसाली में गुरु से आकर मिला[3] और उनसे संधि कर ली। वहां से वे आनन्दपुर वापस आ गये और उन्होंने आनन्दगढ़ नाम से एक नया दुर्ग बनवाया।[4]

---

१. ट्रान्सफारमेशन आफ सिखिज्म, पृ० १५१।

२. गुरु शोभा, पृ० ५१।

३. राजा गढ़ कैहलूर को मिलै प्रभू सो आन ॥
सति गुरु की सरनी गही चूकिउ मनि अभिमान ॥२५॥४०३॥
(गुरु शोभा, पृ० ५५)

४. सब कउतक आपै किए आपे किउ उभार ॥
फिर अनन्द गढ़ बाधिउ बहु बिधि करि बिस्थार॥३७॥
(गुरु शोभा, पृ० ५५)

अपने आस-पास के क्षेत्रों पर सिखो का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। गुरु गोबिन्दसिंह की सैनिक शक्ति प्रतिदिन बढती जा रही थी। दक्षिण के युद्धो मे व्यस्त औरगज़ेब सरहिन्द और लाहौर के सूबेदारो को बार-बार आदेश दे रहा था कि सैनिक शक्ति सहित पहाड़ी राजाओं की सहायता करें और गुरु पर नियन्त्रण स्थापित करें। परन्तु बार-बार मुगलो और पहाड़ी राजाओ की सेनाएँ पराजित हो होकर लौट रही थीं।[1] पहाड़ी राजा कभी तो गुरु से आकर सधि कर लेते थे और कभी अवसर मिलते ही उन पर आक्रमण कर देते थे।

सय्यदबेग और अलिफखान नामक दो मुगल सरदार लाहौर से दिल्ली की ओर जा रहे थे, तभी पहाड़ी राजाओ ने उन्हे दो हजार रुपये प्रतिदिन देना स्वीकार करके गुरु गोबिन्दसिंह पर आक्रमण करने के लिए भेजा। दोनो मुगल सरदारों के पास दस हजार की सशस्त्र और सुशिक्षित सेना थी। गुरु उस समय अपनी थोड़ी सी सेना सहित चमकौर के निकट थे। यही उनका मुगल सेना से सामना हो गया। युद्ध का समाचार मिलते ही आनन्दपुर से सिखो की एक सेना भी उनके सहायतार्थ वहाँ पहुँच गई।

मुग़ल सरदार सैयदबेग गुरु गोबिन्दसिंह के विषय मे पहले बहुत कुछ सुन चुका था। प्रत्यक्ष युद्ध मे उनका सम्मोहक व्यक्तित्व एव उनकी अद्भुत वीरता देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ और वह अपने सैनिकों सहित गुरु के पक्ष मे आ मिला। इस नाटकीय घटना से दूसरे मुग़ल सरदार अलिफ़खान का साहस टूट गया और वह अपने सैनिको सहित मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ।[2]

कुछ समय बाद पहाड़ी राजाओं ने फिर एक सम्मिलित सेना सहित गुरु गोबिन्दसिंह पर आक्रमण किया। परन्तु इस बार भी उन्हे पराजय का मुँह देखना पड़ा। कवि सेनापति ने 'गुरु शोभा' पृष्ठ-५६-५७ मे इस युद्ध का बड़ा उत्तेजक वर्णन दिया है—

तोप छुटैं गरजैं घन जो लरजैं हियरा मानो बिज कड़क्कैं।
ठउर रहैं जिह्कैं उर लागत होत है छाती कै पाट पड़क्कैं॥
या विधि सो तहि गोला चलैं टिकहैं नाहि सूरमा ताही कै धक्कैं॥
राजन के अवसान गये जब आनद कोट से तोप छुड़क्कैं॥
जिह जिनके गोला लगे रहै जीव सोई ठउर।
मन की मन मे ही रहन कहत बचन नहि अउर॥

अन्त मे पराजित राजाओ ने फिर मुगल सम्राट की शरण मे जाने का निश्चय किया। औरगजेब पजाब के अपने सूबेदारों और पहाड़ी राजाओ की बार-बार की पराजय से बहुत चिन्तित हो उठा था। पंजाब मुग़ल साम्राज्य का सबसे सुदृढ़ केन्द्रीय प्रदेश था।

1. Large Imperial forces were sent from Sarhind to co-operate with the quotas of the hill Rajas and suppress the Guru, but they were usually worsted.
(J. N. Sarkar, *History of Aurangzeb*, Vol. III, p. 318)
2. Alif Khan on seeing that Saiyad Beg had joined the Sikhs concluded that he had no chance of victory and retired from the contest. He was hotly pursued by the Sikhs and Saiyad Beg.
(Macauliffe, *The Sikh Religion*, Vol 5, p. 164)

एक नवजात आंदोलन के हाथो शाही सेना की बार-बार पराजय से मुग़ल साम्राज्य की प्रतिष्ठा नष्ट हो रही थी। दक्षिण विजय और अपने साम्राज्य की सीमाओं की वृद्धि का इच्छुक औरंगजेब अपनी राजधानी के इतने निकट साम्राज्य की जड़ों को इस प्रकार हिलता देख बुरी तरह घबड़ा गया और उसने एक विशाल सेना गुरु पर आक्रमण करने के लिए भेजी। इस सेना में सरहिन्द, लाहौर और जम्मू के सूबेदारों की सेनाएं भी सम्मिलित हुई। बूटीशाह के कथनानुसार २२ पहाड़ी राजाओं ने अपनी सेनाओं से इस विशाल सेना की सहायता की। गूजर और रघड जाति के दुर्दम्य मुसलमान, जो सिखो के चिर शत्रु थे, विशाल सख्या मे इस सेना का अग बने। इस प्रकार असख्य गणना की यह विशाल वाहिनी अपनी सम्पूर्ण शक्ति से 'खालसा' के नवजात आंदोलन को कुचलने के लिए आगे बढ़ी।[1]

आनन्दपुर का घेरा

गुरु गोविन्दसिंह ने यथा-शक्ति इस सगठित सकट का सामना करने की तैयारी की थी। उन्होंने स्थान-स्थान पर मोर्चे स्थापित किये। भयकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। खालसा सेना ने मुगल और पहाड़ी राजाओ को मार-पीट कर पीछे हटा दिया। सेनापति ने गुरु शोभा मे इस सग्राम का बड़ा सजीव वर्णन किया है।[2] शत्रु सेना के अनेक सैनिक खालसा सेना द्वारा बंदी बनाये जाने पर पुन. सग्राम मे न आने का वायदा करके अपनी जान बचाने लगे।[3] मुगल सेनापतियो और पहाडो राजाओ ने आनदपुर से दूर हटकर स्थिति का विश्लेषण किया और अपनी विशाल सेना सहित आनन्दपुर के चारो ओर कड़ा घेरा डाल दिया।

यह घेरा इतनी दृढ़ता से डाला गया कि आनदपुर से किसी का भी आवागमन पूर्णतया वद हो गया। धीरे-धीरे रसद की समस्या पैदा होने लगी। अनाज इतना महगा हो गया

---

१. कवि सेनापति के शब्दों में—

राजे भाजि तुरक पै आए। सब तुरकन को भेद बताए ॥
अब हमारो उपरालो कीजै। आनन्दगढ हमको लै दीजै ॥
तुरक सभै मिलिकै उठ धाए। समाकरी बेग ही आए ॥
बहुत मुगल अरु घने पठान। चढे साजि दल चावै पान ॥
गूजर रघड बहुत अपार। बड़े बड़े जोधा असवार ॥
सरहिन्द वाले हैं हमराही। गढ लाहौर ने फौज मगाई ॥
बहुत फौज कर एकठी जम्मू सग मिलाइ।
सभ राजा दल जोरि कै फेर पहुचे आइ ॥
(गुरु शोभा, पृ०-५७)

२. लरत सिंघ इह भात भात फउज में परत धाइ कर।
काटत है तिह मूड धरत पर परत आइ धर।
इहि बिधि करि सग्राम सूर रन माहि मचावे।
निमख बिलम नहीं करै लोथ पर लोथ गिरावै।
कीने प्रहार इह भात कर देख राव पाछै फिरै।
दीने बिडार भाजे अपार केते सुमार करमे करै ॥३२॥
(गुरु शोभा, पृ० ५६)

३. बिनी करे घघिआइ के इह बिधि करे करार।
फेर न आवे जुद्ध में जो छूटे इक बार ॥३३॥ (गुरु शोभा, पृ० ५६)

कि एक रुपये सेर बिकने लगा। आनन्दपुर में पानी की भी विकट समस्या उत्पन्न हो गयी। ऐसी स्थिति में चार-चार सिख बाहर निकलते। एक ओर की घेरा डाले हुए शत्रु सेना की टुकड़ी से दो सिख लड़ते हुए शहीद हो जाते और दो किसी प्रकार कुछ जल अन्दर ले आते।[1] प्रतिदिन अनाज की समस्या जटिल होती गयी। बहुधा सिखों की कोई प्रबल टुकड़ी रात के अंधेरे में शत्रु सेना के अनाज-भंडार पर छापा मारती और जो कुछ भी हाथ लगता उठा लाती। कुछ दिन इस तरह चलता रहा परन्तु यह स्थिति देखकर शत्रु सेना ने अपना अनाज भंडार एक स्थान पर एकत्रित किया और बड़ी दृढ़ता से उसकी रक्षा की व्यवस्था की।

जैसे जैसे भोजन की अवस्था बिगड़ती गयी सिख सेना की व्याकुलता बढ़ती गयी। उनमें से कुछ गुरु से दुर्ग छोड़ देने का आग्रह करने लगे। गुरु गोबिन्दसिंह ने उन्हें धैर्यपूर्वक स्थिति का सामना करने के लिए कहा परन्तु क्षुधा की पीड़ा से अनेक सैनिकों का धैर्य टूटने लगा। प्रतिदिन आनदपुर छोड़ देने का आग्रह प्रबल होता गया। उधर मुगल सेनापति और पहाड़ी राजा गुरु के पास कुरान और गीता या शालिग्राम की सौगंध के साथ यह संदेश भेजने लगे कि यदि वे दुर्ग छोड़ दें तो उन्हें यहाँ से सुरक्षित निकल जाने दिया जाएगा। गुरु को उनकी सौगन्धों पर कुछ भी विश्वास नहीं था, परन्तु क्षुधित सिखों का आग्रह बढ़ता जा रहा था।

कहते हैं एक दिन खीझकर गुरु ने कह दिया, जो दुर्ग छोड़कर जाना चाहते हैं वे यह लिख कर दे दें कि वे उनसे गुरु और शिष्य का सम्बन्ध तोड़ते हैं। ४० सिखों ने यह 'बे दावा' लिख दिया और रात्रि के अंधेरे में दुर्ग छोड़कर चले गये।

आनदपुर का घेरा पड़े लगभग आठ महीने हो गये थे। अन्त में दुर्ग छोड़ देने का निश्चय हुआ। गुरु गोबिन्दसिंह अपनी माता गूजरी, पत्नी सुन्दरी और चारों पुत्रों, अजीतसिंह, जुझारसिंह, जोरावरसिंह और फतेहसिंह तथा बचे-खुचे सिखों सहित रात्रि को किला छोड़कर बाहर निकल गये।

किला छोड़ते समय कुछ मूल्यवान सामग्री साथ ली गयी। एकत्रित धन सिखों में बांट दिया गया और उन्हें अस्त्र-शस्त्रों से पूरी तरह सुसज्जित कर दिया गया था। गुरु गोबिन्दसिंह ने स्वयं अपनी तथा अपने दरबारी कवियों की रचित रचनाओं को सभालने का पूर्ण प्रयास किया, परन्तु श्रद्धालु सिखों द्वारा उनकी अधिकांश रचनाएँ तो किसी प्रकार बचा ली गयी, जिनका आगे चलकर भाई मणीसिंह ने सपादन किया परन्तु अन्य कवियों की अधिकांश रचनाएँ नष्ट हो गयी।

दुर्ग-त्याग

वह २१ दिसम्बर, सन् १७०४ की रात्रि थी जब गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी बची सेना और परिवार सहित दुर्ग छोड़ दिया। अभी वे सरसा नदी के तट पर पहुँचे ही थे कि पीछे से शत्रु-सेना अपनी सभी सौगन्धों को भुलाकर आ गई। वर्षा और शीत की रात्रि में नदी तट पर ही संघर्ष हुआ। कुछ सिखों ने मुगल सेना को युद्ध में व्यस्त रखा और गुरु

---

१. चारि सिख पानी को जावैं।
दो जूझै दो पानी लिआवैं। (गुरु शोभा. पृ० ४१)

अपने चालीस सैनिकों और पुत्रों अजीतसिंह (१६ वर्ष), जुझारसिंह (१४ वर्ष) सहित चमकौर की गढ़ी तक पहुंच गये।[1] परन्तु नदी तट पर हुए युद्ध की व्यग्रता में उनका शेष परिवार उनसे छिन्न-भिन्न हो गया। उनके दो कनिष्ठ पुत्र जोरावरसिंह (६ वर्ष) और फतहसिंह (७ वर्ष) अपनी दादी, माता गूजरी सहित अपने एक रसोइए गंगाराम के साथ उसके गाँव की ओर चले गये। विश्वासघाती गंगाराम ने उन्हें धन के लोभ में सरहिंद के सूबेदार वजीर खान को सौंप दिया। इस्लाम न स्वीकार करने के कारण २७ दिसम्बर, १७०४ को उन्हें जीवित दीवार में चिनवा दिया गया।[2] माता गूजरी ने इस शोक में अपने प्राण त्याग दिये।[3] उनकी दोनों पत्नियाँ, सुन्दरी और साहिबदेवी भी उस अशांति में उनसे बिछुड़ गईं और किसी प्रकार दिल्ली पहुंच गईं।

चमकौर की गढ़ी भी शत्रुओं द्वारा घेर ली गई। गुरु गोबिन्दसिंह उनके पुत्रों और चालीस साथियों ने बड़ी वीरतापूर्वक संग्राम किया। गुरु गोबिन्दसिंह की बाणों की वर्षा से मुग़ल सेनापति नाहर खान मारा गया और ख्वाजा मुहम्मद ने गढ़ी की दीवार के नीचे छिपकर अपनी जान बचाई।[4] सेनापति ने कुंवर अजीतसिंह और जुझारसिंह की वीरता एवं युद्ध में वीरगति पाने का विस्तृत वर्णन 'गुरु शोभा' में किया है।

एक-एक करके गुरु के अधिकांश साथी समाप्त हो गए। अन्त में चमकौर त्याग देने का निश्चय हुआ। रात्रि के अन्धकार में बचे हुए अपने तीन साथियों सहित वे मुग़ल

---

१. 'गुरु शोभा' के रचयिता ने यह युद्ध एक टीले पर हुआ बताया है—

साढी टिबी आनि के खड़े भए तिह थान।
राजा अरु तुरकान सब निकटि पहूचे आन ॥२॥

गुरु गोबिन्दसिंह तो अपने कुछ सैनिकों सहित चमकौर की ओर बढ़ गए और उदयसिंह नामी योद्धा ने कुछ सैनिकों सहित शत्रु सेना को युद्ध में उलझाए रखा—

उदै सिंह ललकार के मुखी करी करतार।
सफल जनमु इह भात करि दूजन करी सघार ॥३॥

(पृ० ६२)

२. कहते हैं, सूबेदार वजीर खान के दरबार में जब गुरु-पुत्रों को ज़िंदा दीवार में चिनवा देने का निर्णय हुआ तो वहां उपस्थित पंजाब की एक छोटी सी रियासत मलेरकोटला के मुसलमान नवाब ने इस दुष्कृत्य का विरोध किया, परन्तु उसकी एक न सुनी गई। सिखों ने नवाब के इस विरोध को सदा स्मरण रखा और भविष्य में उन्होंने जब सम्पूर्ण पंजाब में मुसलमान राज्य की समाप्ति कर दी, मलेरकोटला पर उन्होंने कभी आक्रमण नहीं किया। सन् १९४७ में, पश्चिमी पंजाब में हिन्दू-सिखों पर किए जाने वाले अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप, मुसलमानों पर आक्रमण हुए उस समय भी मलेरकोटला पर कोई आक्रमण नहीं किया गया।

३. ए शार्ट हिस्ट्री आफ सिख्स, पृ० ७२।

४. औरंगजेब को लिखे अपने एक पत्र, जो ज़फरनामा (विजय पत्र) के नाम से प्रसिद्ध है, में गुरु ने नाहर खान के मारे जाने और ख्वाजा मुहम्मद के दीवार की ओट में छिपने का वर्णन किया है—

चु दीदम कि नाहर बिआमद बजंग ॥
चशीदह यके तीर तन बेदरंग ॥३६॥

(जब मैंने देखा कि नाहर खान युद्ध के लिये आया है, उसने झटपट मेरा एक तीर खा लिया)

कि आँ ख्वाजह मरदूद साया दिवार।
बगैरा निआमद बमरदानह वार ॥३४॥

(पर वह ख्वाजा मरदूद दीवार की ओट से वीरों की तरह मैदान में न आया)

सेना की आँखों में धूल झोंककर निकल गये। भाई सुक्खासिंह ने अपने 'गुरु-विलास' में लिखा है कि चमकौर दुर्ग में उपस्थित एक सिख 'संतसिंह' की आकृति गुरु गोविन्दसिंह से बहुत मिलती थी। शत्रु को धोखा देने के लिए वह गुरु के वस्त्र और कलगी धारण कर उन पर बाण-वर्षा करता रहा और गुरु गढ़ी छोड़कर निकल गये।

संकट के वे दिन

गुरु के तीनों साथी विभिन्न दिशाओं में चले गये। उनके इधर-उधर भटकने, अनेक स्थानों पर पीछा करती हुई शत्रु सेना से बाल-बाल बचने और नंगे पैर माछीवाड़ा के घने और काँटों भरे जंगल में अपने आपको छिपाए रखने की कहानी बड़ी रोमांचक है। कितने ही दिन उन्होंने आक के पत्ते खाकर अपनी क्षुधा शान्त की। कितनी ही शीत की रातें उन्होंने आकाश के चमकते हुए सितारों की छाया में निर्वस्त्र गुजारीं। इस प्रकार की अवस्था में दो पठानों, नबी खान और गनी खान ने उन्हें फटे वस्त्रों और छाले पड़े हुए पैरों में सोते हुए पाया। वे जानते थे कि शाही सेना उनके पीछे पड़ी हुई है। परन्तु उन्होंने उनके लिए अपने प्राणों का संकट स्वीकार किया।[1] उन्होंने उन्हें मुसलमान फकीरों जैसे नीले वस्त्र पहनाए और उन्हें 'उच्च का पीर' घोषित कर एक पालकी में बैठाकर ले चले। 'उच्च का पीर' से दो अर्थ व्यक्त हुए। एक 'ऊँचा पीर'। दूसरा 'उच्च' (मुलतान के निकट मुसलमानों का एक पवित्र स्थान) का पीर। एक बार शाही सेना की एक टुकड़ी ने उन्हें घेर लिया। टुकड़ी के नायक को कुछ सन्देह हो गया। उसने अनेक प्रश्न किये और फिर भी जब उसे सन्तोष नहीं हुआ, उसने काजी पीर मुहम्मद को जाँच करने के लिए बुला भेजा। संयोग से काजी पीर मुहम्मद ने गुरु गोबिन्दसिंह को बचपन में फारसी पढ़ाई थी। उसने भी उनकी सहायता की और सैनिक टुकड़ी को सतोषजनक उत्तर देकर परिस्थिति को सभाल लिया। गुरु के इन मुसलमान-मित्रों के परिवारों के पास आज भी गुरु द्वारा दिए हुए हस्ताक्षरयुक्त धन्यवाद-पत्र सुरक्षित हैं और दर्शकों को वे बड़ी श्रद्धा से उन पत्रों का दर्शन कराते हैं।[2]

वहाँ से वे जतपुरा पहुँचे, जहाँ एक अन्य मुसलमान राय काल्हा ने उनकी सहायता की। गुरु ने उससे किसी को भेजकर सरहिंद से अपने कनिष्ठ पुत्रों का समाचार मगाने के लिए कहा। कुछ दिनों पश्चात् राय काल्हा का सदेशवाहक सरहिंद के सूबेदार वजीर खान द्वारा गुरु-पुत्रों के नृशंस वध का हृदय-विदारक समाचार लाया। दुःखी पिता ने इस समाचार को बड़े धैर्य से सुना और कहा—"नहीं, मेरे पुत्र मरे नहीं हैं। उन्होंने धर्म का सौदा करने से इन्कार कर दिया। वे अमर हो गए हैं।" कहते-कहते उन्होंने धरती पर लगा पौधा उखाड़ दिया और घोषित किया—"शत्रु इसी प्रकार उखाड़ दिया जायेगा।"[3]

वहाँ से आगे चलकर गुरु गोबिन्दसिंह दीना नामक स्थान पर आए। इस समय तक उनके वे तीनों साथी भी उनसे आ मिले थे जो चमकौर दुर्ग छोड़ने के पश्चात् उनसे अलग हो गये थे। धीरे-धीरे उनके और बहुत से शिष्य भी उनके साथ आ मिले थे। वहाँ से वे

---

१. ये दोनों पठान गुरु के बड़े श्रद्धालु थे और मध्य एशिया से घोड़े लाकर उन्हें बेचा करते थे।

२. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिक्खस, पृ० ७८।

३. वही, पृ० ७४।

अनेक स्थानों पर रुकते और अपनी शक्ति को पुनः संगठित करते हुए खिदराणा नामक स्थान पर आ पहुँचे।

खिदराणा का युद्ध

सरहिंद के सूबेदार वजीर खान की सेना निरन्तर उनका पीछा कर रही थी। गुरु गोबिन्दसिंह के पास फिर से कुछ शक्ति एकत्र हो गई थी। उन्होंने देखा, खिदराणा का तालाब पूरी तरह सूख गया है। युद्ध की दृष्टि से स्थान उपयुक्त समझकर उन्होंने निकट के घने जंगलों में अपना मोर्चा बना लिया। यहाँ मुगल सेना ने फिर उन पर आक्रमण किया, परन्तु इस युद्ध में गुरु गोबिन्दसिंह ने उन्हें पूरी तरह पराजित कर दिया। सिख-सेना ने अपने लिए जलादि का प्रबन्ध किया हुआ था परन्तु शत्रु सेना जल के अभाव में त्राहि-त्राहि कर उठी और उसे मैदान छोड़ना पड़ा।

इस युद्ध में उन चालीस सिखों ने अद्भुत पराक्रम का प्रदर्शन कर वीरगति प्राप्त की जो आनन्दपुर में क्षुधा से व्याकुल हो गुरु का साथ छोड़ आए थे। इस युद्ध में प्राण देकर उन्होंने अपने उस कृत्य का प्रायश्चित किया। तब से सिखों की दैनिक प्रार्थना में इन्हें 'चालीस मुक्ते' कहकर बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया जाता है। खिदराणा को तब से मुक्तसर कहते हैं और इस युद्ध की स्मृति में प्रतिवर्ष माघ में यहां एक बड़ा मेला लगता है।

खिदराणा के युद्ध के पश्चात् गुरु गोबिन्दसिंह स्थान-स्थान पर कुछ समय तक विचरण करते रहे फिर तलवंडी साबू पहुँचे जिसे आज 'दमदमा' कहते हैं। यहाँ गुरु का एक घनिष्ठ मित्र डल्ला रहता था जिसने उनकी पूरी सहायता की। सामरिक प्रतिरक्षा की दृष्टि से यह स्थान बहुत उपयुक्त था। गुरु यहाँ कुछ समय तक बड़ी शान्ति के साथ रहे।

यहाँ रहकर उन्होंने पंजाब के इस मालवा क्षेत्र में अपने मत का प्रचार किया। इस क्षेत्र के सिखों के बहुत से पुराने घराने तथा राजवंश इन्हीं दिनों गुरु के हाथों पहुल लेकर "खालसा" में दीक्षित हुए। इन नव दीक्षितों में डल्ला भी एक था, परन्तु विशेष रूप से उल्लेखनीय तिलोका और रामा दो भाई थे।[1] ये दोनों पंजाब के दो प्रसिद्ध राजवंशों पटियाला और नाभा के पूर्व पुरुष थे। इनके अतिरिक्त और बहुत से लोग यहाँ "खालसा" पंथ में दीक्षित हुए। ट्रम्प के मतानुसार उन्होंने यहाँ लगभग एक लाख बीस हजार अनुयायी बनाए।

---

१. तिलोका और रामा का, जो पहुल में दीक्षित होने के पश्चात् तिलोकसिंह और रामसिंह बने, गुरु गोबिन्दसिंह से दमदमा आने के पूर्व भी अच्छा सम्बन्ध था। इन दोनों भाइयों को सन् १६६६ ई० (संवत १७५३ वि०) का आनन्दपुर में लिखा गुरु गोबिन्दसिंह का एक गुरुमुखी लिपि में मूल पत्र (हुक्मनामा) आज भी र० बा० आलासिंह बुर्ज पटियाले में सुरक्षित है। मूल हुकमनामा इस प्रकार है—

१ ੴ सतिगुरु जो

श्री गुरुजी की आगिआ है भाई तिलोका भाई रामा सरबत संगत गुरु रखेगा तुसा जमीअत ले के असाडे हजूर आवणा। मेरी तेरे ऊपरि बहुत खुसी है। तेरा घरु मेरा है। तुसु हुकमु देखदिआ ही देतो असाडे हजूर आवणा। तेरा घर मेरा असे। तुसु सितावी हुकम देखदिआ ही आवणा। तुसां असवार लै के आवणा जरूर आवणा। तेरे उते असाडी भारी मिहरबानगी असै। तै आवणा इक जोड़ा भेजा है रखावणा। भादों २ सम्वत ५३।।

दमदमा का यह निवास गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन के साहित्यिक पहलू की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। गुरु ग्रंथ साहिब का आज जो रूप उपलब्ध है, वह गुरु गोबिन्दसिंह के निर्देश में यहीं उसे प्राप्त हुआ। लगता है, गुरु ग्रन्थ साहिब को पुनः सम्पादित कराने के कार्य में यहाँ उन्हें काफी समय लगा होगा। धीरे-धीरे यह स्थान अध्ययन का केन्द्र बन गया और इसीलिए इसे 'सिखों की काशी' कहा जाने लगा।

औरंगजेब को पत्र

सेनापति ने 'गुरु शोभा' में लिखा है कि खिदराणा का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् गुरु गोबिन्दसिंह ने भाई दयासिंह द्वारा एक पत्र औरंगजेब को भिजवाया।[1] गुरु गोबिन्दसिंह के फारसी भाषा मे लिखे दो पत्रो का उल्लेख मिलता है। उनके लिखे सुप्रसिद्ध पत्र 'ज़फ़रनामा' की चर्चा तत्सम्बन्धी इतिहासो मे प्राप्त है। सेनापति ने भी 'गुरु शोभा' में उसी का उल्लेख किया लगता है। 'दशम ग्रन्थ' में भी वही पत्र संग्रहीत है। परन्तु उसके अतिरिक्त एक और पत्र भी प्रकाश में आया है जिसका पूर्ण कथ्य अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। उस सम्बन्ध में जो कुछ भी उपलब्ध है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि वह पत्र चमकौर युद्ध के एकदम पश्चात् और ज़फ़रनामा के पूर्व लिखा गया होगा।

प्रथम पत्र की आधारभूत सामग्री

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाग ३, अंक २ अगस्त १६२२ मे छत्रपति शिवाजी द्वारा मिर्जा राजा जयसिंह को लिखा हुआ पत्र प्रकाशित कराया था उसकी भूमिका मे उन्होंने लिखा था कि लगभग ३० वर्ष पूर्व उन्होंने गुरु गोबिन्दसिंह के जन्मस्थान पटना के गुरुद्वारे के महन्त बाबा सुमेरसिंह के पास दो पत्र देखे थे। उनमें से एक गुरु गोबिन्दसिंह जी का वह पत्र था जो उन्होने औरंगजेब को लिखा था और दूसरा पत्र छत्रपति शिवाजी का मिर्जा राजा जयसिंह के नाम था।

रत्नाकर जी ने बाबा सुमेरसिंह से इन दोनो पत्रों की प्रतिलिपि प्राप्त कर ली थी। बाबा जी के पास ये पत्र गुरुमुखी अक्षरों में लिखे हुए थे। रत्नाकर जी ने उन्हें फारसी अक्षरों में लिख लिया था। घर आकर उन्होने ये पत्र किसी पुस्तक में रख दिए और काफ़ी समय तक उनकी ओर कोई ध्यान न दिया। कई वर्ष पश्चात् जब उन्हें अपनी किसी रचना के लिए शिवाजी द्वारा जयसिंह को लिखे पत्र की आवश्यकता हुई तो उन्होने उन पत्रों को

---

१. भाजि तुरकान मैदान छोरै सबै खेत सिपाम के हाथ आयो।
कोउ बीच्चार करतार मन में धरो साह को भेद सबहि सुनायो॥
दया को सिंघ सिंह माझि सिगार कै तुमो करतार अरके पठायो।
करी तसलीम सिंह हुकम को देख कै सीस पे बांधि तने सिपायो॥१३॥
कही समझाय करतार ताको सबै लिखा औरंग के हाथ दीजो।
साथ सुखसाथी जान मेरा वचन नहिं मन माहि कुल संक कीजो॥
सीस दो पाच लै गलगे पारसि मे गरब दरबार औचार कीजो।
साबि दै जाइ हरि आइ दरबार में बेग फुरमान नेदार कीजो॥१४॥

बहुत ढूंढा परन्तु वे प्राप्त न हो सके। उन्होने पुनः उनकी नकल प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु उस समय तक बाबा सुमेरसिंह पंजाब आकर स्वर्गवासी हो चुके थे।

रत्नाकर जी को बाद मे शिवाजी वाला पत्र तो प्राप्त हो गया परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह वाला पत्र प्राप्त न हुआ। उनके मतानुसार उस पत्र मे लगभग एक सौ शेर थे। चूंकि उस पत्र का अध्ययन उन्होने बड़े मनोयोग से किया था इसलिए उसके कुछ शेर उन्हे स्मरण हो गए थे। उसी आधार पर उन्हे लिपिबद्ध कर उन्होने सरदार उमरावसिंह शेरगिल (सुप्रसिद्ध चित्रकर्त्री अमृत शेरगिल के पिता) को भेजा था। सरदार जी ने इन्हे क्रमबद्ध कर १८ अप्रैल १९१९ को खालसा कालेज अमृतसर को भेजा और एक प्रति सुप्रसिद्ध पंजाबी साहित्यकार भाई वीरसिंह जी को भी दी गयी। भाई वीरसिंह ने इन शेरों को पंजाबी अनुवाद सहित 'उच्च दा पीर' शीर्षक से १६ जुलाई १९४२ को 'खालसा समाचार' मे प्रकाशित किया।

उस पत्र के प्राप्त शेरों का हिन्दी भावार्थ इस प्रकार है—

१. तलवार, कटार, तीर, फल और ढाल के स्वामी का नाम लेकर।

२ युद्ध मे कुशल योद्धाओ के स्वामी और हवा जैसे तेज घोड़ों के स्वामी का नाम लेकर।

३. उसका, जिसने तुझे बादशाहत दी और हमे धर्म-रक्षा का गौरव दिया।

४ तुझे दी दगा और फरेब से युक्त लूटमार की लड़ाई और मुझे सफाई और साफ-दिली का उपाय।

५. औरंगजेब नाम तेरे लिए शोभाजनक नहीं है। राज-सिंहासन को शोभायमान करने वालो के लिए दगा-फरेब ठीक नही।

६ तुम्हारी माला, मनके और धागा और कुछ नहीं क्योंकि तुम उन मनकों को दाना बनाते हो और धागे को जाल।

७ तुमने अपने पिता की मिट्टी निकृष्ट कर्मों द्वारा अपने भाई के लहू से गूंधी है।

८. और उससे अपने नश्वर राज्य के महल की नीव रखी है।

९. मैं अब अकाल पुरुष की कृपा से लोहे के पानी (तलवार की धार) की ऐसी वर्षा करूंगा।

१०. कि इस पवित्र भूमि पर उस अपवित्र चारदीवारी का (मुगल साम्राज्य का) नाम निशान न रहे।

११. दक्षिण (महाराष्ट्र) से तू प्यासा (असफल होकर) वापस आया है। मेवाड़ से भी कड़वा घूंट भर कर आया है।

१२. अब जब तेरी दृष्टि इधर मुड़ी है, तो तेरी वह तल्खी और प्यास मिट जाएगी।

१३. मैं इस प्रकार तुम्हारे पैरों के नीचे आग रखूंगा कि पंजाब में तुझे पानी नहीं पीने दूंगा।

१४. क्या हुआ जो गीदड़ ने धोखे से शेर के दो बच्चे मार दिये।

१५. जब कि खुँखार शेर अभी तक जीवित है। वह तुमसे बदला ले लेगा।

१६. मैं अब तेरे खुदा के नाम (पर ली हुई शपथ) का कोई विश्वास नहीं करूँगा। मैंने तेरे खुदा और खुदा के कलाम को देख लिया है।

१७. तेरी सौगन्धों का मुझे विश्वास नहीं है। मुझे तलवार पकड़ने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है।

१८. यदि तू बड़ा चालाक भेड़िया है तो मैं भी एक शेर को पिंजरे से तेरा सामना करने के लिए छोड़ूँगा।

१९. यदि फिर मुझसे तुम्हारी बातचीत हुई तो मैं तुम्हें उचित और सत्य-मार्ग दिखाऊँगा।

२०. मैदान में दो सेनाएँ पंक्तिबद्ध खड़ी हो जाएँ और शीघ्र ही आपस में परिचित हो जाएँ।

२१. दोनों के बीच सात मील का अन्तर रहे।

२२. इसके पश्चात् मैं उस युद्धभूमि में अकेला आऊँगा। तुम दो घुड़सवार साथ लेकर आना।

२३. तुमने लाड़-प्यार और सुख के फल खाए हैं। तू कभी योद्धाओं के सम्मुख नहीं आया।

२४. तू स्वयं तलवार और कटार लेकर युद्धक्षेत्र में आ। ईश्वर की सृष्टि को नष्ट न कर।

दूसरा पत्र—जफरनामा

सेनापति ने 'गुरु शोभा' में तथा अन्य सभी इतिहासकारों ने 'जफरनामा' का उल्लेख सर्वत्र किया है। यह पत्र 'दशम ग्रन्थ' में भी संगृहीत है। 'जफरनामा' शीर्षक से संगृहीत 'दशम ग्रन्थ' में जो भाग है, उसमें लगभग १४०० शेर हैं। इन शेरों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

१. पत्र भाग।

२. हिकायत भाग।

पत्र भाग में कुल १११ शेर हैं। शेष भाग ११ हिकायतों में बँटा हुआ है, जो 'चरित्रोपाख्यान' ढंग की चरित्र-कथाएँ मात्र हैं। सम्भव है ये हिकायतें मूल पत्र का भाग न हों। यह भी सम्भव है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने 'चरित्रोपाख्यान' ढंग की कुछ कथाएँ फारसी में भी लिखी हों जिन्हें बाद में मूल पत्र 'जफरनामा' के साथ जोड़ दिया हो। यहाँ हमारा सम्बन्ध मूल पत्र से ही है।

इस पत्र के शेर ५३ और ५४ से यह स्पष्ट है कि यह पत्र औरंगजेब द्वारा प्राप्त किसी पत्र के उत्तर में लिखा गया था। ५३वें शेर का भावार्थ है—

तुम्हारा कर्त्तव्य है कि काम को पूरा करो (और अपने) लिखे अनुसार विचार करो।

५४वें शेर मे लिखा है—

लिखा हुआ पत्र पहुच गया है। मौखिक भी कह दिया है। (तुम्हे) चाहिए कि उसे सुख से पूरा करो।

सिख-इतिहासो में इसका उल्लेख है कि औरगजेब ने गुरु गोबिन्दसिंह को प्रत्यक्ष भेंट करने के लिए बुलाया था। उस पत्र के उत्तर मे ही यह पत्र लिखा गया होगा।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह ने यह पत्र खिदराणा के युद्ध के पूर्व, जब वे दीना नामक स्थान पर थे, लिखा था। पत्र मे इस बात का सकेत है। ५८वें शेर में वे लिखते हैं—

'आप कागड़ गाँव मे तशरीफ लाइए। वहाँ भेंट हो जाएगी।'

दीना ग्राम कागड़ जमींदारी का ही एक गाँव था। यहाँ के निवासी अधिकाश बैराड़ जाति के थे, जो गुरु के अनन्य शिष्य थे। ५६वें शेर मे उन्होने इस ओर भी संकेत किया है—

इस मार्ग पर आपको कण मात्र भी भय नही (होना चाहिए, क्योकि) सम्पूर्ण बैराड़ जाति मेरी आज्ञा मे है।

इस पत्र के प्रारम्भिक १२ शेरो मे गुरु गोबिन्दसिंह ने निराकार सर्वव्यापी ईश्वर का गुणगान किया है। आगे के शेरो मे उन्होने औरगजेब और उसके सेनापतियो की सौगन्धों पर अविश्वास प्रगट किया है। उन्होने इस पत्र में चमकौर के उस युद्ध का भी सकेत किया है, जब क्षुधा-पीड़ित चालीस सैनिको पर असख्य मुगल सेना ने आक्रमण कर दिया था। २२वें शेर मे उन्होने अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त वाक्य कहा—

'जब नीति के सभी साधन असफल हो जाएँ तो तलवार का सहारा लेना सभी दृष्टियो से उचित है।'

आगे के अनेक शेरो मे उन्होने चमकौर युद्ध का वर्णन किया है, किस तरह मुगल सेनापतियों ने अपनी प्रतिज्ञाओं को भूलकर उन पर आक्रमण किया, किस तरह उन्होने (गुरु गोबिन्दसिंह ने) उस युद्ध मे नाहर खान को मौत के घाट उतार दिया और ख्वाजा महमूद ने किस प्रकार छिपकर अपनी जान बचाई, किस तरह उन्होने रात्रि के अंधेरे में चमकौर दुर्ग का त्याग किया।

४६वें शेर मे वे कहते हैं—

न तुम मे ईमानपरस्ती है, न कोई उचित ढग ही। तुमने न साहब को पहचाना है न तुम्हें मुहम्मद पर विश्वास है।

फिर वे औरगजेब को पजाब आने के लिए आमन्त्रित करते हैं। साथ ही यह भी लिखा है कि यदि मेरे पास हुक्म आ जाए तो मैं प्राण और तन से तुम्हारे पास आ जाऊँगा। उसे यह भी स्मरण कराते हैं कि उनके चार पुत्र मार डाले गये हैं, परन्तु उसकी उन्हे कोई चिन्ता नहीं क्योंकि कुण्डलदार साप (खालसा) अभी भी शेष है।

औरगजेब को सम्बोधित करते हुए उन्होने कहा—तुझ मे अनेक गुण हैं। पर उन अनेक गुणो के रहते हुए तुम धर्म (दीन) से बहुत दूर हो। अर्थात् तुम 'दीन' का अपने आपको पालक समझते हो परन्तु उसकी वास्तविकता से बहुत दूर हो।

---

१. सिख इतिहास बारे, डा० गंडासिंह, पृ० ३५।

१०५वें और १०६वें शेर में उन्होंने लिखा है कि यदि तुम्हारी दृष्टि अपनी सेना और धन की ओर है तो मेरी दृष्टि ईश्वर की कृपा पर है। यदि तुम्हें अपने राज्य और धन का अहंकार है तो मुझे ईश्वर का सहारा है।

अन्त के दो शेरों में वे ईश्वर पर अपनी पूर्ण आस्था प्रगट करते हुए कहते हैं कि यदि वह सहायक हो तो सैकड़ों शत्रु भी कुछ नहीं कर सकते। यदि कोई शत्रुता निभाने के लिए हजारों व्यक्ति अपने साथ ले आए तो उसका बाल भी बांका नहीं किया जा सकता।

इस पत्र को गुरु गोविन्दसिंह ने भाई दयासिंह द्वारा औरंगजेब के पास भिजवाया जो उस समय अहमदनगर में था। कुछ समय की प्रतीक्षा के पश्चात् भाई दयासिंह यह पत्र औरंगजेब के पास पहुंचाने में सफल हो गए। उस समय के ऐतिहासिक सूत्रों से ज्ञात होता है कि औरंगजेब ने तत्काल यह आज्ञा प्रसारित करा दी कि गुरु गोविन्दसिंह को कोई कष्ट न दिया जाए और सम्मान सहित बादशाह के पास लाया जाए।

बादशाह के खास मुंशी मिर्जा इनायततुल्ला खान 'इमसी' द्वारा संपादित 'अहिकामि आलमगीरी' (हस्तलिखित) की एक प्रति रामपुर के पुस्तकालय में सुरक्षित है। उसके सातवें-आठवें पृष्ठ पर शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम (बहादुरशाह) सूबेदार पंजाब, मुलतान और काबुल के दीवान और नायक सूबेदार लाहौर, मुनइम खान के लिए बादशाह का फारसी में जो हसबुल-हुक्म दर्ज है, उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"इस समय बादशाह की ओर से वजीर साहब को लिखने की आज्ञा हुई है कि नानकपूजों के सरदार गोविन्द की ओर से वकील के द्वारा बादशाह के दरबार में हाजिर होने का इरादा और शाही फरमान प्राप्त करने की इच्छा के विषय में अर्जदास्त पहुँची थी। बादशाह ने आज्ञा प्रसारित कर उन्हें सम्मान दिया है। गुरजबरदार और मुहम्मद यार मनसबदार, जो फरमान लेकर आ रहे हैं, को यह हुक्म आप तक पहुँचाने की आज्ञा दी गई है। आपको चाहिये कि उनको दिलासा और तसल्ली देकर अपने पास बुलाओ और फरमान पहुँचने के पश्चात् एक विश्वासी व्यक्ति जो मिलनसार और चतुर हो, गुरजबरदार और मनसबदार के साथ देकर उन्हें बादशाह के हुजूर में पहुँचाओ। इस सम्बन्ध में बादशाह की ओर से अत्यन्त ताकीद समझना॥"

सेनापति ने 'गुरु शोभा' में भी इस बात की पुष्टि की है—

गुरजदार फुरमान लै दयासिंह के संगि॥
बिदा किये ताही समे बादशाह औरंग॥

(पृ० ७८)

दक्षिण की ओर

भाई दयासिंह अहमदनगर में औरंगजेब को पत्र दे सकने में सफल हुए या नहीं, इस बात का पता गुरु गोविन्दसिंह को बहुत समय तक नहीं लगा और वे पंजाब से दक्षिण की ओर चल दिए। गुरु गोविन्दसिंह किस उद्देश्य से दक्षिण की ओर चले, इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद है, परन्तु अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि वे औरंगजेब

से मिलने के लिए ही दक्षिण की ओर जाने को उद्यत हुए थे।[1] सेनापति ने भी इस बात का उल्लेख किया है—

> बहुत दिवस बीतिउ तहा प्रगट करो बीचार।
> दया सिंघ इत तें चलिउ उत तें सिरजनहार॥
> दया सिंघ दच्छन दिशा लागी बहुत मचार।
> सिखन को साहिब कहिउ सबै होहु तइयार॥[2]

गुरु गोबिन्दसिंह ने अक्टूबर सन् १७०६ में दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने मारवाड़ के मार्ग से दक्षिण जाने का निर्णय किया था।[3] इस निर्णय के अनुसार वे राजस्थान की ओर चल पड़े। राजस्थान में अनेक राजपूत राजाओं ने उनका स्वागत किया।[4] जब वे बघौर नामक स्थान पर पहुँचे तो भाई दयासिंह दक्षिण की ओर से वापिस आते हुए उन्हें यहीं मिले और उन्होंने उन्हें सभी समाचारों से अवगत कराया। बादशाह के गुरजबरदार और मनसबदार शाही फरमान मुनइम खान को पहुँचाने के लिए सीधे दिल्ली चले गये। यहीं उन्हें औरंगजेब की, अहमदनगर में, मृत्यु (२० फरवरी सन् १७०७ ई०) का समाचार मिला।

औरंगजेब की मृत्यु ने परिस्थिति में एक बड़ा परिवर्तन कर दिया। अब दक्षिण की ओर जाने का कोई विशेष अर्थ नहीं था, इसलिए वे दिल्ली की ओर चल दिए। गुरु गोबिन्दसिंह की दोनों पत्नियाँ उस समय दिल्ली में ही थीं।

औरंगजेब की मृत्यु होते ही मुगल शाहजादों में सिंहासन के लिए परम्परागत युद्ध छिड़ गया। औरंगजेब के दूसरे पुत्र आजम ने जो उस समय दक्षिण में था झटपट अपने को बादशाह घोषित कर दिया और सेना सहित उत्तर की ओर चल पड़ा। औरंगजेब का

---

१. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिक्स, पृ० ७६।
बन्दासिंह बहादुर, पृ० १४ से २१।
जीवन कथा गुरु गोबिन्दसिंह, पृ० ३८१।

२. गुरु शोभा, पृ० ८१।

३. मारवार के राह दिस दच्छिन को कूच है।
सबै होहु तैयार प्रभु इम कही सुनाइकै॥ गुरु शोभा, पृ० ८१।

४. करत कूच आए तहां रजपूतन के देस।
आन आन राजा मिले जोधा बड़े नरेस॥ गुरु शोभा, पृ० ८३।

५. औरंग साह गउन करि गयो।
जगतै बिदा भाति इह भयो।
छोड़ि गयो सभ मुलक खजाना।
काल ग्रसिउ बल कछू न बसाना॥२४॥

गुरु शोभा, पृ० ८४।

ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम उत्तर में था। उसने आजम से निपटने के लिये युद्ध की तैयारी की और गुरु गोबिन्दसिंह को सहायता के लिये एक पत्र लिखा।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह और मुअज्जम का परिचय इस घटना से लगभग दस वर्ष पूर्व हो चुका था। पीछे इस बात का उल्लेख हुआ है कि जब मुअज्जम पहाड़ी राजाओं के विद्रोह को दबाने के लिए पंजाब आया था, उस समय उसके व्यक्तिगत सचिव भाई नन्दलाल द्वारा उसे गुरु का विशेष परिचय प्राप्त हुआ था। संभव है इस समय भी भाई नन्दलाल ने ही उसे गुरु से सहायता प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया हो।

इस सहायता-याचना का सैनिक दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं था। गुरु गोबिन्दसिंह के साथ उस समय कोई विशेष सैनिक शक्ति भी नहीं थी। खाफी खान की 'मुंतखिब-उल-लुबाब' के अनुसार उनके साथ केवल दो-तीन सौ भालाधारी सवार थे। परन्तु इस सहायता का एक अन्य दृष्टि से शाहजादे के लिये काफी महत्व था। मुगल शासक बहुधा अपनी कठिनाइयों के अवसर पर संतों-फकीरों का आशीर्वाद प्राप्त करने का प्रयास किया करते थे। संभव है इस सहायता की माँग उसी दृष्टि से की गयी हो।

'गुरु शोभा' में इस बात का उल्लेख तो है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने मुअज्जम को उसकी विजय का दिलासा दिया।[2] परन्तु उसकी सैनिक सहायता भी की, इस बात का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु भाई संतोखसिंह ने अपने 'गुरु प्रताप सूरज' (पृष्ठ ६१५-१६) और मैकालिफ ने 'सिख रिलीजन' (भाग ५, पृष्ठ २३०) पर लिखा है कि गुरु ने भाई धर्मसिंह के नेतृत्व में सैनिकों की एक टुकड़ी मुअज्जम की सहायता के लिए भेजी थी।

दोनों भाइयों का युद्ध आगरे के निकट जाजऊ नामक स्थान पर १८ जून १७०७ को हुआ जिसमें आजम शाह पराजित हुआ और मारा गया और मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के मुगल सिंहासन पर बैठा।

दिल्ली में गुरु गोबिन्दसिंह कुछ समय तक रहे। दिल्ली के सिखों ने उनका बहुत सम्मान किया। जमुना के किनारे उन्होंने अपना डेरा डाला और सहस्रों की संख्या में लोग एकत्र होकर उनका उपदेश सुनने लगे।[3]

---

१. जबते नउरंग साह सिधाना। आजम राज आपनो जाना ॥
छत्र आपने सीस झुलायो। डंका देत हिंद को धायो ॥६॥६८०॥
ताकी खबर साहि सुनि पाई। कूच किउ कछु बिलम न लाई ॥
दिल्ली निकटि आप जब आयो ॥ लिखा किउ प्रभु पास पठायो ॥७॥६८१॥
करि जोरे ऐसे कहिउ निमख बिलम नहीं लाइ ॥
इह सुलतानी जंग में तुम प्रभु होहु सहाइ ॥८॥६८२॥

२. तेई बात प्रभु ने सुनि पाई। लिखिउ दिलासा ताहि पठाई ॥
शंका नैक जीव नहीं आनी ॥ निह्चे राज आपनां जानी ॥९॥६८३॥ पृ० ९० ।

३. साहजहाना बादि प्रभू जब आइकै।
कौतकि करे अपार प्रभू बिगसाइ कै।
जमुना केतक पार जहां डेरा कियो।
कीन्हों सिरिट उधार दरस ऐसे दियो ॥८॥७००॥ गुरु शोभा, पृ० ९२।

कुछ समय के पश्चात् उन्होंने आगरे की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मथुरा, वृन्दावन की यात्रा करते हुए वे आगरा के निकट आ गये और बादशाह के निवास स्थान से लगभग दो कोस के अन्तर पर उन्होंने अपना डेरा दिया।

बहादुरशाह से भेंट

कुछ समय पश्चात् बहादुरशाह ने उन्हें भेंट करने के लिये बुलाया। २ अगस्त सन् १७०७ को उनकी भेंट बहादुरशाह से हुई।[१] गुरु गोबिन्दसिंह उस समय सैनिक वेष में पूर्ण रूप से सज्जित थे।[२] बहादुरशाह ने उनका स्वागत किया और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखकर मुग्ध हो गया।[३] जाजऊ युद्ध की उस सहायता के लिए उसने धन्यवाद दिया और उन्हें एक मूल्यवान खिलअत, एक धुगधुगी और एक कलगी भेंट की।[४]

गुरु गोबिन्दसिंह आगरे में ही अपना डेरा लगाए रहे। दूर-दूर से श्रद्धालु वहाँ आने लगे। इस बीच बादशाह से किन्हीं महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी चर्चा भी होती रही। इन्हीं दिनों का उनका लिखा हुआ एक पत्र प्राप्त हुआ है जो उन्होंने १ कार्तिक, सम्वत् १७६४ विक्रमी (२ अक्तूबर, सन् १७०७ ई०) को आगरे से धउन की सगत के नाम लिखा। गुरुमुखी लिपि में लिखा पत्र अपनी मूल भाषा में इस प्रकार है :

१ सतिगुरु जी

सब्रति संगति धउल की तुसी मेरा खालसा हो गुरु रखेगा। गुरु-गुरु जपणा जनमु सँवरेगा। सब सुख नाल पातशाह पासि आए सिरोपाउ अरु सठि हजार की धुखधुखी जजड़ाऊ इनामु हुई। होर भी कम्म गुरु का सदका सभ होते हैं असी भी थोड़े ही दिनां नो आवते हाँ सब्रति सगत खालसे को मेरा हुकम है आपस मो मेलु करणा जदि असी कहलूर आवते तदि सब्रति खालसे हथीयार बंनि के हजूरि आवणा जो आवेगा सो निहाल हवेगा २) दोइ तोले सोना तिसके रुपये ४०) असा जमाता नो म दीदामाही बखसे हैन तुस हुकम वेखदिआँ हुंडी कराइ भेजणी मेवड़े नो तुरत भेजणा जे मेवड़ा ढिल करे ता संगति विचो कढि देणा पैसे हुंडी हराइ भेजणे संवत १७६४ मिती कातको १ मा०।

इस पत्र से ये बातें स्पष्ट होती हैं—

१. बादशाह से उनकी भेंट और उसके द्वारा उन्हें सिरोपाव दिया जाना।
२. होरभी कम्म (और भी काम) की ओर संकेत।
३. पंजाब वापस जाने का विचार।
४. कहिलूर पहुंचने पर हथियारबन्द खालसे की आवश्यकता।

---

१. डा० गंडासिंह, सिख इतिहास बारे, पृ० ४५।
२. चढ़ी कमान सस्त्र सब सारे। कलगी छबि है अपर अपारे।
लटकत चलत तरा चलि आए। साह पास बैठे इम जाइ ॥३२॥७२४॥

गुरु शोभा, पृ० ६४।

३. साह आप तिह ओर निहारा। दरसन देखि भयो मतवारा॥
तन मन धन ते अधिक बिकाना। कवल देखि ज्यों भवर लुभाना ॥३३॥७२५॥

गुरु शोभा, पृ० ६४।

४. इरविन—लेटर मुगल्स भाग १, पृ० ६६; गुरु शोभा, पृ० ६५।

आगरे मे रहकर गुरु कुछ और भी महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे, यह इस पत्र से स्पष्ट है। वे 'ओर काम' क्या थे इस सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता, परन्तु इन कामों का बादशाह से कुछ न कुछ सम्बन्ध था, इस बात का अनुमान किया जा सकता है।

१२ नवम्बर सन् १७०७ ई० को बहादुर शाह राजपूतों का विद्रोह दबाने के लिये चल दिया। गुरु गोबिन्दसिंह से उसकी बातचीत हो ही रही थी इसलिये वे भी अपने सैनिकों सहित उसके साथ हो लिए। राजस्थान मे ही बहादुर शाह को समाचार मिला कि दक्षिण मे उसके छोटे भाई कामबख्श ने विद्रोह कर दिया है, इसलिए वह वहाँ से दक्षिण की ओर चल पड़ा।

शाही सेना के साथ-साथ गुरु का दक्षिण की ओर जाने का उल्लेख सभी इतिहास-कारों ने किया है परन्तु कुछेक ने इससे यह निष्कर्ष निकाल लिया कि गुरु को बादशाह की ओर से कोई मनसब दे दिया गया था और वे इस प्रकार शाही सेना का अंग बनकर बहादुर शाह के साथ गये। कुछेक मुसलमान इतिहासकारो के आधार पर फारस्टर और एलफिन्स्टन आदि यूरोपीय इतिहासकारों ने इस प्रकार का निष्कर्ष निकाला है। इसी आधार पर डॉ० नगेन्द्र ने अपनी 'रीतिकाव्य की भूमिका' (पृष्ठ ३-४) पर लिखा है—

"पंजाब मे सिखो का असन्तोष बढ़ रहा था। गुरु तेगबहादुर की हत्या और गुरु गोबिन्दसिंह के बच्चों पर किये गये पाशविक अत्याचार ने उन्हे तिलमिला दिया था और सिख धर्म के नीचे एक साम्यवादी सैनिक जाति का निर्माण और विकास हो रहा था। परन्तु स्वतन्त्र शक्ति अभी इनमे भी नहीं आई थी। स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह ने मुगलो का मनसब स्वीकार कर लिया था।"

ऐतिहासिक दृष्टि से इस कथन मे तनिक भी सच्चाई नहीं है। गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन और साहित्य से जिसका तनिक भी परिचय है, उसे यह बात बड़ी हास्यास्पद लगेगी। तत्कालीन किसी भी ऐतिहासिक सूत्र से इस बात की पुष्टि नहीं होती। बहादुरशाह द्वारा गुरु गोबिन्दसिंह को दी गई 'खिलअत' से ही कुछ लोगो ने इस बात का अनुमान लगा लिया है। इस दृष्टि से हम देखते हैं, जैसा कि 'गुरु शोभा'[1] मे लिखा हुआ है कि गुरु साहिब ने बादशाह की पेश की हुई खिलअत दरबार के प्रचलित रिवाज के अनुसार उसकी उपस्थिति मे पहनने के स्थान पर एक सिख के द्वारा अपने कैम्प को भेज दी। यह सुविधा केवल धार्मिक महत्ता वाले महापुरुषों को दी जाती है, किसी शाही अफसर या नौकर को नहीं।[2]

बहादुर शाह ने राजस्थान मे जितनी लडाइयाँ लड़ीं या उसके पश्चात् भी जो युद्ध किये, इस प्रकार का कहीं कोई संकेत नही मिलता कि गुरु गोबिन्दसिंह ने उनमे से किसी में भाग लिया। डा० बनर्जी के शब्दो मे—"परन्तु इस सम्पूर्ण काल मे हमे कहीं भी ऐसा उल्लेख नही मिलता कि बादशाह द्वारा की गयी किसी सैनिक कार्यवाही मे गुरु ने भाग

१. ताहि समै प्रभु ने फुरमायो। अदरि साहि पै सिख बुलायो॥
बस्त्र ताहि पास उठवाए। विदा भए प्रभु डेरे आए॥२६॥७२८॥

गुरु शोभा, पृ० ६५।

२. डॉ० गंडा सिंह, सिख इतिहास बारे, पृ० ५०।

लिया। और यह अधिक सभव दिखता है कि वे मात्र एक साथी की तरह (बादशाह के साथ) यात्रा कर रहे थे, बजाए इसके जैसा कि कुछ लेखक कहते हैं, कि उन्हे सेना मे मनसब दे दिया गया था।[1]

'गुरु शोभा' मे लिखा है कि गुरु जब भी चाहते थे शाही सेना से अलग होकर अपना प्रचार कार्य करने लगते थे और जब चाहते थे फिर शाही सेना के साथ आ जाते थे। ऐसे अवसर भी आए जब शाही सेना बहुत आगे चली गयी और गुरु गोबिन्दसिंह किसी स्थान पर अधिक दिन टिके रहे। ऐसे अवसरो पर बहादुर शाह ने उन्हे 'दर्शन' के लिए बुला भेजा।[2]

इस बात की पुष्टि अन्य ऐतिहासिक सूत्रो से भी होती है। तवारीख बहादुरशाही में लिखा है[3]— गुरु गोबिन्दसिंह जो गुरु नानक के जानशीन थे इन जिलों में यात्रा करने के लिए शाही कैम्प के साथ आए हुए थे। उनका यह कायदा था कि वे सासारिक, धार्मिक और हर प्रकार के लोगों की सभाओ मे प्रचार करते रहते थे।

एक शाही मनसबदार को, जो एक भड़क रहे विद्रोह को दबाने के लिए जा रही सेना के साथ जा रहा हो, क्या इस प्रकार धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता दी जा सकती है ?

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० गंडा सिंह ने 'बहादुरशाहनामा' से एक और उदाहरण देकर इस भ्रम का बड़े अकाट्य ढग से निवारण किया है[4]—गुरु साहिब के स्वर्गवासी होने के एक मास पश्चात ५ रमजान ११२०हिजरी (७ नवम्बर १७०८ ई०) को बादशाह बहादुरशाह के पास एक रिपोर्ट, गुरु गोबिन्द—नानक की मनकूला जायदाद के प्रबन्ध के विषय में आज्ञा के लिए प्रस्तुत की गई। जायदाद बहुत मूल्यवान थी और रिवाज के अनुसार, जो शाही अफसरों और नौकरो के लिये व्यवहार मे लाया जाता था, यह जब्त हो जानी चाहिए थी। बादशाह ने यह कहा कि उसे एक दरवेश की चीजो की आवश्यकता नही, आज्ञा दी कि सब कुछ गुरु साहिब के उत्तराधिकारियो को वापस कर दी जाय।[5] यहाँ बहादुर शाह उन्हें एक दरवेश (सत) के नाम से स्मरण करता है न कि मनसबदार के रूप मे।

नान्देड में

शाही सेना जून १७०८ ई० में ताप्ती पार करके बुरहानपुर पहुँची। अगस्त १७०८ में बाणगंगा को पार कर सितम्बर के आरंभ में यह सेना गोदावरी के किनारे बसे स्थान नान्देड मे पहुँच गई। शाही सेना यहाँ से हैदराबाद की ओर कामबख्श का विद्रोह दमन करने के लिए चली गयी। गुरु गोबिन्दसिंह अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ वही टिके रहे।

---

१. एवोल्यूशन ऑफ खालसा, पृष्ठ १४६।

२. किते दिवस बीते चला साह आगे।
   प्रभु कउ किते दिवस तिह ठउर लागे।
   लिखा साह फरमान नहि ढील कीजे।
   हमे आनके आपना दरस दीजे।१।७७०। गुरु शोभा, पृष्ठ १००।

३. हेनरी इलियट, हिस्ट्री आफ इंडिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन, भाग ७, पृ० ५६६।

४. सिख इतिहास बारे, पृष्ठ ५०-५१।

५. बहादुरशाहनामा, ५ रमजान ११२० हिजरी; इरविन—लेटर मुगल्स, भाग १, पृ० ९०।

नान्देड में गुरु गोबिन्दसिंह की भेंट माधोदास नामक एक वैरागी से हुई। दक्षिण जाते समय उज्जैन में गुरु गोबिन्दसिंह की भेंट दाऊदपंथी गुरु नारायण दास से हुई थी। वह रामेश्वर से लौट रहे थे। गुरु गोबिन्दसिंह ने उनसे पूछा—'उधर क्या देखा?' नारायणदास ने कहा कि और तो सब मिट्टी-पत्थर थे किन्तु नादेर मे एक वैरागी महन्त है जो अद्वितीय है। जिन्न और भूत इसके नौकर हैं, वे इसके वश में हैं। बस यही पुरुष देखने योग्य है।''[1]

गुरु गोबिन्दसिंह उससे भेंट करने के लिए उसके डेरे पर गये। माधोदास उस समय डेरे पर नहीं था। गुरु उसकी गद्दी पर बैठकर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। उसके शिष्यों ने दौड़कर माधोदास को इनके आने का संदेश दिया। कहते हैं, माधोदास ने गुरु गोबिन्दसिंह को अपनी गद्दी से गिराने के लिए बहुत से जादू-टोने किये परन्तु उसे तनिक भी सफलता न मिली।

गुरु गोबिन्दसिंह ने उसे कर्म का संदेश दिया। उसके सम्मुख उन्होंने मातृभूमि की अवस्था का चित्रण किया। माधोदास के अन्दर छिपी अनन्त शक्तियों की पहचान वे कर चुके थे। उनके हृदयग्राही वक्तृत्व तथा उनके धार्मिक उत्साह ने माधोदास के हृदय पर ऐसा प्रभाव डाला कि वह गुरु का शिष्य हो गया, अपने आपको गुरु का 'बन्दा' अथवा गुलाम कहने लगा और उसने अपना जीवन सर्वथा गुरु के चरणों में सौंप दिया।[1] तभी से उसका नाम 'बन्दा' पड गया।[3] गुरु गोबिन्दसिंह ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया और अपने द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य को आगे बढ़ाने के लिए पंजाब की ओर भेजा।[2]

देहावसान

नान्देड पहुँचने के लगभग एक मास के अन्दर ही ७ अक्टूबर सन् १७०८ को प्रातः काल गुरु गोबिन्दसिंह का देहान्त हो गया[4]।

'गुरु शोभा' में लिखा है कि 'एक पठान कुछ दाव लेकर प्रभु (गुरु गोबिन्दसिंह) के पास आया और दो-तीन घड़ी वहां बैठा पर उसका दाव नहीं लगा क्योंकि वहां बहुत लोग उपस्थित थे। उस दिन वह चला गया और दूसरे दिन फिर आया। उस दिन भी वह दो-तीन घड़ी बैठकर घात लगाता रहा परन्तु उस दिन भी उसे सफलता नहीं मिली और

---

१. भाई परमानन्द, वीर वैरागी, पृष्ठ ५०।

२. डा० नारंग, ट्रान्सफारमेशन ऑफ सिक्खिज्म, पृष्ठ १६४।

३. 'बंदा सन् १६७० ई० में राजोरी नामक एक ग्राम में उत्पन्न हुआ था। बन्दा का पहिला नाम लक्ष्मण देव था। उसके पिता का नाम राम देव था और वह डोगरा जाति का राजपूत था। लक्ष्मण देव को बचपन में मृगया से बड़ा प्रेम था। एक दिन उसने एक हिरनी मारी परन्तु जब उसे काटा तो उसके पेट में दो बच्चे जीते हुए निकले और उसके देखते ही देखते थोड़ी देर में मर गये। लक्ष्मण देव को यह दृश्य देखकर बड़ी दया आई। उसने न केवल शिकार खेलना ही छोड़ दिया वरन् संसार से ही वैराग्य धारण कर लिया। इस वैरागी रूप में उसका नाम माधोदास रखा गया।

४. बड़े आश्चर्य की बात है कि सेनापति ने 'गुरु शोभा' में गुरु गोविन्दसिंह की वैरागी माधोदास से भेंट का कोई उल्लेख नहीं किया है, जबकि उसने गुरु के जीवन की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन किया है और ऐतिहासिक दृष्टि से उनका बड़ा मूल्य है। सेनापति गुरु गोबिन्दसिंह का समकालीन था। सम्भव है उसने उस समय उस भेंट को विशेष महत्त्वपूर्ण न समझ कर उल्लेख की कोई आवश्यकता न समझी हो।

५. तेजा सिंह गंडा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिक्खस, पृष्ठ ७८।

वह घर चला गया। इस प्रकार वह कई दिन आता रहा परन्तु उसका दाव न लगा। परन्तु अनेक बार आने के कारण उसने इस भेद का पता लगा लिया कि उसके काम का समय सध्या का ही है। वह दुष्ट एक दिन शाम के समय आया। साहिब (गुरु गोबिन्दसिंह) ने उसे निकट बुलाया और अपने पास बैठाकर प्रसाद दिया। जिसे उस दुष्ट ने हाथ में लेकर मुह मे डाल लिया। उस समय वहा कोई सिंह (सिख) नही था। केवल एक रक्षक था, वह भी ऊंघ गया था। इतने मे प्रभु स्वय विश्राम करने लगे। अवसर देखकर उस दुष्ट पठान ने उन पर छुरे से आक्रमण कर दिया। उसने उन पर दो वार किये कि गुरु गोबिन्दसिंह ने निकट रखी अपनी तलवार के एक ही वार से उस दुष्ट को वहीं मार गिराया। फिर उन्होने आवाज देकर शिष्यों को बुलाया। झटपट बहुत से लोग वहाँ आ गये और उसके दो साथियो को, जो डेरे के बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे, पकड़कर मार डाला गया। डेरे के अन्दर पड़े तीसरे पठान के शव को देखकर सिख उस पर तलवार चलाने ही वाले थे कि गुरु ने कहा कि यह तो कभी का मर चुका, इसे यहां से हटाओ। अभी तक किसी को यह नहीं पता लगा था कि गुरु स्वय जख्मी हो गये हैं, परन्तु जब वे उठे और लड़खड़ाए तब उन्हें इस दुखद घटना का पता लगा और वे दु.ख मे डूब गये। गुरु ने सबको सान्त्वना दी कि डर की कोई बात नहीं है, अकाल ने उनकी रक्षा की है। उसी समय घाव धोकर सी दिये गये। परन्तु जब उन्होंने उठने का प्रयास किया तो धागे टूट गये। घाव फिर सी दिये गये और उन पर मलहम लगा दी गयी। तीन चार दिन व्यतीत हुए। बहुत से सिख उनके दर्शन के लिए आ रहे थे। उनकी प्रार्थना पर गुरु दरबार मे आए। फिर कुछ दिन व्यतीत हुए। सिखों में आनन्द छा गया परन्तु वे समझ गये थे कि उनका अन्त समय निकट आ गया है। एक रात्रि को थोड़ा भोजन करके वे लेट रहे। आधी रात से चार घड़ी समय अधिक व्यतीत हुआ कि उन्होंने सब सिखों को बुलाया। सभी सिख उनके निकट एकत्र हो गये और गुरु गोबिन्द-सिंह जी ने उनसे अन्तिम बार 'वाहे गुरु जी की फतेह' कही और उनकी आत्मा ने अपनी नश्वर देह को छोड़ दिया।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह जी के देहावसान के सम्बन्ध मे इतिहासकारों ने अनेक भ्रम फैलाए हैं परन्तु आज 'गुरु शोभा' मे दिया हुआ उक्त वृत्तान्त ही सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। गुरु की हत्या करने मे उन पठानों का क्या उद्देश्य था इस सम्बन्ध मे अनेक कथाएँ प्रचलित हैं परन्तु यह मत आज दृढ़ता से माना जा रहा है कि इस हत्या के पीछे सरहिंद के सूबेदार वजीर खान का हाथ था। गुरु की बहादुर शाह से बढ़ती मैत्री से वह बहुत सशक हो गया था। उसे भय था कि यह मैत्री उसके लिए घातक हो सकती है, इसलिए उसने इन पठानों को यह दुष्कृत्य करने के लिए भेजा[2]।

देहावसान के समय गुरु गोबिन्दसिंह जी की आयु लगभग ४२ वर्ष की थी।

---

१. गुरु शोभा, पृष्ठ १०१ से १०४।
२. देखिए, तेजासिंह गंडासिंह—ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिख्स; गंडासिंह, सिख इतिहास बारे; करतार सिंह-जीवन कथा गुरु गोबिन्दसिंह, डा० बनर्जी—एवोल्यूशन आफ खालसा।

गुरु गोबिन्दसिंह की हिन्दी रचनाएं और उनकी प्रामाणिकता

गुरमुखी लिपि में मुद्रित गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं के संग्रह, जिसे सामान्यतः 'दशम ग्रंथ' कहा जाता है, में निम्नलिखित रचनाएँ संगृहीत हैं—

१. जापु, २. अकालस्तुति, ३. विचित्र नाटक (आत्मकथा), ४. चण्डी चरित्र (प्रथम), ५. चण्डी चरित्र (द्वितीय), ६. वार भगउतीजी की (चण्डी दी वार), ७. ज्ञान प्रबोध, ८. चौबीस अवतार, ९. महदी मीर, १०. ब्रह्मावतार, ११. रुद्रावतार, १२. स्फुट सवैये, १३. शस्त्र नाम माला, १४. चरित्रोपाख्यान, १५. ज़फरनामा तथा १६. हिकायतें।

ये सभी रचनाएं बड़े आकार के १४२८ पृष्ठों में मुद्रित हैं। इनमें क्रमांक ६ की रचना (चण्डी दी वार) पंजाबी भाषा में है और क्रमांक १५ और १६ (ज़फरनामा और हिकायतें) फारसी भाषा में हैं। इस अध्ययन के लिए गुरु गोविन्दसिंह की केवल हिन्दी रचनाओं को ही चुना गया है। दशम ग्रंथ का अधिकांश भाग उनकी हिन्दी रचनाओं से ही भरा है। पंजाबी और फारसी की रचनाएं केवल ५० पृष्ठों के स्वल्प भाग में ही सीमित हैं।

दशम ग्रंथ में संगृहीत रचनाओं के सम्बन्ध में सिख-जगत में गत कुछ दशाब्दियों से पर्याप्त मतभेद चला आ रहा है। पंजाब में 'सिंह सभा' आन्दोलन और अकाली आन्दोलनों के रूप में *सिख-पुनर्जागरण (उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में)* का जो प्रयास हुआ उससे दशम ग्रंथ की मान्यता सिखों के बुद्धिजीवी और प्रचारक वर्ग में केवल घटी ही नहीं वरन् उसके कर्तृत्व के सम्बन्ध में अनेक मतभेद भी उठ खड़े हुए। इसके पूर्व 'दशम ग्रन्थ' की भी सिख-जगत में लगभग उतनी ही मान्यता और स्वीकृति थी जितनी गुरु ग्रंथ साहब (आदि ग्रंथ) की। लगभग सभी गुरुद्वारों में गुरु ग्रंथ साहब के साथ ही दशम ग्रन्थ को भी प्रस्थापित किया जाता था और बड़ी श्रद्धा से उसका पठन-पाठन होता था। प्रचारक या कथा-वाचक बनने के लिए इस ग्रंथ का अध्ययन नितान्त आवश्यक माना जाता था। किन्तु गत ४०-५० वर्षों से इसका प्रचार सिख-जगत में कम होता गया और स्थिति यह आ गयी कि कुछ इने-गिने पुस्तकालयों और विद्वानों के अतिरिक्त इस ग्रंथ के दर्शन दुर्लभ हो गये।

सिखों मे दशम ग्रंथ का प्रचार घट जाने के कई कारण हुए। 'सिख पुनर्जागरण' आन्दोलन में सिख-धर्म के मौलिक आधारों एवं धार्मिक विश्वासों पर नये सिरे से विचार प्रारम्भ हुआ, और ऐसी अनेक बातें, जो हिन्दू-धर्म की पौराणिक कल्पना के रूप में सिख-मत के साथ लगी हुई थीं, उनका परिष्कार या बहिष्कार किया जाने लगा। इसी समय गुरु ग्रंथ साहब की वाणियों के आधार पर, जिसे स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह ने सिख-मत में सर्वोच्च स्थान 'गुरु' की मान्यता दी थी, सिख-मत की एक स्वतन्त्र धर्म के रूप में प्रतिष्ठा की जाने लगी और पौराणिक हिन्दू धर्म, जिसमें अवतारवाद, मूर्ति पूजा और वर्णाश्रम व्यवस्था प्रमुख हैं, से उसकी पृथकता सिद्ध की जाने लगी।

दशम ग्रंथ मे चण्डी के चरित्र का बड़ा कवित्वपूर्ण वर्णन है, विष्णु, ब्रह्मा और शिव के अवतारों की विस्तृत चर्चा है और ऐसी अनेक बातें हैं जो प्रगटतः सिख मत के विरुद्ध ज्ञात होती हैं। धीरे-धीरे यह प्रचार किया जाने लगा कि दशम ग्रंथ में सग्रहीत कुछ रचनाएं, जो परम्परा से गुरु गोबिन्दसिंह के नाम के साथ सम्बद्ध हैं, (जपु, अकाल स्तुति, विचित्र नाटक और सवैये), दशम गुरु की स्वरचित हैं, शेष उनके दरबारी कवियों की रचनाएं हैं।

उपर्युक्त मत सिख जनता में काफी समय तक प्रभावशाली रहा और दशम ग्रंथ की पूरी तरह उपेक्षा होती रही। दशम ग्रंथ की अधिकांश सामग्री हिन्दी साहित्य की सम्पत्ति है किन्तु हिन्दी आलोचकों एवं अनुसन्धानकर्त्ताओं का ध्यान इस सामग्री की ओर बहुत कम आकर्षित हुआ और परिणामस्वरूप इस विशाल साहित्य को साहित्य-क्षेत्र में अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त नहीं हुआ।

दशम ग्रंथ की कुछ रचनाओं (चौबीस अवतार और चरित्रोपाख्यान में) 'श्याम', 'राम' और 'काल' कवि नाम प्राप्त होते हैं। इस तथ्य ने भी इस सन्देह को पुष्ट होने में सहायता दी कि दशम ग्रन्थ की रचनाएं अनेक कवियों द्वारा रचित हैं।

इसी प्रचलित मत के आधार पर सिख इतिहास के कुछ प्रमुख इतिहासकारों ने भी यह मत बना लिया कि दशम ग्रंथ में गुरु गोबिन्दसिंह के अतिरिक्त उनके दरबारी कवियों की रचनाएं भी सग्रहीत हैं।

कनिंघम ने लिखा है[1]—

(दशम ग्रंथ के) पांच अध्याय और छठे अध्याय का प्रारम्भ ही (गुरु) गोबिन्द द्वारा रचित है, शेष, जो कि बहुत बड़ा भाग है, कहते हैं कि उनके द्वारा आश्रय प्रदत्त चार कवियों द्वारा रचित है, जो सम्भवतः उनके निर्देशानुसार था। दो लेखकों, श्याम और राम, का नाम आता है, परन्तु सत्य यह है कि सन्देह युक्त भाग के कर्तृत्व के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात है।

डा० गोकुलचन्द नारंग ने लिखा है—'यह पुस्तक (दशम ग्रंथ) विविध विषयों का एक सग्रह है और इसका केवल एक भाग स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह का लिखा हुआ है। शेष अनेक हिन्दी कवियों का लिखा हुआ है, जिनको गुरु ने अपने यहाँ नौकर रखा हुआ था।

---

१. हिस्ट्री आफ सिक्स, पृ० ३५६।

२. ट्रान्सफारमेशन आफ सिखिज्म, पृष्ठ ३४२।

इसी प्रकार डा० इन्दुभूषण बनर्जी ने भी लिखा है—[1]

यह प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देना चाहिए कि विशाल संग्रह जिसे 'दशम पादशाह का ग्रंथ' कहकर पुकारा जाता है, सम्पूर्ण, गुरु का अपना (रचित) नहीं है वरन् इसका एक बड़ा भाग उन कवियों की रचनाओं से भरा है जिन्हें गुरु ने अपनी नौकरी में रखा हुआ था।

दशम ग्रंथ के रचयिता के सम्बन्ध में इस प्रकार के सन्देह समय-समय पर उठते रहे हैं, परन्तु जिन्होंने इस ग्रन्थ का पूर्वाग्रहरहित ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, वे बड़ी सुगमता से इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि दशम ग्रंथ में संगृहीत सभी रचनाओं के रचयिता स्वयं गुरु-गोबिन्दसिंह थे। तेजासिंह-गंडासिंह ने अपनी 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिक्ख' (पृष्ठ ६०, ६१ ६२) पर इस मत का समर्थन किया है और डा० धर्मपाल अष्टा ने अपने शोध प्रबन्ध (दि पोयट्री आफ दशम ग्रन्थ) और डा० हरिभजन सिंह ने अपने शोध प्रबन्ध (गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य—१७-१८ वीं शती) में इस मत का सफलतापूर्वक प्रतिपादन किया है।

इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के सुप्रसिद्ध अनुसंधानकर्ता भाई रणधीर सिंह का है। उन्होंने 'दशम ग्रंथ' में संग्रहीत रचनाओं का बड़ा गहन अध्ययन कर सिख-जगत के सम्मुख बड़ी सफलतापूर्वक इस मत का प्रतिपादन किया कि दशम ग्रंथ में संग्रहीत सभी रचनाएं गुरु गोबिन्दसिंह जी द्वारा विरचित हैं। अपने शोध कार्य को उन्होंने 'श्री गोबिन्दसिंह जी दी शबदि मूरति (दसवें पातिशाह के ग्रंथ दा इतिहास)' शीर्षक पुस्तक के रूप में सन् १९५५ ई० में प्रकाशित किया था।

दशम ग्रंथ की प्राप्त प्रतियां

गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं को 'दशम ग्रंथ' या 'दशम पातशाह का ग्रंथ' के रूप में संग्रहीत करने का कार्य उनकी मृत्यु के कुछ समय पश्चात् हुआ। गुरु गोबिन्दसिंह की अधिकांश कृतियों का रचना काल सन् १६८० से १७०० के मध्य का ही है। इस समय के बीच में भी उन्हें अनेक युद्ध करने पड़े थे, जिनमें से कुछ का वर्णन उनकी आत्मकथा 'बिचित्र नाटक' में है। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चार-पांच वर्षों में उन्हें सतत युद्धरत रहना पड़ा। उत्तर-पश्चिम भारत का सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य पंजाब के पहाड़ी हिन्दू राजाओं की सहायता से युक्त होकर गुरु गोबिन्दसिंह के नेतृत्व में जगती हुई जन चेतना को समूल नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो गया था। यह समय उनके जीवन का सर्वाधिक संघर्षमय समय था। युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त हो उन्हें अपना केन्द्र स्थान आनन्दपुर त्यागना पड़ा। उनके तथा उनके सहयोगी कवियों द्वारा रचित विशाल साहित्य भण्डार तोपों की गड़गड़ाहट, बन्दूकों की कर्णभेदी ध्वनि तथा तीरों-तलवारों की सरसराहट और झनझनाहट का शिकार हो गया। पोथियां इधर-उधर बिखर गयीं। उनमें से कुछ नष्ट हो गयी और जो शेष बचीं उनके प्रश इधर-उधर बिखर गयें।

गुरु गोबिन्दसिंह जी के देहावसान के पश्चात् औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुर-शाह ने ३० दिसम्बर १७११ ई० को लाहौर में मनाए अपने जन्मोत्सव पर जहांगीर के समय की गुरु चक (अमृतसर) की जब्त की हुई जागीर को गुरु गोबिन्दसिंह जी की विधवा

१. इवोल्यूशन आफ खालसा, पृष्ठ १०६।

पत्नी, माता सुन्दरी, जो दिल्ली में रहती थीं, के दत्तक पुत्र अजीतसिंह को बहाल कर दी। माता सुन्दरी ने अमृतसर के हरि मन्दिर, नगर की चुंगी तथा सम्बन्धित जागीर का प्रबन्ध करने के लिए दिल्ली से पुजारी तथा अन्य प्रबन्धक भेजे। हरि मन्दिर के ग्रंथी (पुजारी) का कार्य भाई मनीसिंह को सौंपा गया था। भाई मनीसिंह गुरु गोबिन्दसिंह के सम्पर्क में वर्षों तक रहे थे। उन्हें गुरु गोबिन्दसिंह का व्यक्तिगत लिपिक कहा जाता है। इसलिए माता सुन्दरी ने उन्हें गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं की खोज का कार्य भी सौंपा था।

भाई मनीसिंह ने बड़े यत्नपूर्वक गुरु गोबिन्दसिंह की इधर-उधर बिखरी हुई रचनाओं की खोज की। जो भी रचना उन्हें प्राप्त हुई उसकी एक प्रति उन्होंने अपने पास रखी और एक माता सुन्दरी के पास दिल्ली भिजवाते गये, जिसे संग्रहीत करने का कार्य उनके लिपिक भाई सीहांसिंह करते गये। उन्हीं दिनों का भाई मनीसिंह का माता सुन्दरी को लिखा हुआ एक पत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें उन्होंने गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं के संग्रह की बात का उल्लेख किया है। गुरुमुखी लिपि में लिखा हुआ वह पत्र इस प्रकार है—

१ ओंकार अकाल सहाए ॥

'पूज माता जी दे चरना पर मनी सिंघ की डंडौत बंदना। बहुरो समाचार बाचना कि इधर आउन पर साडा शरीरु वायु का अधिक विकारी होइ गइआ है। सुअसत नाही रहिआ। ताप की कला दो बार सुनी। पर मन्दिर की सेवा मे कोई आलकु नाहीं। देसु विचि खालसे दा बलु छूटि गइआ है। सिंघ परबतां बनानां विचि जाइ बसे हैन। मलेछों की देस में दोही है। बसती मे बालक जुवा इसतरी सलामतु नाहीं। मूढ-मूढ करि मारदे हैन। गुरु दरोही भी उना दे संगु मिलि गए हैन। हंदीलीए मिलि करि मुकबरी करदे हैन। सभी चकु छोड़ गए हैन। मुतसदी भाग गए हैन। साडे पर अवी तो अकाल की रछा है। कल की खबर नाहीं। साहिबां दे हुकम अटल हैन। विनोद सिंघ दे पुतरेले दा हुकमु सतु होइ गइआ है। पोथीआं जो भड़ासिंघ हथि भेजी थीं। उना विचि साहिबां दे ३०३ चरित्तर उपाखिआन दी पोथी जो है सो सीहांसिंघ नू महल विचि देना जो। नाम माला की पोथी दी खबर अवी मिली नाही। करिसनावतार पूरबारध तो मिला। उतरारध नाहीं। जो मिला असी भेज देवांगे। देस विचि गोगा है कि बंदा बधन मुकति होइ भाग गइआ हैं। साहिब बाहुड़ी करनगे। तोला ५ सोना साहिबजादे की घरनी के आभूखन लई गुरु किआ सहूर से भेजा है। १७ रजतपन ची भड़ा सिंघ से भर पाने। पज रजतपन इसे तोसा दीआ इस नूं बदरवा भी है। इससे उठि आवेंगे। मुसतदीउ ने हिसाब नाही दिआ। जो देंदे तो बडे सहिर से हुंडी कराइ भेज दे। असाडे सरीरु दी रधिआ रही ता कुआर दे महीने आवांगे। मिती वैसाखु २२। दसखत मनी सिंघ। गुरु चकु बुंगा। जुआब पोथी में।'

इस पत्र में पत्र लेखन की तिथि (२२ वैशाख) तो दी हुई है परन्तु सवत् का उल्लेख नहीं है। परन्तु इस पत्र में कुछ ऐतिहासिक स्थितियों एवं तथ्यों का भी समावेश है—'देश में खालसे का बल छूट गया है।' सिंह (सिख) पर्वतों और वनों में जा बसे हैं। तथा 'देश में जन प्रवाद है कि बंदा (बहादुर) मुगल शासन के बन्धनों से मुक्त होकर भाग गया है।'

लगभग सभी इतिहासकार यह मानते हैं कि बंदासिंह का फर्रुखसियर के शासनकाल में दिल्ली में बड़ी क्रूरतापूर्वक बध कर दिया गया था। परन्तु बंदा के सम्बन्ध में जनता मे, विशेष रूप से मुगल सैनिकों में यह बात उसके जीवनकाल मे ही फैली हुई थी कि वह अलौकिक शक्तियों का स्वामी है। इसी आधार पर कदाचित यह जनप्रवाद उस समय फैल गया था कि बंदा बन्धन मुक्त होकर भाग गया है। और इस जनप्रवाद का ही उल्लेख भाई मनीसिंह ने अपने इस पत्र में किया है।

भाई रणधीरसिंह ने अपनी पुस्तक 'शबदि मूरति-दसवें पातिशाह के ग्रंथ दा इतिहास' में बाबा बंदासिंह के बलिदान की तिथि कामवरखान मुहम्मद हादी की लिखी 'तारीख तज़करातुल सलातीनि चुग़ता' के अनुसार ३० मई सन् १७१७ दी है।[1] उनके अनुसार उसके पश्चात् २२ वैशाख की तिथि १६ अप्रैल १७१८ ई० को पड़ती है। इस प्रकार उनका अनुमान है कि यह पत्र उसी तिथि को लिखा गया होगा। अर्थात् उस समय तक दशम ग्रंथ में संग्रहीत रचनाओं की खोज जारी थी। उसके पश्चात् भाई मनीसिंह ने किसी समय इन रचनाओं को एक स्थान पर संग्रहीत किया होगा और रचनाओ की जो प्रति वे दिल्ली भेजते गये, उसका संग्रह भाई सीहासिंह ने किया होगा।

भाई मनीसिंह ने गुरु गोबिन्दसिंह के देहावसान के पश्चात् दशम ग्रंथ की बीड़[3] का सम्पादन किया था। इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। भाई केसरसिंह छिब्बर ने 'बंसावली नामा दसा पातिसाहीआं का' की रचना संवत् १८३६ वि० (सन् १७७६ ई०) में की थी।[4] छिब्बर गुरु गोबिन्दसिंह के दीवान धरमचन्द का नाती था।[5] और उसने अपने प्रारम्भिक जीवन के कुछ वर्ष माता सुन्दरी के निकट व्यतीत किये थे। 'बंसावली नामा दसां पातिसाहीआं का' में उसने लिखा है कि सत्तर वर्ष तक शोध करने के पश्चात् मैंने यह कथा लिखी है और इसमें का कुछ भाग उसने माता सुन्दरी के सम्पर्क में सुनकर मन में बसाया था।[6]

---

१. पृष्ठ ३६।

२. ज्ञानी[?] गंडासिंह ने 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ सिक्खस' में यह तिथि ६ जून १७१६ ई० दी है। (पृ० १०२)

३. सिख-साहित्य में गुरु ग्रंथ साहब और दशम ग्रंथ की प्रतियों के लिए 'बीड़' शब्द का प्रयोग होता है। सुविधा और भावाभिव्यक्ति के लिए इस शब्द का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है।

४. सम्मत अठारह से छत्ती वींते भोगे पोथी दा पारआ।
गुरु नानक दी चरनी लागे जो दस जामैं धर आइआ। (पृष्ठ ४२०)

५. हउं धरमचंद का नाती लिखी कर चाहि कै।
दीवान साहब चंद दीवान धरमचंद दीवान दसवें पातिशाह कै।

(बंसावली, पृष्ठ १६६)

६. सत्तर बरस सोध मैं कीती तां इह कथा बणाई।
दिल्ली दरबार माताजी दे आइ बैठा कुछ ओथे सुण मन बसाई।

(बंसावली नामा, पृष्ठ ४२०)

शिल्कर के मतानुसार भाई मनीसिंह ने संवत् १८८२ (सन् १७२५ ई०) के पश्चात् दशम ग्रंथ का सम्पादन किया।[1]

भाई मनीसिंह द्वारा सम्पादित बीड़ में दशम ग्रंथ की रचनाओं का क्रम इस प्रकार है—

१. जापु

२. विचित्र नाटक

(क) अपनी कथा

(ख) चण्डी चरित्र (दोनों)

(ग) विष्णु के चौबीस अवतार

(घ) उप अवतार (ब्रह्मा और रुद्र के)

(च) मतिका (स्फुट सवैये और रागों के शब्द)

३. शस्त्र नाम माला

४. ज्ञान प्रबोध

५. अकाल स्तुति

६. चण्डी दी वार

७. चरित्रोपाख्यान

८. ज़फ़रनामा (गुरुमुखी और फारसी अक्षरों में)

भाई मनीसिंह की खोजकर भेजी हुई पोथियों का दिल्ली में माता सुन्दरी के लिपिक भाई सीहासिंह ने जो सम्पादन किया था, उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ पता नहीं लगा है। जींदाधिपति महाराजा सरूपसिंह को दिल्ली से सन् १८५७ के विप्लव के समय पुरातन लिखी हुई ग्रंथ साहिब की प्रति मिली थी। उसका उत्तरार्द्ध संगरूर दीवानखाने के गुरुद्वारे में है जो पृष्ठ ६०१ से आरम्भ होता है। लगता है पूर्वार्द्ध में ६०० पृष्ठ तक आदि ग्रंथ की वाणी संग्रहीत थी, जिसे किसी समय दशम ग्रंथ की रचनाओं से पृथक कर दिया गया होगा। इस ग्रंथ में दशम ग्रंथ की रचनाओं का क्रम इस प्रकार है—

१. जापु

२. (शस्त्र) नाम माला पुराण

३. अकाल पुरख की स्तुति

---

१. इह 'ग्रंथ अवतार लीला दा जो देखी।

जाति कबीउ सिख, सिखा निच गथिआ।
जो सिख आइआ ले के बहुत है सो आइआ।
सिखां नू खरच रुपए देके, बाणी हूँ दरसआ ॥१७६॥

४. विचित्र नाटक ग्रंथ
५. ज्ञान प्रबोध ग्रंथ
 (अ) मंगल, उथानका और दान धर्म
 (आ) चरित्रोपाख्यान
६. ससाहर सुखमना
७. वार मालकउंस की
८. वार भगउती की
९. शबद श्री मुख वाक
१०. जग (जफ़र) नामा (गुरुमुखी और फारसी अक्षरों में अधूरा)
११. श्री मुखवाक सवैये ३३
१२. स्फुट कवित्त सवैये ५६

भाई मनीसिंह वाली और सगरूर वाली इस बीड़ के क्रम और रचनाओं में इतना अन्तर है कि यह भाई सीहासिंह वाली बीड़ नहीं लगती, क्योंकि सीहा सिंह ने जिस बीड़ का सम्पादन किया था वह भाई मनीसिंह द्वारा अमृतसर से भेजी हुई पोथियों के आधार पर ही किया था।

लगभग अठारहवीं शती (विक्रमी) के अन्त में ही गुरु गोबिन्दसिंह के जन्म-स्थान पटना के गुरुद्वारे के सेवादारों और प्रबन्धकों ने दशम गुरु की रचनाओं को ढूंढकर एक संग्रह तैयार किया था जो 'पटने की मिसल' नाम से प्रसिद्ध हुई।[1] उसकी एक नकल अकाल बुंगा अमृतसर के तोशाखाने में भी है। इस बीड़ से पांचवें पृष्ठ पर नकल प्रारम्भ करने की तिथि कोष्ठक में इस प्रकार लिखी है—

> १ ओंकार स्री भगवतीजी सत ।। समत अठारां सै इकी मघ्र दिने छिग्र ।।१८२१।। आइतवार ।। श्री ग्रिन्थ जी लिखने लगे ।। पटणे जी दी मिसल । पातिशाही ।। १० स्री मुख वाक ।।

और अन्तिम पृष्ठ ६१६ पर कोष्ठक मे नकल की समाप्ति की तिथि इस प्रकार दी हुई है—

> १ ओंकार स्री भगवती प्रसादि ।।
> समत अठारां सै बाई ।। प्रमू दिने पन्द्रा ।।१८२२।।
> स्री ग्रिन्थ जी सपूरन लिख पहुते । सोध पढ़िना बहुतिया उपरों लिखिआ, छेती नालि ।।

कोष्ठकों में लिखे इस विवरण के अनुसार पटने वाली मिसल से इस बीड़ की प्रतिलिपि सं० १८२१ (सन् १७६४) में प्रारम्भ की गयी और यह कार्य एक वर्ष अर्थात् सं० १८२२ (सन् १७६५) में पूर्ण हुआ। इस बीड़ मे रचनाओं का क्रम इस प्रकार है—

१. जापु
२. शस्त्र नाम माला
३. स्तुति श्री अकालजी की

---
[1] भाई रणधीरसिंह, दसवें पातिशाह के ग्रंथ दा इतिहास, पृ० ४४।

४. विचित्र नाटक
   (अ) अपनी कथा
   (आ) चण्डी चरित्र-उक्ति विलास
   (इ) चण्डी चरित्र-आपी महातम
   (ई) विष्णु अवतार
   (उ) ब्रह्मा अवतार
   (ऊ) रुद्र अवतार
५. ज्ञान प्रबोध
६. वार दुर्गा की
७. स्त्री चरित्र पख्यान ग्रंथ
८. स्फुट कवित्त-सवैये
६. रागों के शबद
१०. जग (ज़फ़र) नामा (गुरुमुखी)
११. जग (ज़फ़र) नामा (फारसी)

जैसा कि कोष्ठकों में लिखी हुई सूचना से स्पष्ट है कि पटने वाली बीड़ से अकाल बुंगे वाली बीड़ की नकल सन् १७६५ ई० में हुई थी। इस सूचना से यह तो स्पष्ट ही है कि पटने वाली बीड़ का सम्पादन उसके पूर्व ही किसी समय हुआ होगा। इस प्रकार भाई मनीसिंह तथा पटने वाली बीड़ ही दशम ग्रन्थ की प्राचीनतम तथा प्रामाणिक प्रतियां हैं।

उक्त दो बीड़ों से मिलती-जुलती एक और पुरानी बीड़ कलकत्ता के गुरुद्वारा भाई तारासिंह में है। इस पर कोई संवत् अंकित नहीं है, परन्तु बहुत पुरानी लिखी हुई ज्ञात होती है। कलकत्ता की संगत तुला पट्टी के छोटे गुरुद्वारे में भी संवत् १८४० वि० (१७८३ ई०) की लिखी हुई बीड़ है। इसमें संग्रहीत रचनाओं का क्रम भाई मनीसिंह और पटने वाली बीड़ों से मिलता है।

दशम ग्रंथ की इस प्रकार प्राप्त होने वाली प्रतियां मूल रचना पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालतीं। दशम ग्रन्थ में संग्रहीत सभी महत्त्वपूर्ण रचनाएं लगभग सभी में उपलब्ध हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि कहीं विचित्र नाटक ग्रन्थ में केवल गुरु गोविन्दसिंह की आत्मकथा ही समझी गई है; कहीं आत्मकथा, चंडी चरित्र, अवतारों की कथा का एकत्रित नाम 'विचित्र नाटक' दिया गया है और कहीं विचित्र नाटक की परिधि में 'चंडी दी वार, ज्ञान प्रबोध और शस्त्र नाम माला' को भी सम्मिलित कर लिया गया है।

सन् १८६५ ई० में खालसा दीवान अमृतसर की ओर से 'दशम ग्रंथ' की सभी उपलब्ध प्रतियों की जांच-पड़ताल कर 'दशम ग्रंथ' की रचनाओं को क्रम दिया जो आज गुरुमुखी लिपि में मुद्रित प्राप्य है और जिसे इस अध्ययन का प्रमुख आधार बनाया गया है। इस बीड़ के अन्दर के आवरण पृष्ठ पर यह अंकित है—

दशम
श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी
पदछेद ते पर्याया सहित
जिन्हा दी सुधाई
उस बीड़ नाल कीती गई है जो कि सं० १६५२ बिक्रमी नूं श्री
अकाल तखत साहिब, श्री अमृतसर जी
विखे
'सोधक कमेटी' ने सोधी सी।

दशम ग्रंथ का रचयिता

दशम ग्रंथ के रचयिता के सम्बन्ध में संदेह का जागरण आधुनिक युग की ही बात है। सिख धर्म की परम्परागत प्रणाली में दशम ग्रंथ में संगृहीत सभी रचनाओं को सदैव गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा रचित ही माना गया है। सिख विद्वानों की 'साम्प्रदायी परम्परा' तथा सिख धर्म एवं साहित्य के सभी प्राचीन ग्रंथ भी सदैव इस मत की पुष्टि करते रहे हैं। इस दृष्टि से भाई केसर सिंह छिब्बर के वंशावली नामा, जिसका उल्लेख इसके पूर्व हो चुका है, की साक्ष्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह लिखता है—संवत् १७५५ (सन् १६९८) में दसवें पातशाह (गुरु गोबिन्दसिंह) के घर में 'छोटे ग्रंथ जी' का जन्म हुआ।[1] साहिब (गुरु गोबिन्दसिंह) को यह बहुत प्रिय था। उन्होंने इसे अपने हाथ से लिखा और अपनी जिह्वा से इसका उच्चारण कर इसे बनाया। सिखों ने प्रार्थना की कि इसे उसके साथ (आदि ग्रंथ के साथ) मिला देना चाहिए। उन्होंने उत्तर दिया—वास्तविक ग्रंथ वह (आदि ग्रंथ) है। यह हमारा खेल है। उन्होंने इसे साथ नहीं मिलाया। इस भेद को कौन जानता है[2]।

---

१. 'छोटा ग्रंथ' से तात्पर्य दशम ग्रंथ से है। इसी संदर्भ में 'बड़ा ग्रंथ' से 'गुरु ग्रंथ साहिब' का अर्थ लिया जाता है।

२. छोटा ग्रंथजी जनमें साहिब दसवें पातिशाह के धाम।
संमत सतारा में पचवंजा, बहुत खिडावे नित्तारे नाम।
साहिब नूं सी पिआरा अपनी हथीं लिखिया ते खिडारआ।
सिखां कीती अरदास जी, नाल चाहिए मिलाइआ। २२३।
वचन कीता—'ग्रंथ साहिब' है उह, इह असाडी है खेड।
नाल न मिलाइआ, आहा पिआरा, कउन जाने भेद॥ २२४॥
(चरन चउथवां)

भाई मनीसिंह के ऐतिहासिक पत्र का उल्लेख ऊपर हो चुका है। यह पत्र गुरु गोविन्दसिंह के देहावसान के लगभग १० वर्ष बाद लिखा गया था। भाई मनीसिंह का, गुरु गोविन्दसिंह के निकट सम्पर्क में होने से, ऐतिहासिक महत्त्व बहुत बढ जाता है। अपने पत्र में वे 'चरित्रोपाख्यान', 'शस्त्रनाम माला' और 'कृष्णावतार' (पूर्वार्द्ध) का उल्लेख करते हैं। दशम ग्रन्थ की यदि ये तीन रचनाएं ही असदिग्ध रूप से गुरु गोविन्दसिंह की कृतियाँ मान ली जाए तो शेष सदिग्ध रचनाओं को उनकी कृति सिद्ध करने मे कोई कठिनाई नही होती।

ऊपर खालसा दीवान अमृतसर की ओर से स्थापित एक 'शोधक कमेटी' का उल्लेख हो चुका है। 'दशम ग्रंथ' के सम्बन्ध में उसने जो रिपोर्ट दी थी उससे ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ में संग्रहीत अनेक रचनाओं का विभिन्न अवसरों पर अमृतसर के हरि मन्दिर (दरबार साहिब) मे पाठ हुआ करता था। रिपोर्ट मे लिखा है—

'यदि यह वाणी श्री मुख वाक् (गुरु गोबिन्दसिंह विरचित) न होती तो १० सवैये (स्रावग सिद्ध समूह) और चौपाई (हमरो करो हाथ दे रच्छा आदि) का पाठ अमृत पान कराते समय (दीक्षा देते समय) और रामावतार का पाठ दशहरे के दिन और चडी चरित्र के पाठ नवरात्रि मे और कृष्णावतार के सवैये का पाठ होले महले (होली) मे हरि मन्दिर श्री दरबार साहिब अमृतसर मे न होता। इससे प्रकट होता है यह श्री मुख वाक है।

बहिर्साक्ष्य के इन आधारों के अतिरिक्त अन्तर्साक्ष्य का बहुत प्रबल आधार है जो दशम ग्रंथ की सभी रचनाओं को गुरु गोविन्दसिंह द्वारा विरचित होना सिद्ध करता है। दशम ग्रंथ में मुख्यतः दो प्रकार की रचनाएँ हैं—एक वे जिसमे किसी कवि नाम का उल्लेख नहीं है। जैसे—

विचित्र नाटक (आत्मकथा), जापु, अकाल स्तुति, चडी चरित्र (प्रथम, द्वितीय और पजाबी) शस्त्रनाम माला तथा स्फुट पद-कवित्त और सवैये।

दूसरी वे रचनाएँ जिनमे स्याम, राम, काल और गोबिन्द कवि नाम प्राप्त होते है, जैसे—

'अवतारो की कथा' तथा 'चरित्रोपाख्यान'। इनमे स्याम नाम का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है और गोबिन्द नाम का प्रयोग केवल एक बार (रामावतार के अत मे) हुआ है। उदाहरण स्वरूप—

(१) इह बिधि मारि बिराधि को बन मे धँसे निसक।
सुकवि स्याम इह बिधि कह्यो, रघुबर जुद्ध प्रसग।

(रामावतार, ३२३)

(२) धनु सायक लै रिसि भूपति के तन घाइ करे ब्रिजराज तबै॥
पुनि चारों ही आनन सों हय चारों ही राम भनै हन दीन सबै॥
तिल कोटिक सियदन काटि कियो, धनु काट दियो करि कोप जबै॥
नृप प्यादो गदा गहि सउहे गयो अति जुद्ध भयो कहि हों सु अबै॥

(कृष्णावतार, १८७२)

(३) अछल छैल छैली छल्यो इह चरित्र के संग॥
सुकवि काल तब ही भयो, पूरन कथा प्रसंग॥ ५२॥

(चरित्रोपाख्यान, चरित्र २१७)

यहाँ तीन विभिन्न रचनाओं रामावतार, कृष्णावतार और चरित्रोपाख्यान में तीन विभिन्न कवि नाम—स्याम, राम और काल मिलते हैं। रामावतार के अन्तिम छन्द में गोबिन्द नाम का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—

सगल दुआर को छाडि कै गह्यो तुहारो दुआर ॥
बाहि गहे की लाज अस गोबिन्द दास तुहार ॥
(रामावतार, ८६४)

ऐसे ही अनेक स्थल हैं जहाँ एक ही रचना मे एक से अधिक कवि नामों का प्रयोग हुआ है। कृष्णावतार के जिस छन्द को ऊपर उद्धृत किया गया है उसमे 'राम' नाम का प्रयोग हुआ है। प्रसग यह है कि युद्ध-भूमि मे कृष्ण ने जरासध के रथ के चारो घोडो को मार गिराया है और उसका धनुष काट दिया है। नृप (जरासध) पैदल ही हाथ मे गदा लेकर कृष्ण के सम्मुख युद्ध के लिए आ गया है। आगे जो युद्ध हुआ अब कवि उसका वर्णन करने की बात कहता है—

'अति जुद्ध भयो कहि हो सु अबै।'

इसके बाद के छन्द में, जिसमे जरासध अपनी गदा के प्रहार से कृष्ण के रथ के चारो घोड़े और सारथी को मारकर रथ को चूर-चूर कर देता है, 'स्याम' कवि नाम का प्रयोग हुआ है—

पाइन धाइकै भूप बली सुगदा कहु धाइ हली प्रति भार्यो ॥
कोप हुतो सु जितो तिह मैं सब सूरन को सु प्रतच्छ दिखार्यो ॥
कूद हली भुम ठाढ़ो भयो जसु ता छबि को कबि स्याम उचार्यो ॥
चारों ही अस्वन सूत समेत सु कै सबही रथ चूरन करि डार्यो ॥
(कृष्णावतार, १८७३)

'चरित्रोपाख्यान' मे तीनों कवि नाम (स्याम, राम और काल) बडी प्रचुरता से प्रयुक्त हुए हैं—

भेद अहीर न कछु लह्यो आयो अपने गेह।
राम भनै तिन त्रिय भए अधिक बढायो नेह ॥ १४ ॥
(चरित्र, २८)

जूझ मरी पिय पीर त्रिय तनिक न मोर्‌यो अग।
सु कवि स्याम पूरन भयो तब ही कथा प्रसग ॥ २२ ॥
(चरित्र, १२२)

अछल छैल छैली छल्यो इह चरित्र के संग।
सुकवि काल तब ही भयो पूरन कथा प्रसग ॥
(चरित्र, २१७)

दशम ग्रथ से ऐसे अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। इनसे यह तो स्पष्ट ही है कि ये तीनों नाम किसी एक ही कवि के हैं, जिसने मौज मे आकर जहाँ मन चाहा वहीं वह प्रयुक्त कर दिया। अब प्रश्न रह जाता है कि क्या वह कवि स्वय गुरु गोबिन्द-सिंह हैं और ये सभी उन्हीं के उपनाम हैं ? दशम ग्रथ की रचनाओं का ध्यानपूर्वक किया हुआ अध्ययन यह स्पष्ट कर देता है कि यद्यपि रचनाएँ देखने मे भिन्न-भिन्न प्रकट होती हैं

परन्तु उनमें एकसूत्रता है और उनकी सुसम्बद्धता के सूत्र स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े हैं। उदाहरणस्वरूप दशम ग्रंथ की रचना विचित्र नाटक (आत्मकथा) को गुरु गोबिन्दसिंह की रचना कहने मे किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि यह उनकी स्वयं की अधूरी कथा है, यद्यपि इस रचना मे एक भी स्थान पर उन्होने अपना नाम प्रकट नहीं किया है। इस रचना की निम्नलिखित कुछ पंक्तिया पढकर ही यह कहा जा सकता है कि इनका सम्बन्ध गुरु गोबिन्दसिंह से है—

अकाल पुराव बाच

मैं अपना सुत तोहि निवाजा ॥ पंथ प्रचुर करबे को साजा ॥
जहाँ तहाँ तैं धर्म चलाइ ॥ कुबुद्धि करन ते लोक हटाइ ॥ २६ ॥

कवि बाच

ठाढ़ भयो मैं जोरि करि बचन कहा सिर निवाइ ॥
पंथ चलै तब जगत मे जब तुम करहु सहाइ ॥ ३० ॥

इह कारनि प्रभु मोहि पठायो ॥ तब मैं जगत जनमु धरि आयो ॥
जिम तिन कही इनै तिम कहि हौं ॥ अउर किसू ते बैर न गहि हौं ॥ ३१ ॥

(षष्ट अध्याय)

मुरपित पूरब कियसि पयाना ॥ भांति-भांति के तीरथ नाना ॥
जब ही जात त्रिवेणी भए ॥ पुन्न दान दिन करत बितए ॥ १ ॥
तही प्रकास हमारा भयो ॥ पटना सहर बिखै भव लयो ॥
मद्र देस हमको लै आए ॥ भांति-भांति दाईअन दुलराए ॥ २ ॥

(सप्तम अध्याय)

राज साज हम पर जब आयो। जथा सकति तब धरम चलायो ॥ १ ॥
देस चाल हमते पुनि भई। सहर पावटा की सुध लई ॥ २ ॥
फते साह कोपा तब राजा। लोह परा हम सों बिन काजा ॥ ३ ॥

ये कुछ ऐसी पंक्तियां हैं जो कवि के उद्देश्य, उसके पिता की पूर्व की यात्रा, पटना में उसके जन्म, देश चाल आने पर पाँवटा नगर की ओर प्रस्थान, फिर राजा फतेहशाह से युद्ध आदि ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करती हैं। आगे के अध्यायों में अपने वंश, युद्ध तथा अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन इसे गुरु गोबिन्दसिंह की आत्मकथा सिद्ध करती हैं क्योंकि सभी घटनाएं ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकाश में स्पष्ट हैं।

इस आत्मकथा के अंत में कवि ने अब तक के किए हुए कार्यों तथा भविष्य की योजनाओं की ओर संकेत किया है—

अब जो-जो मैं लखै तमासा ॥
सो-सो करो तुमैं अरदासा ॥
जो प्रभु कृपा कटाच्छ दिखैहैं ॥
सो तव दास उचारत जैहैं ॥ ३ ॥

इन पंक्तियों में प्रभु की कृपादृष्टि की अभिलाषा है। यदि वह प्राप्त हो जाए तो कवि सृष्टि के इस देखे हुए तमाशे का वर्णन करता चला जाएगा।

आत्मकथा लिखने के पूर्व गुरु गोबिन्दसिंह अनेक अवतार-कथाएं लिख चुके थे। एक चण्डी चरित्र की भी रचना कर चुके थे। उसी क्रम को आगे बढ़ाने की बात उन्होंने आत्म-कथा के इस निम्न छन्द में कही है—

जिह-जिह बिधि जन्मन सुधि आई ॥
तिम-तिम कहे गिरन्थ बनाई ॥
प्रथमे सतिजुग जिहि बिधि लहा ॥
प्रथमे देवि चरित्र को कहा ॥ १० ॥
पहले चंडी चरित्र बनायो ॥
नख सिख ते क्रम भाख सुनायो ॥
छोर कथा तब प्रथम सुनाई ॥
अब चाहत फिरि करौं बड़ाई ॥ ११ ॥

इन पंक्तियों में कुछ अवतार-कथाओं को लिख चुकने की ओर संकेत है। 'प्रथमे देवि चरित्र' को कह चुकने की बात है। कवि पुनः चण्डी का चरित्र लिखना चाहता है। चण्डी चरित्र (द्वितीय) की रचना इसी आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए की गयी होगी।

दशम ग्रंथ के रचयिता ने विभिन्न अवतारों की कथा का प्रारम्भ करते एक विशेष प्रणाली अपनायी है। 'अब मैं अमुक अवतार की कथा कहूंगा', वह वाक्य लगभग सभी अवतारों की कथा के प्रारम्भ में आया है और यही क्रम आत्म-कथा के साथ भी अपनाया गया है, जैसे ये सभी रचनाएं एक ही शृंखला की कड़ियां हैं। उदाहरणस्वरूप—

१. अब चउबीस उचरौं अवतारा।
जिहि बिधि तिनका लखा अखारा।
सुनियहु संत सभै चित लाई।
बरनत स्याम जथामति भाई ॥ १ ॥[1]

२. अब मैं कहौं राम अवतारा।
जैस जगत मों करा पसारा ॥ १ ॥[2]

३. अब बरनों कृस्ना अवतारू।
जैसे भांति बपु धरा मुरारू ॥[3]

४. अब बाईसवो गनि अवतारा।
जैस रूप कह धरो मुरारा ॥ १ ॥[4]

५. अब मैं महासुद्धि मति करि कै।
कहौं कथा चित लाइ बिचर कै।
चउबिसवों कलकी अवतारा।

---

१. चौबीस अवतार—दशम ग्रंथ, पृ० १५५।
२. रामावतार—दशम ग्रंथ, पृ० १८८।
३. कृष्णावतार—दशम ग्रंथ, पृ० २५४।
४. नरावतार—दशम ग्रंथ, पृ० ५७०।

ता कह कहों प्रसंग सुधारा ॥ १ ॥[1]

इसी क्रम मे—

अब मैं कहौं सु अपनी कथा ।
सोढि बंस उपजया यथा ॥ २ ॥
अब मैं अपनी कथा बखानो ।
तप साधत जिह बिधि मुहि आनो ॥ १ ॥[2]

वर्णन की इस शैली से यह स्पष्ट है कि अन्य अवतारों की कथा रचने वाला और अपनी कथा का नायक एव रचयिता एक ही व्यक्ति है ।

पुनरुक्तियां एवं अभिव्यक्ति साम्य—

दशम ग्रंथ मे सगृहीत विभिन्न रचनाओं मे बड़े स्थलान्तर से अनेक पुनरुक्तियां भरी पड़ी हैं । इसी प्रकार अभिव्यक्ति साम्य भी स्थान-स्थान पर दिखायी देता है । यथा—बिचित्र नाटक (आत्मकथा) के प्रथम अध्याय का बयानवेवा छन्द और चरित्रोपाख्यान ग्रंथ के प्रथम चरित्र का सैंतालीसवा छन्द थोड़े अन्तर से एक जैसा ही है—

मेर करो त्रिण ते मुहि जाहि गरीब निवाज न दूसर तोसों ।
भूल छिमो हमरी प्रभ आपन भूलन हार कहूँ कोउ मोसो ॥
सेव करी तुमरी तिनके सम ही गृह देखीअत द्रब भरोसों ।
या कल मे सम काल कृपान के भारी भुजान के भारी भरोसो ॥[3]

चरित्रोपाख्यान का छन्द यह है—

मेर कियो त्रिणते मुहि जाहि गरीब निवाज न दूसर तोसों ।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन भूलन हार कहूँ कोउ मोसों ॥
सेव करें तुमरी तिनके छिन मैं धन लागत धाम भरोसों ॥
या कलि में सम कालि कृपान की भारी भुजान को भारी भरोसो ॥[4]

द्रष्टव्य यह है कि आत्मकथा का सवैया 'काल' को सम्बोधित करके कहा गया है और चरित्रोपाख्यान का 'कालि' (चण्डी) को । छन्दों मे अन्तर केवल काले अक्षरों में मुद्रित भाग का ही है ।

इसी प्रकार आत्मकथा के द्वितीय अध्याय का दूसरा छन्द और चरित्रोपाख्यान के प्रथम चरित्र का तेतालीसवा छन्द लगभग समान है—

मूक उचरै शास्त्र खट पिंग गिरन चढ़ि जाइ ॥
अध लखै बधरो सुनै जो काल कृपा कराइ ॥२॥[5]
मूक उचरै शास्त्र खट पिंग गिरन चढ़ि जाइ ॥
अध लखै बधरो सुनै जो तुम करो सहाइ ॥४३॥[6]

१. विष्णुकलंको अवतार—दशम ग्रंथ, पृ० ५७१ ।
२. बिचित्र नाटक—दशम ग्रंथ, पृ०, ५४ ।
३. वही, पृ० ४५ ।
४. वही, पृ० ८१३ ।
५. वही, पृ० ४७ ।
६. वही, पृ० ८१३ ।

अकाल स्तुति में कवि कहता है—

कई राम कृष्ण रसूल।
बिनु भगति को न कबूल ।।८।।३८।।

थोड़े से अन्तर से इसी बात को वह ब्रह्मावतार में कहता है—

कई राम कृष्ण रसूल ।।
बिनु नाम को न कबूल ।।१२।।

अकाल स्तुति में कवि कहता है—

किते कृष्ण से कीट कोटै उपाए।
उपारे गढ़े फेरि मेटे बनाए ।।६।।६६।।

विचित्र नाटक मे इन पंक्तियों का रूप यह है—

उपारे गढ़े फेरि मेटे उपाए ।।२६।।
किते कृष्ण से कीट कोटै बनाए ।।२७।।

विचित्र नाटक का निम्न छन्द ईश्वर की स्तुति मे कहा गया है, जिसमे भक्त अपने सामर्थ्य को क्षीण पा रहा है—

कागद दीप सभै करिकै अरु सात समुद्रन की मसु कैहो ।।
काट बनासपती सगरी लिखबे हू के लेखन काज बनैहो ।।
सारसुती बकता करिकै जुगि कोटि गनेस कै हाथ लिखैहो ।।
काल कृपान बिना बिनती न तऊ तुमको प्रभु नैक रिझैहो ।।१०१।।

चरित्रोपाख्यान मे थोड़े से अन्तर के साथ इसी छन्द द्वारा मूर्ति-पूजा का विरोध किया गया है—

कागद दीप सभै करिकै अरु सात समुद्रन की मसु कैयै ।।
काटि बनासपती सगरी लिखबे हुकौ लेखन काज बनैयै ।।
सारसुती बकता करिकै सभ जीवन ते जुग साठि लिखैयै ।।
जो प्रभु पायतु है नहि कैते हूँ सो जड़ पाहन मे ठहरैयै ।।१४।।

(चरित्र—२६६)

भाव एवं अभिव्यक्ति साम्य की रचनाएं तो दसम ग्रंथ की विभिन्न रचनाओं मे स्थान-स्थान पर ढूंढी जा सकती हैं। युद्ध-प्रसंगों की बहुलता, अवतारवाद, बाह्याडंबर और आचार-क्रियाओं का खण्डन एवं 'काल', 'अकाल', 'कालि', 'खड्गपाणि' आदि वीर भावोत्पादक ईश नामों के प्रति आस्था सम्बन्धी अभिव्यक्तियां लगभग सभी रचनाओं में उपलब्ध हैं।

कृष्णावतार का एक छन्द है—

का भयो जो बक लोचन मूंद कै बैठ रहिउ जग भेख दिखाए।
मीन फिरिउ जल न्हात सदा सु कहा तिहके करि मैं हरि आए ।।
दादर जो दिन रैन रटै सु बिहंग उडै तन पंख लगाए।
स्याम भनै इह सत सबै बिन प्रेम कहूँ बिज नाथ रिझाए ।।

(२४८६)

देखिए अकाल स्तुति के निम्न छन्द से इसका कितना भाव और शब्द साम्य है—

कहा भयो दोऊ लोचन मूंद कै बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो ॥
न्हात फिर्‌यो लिये सात समुद्रन लोक गयो परलोक गवायो ॥
वास कियो बिखिआन सो बैठके ऐसे ही ऐस सु बैस गवायो ॥
साच कहो सुन लेहु सबै जिन प्रेम कियो तिनही प्रभु पायो ॥६॥२६॥

कृष्णावतार के इसी क्रम में आए अनेक छन्द अकाल स्तुति के छन्दो से भाव और अभिव्यक्ति समता रखते हैं।

ईश्वर के रंग, रूप, निवास, वेश, नाम आदि के सम्बन्ध मे कवि ने लगभग एक ही प्रकार की शब्दावली में अपनी अनभिज्ञता अनेक रचनाओं में प्रकट की है—

नहीं जान जाई कछु रूप रेख।
कहा बास ताको फिरै कउन भेख ॥
कहा नाम ताको कहाँ कै कहावै।
कहा मैं बखानो कहे मो न आवै ॥१४॥

(विचित्र नाटक, अध्याय १)

नहीं जान जाई कछू रूप रेख।
कहा बास ताको फिरै कउन भेख ॥
कहा नाम ताको कहा कै कहावै।
कहा कै बखानो कहै मं न आवै ॥६३॥

(अकाल स्तुति)

नहीं जान जाई कछू रूप रेखं।
कहा बास ताको फिरै कउन भेख ॥
कहा नाम ताको कहा कै कहावै।
कहा मैं बखानो कहै मैं न आवै ॥३॥

(ज्ञान प्रबोध)

नही जानि जाई कछु रूप रेखा।
कहा बास ताको फिरै कौन भेखा ॥
कहा नाम ताको कहा कै कहावै।
कहा कै बखानो कहो मो न आवै ॥८७॥

(चरित्रोपाख्यान, २६६ वां चरित्र)

आत्माभिव्यक्ति

दशम ग्रंथ की विभिन्न रचनाओं मे, विशेष रूप से उन रचनाओ मे जिनके कर्तृत्व के सम्बन्ध में संदेह उठाया जाता है, कवि की स्पष्ट आत्माभिव्यक्ति सभी प्रकार के संदेहों को नष्ट कर देती है। कृष्णावतार के अंत के एक छंद मे अपना परिचय देते हुए कवि कहता है—

छत्री को पूत हौं बामन को नाहि कै तपु आवत है जो करौं ॥
अरु अउर जंजार जितो ग्रह के तुहि त्याग कहा चित तामै धरौं ॥
अब रीझकै देहु वहै हम कउ जोउ हउ बिनती करजोर करौं ॥
जब आउ की अउध निदान बनै अति ही रन में तब जूझ मरौं ॥ (२४८६)

'कृष्णावतार' में कवि कृष्ण से वर मागता है—मुझे रीझ कर यह वर दो कि जब आयु की अवधि समाप्ति पर आये तो मैं वीरगति को पाऊँ। यही आकाक्षा चंडी चरित्र (प्रथम) में कवि ने इस प्रकार व्यक्त की है—

देह शिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूँ न टरों ॥
न डरों अरि सो जब जाइ लरो निसचै करि अपनी जीत करों ॥
अरु सिख हों अपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरों ॥
जब आउ की अउध निदान बनै अति ही रन मैं तब जूझ मरों ॥ (२३१)

अत मे रण में जूझ मरने की उनकी आकांक्षा अनेक स्थानो पर व्यक्त हुई है। *कृष्णावतार के ही एक छंद में वे कहते हैं—हे रवि रूप, हे शशि रूप, हे करुणानिधि, मेरी* विनती सुनो। मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहता, जो हृदय मे चाहता हूँ वही दो। (चाहना क्या है?) शस्त्र-युक्त होकर युद्ध भूमि मे जूझ मरूँ (जिससे) ससार मे सतो की सहायता हो सके।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह के दरबारी कवियो की रचनाओ मे व्यक्त की गयी आकाक्षाओं तथा उक्त आकाक्षा का अतर बहुत स्पष्ट है। रीतिकाल के किस हिंदी कवि ने धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए रण मे जूझ मरने की अभिलाषा व्यक्त की है? रीति-कालीन कवि अपने लौकिक आश्रयदाता, चाहे उसका आदर्श कुछ भी हो, की प्रशस्ति गाते अघाता नहीं। भोग-विलासी, लम्पट और कामुक राजा की तुलना भी वह युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम से करता है। उसे धन देने वाला यदि कुछ गाँवों का स्वामी कोई छोटा-मोटा राव भी है तो कवि उसकी धन-सम्पन्नता मे कुबेर और दानशीलता में कर्ण को भी लज्जित करता रहता है। गुरु गोबिन्दसिंह के दरबारी कवि भी रीतिकालीन वातावरण के प्रसूत कवि हैं। निस्सन्देह गुरु गोबिन्दसिंह ने अन्य आश्रयदाताओं की तरह उनसे नायिका-भेद नहीं लिखवाया, उनकी एक-एक शृंगारिक उक्ति पर मोहरें नहीं लुटाईं और न ही अपनी काम वासना की तृप्ति का उन्हें साधन बनाया। गुरु गोबिन्दसिंह अपने युग के सबसे बड़े लोक-नायक ही नहीं थे, वरन् एक महान दूरदर्शी राष्ट्रनिर्माता थे। उन्होंने अपने आश्रित कवियों को काम दिया, वह काम जो संकट के समय राष्ट्र-जीवन में प्रेरणा का नव-संचार करता है और भावी पीढ़ियों की अमर थाती बन जाता है। उन्होंने अनेक कवियों को महाभारत तथा अन्य ग्रंथों को 'भाषा' अनुवाद करने का कार्य सौंपा और इस कार्य के लिए उन्हें दिल खोलकर धन दिया। उन आश्रित कवियों ने उनके पौरुष, दानशीलता और व्यक्तित्व का प्रशस्तिपूर्ण वर्णन किया है। गुरु गोबिन्दसिंह के दरबारी कवियों की रचनाओं मे आश्रयदाता के प्रति व्यक्त की हुई उक्तियाँ अपने मूल स्वभाव में रीतिकालीन कवियों की रचनाओं से भिन्न नहीं हैं।

---

१. हे रवि हे ससि हे करुनानिधि मेरी अबै बिनती सुन लीजै ॥
अउर न मागत हउ तुमते कछु चाहत हउ चित मैं सोई कीजै ॥
सस्त्रन सिउ अति ही रन भीतर जूझ मरौं कहि साच पतीजै ॥
संत सहाइ सदा जग माहि क्रिपा करि स्याम इहै वर दीजै ॥
(कृष्णावतार, १६००)

परन्तु दशम ग्रंथ में आए कवि नामों, श्याम, राम अथवा काल ने अपनी किसी भी रचना मे किसी लौकिक पुरुष की प्रशंसा मे एक भी शब्द नही कहा है। कृष्णावतार के रचयिता को धन की आवश्यकता नही क्योकि देश-देशान्तरो मे उसके गौरव की इतनी प्रसिद्धि है कि अपार धन तो बिना कहे ही वहा से खिचा चला आता है। अन्य किसी प्रकार की रिद्धिया-सिद्धिया वह चाहता नहीं। उसके सम्मुख तो महत् उद्देश्य है संतों की रक्षा, दुष्टो का दलन, धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश। वह अपने इष्टदेव से इन्हीं की पूर्ति का बल मांगता है—

जउ किछु इच्छ करों धन की तउ चल्यो धनु देसन देसते आवै।
अउ सब रिद्धन सिद्धन पै हमरो नहिं नैकु हीया ललचावै॥
अउर सुनो कछु जोग बिखै कहि कउन इतो तप कै तनु तावै॥
जूझ मरो रन मै तजि भै, तुम ते प्रभु स्याम इहै बरु पावै॥

(कृष्णावतार, १६०१)

गुरु गोबिन्दसिंह के दरबार मे ऐसा कौन-सा कवि है जो देश-देशान्तरों मे इतना प्रसिद्ध है कि इच्छा करते ही वहाँ से उसके लिए धन चला आता है, रिद्धियों-सिद्धियो पर उसका मन ललचाता नहीं, योग की साधनाओ की ओर जिसकी विशेष रुचि नही। वह तो भय त्यागकर धर्मयुद्ध मे जूझ मरने का ही वर प्राप्त करना चाहता है?

गुरु गोबिन्दसिंह का प्रत्येक आश्रित कवि अपनी रचना मे इस बात का उल्लेख करता है कि अमुक रचना उसने उनकी आज्ञा से रची है।[1] परन्तु दशम ग्रंथ की किसी भी रचना मे इस प्रकार की कोई पंक्ति नही है कि इसकी रचना किसी लौकिक पुरुष की आज्ञा से हुई है। चंडी चरित्र (प्रथम) के अंत मे कवि कहता है कि इसकी रचना उसने अपने कौतुक के लिए की है और चंडिका, जिस निमित्त इसकी रचना की गयी है, वही वर तुम मुझे दो—

कउतुक हेत करी कवि ने सतिसैया की कथा इह पूरी भई है।
जाहि नमित पढ़ै सुनिहै नर सो निसचै करि ताहि दई है॥ ॥२३२॥
ग्रंथ सतिसैया को करिउ जा सम अवरु न कोई।
जिह नमित कवि ने कहिउ सु देह चंडका सोई॥२३३॥

---

१. ता को आयस पाइ के करण परब मैं कीन॥
भाषा अरथ विचित्र करि सुने सु कवि परवीन॥

(हंसराज)

गुरु गोविंद मन हरख ह्वै मंगल लियो बुलाइ।
शल्य परब आग्या करी लीजै तुरत बनाइ॥

(मंगल)

संवत सत्रह से अधिक बावन बीते और।
ता मै कवि कुवरेस यह कियो ग्रंथ को दौर।
गुरु गोबिंद नरिन्द है तेग बहादर नंद।
जिनते जीवत हैं सकल भूतल कवि बुध बिंद।

(कुवरेश)

कृष्णावतार में, कवि ने युद्ध-प्रसंगों का वर्णन अन्य प्रसंगों की अपेक्षा कहीं मनोयोग से विस्तृत रूप में किया है। कारण भी स्पष्ट है। उसकी रुचि युद्ध में है (धर्म युद्ध में) और इसी युद्ध-प्रेरणा के लालच से ही (किसी सांसारिक सम्पदा के लालच से नहीं) वह इतनी रुचि से युद्ध प्रसंग का चित्रण करता है—

कृष्ण जुद्ध जौ हउ कह्यो अति ही सम सनेह ॥
जिह लालच इह मै रच्यो मोहि वहै वरु देह ॥१८८६॥

दशम ग्रंथ की सभी रचनाओं में कवि ने अपनी आस्था अलौकिक शक्ति, विशेष रूप से उसके वीर रूप, के प्रति ही व्यक्त की है। अन्य दरबारी कवियों के समान उसकी कृतज्ञता किसी लौकिक पुरुष के प्रति व्यक्त नहीं करता। वह विचित्र नाटक (आत्मकथा) में ग्रंथ का प्रारम्भ करते समय कहता है—

नमस्कार स्री खड्ग को करौ सु हितु चितु लाइ ॥
पूरण करौ ग्रंथ इह तुम मोहि करहु सहाइ ॥१॥

कृष्णावतार के गोपी-उद्धव संवाद प्रसंग की समाप्ति को वह 'खड्गपान' की कृपा का फल मानता है—

खड्गपान की कृपा ते पोथी रची बिचार
भूल होइ जहँ तहँ सु कबि पढीअहु सभै सुधार

चंडी चरित्र (प्रथम) के प्रारम्भ में वह 'कृपा सिंधु' की कृपा की आकांक्षा करता है—

कृपासिंधु तुमरी कृपा जे कछु मोपरि होइ ॥
रचो चंडका की कथा बाणी सुभ सभ होइ ॥२॥

रामावतार की समाप्ति पर वह कहता है कि 'भगवद्-कृपा' से ही उसने उस ग्रंथ को पूर्ण किया है—

साध असाध जानो नहीं बाद सुबाद बिवाद ॥
ग्रन्थ सकल पूरण कियो भगवत कृपा प्रसादि ॥८६२॥

इसी प्रसंग में अपने इष्टदेव से प्रार्थना करता हुआ वह अपना वास्तविक नाम भी प्रकट करता है—

सगल दुआर को छाडि कै गह्यो तुम्हारो दुआर ॥
बाँहि गहे की लाज अस गोबिन्द दास तुम्हार ॥८६४॥

चरित्रोपाख्यान में आरम्भ ४८ पदों में 'काल पुरुष' की नारी शक्ति 'कालि' की स्तुति करता है और उसी का ध्यान कर यह ग्रन्थ-रचना का प्रारम्भ करता है—

प्रिथम ध्याइ स्री भगवती बरनौ त्रिया प्रसंग ॥
मो घट मैं तुम ह्वै नदी उपजहु बाक तरंग ॥८४६॥

चरित्रोपाख्यान में अनेक संकेत इस प्रकार के मिलते हैं जिनके आधार पर यह बड़ी सरलता से निश्चित किया जा सकता है कि इस ग्रंथ के रचयिता गुरु गोबिन्दसिंह ही हैं। निम्नलिखित संकेत इस मत की पुष्टि करते हैं—

उनचासवें उपाख्यान में कवि ने एक दुश्चरित्र नाइन की चर्चा की है। कवि कहता है कि उस नाइन का मूर्ख पति हमारे यहाँ पड़ा रहता और उसकी अनुपस्थिति में उसकी

पत्नी अनेक पुरुषों से सम्बन्ध रखती। जब वह घर आता तो वह (नाइन) उसकी बड़ी प्रशंसा करती और कहती कि उसका पति तो बड़ा भाग्यशाली है, इसे कलियुग की हवा तक नहीं लगी। मेरा पति तो गुरु का भक्त है और निशि-दिन ईश्वर के नाम में डूबा रहता है। यह वचन सुनकर वह मूर्ख पति फूल जाता और वह दुश्चरित्रा अपना काम किये जाती।[1]

इस उपाख्यान में कवि का यह कहना कि वह नाई सदा हमारे आश्रय में रहता था और उसकी पत्नी का उसे गुरु-भक्त बताना स्पष्ट करता है कि कथा के रचयिता 'गुरु' स्वयं हैं।

इकहत्तरवें उपाख्यान में पावटे की एक घटना का वर्णन है। पांवटे के निकट यमुना तट पर 'कपाल मोचन' नामक एक तीर्थ-स्थान है। तीर्थ-स्थान के निकट ही लोग मलमूत्र कर देते थे। गुरु ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि ऐसे लोगों की पगड़ियां उतार ली जाएँ जो तीर्थ-स्थान की पवित्रता की अवहेलना करते हैं। इस उपाख्यान का वर्णन लेखक ने प्रथम पुरुष में इस प्रकार किया है—

नगर पावटा बहु बसै सारमौर के देस ॥
जमुना नदी निकटि बहे जनुकपुरी अलिवेस ॥१॥
नदी जमुन के तीर मैं तीरथ मुचन कपाल ॥
नगर पांवटा छोरि हम आए तहां उताल ॥२॥

खिलत अखेटक सूकर मारे ॥ बहुते मृग और हनि डारे ॥
पुनि तिह ठां को हम मगु लीनो ॥ या तीरथ के दरसन कीनो ॥३॥

तहां हमारे सिक्ख सभ अमित पहुंचे आइ ॥
तिनें दैन को चाहिये जोरि भलो सिर पाइ ॥४॥
नगर पांवटे बूरियें पठए लोक बुलाइ ॥
एक पाग पाई नहीं निहफल पहुँचे आइ ॥५॥

मोलहि एक पाग नहि पाई ॥ तब ममलनि हम जियहि बनाई ॥
जाहि इहां मूतहि लखि पावो ॥ ताकी छीन पगरिया ल्यावो ॥६॥
जब प्यादन ऐसे सुनि पायो ॥ तिही भांति मिलि सभन कमायो ॥
जो मनमुख तीरथ तिह आयो ॥ पाग बिना करि ताहि पठायो ॥७॥

---

1. आनन्दपुर नाइन इक रहई ॥ नंदमती ताको जग कहई ॥
मूरख नाथ तवन को रहै ॥ त्रिय कह कछू न मुख ते कहै ॥
ताके धाम बहुत जन आवें ॥ निस दिन तासो भोग कमावें ॥१॥
सो जड़ सदा हमारे रहई ॥ ताको कछू न मुख ते कहई ॥२॥
जब कबहूं वह धाम सिधावे ॥ यौ तासों त्रिय बचन सुनावे ॥
याकह कलि की बात न लागी ॥ मेरो पिया बडो बड़भागी ॥३॥
निसुदिन सबदन गावही सम साधन को राउ ॥
मो पति गुरु को भगति है लगी न कलिकी बाउ ॥४॥
वह जड़ फूलि बचन सुनि जावे ॥ अधिक आपु कह साधु कहावे ॥
वह नारन सो निसु दिन रहई ॥ इह कुछ तिनै न मुख ते कहई ॥५॥
(दशम ग्रंथ, पृ० ८७२-७३)

राति बीच करि आठ सै पगरी लई उतारि ।।
आनि तिनै हम दीह मैं धोवनि दई सुधारि ।।८।।
प्रात सेत सभ धोइ मंगाई ।। सभ ही सिख्यन को बखवाई ।।
बची सु बेचि तुरतु तह लई ।। बाकी बची सिपाहिन दई ।।६।
बटिकै पगरी नगर को जात भए सुख पाइ ।।
भेद मूरखन ना लह्यो कहा गयो करि राइ ।।१० ।।।।१।।

इस प्रसग से स्पष्ट है कि लेखक के अनेक सिख हैं, जिन्हें वह 'सरोपाव' देना चाहता है। *पगड़िया उतारने की आज्ञा देने वाला भी स्वय है। यह घटना निस्संदेह गुरु गोबिन्दसिंह* के जीवन से सम्बन्धित है क्योंकि अनेक परवर्ती लेखको, सुक्खासिंह, सतोखसिंह आदि ने भी अपनी रचनाओं में इस घटना का वर्णन किया।

इक्कीस, बाईस और तेईसवें उपाख्यान में एक ही कथा है जिसमे एक कामातुर स्त्री द्वारा 'राय' नामक सच्चरित्र पुरुष को असफल काम-निमन्त्रण देने का वर्णन है। यद्यपि इस घटना का वर्णन कवि ने अन्य पुरुष मे किया है परन्तु 'राय' के व्यक्तित्व को जिस ढग से प्रस्तुत किया गया है और उसने अपने आत्म-परिचय मे जो कुछ कहा है उससे यह समझने में कोई सदेह नहीं रह जाता है कि वह स्वय गुरु गोबिन्दसिंह ही हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि चरित्रोपाख्यान की रचना उस काल मे हुई थी, जब अभी सिख समुदाय को खालसा का रूप नहीं दिया गया था और गुरु गोबिन्दसिंह उस समय तक 'गुरु गोबिन्द राय' थे। इन उपाख्यानों के *नायक 'राय' का नाम 'गोबिन्द राय' का ही सक्षिप्त रूप लगता है।* इस कथा का सारांश इस प्रकार है—

सतलज के किनारे काहलूर मे आनन्दपुर एक नगर था। वहां 'राय' नामक एक पुरुष रहता था। दूर-दूर से उसके *सिख आते थे और मुंह मागा वर पाते थे।* नूरकुंवर नाम की एक धनवती स्त्री उस नगर मे आई। 'राय' को देखकर वह कामातुर हो उठी। उसने मगन दास नाम के एक व्यक्ति को कुछ धन देकर राय को उसके घर लाने के लिए कहा। धन के लोभ मे मगनदास ने *राय के पास जाकर कहा कि तुम जिस मत्र को सीखना चाहते* हो वह मेरे हाथ में आ गया है, तुम मेरे साथ चलो। राय ने मन मे भगवती का स्मरण किया और वेश बदलकर उसके साथ हो लिया। उसे देखकर उस स्त्री ने फूल, पान और शराब का प्रबन्ध किया और सुन्दर *शृंगार करके उसके पास आई। स्त्री ने उसके सम्मुख* काम-प्रस्ताव रखा तो राय के मन मे बड़ी चिंता हुई। उसने सोचा मैं तो मत्र लेने आया था, यह तो कुछ और हो निकला। उसके मन मे धर्म का प्रबल भाव जाग्रत हुआ और उसने उस स्त्री से कहा कि *तुम्हारा प्रस्ताव मानकर और धर्म का त्याग करके मैं नरक का* भागी नहीं बनना चाहता।[1] मेरी ब्याहता पत्नी है। उसे छोड़कर मैं तुम्हारे साथ भोग कैसे

---

१. *धरम करे हम जनम धरम ते रूपहि पैये ॥*
धरम करे धन धाम धरम ते राज सुहैयै ॥
कइयो तुहारो मानि धरम कैसे के छोरों ॥
महां नरक के बीच देह अपनी क्यों बोरौ ॥१६॥
(दशम ग्रंथ, पृ० ८३१)

करूं ?[1] उस स्त्री के आग्रह करने पर उसने कहा—तुम मेरे पव पड़ती हो, मुझे पूज्य कहती हो। मुझी पर रीझ कर काम-प्रस्ताव करते तुम्हें लज्जा नहीं आती।[2]

नृपकुंवर अपने आग्रह पर डटी रही और अनेक प्रकार के तर्क देकर उन्हें काम-केलि के लिए प्रेरित करती रही। राय ने कहा—एक तो ईश्वर ने मुझे क्षत्री कुल में जन्म दिया, दूसरे मेरे कुल को अधिक प्रतिष्ठा दी। और मैं लोगों के बीच बैठकर अपने आपको पूज्य कहलाता हूं। यदि मैं तुम्हारे साथ संभोग करूं तो नीच कुल में मेरा जन्म होगा।[3]

परन्तु वह स्त्री तो कामान्ध होकर काम का आग्रह करती ही रही। राय ने कहा—मेरे पास तो देश-देशान्तर से स्त्री-पुरुष आते हैं। लोग मुझे गुरु मानकर शीश झुकाते हैं और *मनवांछित वर प्राप्त करते हैं। मैं अपने सिखों को पुत्र और स्त्रियों को पुत्री मानता* हूं। हे सुन्दरी, कहो, मैं तुम्हारे साथ भोग कैसे करूं ?"[4]

कामान्ध नृपकुंवर जब अपने मन्तव्य में सफल न हुई तो उसने राय को लांछित कर देने का भय दिखाया। राय पर उस सबका भी कुछ प्रभाव न हुआ और राय उसके मायाजाल को सफलतापूर्वक तोड़कर निकल आये।

इस उपाख्यान में 'राय' के चरित्र को देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, वह गुरु गोबिन्दसिंह के अतिरिक्त और कोई नहीं। आनन्दपुर में उसका रहना, दूर-दूर के उसके शिष्यों का आना, सब का उसे गुरु मानकर पूजना, अपनी स्थिति का उसे भली प्रकार बोध होना आदि बातें इस मत की पुष्टि करती हैं। अन्यथा गुरु गोबिन्दसिंह के ही जीवनकाल में, उन्हीं द्वारा बसाए नगर में इतना प्रभावशाली व्यक्ति कौन हो सकता है ?

इसी प्रकार सोलहवें चरित्र में एक कामान्ध स्त्री द्वारा गुरु को काम-निमन्त्रण देने का वर्णन है। इस कथा में भी नायक का नाम 'राय' है और इसे अन्य पुरुष में लिखा गया

---

१. कह्यो तुहारो मानि भोग तोसों नहिं करि हौं॥
कुलि कलंक के हेत अधिक मन भीतर डरि हौं॥
छोरि ब्याहता नारि केल तोसों न कमाऊं॥
धरम राज की सभा ठौर कैसे करि पाऊं॥१७॥
(दशम ग्रंथ, पृ० ८३६)

२. पाइ परत मोरे सदा पूज कहत हैं मोहि॥
तासों रीझ रम्यो चहत लाज न आवत तोहि॥१६॥
(दशम ग्रंथ, पृ० ८३६)

३. प्रथम छत्रि को धाम दियो विधि जनम हमारो॥
बहुरि जगत के बीच कियो कुल अधिक उजियारो॥
बहुरि सभन में बैठि आप को पूज कहाऊं॥
हौं रमौं तुहारे साथ नीच कुल जनमहि पाऊं॥३२॥
(दशम ग्रंथ, पृ० ८४०)

४. बाल हमारे पास देस देसन त्रिय आवहि॥
मन बांछत वर मागि जानि गुरु सीस झुकावहि॥
सिख्य पुत्र त्रिय सुता जानि अपने चित धरिये॥
हो कहु सुन्दरि तिह साथ गवन कैसे करि करिये॥५४॥
(दशम ग्रंथ, पृ० ८४२)

है किन्तु कथा के अंत में अन्य पुरुष उत्तम पुरुष में बदल जाता है जिससे यह प्रकट होता है कि लेखक स्वयं इस कथा का नायक है—

तवै राय ग्रह आय सुप्रण ऐसो कियो।
भले जतन सो राखि धरम अब मैं लियो।
देस देस निज प्रभु की प्रभा बिखेरि हौं।
हौं आनि त्रिया कहु बहुरि न कबहु हेरि हौं।
वहै प्रतिज्ञा तदिन तें व्यापत मो हिय माहि॥
ता दिन ते परनारि को हेरत कबहु नाहि॥५०॥१॥

(दशम ग्रंथ, पृ० ८३३)

ग्रंथ की समाप्ति पर लेखक श्री 'असिकेतु' से वर याचना करता हुआ ग्रंथ-रचना की तिथि, स्थान आदि की सूचना इस प्रकार देता है—

हमरी करो हाथ दै रक्षा॥ पूरन होइ चित्त की इच्छा॥
तव चरनन मन रहै हमारा॥ अपना जान करो प्रतिपारा॥३७७॥
हमरे दुस्ट सभै तुम घावहु॥ आप हाथ दै मोहि बचावहु॥
सुखी बसै मेरो परिवारा॥ सेवक सिख्य सभै करतारा॥३७८॥
मो रच्छा निजु कर दै करियै॥ सभ बैरिन को आज संघरियै॥
पूरन होइ हमारी आसा॥ तोरि भजन की रहै पियासा॥३७९॥
तुमहि छाडि कोई अवर न ध्याऊँ॥ जो वर चाहौं सु तुमते पाऊँ॥
सेवक सिख्य हमारे तरियहि॥ चुनि चुनि सत्रु हमारे मारियहि॥३८०॥

(दशम ग्रंथ, पृ० १३८६)

अब मेरी रच्छा तुम करो॥ सिख्य उबारि असिख्य सघरो॥
दुस्ट जिते उठवत उतपाता॥ सकल मलेच्छ करो रण घाता॥३९६॥

(दशम ग्रंथ, पृ० १३८७)

खड्गकेत मैं सरन तिहारी॥ आपु हाथ दै लेहु उबारी॥
सरब ठौर मो होहु सहाई॥ दुस्ट दोख ते लेहु बचाई॥४०१॥
संबत सत्रह सहस भणिज्जै॥ अरध सहस फुनि तीन कहिज्जै॥
भाद्रव सुदी अस्टमी रविवारा॥ तीर सतुद्रव ग्रंथ सुधारा॥४०५॥

(दशम ग्रंथ, पृ० १३८८)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रंथ की रचना सं० १७५३ वि० में सतलुज नदी के तट पर (आनन्दपुर) में हुई। रचयिता अपने हृदय की इच्छा की पूर्ति के लिए ईश्वर से वर माँगता है। उसके अनेक सेवक और सिख हैं, जिनकी रक्षा के लिए वह याचना करता है। साथ ही उत्पात करने वाले अपने शत्रुओं, दुष्टों और मलेच्छों की मृत्यु वह रणक्षेत्र में माँगता है। 'खड्गकेतु' के अतिरिक्त वह अन्य किसी की शरण नहीं लेता।

इन उद्धरणों से किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता कि सं० १७५३ वि० में सतलुज नदी के तट पर मलेच्छों को युद्ध की चुनौती देने और अपने इष्टदेव से उनके नाश की प्रार्थना करने वाला सिखों का गुरु कौन था।

इन सभी प्रमाणों और उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि दशम ग्रंथ में संगृहीत सभी रचनाएँ किसी आश्रित कवि की नहीं, स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा रचित हैं। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने ही अपनी कुछ रचनाओं में श्याम, राम और काल उपनामों का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में कहा यह जाता है कि उनकी माता गूजरी उन्हें श्याम और राम नामों से पुकारा करती थीं। षष्ठ गुरु हरिगोबिन्द गुरु गोबिन्दसिंह के पितामह और माता गूजरी के श्वसुर थे। भारतीय महिलाएँ अपने पतिगृह के ज्येष्ठ पुरुषों का नाम नहीं लिया करतीं। गुरु हरिगोबिन्द और गुरु गोबिन्दसिंह में 'गोबिन्द' शब्द उभय होने के कारण माता गूजरी उन्हें श्याम या राम नाम से सम्बोधित किया करती थीं। सभी रचनाओं में श्याम नाम अधिक मिलता है और वह गोविन्द का समानार्थक भी है। सम्भव है इसी कारण गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी कुछ रचनाओं में इन नामों का प्रयोग किया हो।

४

रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

विचित्र नाटक

दशम ग्रंथ में 'आत्मकथा' तथा सभी अवतार-कथाओं को विचित्र नाटक कहा गया है और इन सभी रचनाओं में प्रकरणांत मे—'इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे'''धिआइ समापत सुभ मस्त' लिखा हुआ है। इस प्रकार कवि की आत्मकथा, विष्णु के चौबीस अवतार, ब्रह्मा के सात और रुद्र के दो अवतार मिलकर विचित्र नाटक ग्रन्थ का निर्माण करते हैं। परन्तु जहा अन्य सभी अवतार-कथाओं को अपने स्वय के अभिधान भी प्राप्त हैं जैसे—

'इति स्री बचित्र नाटक ग्रन्थ कृस्नावतारे' 'अथवा—'इति स्री बचित्र नाटक ग्रन्थ रुद्रावतार प्रबन्ध' आदि उस प्रकार का कोई स्वतंत्र अभिधान आत्मकथा अंश के लिए नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ है कि दशम ग्रन्थ के अध्ययन में जहा अन्य अवतार कथाओं को रामावतार, कृष्णावतार अथवा रुद्रावतार नाम से जाना जाता है वहा केवल गुरु गोबिन्दसिंह के आत्मकथा भाग को ही विचित्र नाटक कहा जाता है।

कुछ विद्वानों ने इस भाग को 'अपनी कथा' का अभिधान दिया है। यह नाम कदाचित इस ग्रंथ के षष्ठ अध्याय की इस पंक्ति से चुना गया है—

> अब मैं अपनी कथा बखानौ ॥
> तप साधन जिह बिधि मुहि आनौ ॥[1]

विषय की दृष्टि से उपयुक्त होते हुए भी, व्यवहार की दृष्टि से इस अभिधान की विशेष आवश्यकता ज्ञात नहीं होती। गुरु गोबिन्दसिंह की आत्मकथा के लिए 'विचित्र नाटक' नाम का व्यवहार लोकप्रिय हो चुका है। गुरमुखी और देवनागरी लिपि में इस ग्रंथ के अनेक प्रकाशन इसी नाम से हुए भी हैं, इसलिए इस अध्ययन मे भी आत्मकथा खण्ड के लिए 'विचित्र नाटक' अभिधान ही रहने दिया गया है।

नाम की सार्थकता

आत्मकथा और अवतारो की कथा के लिए 'विचित्र नाटक' नाम बहुत सार्थक है। सृष्टि के कर्ता कालपुरुष का यह नाटक विचित्र ही है कि वह संसार में अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के तत्त्वों को जन्म देता है, उनमें संघर्ष उत्पन्न करता है, कुछ समय के लिए बुरे तत्त्व अधिक शक्तिशाली होकर अच्छे तत्त्वों को दबा देते हैं और तब किसी महापुरुष या अवतार

१. दशम ग्रन्थ, पृ० ५४।

का जन्म होता है जो अच्छे तत्वों को संगठित कर बुरे तत्वों का विनाश करता है। इस क्रिया की सबसे बड़ी विचित्रता तो यह है कि कालपुरुष जिस व्यक्ति को बुरे तत्वों के विनाश के लिए अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजता है कभी-कभी वही व्यक्ति मार्ग-च्युत होकर विपरीत दिशा में काम करने लगता है और तब कालपुरुष उसे भी दण्डित करता है।

संसार का चक्र कालपुरुष के लिए तो एक नाटक ही है। चण्डी चरित्र (प्रथम) में गुरु गोविन्दसिंह ने इसे उसका 'तमाशा' कहा है—

बैर बढाइ लराइ सुरासुर,
आपहु देखत बैठ तमासा।[1]

यह सपूर्ण कथा तो विचित्र है ही, गुरु गोविन्दसिंह के अपने जन्म और जीवन की कथा भी कुछ कम विचित्र नहीं है। विचित्र नाटक के आत्मकथा अश का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

इस खण्ड मे कुल १४ अध्याय और ३७० छन्द हैं।

प्रथम खण्ड में गुरु गोविन्दसिंह ने अपने इष्टदेव 'श्री काल जी' की स्तुति की है। जैसा कि इसी अध्ययन के भक्ति-भावना अध्याय मे स्पष्ट किया गया है कि युद्ध-भावना की उत्तेजना के लिए गुरु गोविन्दसिंह ने ईश्वर के वीर प्रतीक ही अधिक चुने। परम्परा के चले आये ईश्वर के युद्धवाची कुछ नाम उन्होंने यथावत् ग्रहण कर लिए, जैसे—महाकाल, रुद्र तथा पुराण वर्णित युद्ध-अधिष्ठात्री भगवती या चण्डी। तथा अपनी आवश्यकतानुसार कुछ नये नामों का निर्माण भी उन्होंने कर लिया। उनकी दृष्टि मे खड्ग और खड्ग-पाणि में कोई अन्तर नहीं है। इसलिए आत्मकथा का प्रारम्भ खड्ग की स्तुति से होता है—

नमस्कार श्री खड्ग को करौ सुहित चितु लाइ॥
पूरण करौ ग्रंथ इह तुम मुहि करहु सहाइ॥

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि साधारणत. सभी विचारों एव रसों के कवि अपने ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की स्तुति करते आये हैं और वे वीणापाणि से ही इस प्रकार का वरदान मागते रहे हैं, किन्तु गुरु गोविन्दसिंह ने इस कार्य के लिए भी खड्ग, खड्ग-पाणि या भगवती का ही स्मरण किया है।

दूसरे छन्द मे कवि ने काल रूप तेग की स्तुति करते हुए लिखा है—

खग खंड बिहड खल दल खड अति रण मड बरबड॥
भुज दड अखड तेज प्रचड जोति अमंड भानु प्रभ॥
सुख सता करणं दुरमति दरणं किलबिख हरणं असि सरणं॥
जय जय जग कारण सृष्टि उबारण मम प्रतिपारण जय तेग॥२

इस छन्द मे इष्ट के निम्न गुण द्रष्टव्य हैं—

१. टुकड़े करने वाला।
२. शत्रु-दल का नाश करने वाला।

---

१. दशम ग्रन्थ, पृ० ७४

३. युद्ध को सुसज्जित करने वाला ।
४. प्रखड भुजदण्डों वाला, शक्तिमान् ।
५. प्रचड तेजयुक्त । सूर्य की ज्योति को फीका कर देने वाला ।
६. सतों के सुख का कारण ।
७. दुष्टों के दमन का कारण ।
८. पाप नष्ट करने वाला ।
९. जग की उत्पत्ति का कारण ।
१०. सृष्टि को उबारने वाला ।
११. मेरी प्रतिज्ञाओं की पूर्ति करने वाला ।

अन्तिम गुण ही कवि का अभिप्रेत गुण है । उसकी कुछ प्रतिज्ञाएं हैं । उन प्रतिज्ञाओं की पूर्ति के लिए जिस इष्ट का वरदान चाहिए वह शेष दस गुणों से सज्जित तो होना ही चाहिए । कवि की प्रतिज्ञाएं क्या हैं—

१. धर्म चलावन सन्त उबारन
दुष्ट सभन को मूल उपारन

२. सवा लाख से एक लड़ाऊं
चिड़ियों से मैं बाज तुड़ाऊं
तबै गोबिन्दसिंह नाम कमाऊं ।। आदि ।।

आत्मकथा के प्रथम अध्याय में १०१ छन्द हैं, जो विशुद्ध स्तुतिपूर्ण हैं, कथा से जिनका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

स्तुति के इन १०१ छन्दों में अधिकांश में इष्ट के वीर रूपकों का ही चित्रण हुआ है । यथा—

निरंकार नित्य निरूप निवाणं ।।
कल कारणेयं नमो खड्ग पाणं ।।३।।
कर वाम चाप्प कृपाण करालं ।।
महातेज तेज बिराजे बिसालं ।।
महादाढ़ दाढं सु सोहं अपार ।।
जिनै चर्बीयं जीव जग्यं हजारं ।।१८।।

कवि को इष्ट का रौद्र रूप इतना प्रिय है कि वह 'महादाढ़ दाढ' के बीभत्स रसोत्पादक रूप को भी अपार शोभायुक्त समझता है ।

अपनी सृष्टि को बनाना और मिटाना मानो उसका नित्य का कर्म है—

कई मेट डारे उसारे बनाए ।।
उपारे गढे फेर मेटे उपाए ।।

किन्तु उसकी इस क्रिया का भेद समझने का सामर्थ्य किसमें है—

क्रिया काल जू की किन्हूं न पछानी ।।
घन्यो पै बिहै है घन्यो पै बिहानी ।।२६।।

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी स्तुति मे इष्ट के रौद्र, भयानक और वीर रूपों को प्रमुखता देते हुए भी उसके भक्तवत्सल, पतितपावन, करुणानिधान, सौन्दर्यमूर्ति, शोभासागर आदि रूपों की ओर पूर्ण दुर्लक्ष्य नही किया। इन १०१ छन्दों मे ऐसे अनेक स्थल हैं जहां रौद्र और मोहक रूपों का या तो अद्भुत समन्वय मिलता है या करुण प्रधान गुणों की ही चर्चा मिलती है। रसावल छन्द का तैतीसवां और चौंतीसवां छन्द इष्ट के दो विभिन्न रूपों की कल्पना देता है—

रौद्र रूप—

सुभ जीभ ज्वाल ॥ सु दाढ़ा कराल ॥
बजी बंब सखं ॥ उठे नाद बखं ॥३३॥

मोहक रूप—

सुभं रूप स्यामं ॥ महा सोभ धामं ॥
छबं चार चित्रं ॥ परेयं पवित्रं ॥३४॥

फिर इसी क्रम में इष्ट के सुन्दर स्वरूप का वर्णन अनेक छन्दों मे है—

बिसाल्लाल नैनं महाराज सोहं ॥
दिगं अंसु मालं हसं कोट क्रोहं ॥३५॥
कहूं रूप धारे महाराज सोहं ॥
कहूं देव कन्यान के मान मोहं ॥
कहूं बीर ह्वं कै धरे बान पानं ॥
कहूं भूप ह्वं कै बजाए निसानं ॥३६॥

आत्मकथा के इन स्तुति छन्दों मे कहीं-कहीं आलोचना का स्वर भी है। पर यह आलोचना 'अकाल स्तुति' की आलोचना की तरह तीखी नहीं है। इस आलोचना का मुख्य स्वर यह है कि काल की शक्ति अनन्त है। उससे कोई बच नहीं सकेगा, चाहे बाह्याचारों का घेरा अपने चारों ओर डालकर कोई उससे बचने का प्रयास करे;[1] चाहे अपने चारों ओर अभेद्य दुर्गों का निर्माण कर ले; काल के कराल हाथ उसे समय पर पकड ही लेंगे।[2]

मधु कैटभ जैसे बलवान राक्षसों का काल ने दमन कर दिया। शुंभ-निशुंभ और रक्तबीज जैसे दानवों के उसने पुरजे-पुरजे कर डाले। पृथु और मान्धाता जैसे बड़े-बड़े महीप भी, जिनके अजेय रथ का चक्र सातों द्वीपों में घूमता था, काल के खड्ग से बच नहीं सके।[3]

---

१. किते नास मूंदे भए ब्रह्मचारी ॥
किते कण्ठ कंठी जटा सीस धारी ॥
किते चीर कानं जुगीसं कहायं ॥
सबै फोकटं धरम कामं न आयं ॥६१॥

२. करै कोट कोऊ धरै कोट ओटं ॥
बचैगो न कित हू करै काल चोटं ॥६४॥

३. बली प्रिथीअं मानधाता महीपं ॥
जिनै रत्थ चक्रं कियं सात दीपं ॥
भुजं भीम भरथं जगं जीत डंड्यं ॥
तिनै अन्त के अन्त को काल खंड्यं ॥६५॥

द्वीप-द्वीपों में जिनकी दुहाई बज रही थी, अपने भुजदण्डों के ज़ोर से जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया, ऐसे कोटियों यज्ञ करने वाले (परशुराम) को भी बली काल ने जीत लिया।[1]

जिन्होंने कोटि युगों तक शासन किया, संसार के सभी रसों का भली प्रकार भोग किया, वही अन्त को यहां से नंगे पांव चले गये, दीन होकर गिरे देखे गये क्योंकि हठी काल ने उन्हें भी नहीं छोड़ा।[2]

काल की इस अमित और अजित शक्ति का वर्णन गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं पर सर्वत्र छाया हुआ है। गुरु गोबिन्दसिंह का स्तुतिपरक रूप एक निर्लेप, संसार-त्यागी, विरक्त भक्त का रूप नहीं है। गुरु गोबिन्दसिंह की सभी रचनाओं पर उनकी सामयिक आवश्यकता छायी हुई है। उनकी भक्ति-भावना भी इससे अछूती नहीं। वे अपने युग के एक महान शक्तिशाली सम्राट के विरुद्ध खड़े हुए हैं। उन्होंने उस जनता का नेतृत्व ग्रहण किया था जो शताब्दियों से पददलित थी, अशक्त और निराशाग्रस्त थी और दिल्ली के सम्राट को जो अजेय समझ बैठी थी। दिल्लीश्वर, जगदीश्वर का रूप ले बैठा था। ऐसे समय उस निराश, असंगठित और दलित जनता को ऐसे ईश्वर की कल्पना से सुसज्जित करना आवश्यक था जो केवल सौन्दर्य-मूर्ति नहीं है वरन् *कालरूप भी है। वस्तुतः उन्हें सौन्दर्य-मूर्ति से काल*-मूर्ति की अधिक आवश्यकता थी। फिर उस कालमूर्ति के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध किया कि पृथु, मान्धाता और भरत जैसे महान शक्तिशाली महीपों को चुटकी बजाते उसने अपने पंजे में जकड़ लिया। मधु कैटभ और शुंभ-निशुंभ जैसे दैत्यों को उसने पल-मात्र में नष्ट कर दिया। सम्पूर्ण पृथ्वी को २१ बार क्षत्रिय-विहीन करने वाले परशुराम जैसे महापराक्रमी भी उस काल के सम्मुख क्षणभर भी नहीं टिक सके। *जब करोड़ों वर्षों तक पृथ्वी पर* शासन करने वाले सम्राट अन्त समय दीन-हीन होकर पृथ्वी पर पड़े देखे गये या नंगे पांव जाते देखे गये, काल के हठी हाथों से वे नहीं बच सके तो आज का दिल्लीश्वर भला उस *कालशक्ति के सम्मुख कितनी देर टिकेगा?*

विजित जनता में आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि उसे विजेता की शक्तिहीनता का परिचय कराया जाये। उसमें यह भाव उत्पन्न किया जाये कि उनका शत्रु अजेय नहीं है। और गुरु गोबिन्दसिंह के ये छन्द बड़ी सफलतापूर्वक इस भाव को अभिव्यक्ति करते हैं।

---

१. जिनै दीप दीपं दुहाई फिराई॥
भुजा दण्ड दै छोडि छत्रं छिनाई॥
करे जग्य कोटं जसं अनेक लीने॥
वहै बीर बंके बली काल जीते॥६६॥

२. जिनै पाति साही करी कोट जुग्यं॥
रसं आन ररसं भली भांति भुग्यं॥
वहै अन्त को पाव नांगे पधारे॥
गिरे दीन देखे हठी काल मारे॥६८॥

फिर गुरु गोबिन्दसिंह का इष्ट, वह काल शक्ति तो राम, कृष्ण, नरसिंह या वामन आदि सभी अवतारों से कहीं अधिक शक्तिशाली है। ये सब अवतार भी समय पाकर काल-कवलित हो जाते हैं—

जिते राम हूए ।। सबै अन्त मूए ।।
जिते कृष्ण ह्वै हैं ।। गबै अन्त जै हैं ।।७०।।
नरसिंहावतारं ।। वहै काल मारं ।।
बड़ो दड धारी ।। हृरिओ काल भारी ।।७३।।

और इन सब का निष्कर्ष उनकी इन पंक्तियों में है कि उस काल-रूप अकाल पुरुष की शरण ग्रहण किये बिना और कोई उपाय नहीं चाहे वह देव हो या दैत्य, राजा हो या रंक।[1]

इसीलिए गुरुजी अपने अनुयायियों को उस रूप का उपासक होने की प्रेरणा देते हैं; जिसके हाथ में कृपाण है, जो काल है[2] और फिर वे स्वयं बड़ी तन्मयतापूर्वक उस रूप की उपासना में रत हो जाते हैं—

नमो देव देव नमो खड्गधार ।।
सदा एक रूप सदा निर्विकार ।।८५।।
नमो बाण पाणं ।। नमो निर्भयाणं ।।
नमो देव देवं ।। भवाणं भवेम ।।८६।।
नमस्कारयं मोरं तीरं तुफगं ।।
नमो खग अदग्गं अभेयं अभंगं ।।
गदायं गरिष्टं नमो सैहथीयं ।।८८।।

आत्मकथा के प्रथम अध्याय, स्तुति खंड के अन्तिम दस सवैया छन्दों की ध्वनि भुजंग प्रयात, रसावल और नराज छन्दों में वर्णित स्तुति की अपेक्षा अधिक विनय और निवेदन भरी है। अन्य छन्दों में इष्टदेव काल की अपराजेय शक्ति, उसका संसार, उसके सम्मुख बड़े-बड़े दैत्यों, दानवों, देवताओं और महाराजाओं की नगण्यता का बड़ा दर्पपूर्ण चित्रण है। परन्तु इन पदों में कवि की अपनी विनय मुखरित हुई है। यद्यपि इष्ट वही कालपुरुष है, कृत्य भी उसके वैसे ही हैं, किन्तु भाषा में दर्प की अपेक्षा विनय अधिक है। प्रथम पद इस प्रकार है—

मेरु करो तृणते मुहि जाहि,
गरीब निवाज न दूसर तोसो ।।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन,
भूलन हार कहू कोऊ मोसो ।।

---

१. बिना सरन ताको न अउरे उपायं ।।
कहा देव दैतं कहा रंक रायं ।।७६।।

२. कृपाण पाण जे जपै ।। अनन्त थाट ते थपै ।।
जितेक काल ध्याइ हैं ।। जगति जीति जाइ हैं ।।७८।।

सेव करी तुमरी तिनके सभ,
हौ गृह देखियत द्रव्य भरोसो ॥
या कल मे सब काल कृपाण के,
भारी भुजान को भारी भरोसो ॥६२॥

ईश्वर के इस काल रूप के गुरु गोबिन्दसिंह उपासक क्यों हैं, यह इनके इन पदों में भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है। जो साहिब शुभ-निशुभ, धूम्रलोचन, चड और मुड, महिषासुर, चामर, रक्तबीज आदि विकराल दैत्यों को क्षणभर मे नष्ट कर देता है, उसका भरोसा पाकर इस दास को भला किसी की परवाह रह जाती है।[1]

द्वितीय अध्याय मे ३६ छन्द हैं और दोहा चौपाई छन्द का उपयोग हुआ है। प्रथम आठ छन्दों (एक दोहे और सात चौपाइयों मे) इष्टदेव की पुनस्तुति है—

मूक उचरै शास्त्र खट पिंग गिरन चढि जाइ ॥
अन्ध लखै बधरो सुनै जो काल कृपा कराइ ॥८

नवें छन्द मे कथा प्रारम्भ का उल्लेख है—

प्रथम कथा सक्षेप ते कहो सु हितु चितु लाइ ॥
बहुर बडो बिसथार कै कहि हौं सभो सुनाइ ॥६

फिर सृष्टि की उत्पत्ति से कथारम्भ होती है। काल-ब्रह्म ने ओंकार शब्द के उच्चारण से सृष्टि उत्पन्न की और अपना प्रसार किया।[2] ओंकार से सृष्टि की उत्पत्ति की ओर संकेत गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी रचना 'अकाल-स्तुति' में भी किया है—

प्रणवो आदि एककारा।
जल थल महीअल कीओ पसारा ॥१॥

आगे भी कथा पूर्णरूप से पुराणाधारित है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति, दैत्यों की उत्पत्ति, उनका विनाश, देवताओं और असुरों की परिभाषा[3] आदि दी गई है। इस सब वर्णन से गुरु गोबिन्दसिंह अपने वश, सोढ़ी वश, को पूर्व-परम्परा से सूत्रबद्ध करना चाहते हैं—

अब मैं कहौं सु अपनी कथा ॥
सोढि वश उपजया यथा ॥८॥

सक्षेप मे सोढी वश की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी गई है। दक्ष प्रजापति की चार पुत्रियों, वनिता, कद्रू, दिति और अदिति का विवाह कश्यप ऋषि से हुआ। अदिति से सूर्यादि सभी देवताओं का जन्म हुआ और सूर्य से सूर्यवश की परम्परा प्रस्थापित हुई। उसी

१. सुंभ निसुंभ से कोट निसाचर, जाहि छिनेक बिखे हन डारे ॥
धूमरलोचन चंड औ मुंड से माहखा से पलबीच निवारे ॥
चामर से रणचिच्छर से, रकतिच्छन से झट दै झकझारे ॥
ऐसो सु साहिब पाइ कहा, परवाह रही इह दास तिहारे ॥६३॥

२. प्रथम काल सब करा पसारा ॥ ओंकार ते सृष्ट उपारा ॥

३. साधु कर्म जे पुरख कमावै ॥ नाम देवता जगत कहावै ॥
कुकृत कर्म जे जग मैं करहीं ॥ नाम असुर तिनको सब धरहीं ॥२५॥

वंश में रघु नाम के एक राजा हुए। उनके वंशानुयायी रघुवंशीय कहलाए। उनके पुत्र अज थे जो बड़े महारथी और धनुर्धारी थे। जब उन्होंने वानप्रस्थाश्रम स्वीकार किया तो अपना राजपाट दशरथ को दे गये। वे भी महाधनुर्धारी थे। उन्होंने तीन स्त्रियों से विवाह किया, जिनसे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न पुत्र उत्पन्न हुए। इन्होंने भी बहुत समय तक राज्य किया, फिर समय पाकर स्वर्गपुरी सिधार गये।

फिर सीता के पुत्र लव और कुश राजा हुए। उन्होंने मद्र देश (पंजाब) की राजकुमारियों से विवाह किए। इन दोनों ने इस प्रदेश में दो नगर बसाये। एक का नाम कुशपुर (कसूर) और दूसरे का नाम लवपुर (लाहौर) हुआ। ये दोनों ही पुरियां बड़ी ही सुन्दर थीं जिन्हें देखकर इन्द्रपुरी भी लजा जाती थी।

उन्होंने (लव-कुश) भी बहुत समय तक राज्य किया और अन्त में काल के जाल में फंस गए। उनके जो पुत्र-पौत्र हुए वे भी बहुत समय तक संसार पर राज्य करते रहे।

इसी वंश परम्परा में कुश-वंशीय, कसूर का शासक कालकेतु और लववंशीय लाहौर का शासक कालराय हुए। उनके भी आगे चलकर अगणित पुत्रादि हुए। कालकेतु बड़ा बली था। उसने कालराय को (लाहौर) नगर से निकाल दिया। वह (कालराय) भागकर सनौढ देश[1] में चला गया और वहां के राजा की कन्या से उसने विवाह कर लिया। उस सम्बन्ध से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम 'सोढिराय' रखा गया। उसके वंशज सोढी कहलाए। वे जगत् में बड़े प्रसिद्ध हुए और उन्होंने अपने राज्य में धन-धान्य की वृद्धि की। उन्होंने राजसूय यज्ञ किए और अनेक देशों को जीता। फिर उस वंश में भी विषाद बढ़ गया।

तृतीय अध्याय

लाहौर से निष्कासित लववंशीय अपने राज्य को कुशवंशियों से प्राप्त करने के लिए युद्ध-सन्नद्ध हुए। दोनों वंशों के सैनिकों में भयानक युद्ध हुआ, जिसमें लववंशीय विजयी हुए और कुश वंशीय पराजित होकर राजपाट त्यागकर काशी वेदाध्ययन के लिए चले गए।

चतुर्थ अध्याय

कुशवंशियों ने काशी जाकर वेदाध्ययन किया और वे वेदी कहलाए। उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हुई, उनकी प्रसिद्धि सुनकर लाहौर के लववंशीय सोढी शासक ने उन्हें अपने यहाँ निमंत्रित किया। सोढियों का निमन्त्रण पाकर सभी वेदी काशी से मद्र देश (पंजाब) आये और उन्होंने राज्यसभा में सभी वेदों का पाठ किया और उनके अर्थ समझाये। सोढी राजा यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उस ज्ञान-चर्चा से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपना राजपाट वेदियों को दे दिया और आप वनवास ग्रहण कर लिया।

वेदियों का प्रमुख राज्य पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोढी को वरदान दिया कि कलयुग में जब हम गुरु नानक के रूप में जन्म लेंगे तो तुम्हें अपना अर्जित, पूज्य और परम

१. मथुरा-भरतपुर से लेकर अमर कोट तक का प्रदेश : महान् कोष० पृ ४५५

पद प्रदान करेंगे। अर्थात् इस समय सोढ़ियों ने वेदियों को राज्य दिया, उस समय वेदी सोढ़ियों को धर्म की गद्दी प्रदान करेंगे।[1] तुमने तीन वेदों को शान्त चित्त से सुना और चौथा वेद सुनते ही अपना राज्य दे दिया। इसी प्रकार हम भी तीन जन्म धारण करके (गुरु नानक, गुरु अंगद और गुरु अमरदास) चौथे में तुम्हें गुरु बना देंगे।[2]

पंचम अध्याय

आगे चलकर वेदियों में कलह उत्पन्न हो गयी और उन्होंने अपना राज्य खो दिया। अवस्था ऐसी आ गयी कि सभी वर्णों के लोग अपना-अपना काम छोड़कर दूसरे के काम करने लगे। वेदियों के पास कुल बीस गाँव रह गये, जिसमें वे कृषि कार्य करके जीवन-निर्वाह करने लगे। इस प्रकार बहुत दिवस बीत गये और नानक के जन्म का समय आ गया। उन्हीं वेदियों के कुल में नानक राय का जन्म हुआ, जिन्होंने अपने शिष्यों को सुख दिया और सर्वत्र उनके सहायक हुए। उन्होंने कलयुग में धर्म की स्थापना की और सब साधुओं का मार्गदर्शन किया। जो भी इस मार्ग पर आये वे पाप द्वारा कभी नहीं सताये गये।[3]

नानक ने अंगद का शरीर धारण किया और इस संसार में धर्म का प्रचार किया। फिर वे तृतीय गुरु अमरदास के नाम से प्रसिद्ध हुए, मानो एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया गया।[4]

अब कुशवंशीय वेदियों का लववंशीय सोढ़ियों को दिये गये वरदान का समय आ गया, तब तीसरे गुरु अमरदास ने सोढ़ीवंशीय रामदास को चतुर्थ गुरु निर्धारित कर दिया।[5]

गुरु नानक का रूप अंगद में माना गया और गुरु अमरदास में गुरु अंगद की पहचान हुई। अमरदास ही फिर रामदास के नाम से विख्यात हुए। इस भेद को साधुओं ने तो समझ लिया पर मूर्ख इसे नहीं समझ सके। रामदास अर्जुन को गुरुत्व प्रदान कर हरिपुर सिधार गये। परलोक सिधारते समय अर्जुन अपना स्थान हरिगोविन्द को दे गये। हरिगोविन्द ने प्रभुलोक जाने के पूर्व स्थान हरिराय को दिया, फिर उसके पुत्र हरिकृष्ण हुए और उनके पश्चात् गुरु स्थान पर तेगबहादुर बैठाये गये।

उन्होंने (गुरु तेगबहादुर ने) हिन्दुओं के मान बिन्दु—तिलक और यज्ञोपवीत की रक्षा की और कलियुग में अपना बलिदान दिया।

---

१. गुरु नानक वेदी वंश के थे और चतुर्थ गुरु रामदास से लेकर दशम गुरु गोविन्दसिंह तक सोढ़ी वंशीय।

२. तृतीय वेद सुनबो तुम कीआ॥ चतुरवेद सुनि भुअ को दीआ॥
तीन जनम हमहू जब धरि हैं॥ चौथे जनम गुरु तुहि करि हैं॥ ६

३. तिन वेदियन के कुल बिखे प्रकटे नानकराइ। सभ सिक्खन को सुख दए जह तह भए सहाइ॥
तिन इह कलिमो धरमु चलायो॥ सभ साधन को राहु बतायो॥
जे ताके मारगि महि आए॥ तेहि कबहू नहि पाप सताए॥ ५

४. नानक अंगद को बपु धरा॥ धरम प्रचुरि इह जगमो करा॥
अमरदास पुनि नाम कहायो॥ जन दीपक ते दीप जगायो॥ ७

५. जब बरदानि समै वहु आवा॥ रामदास तब गुरु कहावा॥ ८

षष्ठ अध्याय

प्रथम पांच अध्यायों में इस प्रकार की पृष्ठभूमि का पूर्ण विवरण देकर कवि अपना जीवन प्रारम्भ करता है—

अब मैं अपनी कथा बखानों ॥

इसमें कवि ने अपनी देह-धारण का उद्देश्य बताया है। वह बताता है कि वह पूर्व-जन्म में हेमकुण्ड पर्वत पर तपस्या-मान था, उसे अकाल-पुरुष की ओर से कलियुग में जन्म ग्रहण करने की आज्ञा हुई, उन्होंने कहा—

मैं अपना सुन तोहि निवाजा ॥
पंथ प्रचुर करबे को साजा ॥
जहाँ तहाँ तैं धर्म चलाई ॥
कुबुधि करन तें लोक हटाई ॥ २८

और तब कवि का वाच है—

ठाढ़ भयो मैं जोरि कर वचन कहा सिर निआइ ॥
पथ चलै तब जगत पै जब तुम करहु सहाइ ॥३०॥

मेरा उद्देश्य है—

जिम तिन कही तिनै तिम कहिहों ॥
और किमू तें बैर न गहिहों ॥३१॥

सप्तम अध्याय

अपने जन्म के प्रारम्भिक अश का इस अध्याय में कवि ने तीन छन्दों में ही वर्णन कर दिया है। "मेरे पिता ने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया, भांति-भांति के तीर्थ देखे। जब वे त्रिवेणी पहुँचे, हमारा प्रवेश मा के गर्भ में हुआ और पटना नगर में हमारा जन्म हुआ। कुछ समय पश्चात् हमें पंजाब (मद्र देश) में ले आये और हमें सभी प्रकार की शिक्षा दी गयी। जब हम धर्म-कर्म के योग्य हो गये तो पिता परलोक सिधार गये।

अष्टम अध्याय

इस अध्याय में गुरु गोबिन्दसिंह ने पहाड़ी राजाओं के साथ हुए अपने प्रथम युद्ध का चित्रण किया है। 'बिचित्र नाटक' में यह प्रथम स्थल है, जहाँ से ऐतिहासिकता एवं ऐतिहासिक घटनाओं का प्रारम्भ होता है। गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन का यह अंश बहुत महत्वपूर्ण है। यद्यपि उन्होंने इस काल का कहीं इस ग्रंथ में उल्लेख नहीं किया है परन्तु घटनाओं की यथार्थता ही अपना विशेष ऐतिहासिक महत्व रखती है।

नवम अध्याय

नवम अध्याय में गुरु गोबिन्द के द्वितीय युद्ध, नदौन के युद्ध, का वर्णन है। इस युद्ध के समय गुरु और पहाड़ी हिन्दू राजाओं के सम्बन्ध अच्छे थे। पहाड़ी राजाओं का मुगल राज्य को कर न चुका सकने के कारण मुगल शासक से विरोध उत्पन्न हो गया था। गुरु गोबिन्दसिंह की मैत्री ने भी उनमें विश्वास उत्पन्न कर दिया था। जब मीयां खान और

अलफ खान नाम के मुगल सरदार पहाड़ी राजाओं से कर प्राप्त करने आये तो उन्होंने गुरु की सहायता से उनसे युद्ध किया। गुरु ने स्वयं इस युद्ध में भाग लिया। मुगल सेनाएं हार कर भाग गयीं।

दशम अध्याय

इस अध्याय मे लाहौर का सूबेदार दिलावर खान अपने पुत्र को गुरु से युद्ध करने के लिए भेजता है। परन्तु वह भी पराजित होकर भाग जाता है। किन्तु भागते समय मार्ग में पड़ने वाले 'बरवा ग्राम' को उन्होंने लूट लिया। कवि ने यहाँ एक बड़ी ही मौलिक उपमा दी है। जैसे एक बनिया जो मासाहारी नहीं है पर मास के रस का आस्वादन करना चाहता है, वह किसी अन्य सब्जी के रस से मास के रस के स्वाद की कल्पना करता है[1]; उसी प्रकार गुरु पर विजय प्राप्ति की आकांक्षी उस मुगल सेना ने बरवा ग्राम लूटकर ही अपनी खीभ मिटाई।

एकादश अध्याय

इस अध्याय को कवि ने स्वयं 'हुसेनी युद्ध कथन' का शीर्षक दिया है। यह अध्याय अन्य पूर्ववर्ती अध्यायों की अपेक्षा बड़ा है। इसमें ६६ छन्द हैं।

जब दिलावर खान का पुत्र पराजित होकर भाग गया तो दिलावर खान के अन्य विश्वस्त सेनाधिकारी हुसैन खान (हुसैनी) बड़े दम्भ-सहित, सेना लेकर गुरु से तथा कर न देने वाले पहाड़ी राजाओं से युद्ध करने के लिए चल पड़ा।

भीमचन्द आदि अनेक पहाड़ी राजा हुसैनी की ओर मिल गए। गुलेरिए का राजा गुपाल (गोपाल) गुरु की सहायता से हुसैनी से लड़ा और अन्त मे विजयी हुआ। युद्ध मे हुसैनी तथा उसके अनेक सहयोगी मारे गये। मुगल सेना भाग खड़ी हुई।

द्वादश अध्याय

१२ छन्दों के इस संक्षिप्त अध्याय मे दिलावर खान अपने सरदार रुस्तम खान को गुरु के मित्र पहाड़ी राजाओं से युद्ध के लिए भेजता है। उस सेना का मुकाबला जसवाल का राजा राजसिंह करता है और उस सेना को मारकर भगा देता है।

त्रयोदश अध्याय

इस अध्याय का प्रारम्भ इस प्रकार है—

> इह बिधि सो बध भयो जुझारा ॥
> आन बसे तब धाम लुभारा ॥
> तब अउरंग मन माहि रिसावा ॥
> मद्र देस को पूत पठावा ॥१॥

पंजाब के संकटो से पीड़ित होकर औरंगजेब ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम को पंजाब भेजा। उसके आगमन से चारो ओर भय छा गया। कुछ स्वार्थी और कायर व्यक्ति गुरु का

---

१. तब बल हेर्रा न पर सकै बरवा इना रिसाइ॥
   सालिन रस जिम बानीयो रोहन खात बनाइ॥ १०

साथ छोड़कर भी भाग गये। किन्तु वे बच नहीं सके। मुगल सेनाओं ने ऐसे बहुत से कायरों का संहार कर दिया।

चतुर्दश अध्याय

शाहजादे के पजाब आगमन तक की घटनाओं का वर्णन ही इस अपनी कथा में है। अंतिम (चौदहवें) अध्याय मे कवि एक बार फिर अपने उद्देश्य आदि का वर्णन करता है। इस अध्याय में कवि अपनी रचनाओं की ओर भी संकेत करता है—

जिह जिह बिधि जन्मन सुधि आई ॥
तिम तिम कहे गरथ बनाई ॥

इसी अध्याय में एक चण्डी चरित्र के लिखे जाने की चर्चा है और दूसरे के लिखे जाने की योजना है—

प्रथमे सतजुग जिह बिधि लहा ॥ प्रथमे देवि चरित्र को कहा ॥१०॥
पहिले चण्डी चरित्र बनायो ॥ नख सिख ते क्रम भाख सुनायो ॥
छोर कथा तब प्रथम सुनाई ॥ अब चाहत फिरि करो बड़ाई ॥११॥

इस प्रकार 'विचित्र नाटक' गुरु गोबिन्दसिंह की अधूरी आत्मकथा है। इसमें उनकी ३२ वर्ष तक की आयु मे घटित घटनाओं की ही चर्चा है।

जापु

दशम ग्रंथ संग्रह की 'जापु' पहली रचना है। दशम ग्रंथ की रचनाएं, अपने रचना-काल क्रमानुसार संगृहीत नही हैं। न ही उनका संपादन आदि ग्रंथ की भांति हुआ है, फिर भी दशम ग्रंथ के संपादक भाई मनीसिंह के सम्मुख संपादन करते समय आदिग्रंथ का आदर्श अवश्य रहा होगा। आदिग्रंथ मे गुरु नानक की रचना 'जपुजी' सर्वप्रथम संगृहीत की गयी है इसी प्रकार दशम ग्रंथ के प्रारम्भ मे 'जापु' की योजना की गयी है।

'जपुजी' और 'जापु' की भावभूमि में एक मूलभूत एकता भी है। जपुजी में गुरु नानक, पहले कुछ शब्दों में अपने इष्टदेव की कल्पना देते हैं, फिर सम्पूर्ण रचना मे उसकी व्याख्या करते हैं। वे प्रारम्भिक शब्द जिन्हें सिख-मत मे मूलमन्त्र का अभिधान दिया है, इस प्रकार हैं—

१ ओंकार, सतिनाम, कर्त्तापुरखु, निरभउ, निरवैरु, अकाल मूरति, अजूनी, सैभं गुरु प्रसादि (परमेश्वर एक है उसका नाम (ही) सत्य है, वह सृष्टि का रचयिता और उसी में व्याप्त है, उसे किसी का भय नहीं, उसकी किसी से शत्रुता नहीं, उसका स्वरूप समय और मृत्यु से रहित है, वह योनियों मे नहीं पड़ता, वह स्वयं से प्रकाशित है और वह गुरु-कृपा से प्राप्त होता है।)

जपुजी का यह मूलमन्त्र सूत्रात्मक है। जापु का प्रथम छंद व्याख्यात्मक है किन्तु दोनों की अभिव्यंजना समान है। जापु के प्रथम छंद मे ब्रह्म के इस स्वरूप का वर्णन है—

चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ॥
रूप रंग अरु रेख भेख कोउ कहि न सकति किह ॥

अचल मूरति अनुभउ प्रकास अमितोज कहिज्जै ॥
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जै ॥
त्रिभुवण महीप सुर नर असुर नेत-नेत बन त्रिण कहत,
तव सरब नाम कथै कवन करम नाम बरणत सुमत ॥१॥

(वह चक्र, चिह्न, वर्ण, जाति-पात से रहित है। उसके रूप-रंग और रेखा, तथा वेश को भी कोई कह नहीं सकता। वह अचल मूर्ति है, अनुभव से प्रकाशित है और महान शक्तिशाली है। कोटियों इन्द्रों का इन्द्र और महाराजाओं का महाराजा वह गिना जाता है। त्रिलोक के राजा, देवता, मनुष्य और असुर तिनके के समान अपनी स्थिति स्वीकार कर उसे 'नेति-नेति' कहते हैं। तुम्हें सम्पूर्ण रूप से व्यक्त करने वाले सर्वनाम को कौन कहे, बुद्धिमान लोग तुम्हारे कर्म नामों का ही वर्णन करते हैं।)

अपने नाम के अनुकूल ही यह रचना विशुद्ध जपनीय है। जप का अर्थ ही है कि किसी मन्त्र या वाक्य का बार-बार, धीरे-धीरे पाठ करना। इस रचना में भक्त गुरु गोबिन्द-सिंह ने अनेक विधि से अपने इष्ट का जप किया है। जप के लिए इष्ट के कर्मों, उसके प्रभावों एवं उसके विविध रूपों की विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता नहीं पड़ती। कभी-कभी तो जप के लिए एक शब्द ही पर्याप्त होता है और साधक बार-बार उसे पुकारता हुआ अपने आप को उस शब्द में केन्द्रित कर लेता है। जप का उद्देश्य ही आत्मविस्मृति है इसलिए दीर्घ छन्दों, विभिन्न अलंकारों एवं अनेकानेक दृश्यों के वर्णन से युक्त कविता उस आत्मविस्मृति में कभी सहायक नहीं हो सकती, कदाचित बाधक बन सकती है।

जप के स्वभाव के अनुरूप 'जापु' में छोटे छन्दों का प्रयोग है। अलंकारों में अनुप्रास प्रधान है। इष्ट के विभिन्न कर्मों, रूपों और गुणों का तो स्मरण है पर मत की पुष्टि के लिए प्रमाणों को जुटाने की आवश्यकता नहीं समझी गयी।

जापु में कुल १९९ छंद हैं। कुछ एक संग्रहों में यह संख्या २०० भी है। क्योंकि भुजंगप्रयात, छन्द संख्या १८५—

नमो सूरज सूरजे नमो चंद्र चद्रे ॥
नमो राज राजे नमो इंद्र इंद्रे ॥
नमो अंधकारे नमो तेज तेजे ॥
नमो बिन्द बिन्द्रे नमो बीज बीजे ॥१८५॥

में प्रथम दो पंक्तियों को पूर्ण छन्द मान लिया गया है। जापु में प्रमुखता भुजंगप्रयात छन्द की है। प्रथम छन्द (छप्पय)—

चक्र चिह्न अरु बरन जाति''''''

के पश्चात् २७ छन्द (अर्द्ध) भुजंगप्रयात में है। दो-एक उदाहरण समीचीन होंगे—

नमस्तं अकाले नमस्तं कृपाले।
नमस्तं अरूपे नमस्तं अनूपे ॥२॥
नमो सरब खापे नमो सरब थापे ॥
नमो सरब काले नमो सरब पाले ॥२०॥

नमो सरब सोखं । नमो सरब पोख ॥
नमो सरब करता ॥ नमो सरब हरता ॥२७॥

२६ से ४३ तक चाचरी (चर्चरी या चचरी) छन्द है—
अरूप हैं ॥ अनूप हैं ॥
अजू हैं ॥ अभू हैं ॥२६॥
अिमान हैं ॥ निधान हैं ॥
त्रिबरग हैं ॥ असरग है ॥३२॥

४४ से ६१ तक पुनः (अर्द्ध) भुजंग प्रयात छन्द ।
७४ से ७८ तक चरपट छन्द ।

उदा०—अचल राजे ॥ अटल साजे ॥
अचल धरम ॥ अलख करम ॥७५॥

७६ से ८६ तक रुआल छन्द—

उदाहरण—
आदि रूप अनादि मूरति अजोन पुरख अपार ॥
सरब मान त्रिमान देव अभेव आदि उदार ॥
सरब पालक सरब घालक सरब को पुन काल ॥
जत्र तत्र बिराजही अविधूत रूप रिसाल ॥७६॥

८७ से ६३ तक मधुमार छन्द । उदा०—
अनुभउ प्रकास ॥ निसदिन अनास ॥
आजान बाहु ॥ साहान साहु ॥८८॥
अनभूत अंग ॥ आभा अभंग ॥
गति मिति अपार ॥ गुन गन उदार ॥६१॥

बीच में चाचरी के अन्य रूप 'शशि' मे ६४, ६५ छन्द । उदा०—
गुबिन्दे ॥ मुकन्दे ॥
उदारे ॥ अपारे ॥६४॥

१०३ से लेकर १३२ तक भगवती छन्द का प्रयोग है—
कि आछिज देसै ॥ कि आभिज भेसैं ॥
कि आगज करमैं ॥ कि आभज भरमैं ॥१०३॥

इस खण्ड में अनेक छन्द फारसी शब्दावली से भरपूर हैं—
कि रोजी रजाकै ॥ रहीमैं रिहा कै ॥
कि पाक बिऐब हैं ॥ कि गैबुल गैब हैं ॥१०८॥
कि हुसनल वजू हैं ॥ तमामुल रजू हैं ॥
हमेसुल सलामैं ॥ सलीखत मुदामैं ॥१२१॥
गनीमुल सिकसतै ॥ गरीबुल परसतै ॥
बिलंदुल मकानैं ॥ जिमीनुल जमानैं ॥१२२॥

कुछ एक छन्दों में तो संस्कृत और फारसी की तत्सम शब्दावली का अद्भुत संयोग है—

कि राजक रहीम हैं ॥ कि करमं करीम हैं ॥
कि सरबं कली हैं ॥ कि सरबं दली हैं ॥११०॥

कुछ एक छन्दों मे फारसी शब्दों के साथ संस्कृत प्रत्यय तथा संस्कृत शब्दों के साथ फारसी प्रत्यय लगाकर (भाषा) शब्दों मे नये प्रयोग किये गये हैं—

छन्द ११० मे फारसी शब्द 'करम' के लिए करमं का प्रयोग। छन्द १२४—

अनेकुल तरंग हैं ॥ अभेद हैं अभंग हैं ॥
अजीजुल निवाज हैं ॥ गनीमुल सिराज हैं ॥

में "अनेक" का "अनैकुल" रूप। इसी प्रकार छन्द १२७

समसतुल सलाम हैं ॥ सदैवल अकाम हैं ॥
निरबाध सरूप हैं ॥ अगाधि हैं अनूप हैं ॥१२७॥

में "सदैव" का "सदैवल" रूप बनाया गया है।

कहीं-कहीं फारसी संज्ञाओं के साथ संस्कृत विशेषण लगाए गए हैं। छन्द १२०—

कि सरबं कलीमैं ॥ कि परमं फहीमैं ॥
कि आकल अलामैं ॥ कि साहिब कलामैं ॥१२०॥

में फारसी शब्द "कलीम" (शक्ति सम्पन्न) के साथ सरबं (सर्व) तथा फहीम (बुद्धिमान) के साथ परम (परम) विशेषणों का प्रयोग हुआ है।

भाषा सम्बन्धी ये प्रयोग इस रचना में अनेक स्थानों पर दिखाई देते हैं।

छन्द १७१ से १८४ तक हरि बोल मना छन्द का प्रयोग हुआ है। इन छन्दों मे साधक की अपूर्व तन्मयता दृष्टिगत होती है। इन छन्दों की गतिमयता दृष्टव्य है—

करुणालय हैं ॥ अरिघालय हैं ॥
खल खण्डन हैं ॥ महि मण्डन हैं ॥१७१॥
अजपा जप हैं ॥ अथपा थप हैं ॥
अकृता कृत हैं ॥ अमृता मृत हैं ॥१७७॥

इस खण्ड मे परमेश्वर के करुणा प्रधान रूप का आग्रह अधिक है। कुल १४ छन्दों में ५ छन्दों में उसके लिए करुणा प्रधान विशेषण लगाये गये हैं— छन्द १७१ में "करुणालय", छन्द १७५-७६ में "करुणाकर", छन्द १७८ मे "करुणाकृत", छन्द १८१ मे "करुणालय" का प्रयोग हुआ है।

"जापु" मे जप की तन्मयावस्था का चरमोत्कर्ष १८६ से १९६ तक के एकाक्षरी छन्दों मे पहुँचता है। आत्मविस्मृति में साधक पुकार उठता है—

अजै ॥ अलै ॥
अभै ॥ अबै ॥१८६
अभू ॥ अजू ॥
अनास ॥ अकास ॥१८०

अगज ॥ अभज ॥
अलख ॥ अभख ॥१६१
अकाल ॥ दिमाल ॥
अलेख ॥ अभेख ॥१६२

और इस जप की सम्पूर्णता साधक की इस भावाभिव्यक्ति मे है—

दुकाल प्रणासी दिश्रालं सरूपे ॥
सदा अंग संगे अभंग बिभूते ॥१६६

बुरे समय को नष्ट करने वाला, दयालु स्वरूप, सदा अंग के साथ रहने वाला (एवं) अनाशवान सम्पत्ति का वह प्रदाता है।

अकाल स्तुति

गुरु गोबिन्दसिंह की दूसरी विशुद्ध भक्ति पूर्ण रचना 'अकाल स्तुति' के नाम से प्रसिद्ध है। इस रचना मे कुल २७१ छन्द हैं तथा मुख्य रूप से इन छन्दों का प्रयोग हुआ है—

चोपाई, कवित्त, सवैये, तोमर छन्द, लघु निराज छन्द, भुजग प्रयात, पाधड़ी, तोटक, नराज, रुआमल, दोहरा, दोहा, दीर्घ त्रिभंगी छन्द।

गुरु गोबिन्दसिंह के दार्शनिक विचारों एव भक्ति भावना को समझने के लिए यह रचना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

इस रचना के प्रारम्भ में सम्पादक ने, "उतार खासे दसखत का" लिखकर निम्न छन्द लिखा है—

अकाल पुरख की रच्छा हमने ॥ सर्ब लोह दी रछिया हमने ॥
सर्ब काल दी जी दी रछिया हमने ॥ सर्ब लोह जी दी रछिया हमने ॥

इस पद के नीचे लिखा है—

"आगे दसखत लिखारी के"।

लगता है कि इस रचना के मूल प्रति में, जिससे भाई मनीसिंह ने गुरु गोबिन्दसिंह के निधनोपरान्त प्रतिलिपि करते हुए दशम ग्रंथ का सम्पादन किया, ऊपर लिखी चार पंक्तिया गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी हस्तलिपि मे लिखी होगी और उनके नीचे अपने हस्ताक्षर किए होंगे।

"उतार खासे दसखत का" और "आगे दसखत लिखारी के" से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट होती है। शेष रचना उन्होने अपने लिपिक को बोलकर लिखवाई होगी।

अपनी हस्तलिपि में गुरु गोबिन्दसिंह ग्रन्थारम्भ से पूर्व अकाल पुरुष, सर्व लोह, सर्व काल एव पुनः सर्व लोह को अपने लिए रक्षा की अभ्यर्थना करते हैं।

अकाल स्तुति के प्रथम दस छन्द चोपाई मे हैं, जिनमे कवि ने अपनी ब्रह्म सम्बन्धी धारणा को स्पष्ट किया है। भारतीय धर्म साधना में ओ३म का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। सिख-साधना मे भी इसके महत्व को अंगीकृत किया गया है। आदि गुरु ग्रन्थ साहिब का प्रारम्भ ही—"१ ओंकार" से होता है। गुरु नानक ने ओंकार से सम्पूर्ण सृष्टि के निर्माण की परम्परागत धारणा का अपने इन शब्दों में समर्थन किया है—

"ओंकार ब्रह्मा उतपति । ओंकार कीआ जिनि चिति ॥
ओंकार सैल जुग भए । ओंकार वेद निरमए ॥
ओंकार सबद उधारे । ओंकार गुरमुख तारे ॥
ओम् अखर सुनहु बीचार । ओम् अखर त्रिभुवन सार ॥ (राम कली न० १)

तृतीय गुरु अमरदास ने भी यही भावाभिव्यक्ति की है—

"ओंकार सभ सृष्टि उपाई ।" (मारू म० ३)

अकाल स्तुति की प्रथम चौपई भी इसी भाव का समर्थन करती है—

प्रणवो आदि एककारा ॥ जल थल मही महीअल कीओ पसारा ॥
आदि पुरख अबिगत अविनासी ॥ लोक चतुर्दस जोति प्रकासी ॥ १

वह सर्वव्यापी है—

हस्त कीट के बीच समाना ॥ राव रंक जिह इक सर जाना ॥
अद्वै अलख पुरख अविगामी ॥ सब घट-घट के अन्तरजामी ॥२॥

इन दस चौपाइयों के पश्चात् १० कवित्त हैं। इन कवित्तों में कवि ने बड़ी प्रवाह-मयी भाषा में ईश्वर की सर्वव्यापकता, अनेकरूपता, उस अनेकरूपता में अन्तर्निहित एकरूपता आदि को चित्रित किया है। दो-एक उदाहरण समीचीन होंगे —

कतहूं सुचेत हुइकै चेतना को चार कीओ ॥
कतहूं अचिन्त हुइकै सोवत अचेत हो ॥
कतहूं भिखारी हुइकै मांगत फिरत भीख,
कहूं महादानि हुइकै मांगिओ दान देत हो ॥
कहूं महाराजन को दीजत अनन्त दान,
कहूं महाराजन ते छीन छित लेत हो ॥
कहूं वेद रीति कहूं तासिउ विपरीत,
कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सुरगन समेत हो ॥१॥११॥

संसार में अनेक प्रकार की साधनाओं द्वारा ईश्वर का स्मरण किया जाता है, मानो वह एक, अनेक होकर इन विभिन्न साधनाओं में रम रहा है। इसी भाव की अभिव्यक्ति इस पद में है—

कहूं जटाधारी कहूं कंठी धरे ब्रह्मचारी, कहूं जोग साधी कहूं साधना करत हो ॥
कहूं कान फारे कहूं डंडी होई पधारे, कहूं फूक फूक पावन को पृथ्वी पै धरत हो ॥
कतहूं सिपाही हुइकै साधत सिलाहन को, कहू क्षत्री हुइकै अरि मारत मरत हो ॥
कहूं भूम भार को उतारत हो महाराज, कहू भव भूतन की भावना भरत हो ॥५॥१५॥

आगे के १० छन्द सवैया छन्द में है। इन छन्दों में बाह्याडम्बर, कर्मकाण्ड, भौतिक सम्पन्नता आदि का खण्डन कर विशुद्ध हृदय से भगवद् भक्ति की प्रेरणा की गई है।

भौतिक सम्पन्नता का खंडन

मातै मतंग जरे जर संग अनूप उतंग सुरंग सवारे ॥
कोट तुरंग कुरंग से कूदत पउन कै गउन को जात निवारे ॥

भारी भुजान के भूल भली विधि निम्रावत सीस न जात विचारे ।।
एते भए तो कहा भए भूपत अन्त को नागे ही पाइं पधारे ।।२।।२२।।

अतीव शक्ति सम्पन्नता की निरुपयोगिता

सुद्ध सिपाह दुरन्त दुबाह सु साज सनाह दुरजान दलैंगे ।।
भारी गुमान भरे मन मे कर परबत पंख हलैं न हलैंगे ।।
तोर अरीन मरोर मवासन माते मतगन मान मलैंगे ।।
श्री पति श्री भगवान कृपा बिन त्याग जहानु निदान चलैंगे ।।५।।२५।।

बाह्याडम्बर का विरोध

कहा भयो दोऊ लोचन मूंदके बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो ।।
न्हात फिरियो लिए सात समुद्रन लोक गयो परलोक गवायो ।।
बास कीयो बिखियान सो बैठ के ऐसे ही ऐस सु बैस बितायो ।।
साच कहों सुन लेहु सबै जिन प्रेम कियो तिनही प्रभ पायो ।।९।।२९।।

अकाल स्तुति गुरु गोबिन्दसिंह की विशुद्ध भक्ति पूर्ण एवं पक्षपात रहित रचना है (विशेष विवेचन भक्ति भावना अध्याय में)। गुरु गोबिन्दसिंह की विभिन्न रचनाओं में उनके विभिन्न रूपों की प्रतिष्ठा होती है। रामावतार, कृष्णावतार और चंडी चरित्रों में उनका एक पक्षीय रूप सामने आता है। शत्रु संहारक एवं मित्र रक्षक इन अवतारों की कथा का वर्णन वे भक्ति भाव से नहीं वरन् तात्कालिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करते हैं और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनसे वर चाहते हैं। अकाल स्तुति में उनका निष्पक्ष रूप सामने आता है। यहाँ वे शत्रु, मित्र, सधर्मी, विधर्मी के भाव से परे हैं और विशुद्ध भेद रहित मानवता के उपासक हैं। गुरु गोबिन्दसिंह जैसे बहुमुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का महत्तम रूप इसी रचना से मुखर होता है, जहाँ वे मनुष्य और मनुष्य में, मनुष्य की ईश्वर प्राप्ति में, विविधतापूर्ण साधना में और उन साधना केन्द्रों में किसी प्रकार का अन्तर स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।

कोऊ भयो मुंडिया सन्यासी कोऊ जोगी भयो ।।
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जती अनुमानबो ।।
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी ।।
मानस की जात सबै एकै पहचानबो ।।
करता करीम सोई राजक रहीम ओई ।।
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो ।।
एकही की सेव सभ ही को गुरुदेव एक,
एकही सरूप सबै एकै ज्योति जानबो ।।१५।।८५।।

अकाल स्तुति मे चमत्कारवादी वृत्ति के दर्शन भी होते हैं। कवि ने प्रहेलिकालंकार के माध्यम से दस दोहों मे कुछ प्रश्नों की अभिव्यंजना की है और उन्हीं में उनका उत्तर भी निहित कर दिया है। प्रश्नों का प्रारम्भ इस प्रकार है—

एक समय श्री आतमा उचरियो मति सिउं बैन ।।
सब प्रताप जगदीस को कहो सकल विधि तैन ।।१।।२०१।।

इस दोहे के अन्तिम शब्द 'तैन' में ही सम्पूर्ण प्रश्न का उत्तर निहित है। इसी प्रकार एक अन्य दोहे में प्रश्न है—

> कहाँ रंक राजा कवन हरख सोक है कवन।
> को रोगी रागी कवन कहौ तत्त मुहि तवन ॥२०६॥

अकाल स्तुति में चण्डी का गुणानुवाद करते हुए २० त्रिभंगी छन्द भी संकलित हैं। चण्डी का गुणानुवाद करने वाले बीस छन्द अकाल स्तुति मे किस प्रकार आये यह विचारणीय साथ ही विवादास्पद है। महान कोष के रचयिता भाई काहनसिंह का मत है कि संकलन-कर्त्ता की भूल के कारण यह छन्द चण्डी चरित्र (द्वितीय) मे लिए जाने के स्थान पर अकाल स्तुति में ले लिए गए हैं।

इन छन्दों के अकाल स्तुति में सम्मिलित किए जाने के सम्बन्ध मे सिख विद्वानो मे एक जनश्रुति प्रसिद्ध है, जिसका उल्लेख पंडित नारायण सिंह ज्ञानी ने अपनी 'दस ग्रंथी सटीक' में किया है। जनश्रुति का संक्षेप इस प्रकार है—

जिन दिनों गुरु गोबिन्दसिंह इस रचना की सृष्टि कर रहे थे काशी के एक पंडित काशीराम वहाँ आये। उन्होने आनन्दपुर मे प्रवेश करते ही गुरु गोबिन्दसिंह की महत्ता मे बहुत कुछ सुना। उन्होने मन ही मन निश्चय किया कि गुरुजी उन्हे दुर्गा स्तोत्र के पदों का अनुवाद देश भाषा में सुनाएं तो वे उनकी महत्ता स्वीकार करने को तैयार हैं। कहते हैं कि पंडित काशीराम को गुरुजी ने दुर्गास्तोत्र या भगवती पद्य पुष्पांजलि स्तोत्र का स्वतन्त्र अनुवाद सुनाया, और वे पंडित महाशय गुरु गोबिन्दसिंह की प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए। चूंकि उस समय गुरु गोबिन्दसिंह जी अपने लिपिक को अकाल स्तुति उच्चारित करते हुए लिखवा रहे थे, उसी क्रम में उसने इन बीस छन्दों को अकाल स्तुति मे संकलित कर लिया।

जैसा कि कहा गया कि ये बीस छन्द मूल संस्कृत के भगवती पद्य पुष्पांजलि स्तोत्र का स्वतन्त्र अनुवाद हैं। गुरु गोबिन्दसिंह को ब्रह्म का शक्ति रूप सर्वाधिक प्रिय था। इस विषय का विशेष अध्ययन 'भक्ति भावना' अध्याय में किया गया है। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि ब्रह्म के शक्ति रूप "चंडी" पर गुरुजी की विशेष आस्था रही है और जहाँ भी उन्हे अवसर मिला है उन्होने एकाग्रमन से उस रूप की अभ्यर्थना की है। दीर्घ त्रिभंगी छन्दो मे लिखे हुए ये पद गुरु गोबिन्दसिंह की अनुपम कलाकृतियां हैं, कुछेक पद इस प्रकार हैं—

> दुर्जन दल दंडण असुर विहंडण दुस्ट निकंदण आदि वृते ॥
> चच्छरासुर मारण पतित उधारण नरक निवारण गूढ़ गते ॥
> अछे अखंडे तेज-प्रचंडे खंड उदंडे अलख मते ॥
> जै जै होसी महखासुर मर्दन रंम कपरदन छत्र छिते ॥१॥२११॥
> अघ ओघ निवारन दुस्ट प्रजारन सृष्टि उबारन सुद्ध मते ॥
> फणिअर फुंकारण बाघ बकारण सस्त्र प्रहारण साध मते ॥
> सैहथी सनाहन असट प्रवाहन बोल निवाहन तेज अतुलं ॥
> जै जै होसी महिखासुर मर्दन भूमि अकाल पताल जल ॥६॥२१६॥

चन्दरासुर मारण नरक निवारण पतित उधारण एक भटे ॥
पापान बिहडण दुस्ट प्रचण्डण खण्ड अखण्डण काल कटे ॥
चन्द्रानन चारे नरक निवारे पतित उधारे मुंड मथे ॥
जै जै होसी महिखासुर मर्दन धूम्र विधुंसन आदि कथे ॥१६॥२२६॥

इन बीस त्रिभंगी छन्दों के पश्चात् १२ पाधडी छन्दो में ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ मूलभूत विचार रखे गये हैं। इन पदो मे कवि का भक्त से ज्ञानी रूप अधिर प्रखर है। यद्यपि वह अपनी असमर्थता को भली प्रकार जानता है फिर भी उस अनादि सर्वव्यापी शक्ति का जो स्वय अभूत, अनुभवग्राह्य और अनन्त है, कवि अपनी स्वल्प बुद्धि मे उसके तत्त्व का वर्णन करना चाहता है। प्रथम छद इस प्रकार है—

तुम कहो देव सरबं बिचार ॥ जिम कियो आप करते पसार ॥
जदपि अभूत अनभै अनन्त ॥ तउ कहो जथा मत त्रैण तन्त ॥१॥२३१॥

दूसरे छन्दों में उसके गुणो की चर्चा है—

करता करीम कादर कृपाल ॥ अद्वय अभूत अनभय दयाल ॥
दाता दुरन्त दुख दोख रहत ॥ जिह नेति नेति सभ बेद कहत ॥२३२॥

इस अश में उस अद्वैत, एकरूप, सर्वव्यापी, सर्वनिर्माता, सर्वहंता ब्रह्म को पत्रों, वस्तुओ और दिशाओं मे सीमित करने वाले बाह्य चरित्रो का कटु खण्डन भी है—

कई मूढ़ पत्र पूजा करत ॥ कई सिद्ध साध सूरज सिवत ॥
कई पलट सूरज सिजदा कराइ ॥ प्रभ एक रूप द्वै कै लखाइ ॥१४॥२३४॥

छन्द २५३ से २६६ तक के १४ कवित्तों में कवि की बहुज्ञता का परिचय मिलता है। गुरु गोबिन्दसिंह के जीवनकाल मे किसी व्यक्ति का केवल भारत में ही रहने वाली सभी जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों का कुछ ज्ञान होना बड़ी बात रही होगी, फिर विदेशी जातियो के उल्लेख की दूभरता तो स्पष्ट ही है। कवि ने इन छन्दो मे दर्शाया है कि धार्मिक, भौगोलिक, सास्कृतिक एवं भाषागत भेद होते हुए भी किस प्रकार सभी लोग एक ही परब्रह्म की उपासना करते हैं और यह उन विभिन्नताओं के मध्य से चमकने वाली एकता है। कवि कहता है—

पूरबी न पार पावैं हिंगुला हिमालै ध्यावै ॥
गोर गरदेजी गुन गावैं तेरे नाम है ॥
जोगी जोग साधैं पउन साधना कितेक बाधैं,
आरब के आरबी अराधैं तेरे नाम है ॥
फराके फिरंगी मानैं कंधारी कुरेसी जानैं,
पच्छम के पच्छमी पछानै निज काम है ॥
मरहटा मघेले तेरी मन सों तपस्या करैं,
दिड़वे तिलंगी पहिचानै धरम धाम हैं ॥२॥२५४॥
बंग के बंगाली फिरहंग के फिरंगावाली,
दिल्ली के दिलावाली तेरी आज्ञा मैं चलत हैं ॥
रोहके रुहेले माघ देस के मघेले बीर,

बगसी बुन्देले पाप पुंज को मलत हैं॥
गोखा गुन गावे चीन मचीन के सीस न्यावे,
तिब्बती धिआइ दोख देह के दलत हैं॥
जिनैं तोहि ध्यायो तिनै पूरन प्रताप पायो,
सर्व धन धाम फल फूल सो फलत हैं॥३॥२५५॥

उस सर्वव्यापी ब्रह्म का अस्तित्व अनेक स्थानों, अनेक रूपों और अनेक कार्यों में दृष्टिगत होता है। कहीं वह देवताओं के लिए उनके गुरु बृहस्पति का रूप धारण करता है, कहीं वह असुरों का सहार करने के लिए इन्द्र का रूप धरता है, कहीं वह गंगा धारण करने वाला शिव है, फिर भी वह भेष रहित है। रंगों में वह रंगवान है, राग और रूप में भी वह प्रवीण है। वह किसी के आगे दीन होकर झुकता नहीं, किन्तु संत जनों के आधीन उसे कहा जाता है।[1]

इस रचना की समाप्ति एक अधूरे पाधड़ी छन्द से होती है, जिसमें दो ही चरण हैं—

सातो अकास सातो पतार। बिथरिउ अदृस्ट जिह कर्म जार॥

(सातों आकाशों और सातों पातालों में उसके अदृश्य कर्म का जाल फैला हुआ है।)

इस छन्द को अधूरा छोड़कर कवि ने एक संकेत दिया है। यह ब्रह्म की स्तुति है, किन्तु ब्रह्म की स्तुति का अन्त कहाँ है। वह तो अनन्त है, उसकी यश गाथा भी अनन्त है—

"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता"

(गो० तुलसीदास)

यह अधूरा छन्द इस बात का प्रतीक है कि परमेश्वर की कितनी भी स्तुति की जाय वह अधूरी ही है। उसे सम्पूर्ण कहने का साहस कौन कर सकता है? कौन साधक है जिसे अपनी अल्पज्ञता और परमेश्वर को अनादिता का ज्ञान नहीं? फिर गुरु गोबिन्दसिंह तो इसी रचना में कहते हैं—

पूरन प्रतापी जन्त्र मंत्र के अतापी नाथ,
कीरति बिहारी को न पार पाईयतु है॥१४॥२६६॥

स्फुट छन्द

दशम ग्रंथ में रुद्रावतार के पश्चात् संग्रहीत स्फुट छन्दों की कुल संख्या ४७ है। इसमें १० पद हैं, ३६ सवैये और एक दोहा है। इन छन्दों में १० पद और ३३ सवैये तो भक्ति भाव से लिखे हैं और अंतिम चार (३ सवैये और एक दोहा) किन्हीं मिश्र जी को सम्बोधित किए गए हैं।

भक्ति-भाव से लिखे गये छन्दों का गुरु गोबिन्दसिंह की भक्ति-भावना के निर्धारण में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। आरम्भिक १० पद तो वैष्णव भक्तों की पदावली का स्मरण

---

1. देव देवतान को सुरेस दानवान को, महेस गंग ध्यान को अभेस कहीअत है॥
रंग में रंगीन राग रूप में प्रबीन, और काहू पा पै न दीन साध अधीन कहीअत है॥
(अकाल स्तुति, छन्द ४॥२५६॥)

कराते हैं। इन पदों में योग के बाह्याचारो का खडन है,[1] पवित्र हृदय और पवित्र कर्म से प्रेरित होकर भगवान के चरणों मे जाने को प्रेरणा है,[2] अवतारवाद का विरोध है,[3] मूर्ति पूजा की निस्सारता का वर्णन है[4]।

इन दस पदो मे एक 'ख्याल' पजाबी भाषा मे है। कहते हैं कि इस 'ख्याल' को रचना गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने चारों पुत्रो के बलिदान के पश्चात् की थी। इस रचना के द्वारा कवि ने अपने प्यारे मित्र। परमेश्वर को अपनी वर्तमान स्थिति का मार्मिक परिचय कराया है :—

'प्रिय मित्र को हमारी दशा बताना। तुम्हारे बिना रजाई रोग को ओढने के समान है। चारो ओर सापों का निवास है। मदिरा की सुराही सूली बन गई है, प्याला कसाई का खंजर जैसा लगता है। तुम्हारा साथ बुरी अवस्था मे भी अच्छा है, परन्तु तुम्हारे बिना सुविधा का जीवन भी नरकवत् है।'[5]

करुण भाव का यह छन्द गुरु गोबिन्दसिंह की कल्पनाशील भावाभिव्यक्ति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

३३ सवैयो में भी गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी भक्ति भावना का परिचय दिया है। इन सवैयों का स्वर 'अकाल स्तुति' मे सग्रहीत सवैयो के समान ही है। इनमे आदि शक्ति से परिपूर्ण चिरन्तन और शाश्वत ईश्वर की स्तुति है।[6] अवतारवाद का खण्डन है। दशम

---

१. रे मन ऐसो करि सनिआसा।
बनसे सदन सबै करि समझ हू मनही माह उदासा॥
जत की जटा बोग को मज्जनु नेम को नखन बढाउ॥
गिआन गुरु आतम उपदेसहु नाम विभूति लगाउ॥१॥ द० ग्र० पृ० ७०६।
रे मन इह बिधि जोग कमाउ॥
सिंगी साचु अकपट कठला धिआन बिभूत चढाउ॥२॥—द० ग्र० पृ० ७१०।

२. प्रानी परम पुरख पग लागो॥
सोवत कहा मोह निद्रा मै कबहूं सुचित ह्वै जागो॥—द० ग्र० पृ० ७१०।

३. बिन करतार न किरतम मानो॥
आदि अजोन अजै अबिनासी तिह परमेसर जानो॥१॥—द० ग्र० पृ० ७१०।

४. एक बिन दूसर सो न चिनार॥
भंजन गड्न समरथ सदा प्रभु जानत है करतार॥
कहा भइउ जो अति हित चित कर बहुबिध सिला पुजाई।
पान थकिउ पाहिन कह परसत कछुकर सिद्ध न आई॥ द० ग्र० पृ० ७११।

५. मित्तर पिआरे नू हालु मुरीदां दा कहणा॥
तुधु बिनु रोगु रजाइया दा ओढण नाग निवासा दे रहणा॥
सूल सुराही खजरु पियाला बिंग कसाइया दा सहणा॥
यारड़े दा सानू सथरू चगा भट्ठ खेड़ियां दा रहणा॥—द० ग्र० पृ० ७११।

६. आदि अदैख अभेख महाप्रभु सत्ति स्वरूप सु जोत प्रकासी॥
पूर रह्यो सबही घट कै पट तत्त समाधि सुभाव प्रनासी॥
आदि जुगादि जगादि तुही प्रभ फैल रह्यो सभ अंतरि बासी॥
दीन दयाल कृपाल कृपा कर आदि अजोन अजै अबनासी॥३॥—द० ग्र० पृ० ७१२।

ग्रंथ मे संभवत: यही एक स्थल है जहाँ राम और कृष्ण के ईश्वरत्व का इतना स्पष्ट विरोध किया गया है।[1]

मूर्ति पूजा का विरोध भी बड़े तीव्र स्वर मे है।[2] धार्मिक मत मतांतरो मे फैले हुए आर्थिक भ्रष्टाचार पर भी इन छदो मे तीखा व्यंग्य किया गया है:—

जो जुगियान के जाइ कहै सब जोगन को गृहसाल उठै दे ॥
जो परो भाजि सन्यासन दे कहै दत्त के नाम पै धाम लुटै दे ॥
जो करि कोउ मसंदन सौ कहै सरब दरब तै मोहि अबै दे ॥
लेउ ही लेउ कहै सबको नर कोउ न ब्रह्म बताइ हमे दे ॥२८॥

(द० ग्र० पृ० ७१५-१६)

अन्त के तीन सवैयो और एक दोहे की पृष्ठभूमि पर यह प्रसिद्ध है कि किन्ही मिश्र जी ने गुरु गोबिन्दसिंह की सेना मे शूद्र जाति के लोगों को इतनी बडी सख्या मे देखकर आपत्ति प्रगट की, उसका उत्तर उन्होंने इन छन्दों मे दिया है। इन छन्दो को 'खालसे की महिमा' कहकर भी अभिहित किया जाता है। पहले छन्द मे मिश्र जी का सम्बोधन है।[3] दूसरे और तीसरे छन्द मे गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने अनुयायियों की महत्ता का वर्णन करते हुए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित की है।[4] अन्त के दोहे मे, इन बातो को सुनकर मिश्र जी के क्रोधित होने और अन्त मे रो देने का सकेत है :—

चट पटाइ चित्त मै जर्यो त्रिण ज्यो क्रुद्धत होइ ॥
खोज रोज के हेत लग दयो मिश्र जू रोइ ॥

(द० ग्र० पृ० ७१७)

चण्डी चरित्र (प्रथम) उक्ति विलास

दशम ग्रंथ की चण्डी सम्बन्धी तीन प्रबन्ध रचनाएँ संग्रहीत हैं। दो रचनाओ की भाषा ब्रज एव एक की पंजाबी है। हिन्दी (ब्रज) रचनाएं अपने आकार में पंजाबी रचना से

---

१. जो कहौ राम अजोनि अजैअति काहे कौ कौसल कुख जयो जू ॥
कालहू काल कहै जिहको जिहि कारण काल ते दीन भयो जू ॥
सत सरूप बिबैर कहाइ सु क्यों पथ कौ रथ हाँक धयो जू ॥
ताही को मानि प्रभू करि कै जिह को कोउ भेदु न लेन लयो जू ॥ १२ ॥

(द० ग्र० पृ० ७१३-१४)

२. काहे कउ पूजत पाहन कउ कछु पाहन मै परमेसर नाही ॥
ताही को पूज प्रभू करि कै जिह पूजत ही अघ ओघ मिटाही ॥
आधि बिआधि के बंधन जेतक नाम के लेन सबै छुटि जाही ॥
ताहि को ध्यानु प्रमान सदा इन फोकट धरम करे फलु नाहीं ॥ १४॥

(द० ग्र० पृ० ७१४)

३. जो किछु लेखु लिखिउ बिधना सोइ पायतु मिश्र जू सोक निवारो ॥

(द० ग्र० पृ० ७१६)

४. (१) जुद्ध जिते इनही के प्रसादि इनही के प्रसादि सु दान करे ॥
(२) सेव करी इनही की भावत अउर की सेव सुहात न जी को ॥

(द० ग्र० पृ० ७११—१७)

कहीं बड़ी हैं। दोनो हिन्दी रचनाओं चण्डी चरित्र (उक्ति विलास) प्रथम एवं चण्डी चरित्र द्वितीय मे क्रमशः २३३ एवं २६२ छन्द हैं और पंजाबी रचना, चण्डी दी वार, में कुल ५५ छन्द हैं।

प्रथम चण्डी चरित्र मार्कण्डेय पुराण अध्याय ८१ से ९३ तक में वर्णित "देवी माहात्म्य" (दुर्गा सप्तशती) का स्वतन्त्र अनुवाद है। इस रचना मे सात पूर्ण तथा एक अपूर्ण अध्याय है। आठ अध्याय हैं, जिनका अध्यायानुसार संक्षेप इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय

१२ छंदों के इस अध्याय मे ब्रह्म की स्तुति, चंडी स्तुति, ग्रंथ रचना की अनुमति, सुरथ राजा का राज्य विहीन होकर मेधस ऋषि आश्रम मे जाना और उनसे चंडी की कथा सुनना, शेषशायी विष्णु के कानों की मैल से मधु और कैटभ नाम के दैत्यों का जन्म और अन्त मे विष्णु द्वारा उनका वध वर्णित है।

प्रथम छन्द मे ब्रह्म की स्तुति करते हुए कवि कहता है—

> आदि अपार अलेख अनन्त अकाल अभेख अलख अनासा ॥
> कै सिव सक्त दए श्रुति चार रजो तम सत्त तिहू पुरबासा ॥
> दिउस निसा ससि सूर के दीप सु सृस्टि रची पच तत्त प्रकासा ॥
> बैर बढाइ लराइ सुरासुर आपहू देखत बैठ तमासा ॥१॥

अन्तिम पंक्ति द्रष्टव्य है। ब्रह्म सबकी सृष्टि करता है। सुरों-असुरों का निर्माण करता है, उनमे शत्रुता उत्पन्न कर उन्हें लड़ाता है और स्वयं अपनी लीला का तमाशा देखता है।

चंडी की बहुश्रुत कथा को कवि ने अद्‌भुत कथा कहा है। उसे वह सुन्दर भाषा में प्रस्तुत करना चाहता है—

> आइस अब जो होइ ग्रंथ तउ मैं रचौं ॥
> रतन प्रमुद कर बचन चीन तामै गचौं ॥
> भाखा सुभ सभ करहो धरि हो क्रुत्त मैं ॥
> अद्‌भुत कथा अपार समझ करि चित्त मैं ॥६॥

द्वितीय अध्याय

४० छन्दो के इस अध्याय मे महिषासुर के युद्ध और वध का वर्णन है।

महिषासुर ने शक्ति अर्जित कर देवताओ को परास्त कर दिया। देवताओं से उसने इतना भयंकर युद्ध किया कि सारी पृथ्वी लहू लुहान हो गयी—

> जुद्ध करयो महिखासुर दानव मारि सभै सुर सैन गिराइउ ॥
> कैकै दुटूक दए अरु खेत महा बरबंड महारन पाइउ ॥
> स्रउणत रंग सनिउ निसरिउ जसु इआ छबि को मनमैं इह आइउ ॥
> मारिकै छत्रनि कुंड कै छेत्र मे मानहु पैठि कै राम जु न्हाइउ ॥१४॥

खून के रग में रगा हुआ वह इस प्रकार दृष्टिगत होता है कि मानो परशुराम ने क्षत्रियों के रक्त का कुण्ड बनाकर उसमें स्नान किया है।

बचे हुए देवतागण दुर्गा की शरण मे कैलास पर्वत पर पहुँचे—

अगनत मारे गने को भजे जु सुर करि त्रास ॥
धारि धिम्रान मन सिवा को तकी पुरी कैलास ॥१६॥

उस स्थान पर सभी देवताओं ने दीर्घकाल तक दुर्गा की स्तुति की। एक दिन दुर्गा स्नानार्थ बाहर निकली तब सब देवताओं ने उसके सम्मुख अपनी व्यथा का वर्णन किया—

कितक दिवस बीते तहाँ नावन निकसी देव ॥
बिध पूरब सभ देवतन करी देवकी सेव ॥२१॥

मार्कण्डेय पुराण के बयासीवें अध्याय में लिखा है कि महिषासुर से पराजित देवता ब्रह्मा जी के नेतृत्व मे वहाँ गए जहाँ महादेव जी और गरुडध्वज भगवान विष्णु थे। उन्होंने उन्हें अपनी पराजय का वृत्तान्त सुनाया और महिषासुर के वध की प्रार्थना की। देवताओं की पराजय से क्रोधित भगवान विष्णु के मुख से एक महान् तेज निकला तथा उसी प्रकार ब्रह्मा और शंकर के मुख से भी एक तेज निकला। इन्द्र आदि अन्य देवताओं के शरीर से भी महातेज निकलकर सबका तेज एक स्थान पर इकट्ठा हो गया। तब उन देवताओं ने देखा कि वह अत्यन्त तेज जलते हुए पहाड़ के समान हो गया और दिशाएं ज्वालाओं से व्याप्त हो गयीं। सब देवताओं के शरीर से निकला हुआ वह अतुल तेज एक स्थान पर एकत्रित होकर नारी रूप हो गया। विभिन्न देवताओं के तेज से उसके विभिन्न अंग बने थे और इस तरह शिवा का जन्म हुआ।

चण्डी चरित्र मे इस घटना का उल्लेख नही है। चण्डी चरित्र द्वितीय मे इस सम्बन्ध मे इतना ही उल्लखित है कि महिषासुर से पराजित देवताओं ने कैलास पर्वत पर जाकर देवी की आराधना की और वह प्रगट हुई।

प्रसन्न देवता भए। चरनं पूजवे धए ॥
सनंमुखान ठढीय। प्रणाम पान पढीय ॥५॥

गुरु गोविन्दसिंह की पंजाबी रचना 'चण्डी दी वार' में भी प्रथम चण्डी चरित्र की भाँति दुर्गा का स्नानार्थ बाहर आने का वर्णन है। वहाँ इन्द्रादि देवता उसे मिल कर अपनी व्यथा सुनाते और सहायता की प्रार्थना करते हैं—

इक दिहाड़े नावण आई दुरगा शाह।
इन्द्र बिरथा सुणाई अपणे हाल दी।
छीन लुई ठकुराई साते दानवी।
लोकी तिही फिराई दोही आपणी ॥४॥

(एक दिन दुर्गा स्नानार्थ आई। इन्द्र ने उसे अपनी व्यथा सुनाई—*दानवो ने हमसे ठकुराई छीन ली है और तीनों ही लोको मे उन्होंने अपनी दुहाई फिरा दी है।)*

दुर्गा के स्नानार्थ आने और देवताओं से भेंट करने की घटना का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण के ८५वें अध्याय मे है—

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥३७॥

(देवताओं के इस प्रकार स्तुति करने पर देवी पार्वती गंगा स्नान करने के हेतु आई, और देवताओं के सम्मुख प्रगट हुई।)

पंजाबी के आलोचक-द्वय प्रो० परमिन्दरसिंह एवं कृपालसिंह कसेल ने अपनी संपादित 'चंडी दी वार' में कथासार देते हुए लिखा है—

"कहा जाता है कि दुर्गा उज्जैन के राजा की लड़की थी और सम्पूर्ण आयु कुंवारी रही। एकमात्र संतान होने के कारण वह पिता के राज्य की उत्तराधिकारिणी हुई, वह यदा-कदा ही बाहर निकलती थी और उससे भेंट करने की किसी को आज्ञा न थी। इन्द्र भी उससे कैसे मिल सकता था। दुर्गा नदी पर स्नानार्थ जाया करती थी। इन्द्र ने सोचा उसे स्नानार्थ जाते समय ही मिला जाए। इस तरह इन्द्र ने उससे भेंट की और अपनी सम्पूर्ण व्यथा सुना दी।[1]

डा० धर्मपाल अष्टा ने भी अपने प्रबन्ध[2] में इस तथ्य का यथावत् वर्णन किया है।

किन्तु दुर्गा की परम्परागत पौराणिक कथा को इस प्रकार ऐतिहासिकता का रूप देने में इन विद्वानों ने किन सूत्रों का आश्रय लिया है, कहा नहीं जा सकता। गुरु गोबिन्दसिंह की चण्डी विषयक तीनों ही रचनाओं में दुर्गा का उज्जैन की राजकुमारी होना उल्लिखित नहीं है। भाई काह्नसिंह ने अपने महानकोष और भाई रणधीरसिंह ने अपनी शब्द मूरति में दुर्गा की इस काल्पनिक ऐतिहासिकता का कोई उल्लेख नहीं किया है।

चण्डी चरित्रों के रचयिता के सम्मुख इस कथा की पौराणिक पृष्ठभूमि एवं संलग्न अनेक कथाएँ इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितनी इस कथा के मूल स्वर। इसलिए कवि पौराणिक चर्चा का सूत्र रूप में वर्णन कर तुरन्त मूल विषय पर आ जाता है। इन पौराणिक प्रसंगों के देश भाषा में वर्णन की पृष्ठभूमि पर तत्कालीन जनता में वीर भावों की सृष्टि का महत् उद्देश्य था इसलिए कवि के लिए इन कथाओं के मूल स्वर-युद्ध प्रसंगों का विस्तृत वर्णन का चित्रण ही अभिप्रेत था।

इन्द्र सहित सभी देवताओं ने दुर्गा को अपनी पराजय की व्यथा सुना दी। कवि के शब्दों में देवताओं ने दुर्गा के सम्मुख अपनी पराजय एवं दुर्गति की चर्चा करते हुए कहा—'जब कोई व्यक्ति किसी के कुत्ते को मारता है तो उस कुत्ते का नाम नहीं लेता वरन् उसके स्वामी का नाम लेकर उस कुत्ते को मारता है।' भाव है, दैत्यों से हमारी पराजय वस्तुतः हमारी पराजय नहीं है, वह तो हमारे मिस तुम्हारी ही पराजय है क्योंकि तुम्हीं हमारी स्वामिनी हो—

कूकर को मारत न कोऊ नाम लै कै ताहि।
मारत है ताको लै कै खावन्द को नाम है ॥२२॥

दुर्गा अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर दैत्यों से युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गई। उसका तेज ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की तरह चमक रहा था—

घटा गदा त्रिसूल असि संख सरासन बान।
चक्र बक्र कर में लिए जन ग्रीखम रित भान ॥२७॥

---

१. चण्डी दी वार, पृ० १५।

२. दि पोएट्री आफ दशम ग्रंथ, पृष्ठ ५०।

इस अध्याय के शेष २५ छन्दों में *दुर्गा का दानवों की ४५ पद्म सेना*[1] *के साथ* भयंकर युद्ध का वर्णन है और अन्त में महिषासुर का संहार एवं इन्द्र को राज्य प्राप्त होता है।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय में ४८ छन्द हैं। इस अध्याय में शुंभ-निशुंभ दैत्यों का उत्कर्ष एवं उनकी समाप्ति के लिए चण्डी का उदय वर्णित है—

> कान सुनी धुनि देवन की सब दानव मारन को प्रन कीनो।
> होइ कै प्रचण्ड कहा वरखंड सु क्रुद्ध ह्वै जुद्ध बिखै मन दीनो॥

इस रचना के शेष सभी अध्यायों में शुंभ-निशुंभ के विभिन्न सेना नायकों से युद्ध का वर्णन है। अन्त में इन दोनों दैत्यों का संहार होता है। तृतीय अध्याय में दुर्गा का अति सुन्दर रूप धारण कर हिमालय पर बैठना, एक दैत्य का दुर्गा के अनुपम सौन्दर्य का शुंभ के सम्मुख निरूपण और शुंभ का धूम्रलोचन नामक दैत्य सेना नायक को दुर्गा को पकड़ लाने के लिए भेजना तथा युद्धोपरान्त धूम्रलोचन के वध का वर्णन है।

इसी अध्याय में काली की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार वर्णित है—

> भाल को फोर कै काली भई लखि ता छबि को कवि को मन भीनो।
> दैत समूहि बिनासन को जमराज तें मृत मनो भव लीनो॥७॥

दुर्गा के मस्तक को फोड़कर काली ने जन्म लिया मानो दैत्य समूह के विनाश के लिए यमराज से मृत्यु ने जन्म लिया हो।

मार्कण्डेय पुराण के ८५वें अध्याय में काली की उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित है—

"*देवताओं के इस प्रकार स्तुति करने पर देवी पार्वती गंगा स्नान करने हेतु आई* और देवताओं के सम्मुख प्रगट हुई। वह उन देवताओं से बोली कि तुम किसकी स्तुति करते हो और उनके शरीर से शिवा निकल कर उनसे बोली—'समर में शुंभ और निशुंभ दैत्यों से परास्त होकर आप सब देवता मेरी स्तुति कर रहे हैं!' क्योंकि वह अम्बिका पार्वती जी के शरीर कोश से उत्पन्न हुई, इसलिए उनको सब लोकों में कौशिकी कहते हैं। उनके निकल जाने पर पार्वती जी कृष्णवर्ण हो गई और इसी कारण वे कालिका कहलाई और हिमालय पर्वत पर रहने लगीं।"[1]

चतुर्थ अध्याय—

धूम्रलोचन का बध कर देवी ने दैत्यों की सम्पूर्ण सेना का इस प्रकार विनाश कर दिया जैसे विष का घूर्ण देने से मक्खियां नष्ट हो जाती हैं—

समु छार भइउ दलु दानव को जिमु।
घूम हलाहल की मखियां ॥१०१॥

सब का संहार कर देवी ने एक दैत्य जानबूझ कर छोड़ किया, जिससे वह जाकर शुंभ-निशुंभ को समाचार दे सके और वे युद्ध के लिये और सेना भेजें और देवी उनका भी संहार कर सके—

अउर सकल सेना जरी बचिउ सु एकै प्रेत॥
चड बचाइउ जानि कै अउरन मारन हेत॥१०८॥

धूम्रलोचन के बध के पश्चात् दैत्यराज शुंभ की आज्ञा से चण्ड और मुण्ड नामक दैत्य सेनानी दुर्गा से युद्ध करने के लिये अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर चले। घोड़ों के खुरों से इतनी धूल उठ रही है मानो ससार के अथाह भार से त्रस्त होकर स्वयं पृथ्वी ब्रह्म लोक को जा रही है।

कोप चढै रन चड अउ मुड सु लै चतुरंगन सैन भली।
तब सेस के सीस धरा लरजी जन मद्धि तरंगनि नाव चली।
खुर बाजन धूर उठी नभि कै कवि के मनते उपमा न टली।
भव भार अपार निवारन को धरनी मनो ब्रह्म के लोक चली॥१०८॥

चण्ड और मुण्ड से देवी का भयानक युद्ध हुआ। अन्त मे वे दोनों दैत्य भी मारे गये—

मुंडमहारन मद्धि हनिउ फिर कै बरचण्ड तबै इह कीनो।
मार बिदार दई सब सैन सु चडका चड सो आहव कीनो।
ले बरछी करमै अरि को सिर कै बर माहि जुदा कर दीनो।
जैसे महेस त्रिमूल गनेस को रुड कीउ जन मुंडबहीनो॥११६॥

पंचम अध्याय

चण्ड मुण्ड सेनानियों की मृत्यु के पश्चात् शुंभ और निशुंभ ने रक्तबीज को देवी से युद्ध करने के लिए एक विशाल वाहिनी सहित भेजा—

स्रोणत बिन्दु को सुंभ निसुभ कहिउ तुम जाहु महा दलु लैकै।
छार करो गरुए गिर गार्जहि चण्ड पचारहन बलु कै कै।
कानन मे नृप की सुनि बात रिसात चलिउ चढ़ि ऊपर गै कै।
मानो प्रतच्छ होइ अतक दंत को लैकै चलिउ रन हेत जु छै कै॥१२६॥

चण्डी चरित्र की कथा का आधार यद्यपि पौराणिक है किन्तु कवि ने देवी मे चमत्कार का आरोप कम किया है। कवि ने दुर्गा एव दैत्यों के युद्ध को तत्कालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में देखा इसलिए दुर्गा की शक्ति मे अलौकिकता का आरोप अधिक नही होने दिया। इस युद्ध मे योद्धा (दुर्गा सहित) उन्हीं अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते हैं जो कवि के युग मे प्रचलित थे—

बीरन के करते छुट तीर सु चड का सिपनि जिउ भभकारी।
लै करि बान कमान कृपान गदा गहि चक्र छुरी अउ कटारी ॥१२२॥
... ...

आइस पाइकै दानव को दल चण्ड के सामुहे आइ अरिउ है।
ढार अउ सांग क्रिपानिन लै कर मैं कर बीरन जुद्ध करिउ है ॥१२८॥

युद्ध का अधिकांश वर्णन तो एक पक्षीय ही है जिसमे दुर्गा की बीरता और उसके द्वारा दैत्य वाहिनी के सहार का ही अधिकांश वर्णन है। किन्तु ऐसे स्थल भी पर्याप्त हैं, जहां दुर्गा एव उसका वाहन सिंह दोनों ही दैत्यों के प्रहार से घायल होते हैं एवं उनमें उसकी स्वाभाविक मानवीय प्रतिक्रिया होती है—

धाउ लगे तन चण्ड अनेक सु स्रउण्ड चलिउ बहिकै सरतानै।
मानहु फार पहारहूँ को सुत तृच्छ कै निकसे कर बानै ॥१३१॥
... ...

मुंड लई करवार हकारके केहरि कै अग अग प्रहारे॥
फेर दई तन दउर कै गउन को पाइन कै निकसी अग धारे ॥११२॥
... ...

लोचन धूम्र उठे किलकार लए संग दैतन कै कुरमा।
गहि पान कृपान अचानक तान लगाई है केहरि कै उरमा ॥६६॥
... .

दैत निकास कै सांग बड़े बलिकै तब चड प्रचड के दीनी।
आइ लगै तिहकै मुख मे बहि सउन परिउ अति ही छबि कीनी।
इउ उपमा उपजी मनमैं कवि ने इह भांत सोई कहि दीनी।
मानहु सिंगल दीप की नार गरै मैं तंबोल की पीक नवीनी॥

इस अध्याय मे दुर्गा और रक्त बीज के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। रक्तबीज को वर प्राप्त है कि इसके रुधिर की बूंद पृथ्वी पर गिरते ही अनेक रक्तबीज उत्पन्न होकर युद्ध करने लगें—

जेतक स्रउन की बूद गिरे रन तेतक स्रउनत बिंद ह्वै आई।
मारही मार पुकार हकार कै चड़ि प्रचडि के सामुहि धाई ॥१५६॥

दुर्गा ने जब देखा कि इस प्रकार रक्तबीज का वध संभव नहीं तो उसने अपने मस्तक से ज्वाला प्रगट कर काली को जन्म दिया—

क्रुद्ध कै जुद्ध करिउ बहु चड ने एतो करिउ मधु सो अविनासी।
दैतन के बध कारन को निज भालते जुआल को बाट निकासी।
काली प्रतच्छ भई तिह तें रन फैल रही भय भीर प्रभासी।
मानहुं स्रिंग सुमेर को फोरि कै धार परी धर पै जमुना सी ॥१६५॥

तब चडी ने काली को आदेश दिया कि मैं रक्तबीज का वध करती हूँ तुम उसका रक्त पीलो—

चडी काली दुहू मिलि कीनो इहै बिचार।
हउ हनिहो तूं स्रउन पी अरि दलि डारहि मारि ॥१६७॥

और इस प्रकार चण्डी और काली ने मिलकर रक्तबीज का संहार किया—

चण्डी दइउ बिदार स्रउन पान काली करिउ।
छिन महिं डारिउ मार स्रउनत बिंद दानव महा ॥१७२॥

षष्ठ अध्याय—

चण्डी और काली ने मिलकर रक्तबीज का वध कर दिया। बचे हुए दैत्यों ने शुंभ-निशुंभ को जाकर यह समाचार दिया। अपनी पराजय और सेनानायक सहित दैत्य वाहिनी की पराजय का समाचार सुन दोनों दैत्य बड़े क्रोधित हुए और अपनी विशाल सेना सहित चण्डी से युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गए—

कोप कै सुंभ निसुंभ चढ़े धुनि दुंदभि की दसहू दिस धाई।
पाइक अग्र भए मधि बाज रथी रथ साजिकै पाति बनाई।
माते मतंग के पुंजन ऊपरि सुन्दर तुंग धुजा फहराई।
सक्र सो जुद्ध के हेत मनो घरि छाड़ि सपच्छ उठे गिरराई ॥१७५॥

दैत्यों की सेना से चण्डी और काली ने मिलकर युद्ध किया—

चण्डका ले बान अउ कमान काली कृपान। छिन मद्धि कै कै बलु सुंभ की हनी अनी ॥

शुंभ और निशुंभ द्वारा संचालित इस विशाल दैत्य वाहिनी से देवी का युद्ध इतना भयानक हुआ कि विष्णु आदि सभी देवता भी आतंकित हो गये। महाशक्तिशालिनी चण्डी की शक्ति उस युद्ध के लिए अपर्याप्त प्रतीत होने लगी। विष्णु ने चण्डी की सहायतार्थ अन्य देवताओं की शक्तियों को युद्ध भूमि में भेजा—

देखि भइआनक जुद्ध को कीनो बिसन बिचार।
सकति सहाइह कै नमित भेजी रनहि मंझार ॥१८३॥

इन शक्तियों की सहायता की आवश्यकता मानो चण्डी भी अनुभव करती है। इस-लिए वह उनका स्वागत करती है। सभी शक्तियाँ चण्डी मे इस प्रकार लीन हो जाती हैं जैसे श्रावण मास की बाढ़ मे आई हुई नदियाँ समुद्र मे मिल जाती हैं—

आइस पाइ सभै सकती चलिकै तहा चण्ड प्रचण्ड पै आई।
देवी कहिउ तिनको करि आदर आई भले जनु बोल पठाई।
ता छबि की उपमा अति ही कवि कै अपने मन में लखि पाई।
मानहु सावन मास नदी कलिकै जल रास मे आन समाई ॥१८४॥

देवी और दैत्यराज निशुंभ में भयानक युद्ध हो रहा है। अपनी सेना का चण्डी द्वारा संहार होते देख निशुंभ क्रोध से भरकर सामने आ खड़ा होता है—

मार लईउ दलु अउर भजिउ मन में तब कोप निसुंभ करिउ है।
चण्डि के सामुहु आनि अरिउ अति जुद्ध करिउ पग नाहि टरिउ है।
चण्ड के बान लगिउ मुख दैत के स्रउन समूह धरान परिउ है।
मानहु राहु ग्रसिउ नभ भान मु स्रउनत को अति बउन करिउ है ॥१६२॥

अन्त में निशुंभ भी चंडी के हाथों मारा गया। चण्डी ने क्रोधित होकर तलवार से उसका सिर इस प्रकार काट लिया जैसे साबुन बनाने वाला तार से साबुन काट देता है—

चण्ड प्रचण्ड तबै बलधार संभार लई करवार करी करि।
कोप दई निसुंभ के सीस बही इह भांत रही तरवा तर।
कउन सराह करै कहिता छिन सो बिंब होइ परै धरती पर।
मानहु सार की तार लै हाथ चलाई है साबन को सबुनीगर ॥२०२॥

सप्तम अध्याय

निशुंभ के बध हो जाने पर पराजित दैत्यों ने दैत्यराज शुंभ को उसके भाई के बध की सूचना दी—

आन सुंभ पै तिन कही सकल जुद्ध की बात।
तब भाजे दानव सभै मारि लइउ तुम्र भ्रात ॥२०४॥

अपने भाई के वध का समाचार सुनकर शुंभ क्रोध से भर गया। अपनी समग्र सेना ले वह चण्डी से युद्ध करने चल दिया। युद्ध भूमि को उसने दैत्यों के शवों से पटा देखा। रक्त की सरिता इस प्रकार बह रही थी जैसे लाल रंग की उमडी हुई सरस्वती समुद्र से मिलने जा रही हो—

मानहु सारसुती उमडी जल सागर के मिलिबै कउ धाइउ ॥२०५॥

किन्तु रणभूमि में जब उसने अपने मृत भाई का शव देखा तो शोक से उसके पैर वहीं गड़ से गए। वह भयभीत सा मूर्तिवत् खड़ा रहा, मानो वह लगड़ा हो गया हो—

बंध कबंध परिउ अविलोक कै सोक के पाइन आगे धरिउ है।
धाइ सकिउ न भइउ भइ भीतर, चीतहु मानहु लंग परिउ है ॥२०६॥

मृत भाई के शव को देखकर शोकित एवं भयभीत होने के मानवीय भाव का चित्रण कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। दुर्गा सप्तशती में इस प्रसंग पर इस प्रकार के किसी भाव का चित्रण नहीं है। कवि की आधारभूमि अवश्य दुर्गा सप्तशती है किन्तु रचना के सृजन में उसने पूर्ण मौलिकता एवं प्रतिभा का प्रयोग किया है। दुर्गा सप्तशती एक इस प्रकार की पौराणिकता के गुणों से भरपूर रचना है जिसमें चमत्कार, अलौकिकता का आश्रय सर्वत्र लिया गया है। वह अलौकिकता भक्तों की श्रद्धा को तो सन्तुष्ट करती है किन्तु वीरों की वीरता को प्रेरित नहीं करती। गुरु गोबिन्दसिंह की इस रचना की सृष्टि का उद्देश्य चंडी के भक्तों की सन्तुष्टि न होकर तत्कालीन परिस्थितियों में धर्मयुद्ध के लिए सन्नद्ध हो रहे वीरों में वीर भाव का निर्माण करना है। इसलिए कवि ने इस रचना से चंडी की अलौकिकता को यथाशक्ति दूर रखा है और सम्पूर्ण वर्णन में तत्कालीन परिस्थितियों का परिप्रेक्ष्य दूर नहीं होने दिया।

इस अध्याय के एक छन्द (२१६) में कवि ने युद्धभूमि में विश्वकर्मा द्वारा भवन-निर्माण का बड़ा ही सुन्दर रूपक बाँधा है। युद्ध भूमि में गीदड़, योगिनियाँ और गिद्ध आदि मजदूरनियाँ हैं। रक्त मांस का कीचड़ गारा है। शंकर का ताडव उस गारे का निर्माण

है, लोथ पर लोथ चढ़ी है मानो दीवारें बन गई हैं और गूदा चर्बी उन दीवारों के कलई करने का चूना है। यह रणभूमि नहीं मानो विश्वकर्मा ने सुन्दर चित्रकारी बनाई है।[1]

सुंभ से चंडी का भयानक युद्ध हुआ। अन्त में इसके भी दो टुकड़े करके चंडी ने उसे पृथ्वी पर फेंक दिया और उसने विजय का शंख बजा दिया—

दोहा—सुंभ मारिकै चंडका उठी सु संख बजाइ ॥
तब धुनि घंटा कीकरी महा मोदि मन पाई ॥२२२॥

अष्टम अध्याय

चंडी चरित्र का अन्तिम अध्याय बहुत महत्वपूर्ण है। दैत्यों के वध के पश्चात् शान्ति स्थापित हो गई। जिन दैत्यों के आतंक से सभी देवता भयभीत थे उनका संहार कर देवी संत पुरुषों की रक्षा की है—

संत सहाइ सदा जगमाइ,
सु सुंभ निसुंभ बडे अरि जीते ॥२२५॥

सभी देवताओं ने मिलकर चंडी की स्तुति की—

मिलि कैं सु देवन बडाई करी कालका की,
ए हो जगमात तैं तो कटिउ बडो पाप है ॥
दैंतन को मार राज दीनो तैं सुरेस हूं को,
बडो जस लीनो जग तेरो ई प्रताप है ॥
देत है असीस दिजराज रिख बारि बारि,
तहा ही पढिउ ब्रह्म कउचहूं को जाप है ॥
ऐसे जसु पूर रहिउ चंडका को तीन लोक,
जैसे धार सागर में गंगा जी को आपु है ॥२२७॥

देवताओं का तो उद्देश्य पूर्ण हो गया किन्तु कवि ने किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर यह रचना की है। यद्यपि कवि कहता है कि उसने इस रचना की सृष्टि अन्य किसी उद्देश्य से प्रेरित न होकर केवल 'कौतुक' के ही लिए की है—

कउतक हेत करी कवि ने,
सतसया की कथा इह पूरी भई है ॥

किन्तु यह कौतुक क्या है? इन रचनाओं का कवि केवल कवि ही तो नहीं है। न तो वह वीरगाथाकालीन प्रवृत्ति का कवि है जो अपने आश्रयदाता को युद्ध के लिए प्रेरित करता है चाहे उस युद्ध की पृष्ठभूमि किसी दूसरे राज्य की सुन्दर राजकुमारी का हरण कर लाना मात्र ही क्यों न हो। न वह भक्तिकालीन कवि है, जिसकी, सम्पूर्ण अभिव्यक्ति अपने इष्टदेव की प्रसन्नता प्राप्त कर, संसार के सुखों से विरत हो, वैयक्तिक मोक्ष की

---

१. सुंभ चमू संग चण्डका क्रोध के जुद्ध अनेकन बार मचिउ है ॥
जम्बक जुगनि गिध मजूर, रक्त की कीच में हंस नचिउ है ॥
लुथ पै लुथ सु भीतैं भई सत गुद अउ मेद लै ताहि गचिउ है ॥
अउन रंगीन बनाइ मनो करमा बिस चित्र बचित्र रचिउ है ॥२१

साधना में लीन हो जाना मात्र ही है। न ही उसकी प्रवृत्ति पूर्णतया रीतिकालीन है जहाँ कवि अपने आश्रयदाता के स्वभाव के अनुकूल शृंगार या वीरतापूर्ण पदों की रचना करता है।

चंडी चरित्र का रचयिता मूलतः एक महान विद्रोही है जो अपने युग के आसुरी शासन को नष्ट करने के लिए सन्नद्धता प्राप्त कर रहा है अर्थात् वह धर्मयुद्ध का आयोजन कर रहा है। उसका युद्ध केवल युद्ध नहीं है—धर्मयुद्ध है। इस युद्ध की तैयारी के लिए उसे सैनिक चाहिए, स्वयंसेवक चाहिए, धन चाहिए, अस्त्र शस्त्र चाहिए, हाथी घोड़े चाहिए, रसद सामग्री, तम्बू कनात आदि अनेकानेक वस्तुएं चाहिए। किन्तु ये तो बाह्य उपकरण हैं, क्या सैनिकों, शस्त्रों, हाथी घोड़ों, धन और रसद पानी से युद्ध जीते जाते हैं? चंडी चरित्र का रचयिता जानता था कि इन बाह्य उपकरणों की उपस्थिति में भी युद्ध हारे जा सकते हैं और इन उपकरणों के अभाव में भी युद्ध जीते जा सकते हैं और वह वस्तु जो संघर्ष में विजय प्राप्त कराती है, इन बाह्य उपकरणों में न होकर हृदय में होती है।

बाह्य सामग्री के एकत्रीकरण के साथ-साथ गुरु गोविन्दसिंह ने इन रचनाओं की सृष्टि में उस मनोभाव को खोजा। कृष्णावतार में उन्होंने कहा—

अवर वासना नाहि प्रभु,
धरम जुद्ध के चाइ ॥

चंडी चरित्र में भी वह यही चाहता है। इसलिए जहाँ मूल दुर्गा सप्तशती के ग्यारहवें बारहवें अध्याय के लगभग १०० श्लोक दुर्गा की अलौकिक अतिरंजित स्तुति एवं दुर्गा सप्तशती के नियमित पठन एवं श्रवण से मिलने वाले माहात्म्य से भरे पड़े हैं गुरु गोविन्दसिंह ने इस अध्याय को कुल ४ छंदों में समाप्त कर दिया है और थोड़े ही में यह कह दिया है कि जो व्यक्ति जिस निमित्त इसे पढ़ेगा वह चंडी उसे दे देगी—

जाहि नमित पढ़ै सुनि है नर सौ
निसचै करि ताहि दई है ॥२३१॥

कवि का अपना भी निमित्त है—

ग्रंथ सतिइसा को करिउ जा सम अवरु न कोइ ॥
जिह नमित कवि ने कहिउ सु दहु चंडका सोइ ॥२३२॥

कवि का निमित्त क्या है? वही जिसका उल्लेख उसने कृष्णावतार में किया है और जिसे वह इस रचना में इन शब्दों में व्यक्त करता है—

दह सिवा बर मोहि इहै सुभ करमन तें कबहू न टरों ॥
न डरौ अरिसों जब जाइ लरौ निसचै कर आपनी जीत करौं ॥
अरु सिख हौ आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरौं ॥
जब आव की अउध निदान बनै अति ही रन मै जब जूझ मरौ ॥२३१॥

(हे शिवा मैं शुभ कर्मों से कभी विरत न होऊं। शत्रु से कभी न डरूं जब उससे जा लड़ूं तो निश्चय अपनी जीत करूं। अपने मन को सदा शिक्षा देता रहूं और जब आयु की अवधि समाप्त होने पर आए तो धर्म युद्ध में जूझकर वीर गति प्राप्त करूं।)

चंडी चरित्र (द्वितीय)

गुरु गोबिन्दसिंह विरचित द्वितीय चडी चरित्र मे ८ अध्याय एव २६२ छंद हैं। इस रचना की काव्य शैली प्रथम चडी चरित्र से भिन्न है। प्रथम चडी चरित्र मे सवैया प्रमुख छद है और उसके साथ कवित्त, दोहा और चौपाई का प्रयोग हुआ है। चंडी चरित्र (द्वितीय) मे युद्ध की द्रुत, अति द्रुत और अल्प द्रुत आदि गतियों को प्रस्तुत करने के लिए कवि ने छद वैविध्य और शीघ्र छद परिवर्तन का आश्रय लिया है। इस रचना मे नाराज, रसावल, दोहा भुजगप्रयात, तोटक, चौपाई, मधुभार, रूमाग्रल, कुलक, सोरठा, बिजै छद, मनोहर छद, सगीत भुजगप्रयात, बेलीबिद्रम, वृद्ध नाराज, सगीत मधुभार और सगीत नाराज, कुल १७ छदो का प्रयोग हुआ है और ५७ बार छद परिवर्तन किया गया है।

अध्यायानुसार इस रचना का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय

प्रथम चंडी चरित्र के प्रथम अध्याय के १२ छदो मे से ६ छदों में ब्रह्म की स्तुति, चंडी की स्तुति, ग्रन्थ रचना का उद्देश्य और रचना प्रारम्भ की अनुमति प्राप्त करने का वर्णन करके राजा सुरथ का राज्य विहीन होकर मेधस ऋषि के आश्रम मे जाना और उनसे चडी की कथा श्रवण का वर्णन है। इस अंश को प्रथम चंडी चरित्र की भूमिका या मंगलाचरण कहा जा सकता। किन्तु यह रचना [चडी चरित्र (द्वितीय)] बिना किसी भूमिका या मगलाचरण के ही प्रारम्भ हो जाती है। प्रथम चडी चरित्र मे मधु और कैटम दैत्यों की विष्णु के कान की मैल से उत्पत्ति, विष्णु द्वारा ही उनके विनाश का भी उल्लेख है। किन्तु द्वितीय चडी चरित्र की कथा महिषासुर से प्रारम्भ होती है। वस्तुत: चंडी की कथा का सम्बन्ध महिषासुर के प्रकरण से ही होता है जो उसे अस्तित्व में लाने का कारण है।

चडी चरित्र (द्वितीय) का प्रथम छद है—

> महिखस दईत सूरयं ॥ बढ़ियो सु लोह पूरयं ॥
> सु देव राज जीतयं ॥ त्रिलोक राज कीतयं ॥

"महिषासुर नामक पराक्रमी दैत्य जो लोह पूरित है, शक्तिशाली हो गया। उसने इन्द्र को जीतकर त्रिलोक पर अपना राज्य स्थापित कर लिया।"

परिणामस्वरूप सभी देवता भयभीत हो, योगियो का वेष धारण कर कैलास पर्वत तो वह हुए। उन्होने अनेक वर्ष कष्ट सहकर जगत माता (दुर्गा) की आराधना की। करता है चर्गा प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हुई। देवताओ ने उन्हें अपनी व्यथा सुनाई और लाना मात्र है र लिया। देवी ने सभी शस्त्रो को धारण कर सिंह की सवारी कर ली—

अपने इष्टदेव की प्रेम सुनाई ॥ भवानी रिझाई ॥
धारी ॥ करी सिंह सुभारी ॥८॥

---

१. सुंभ चमू संग चण्डक देवी का युद्ध प्रारम्भ हो गया। देवी अपनी आठों भुजाओ में अस्त्र-
जम्बक जुगनि भिन्द्, संहार कर रही हैं। उसका सिंह भी दहाड़ता हुआ अनेक योद्धाओं
लुत्थ पै लुत्थ सु भीते
भजन रंगीत बनाइ मन है—

तबं ग्रस्ट ग्रस्ताय हथियारं संभारे ॥
सिरं दानवेंद्रान के ताकि झारै ॥
बबकियो बली सिंघ युद्ध मझारं ॥
करे खण्ड-खण्डं सु जोधा ग्रपार ॥१५॥

एक-एक कर देवी ने महिषासुर के सभी सेनानायकों, चामर, बिडालाछ, पंगाछ ग्रादि को मार गिराया। इस प्रकार ग्रपनी पराजय देखकर ग्रसुर राज क्रोधित हो उठा। देवी ने उससे युद्ध किया। बड़ी-बड़ी बातें करने वाले दैत्यों को चुन चुनकर मार गिराया। इसी समय देवी के मस्तक से क्रोध की ज्वाला उत्पन्न हुई ग्रौर उससे काली का जन्म हुग्रा—

ग्राप जुद्ध तब कीग्रा भवानी ॥
चुन चुन हने पखरीग्रा बानी ॥
क्रोध जुग्राल मस्तक ते बिगसी ॥
ताते ग्राप कालका निकसी ॥२७॥

देवी ने महिषासुर के सभी सेनानायकों का संहार कर दिया। महिषासुर ग्रस्त्र-शस्त्र संभाल कर क्रोध से भरा हुग्रा ग्राया, परन्तु देवी ने तत्काल ही कृपाण से उसको मार गिराया। उसकी ग्रात्मा ब्रह्म रंध्र को छोड़कर विशाल ग्रात्मा मे ज्योति से ज्योति के मिलन की भाँति मिल गई—

कोप कै महिखेस दानो धाइयो तिह काल ॥
ग्रस्त्र सस्त्र सभार सूरो रूप कै बिकराल ॥
काल पाए कृपाण लै तिह मारियो ततकाल ॥
जोति-जोति बिखै मिली जब ब्रह्म रंध्रि उताल ॥३७॥

द्वितीय ग्रध्याय

महिषासुर के वध से सब ग्रोर ग्रानन्द छा गया। देवो का राज्य स्थापित हो गया। कालान्तर मे शुभ-निशुभ नाम के दैत्य उत्पन्न हुए। उन्होंने ग्रपनी शक्ति से देवताग्रों का राज्य छीनकर उन्हें साधनहीन कर दिया। शेषनाग को भी ग्रपने मुकुट की मणि उन्हें भेंट करनी पड़ी—

सुभ निसुंभ चढ़े लंकै दल ॥
ग्ररि ग्रनेक जीते जिन जल थल ॥
देवराज को राज छिनावा ॥
सेस मुकटि मनि भेंट पठावा ॥४४॥

सब प्रकार से पराजित ग्रौर त्रस्त होकर देवताग्रों ने ग्रापस में विचार किया ग्रौर चंडी की शरण मे ग्राए—

देव सबै त्रासित भए मन मे कीयो बिचार ॥
सरन भवानी की सबै भाजि परे निरधार ॥८॥४६॥

देवताओं की प्रार्थना सुनकर देवी युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर रणभूमि में आ गयी। दैत्य सेना भी धूम्रलोचन नामक दैत्य के नेतृत्व में युद्ध के लिए आ गयी। भयानक युद्ध प्रारम्भ हो गया। चंडी और उसका सिंह दोनों ही शत्रु सेना का नाश करने लगे—

जितै बाण मार्यौ ॥ तिसै मार डार्यौ ॥
जितै सिंघ धायो ॥ तितै सैन घायो ॥२१॥५६॥

अन्त में काली माता ने धूम्रलोचन का संहार कर दिया। शेष बची हुई सेना रणभूमि से भाग गई और उसने दैत्यराज को धूम्रनयन के बध का समाचार सुनाया।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय में चंड और मुंड नामक दैत्यों के बध का वर्णन है। धूम्रनयन के बध का समाचार सुन दैत्यराज ने चंड और मुंड को चतुरंगिनी सेना देकर युद्ध के लिए भेजा—

धूम्रनयन जब सुणे सधारे ॥
चंड मुंड तब भूप हकारे ॥
बहु बिधि कर पठए सनुमाना ॥
हय गैं पाति दए रथ नाना ॥२॥६६॥

धूम्रनयन का बध कर चंडी कैलाश पर्वत को चली गई थी। जिन दैत्यों ने धूम्रनयन के साथ युद्ध में भाग लिया था अर्थात् जिन्होंने देवी को पहिले देखा था, उन्हें गुप्तचर बनाकर देवी का पता लगाने के लिए कैलास की ओर भेजा गया। जब चंडी को इस नवीन दैत्य सेना के आगमन की भनक पड़ी तो वह अस्त्र-शस्त्र लेकर निकल पड़ी—

प्रिथम निरखि देवीसहि जेआए ॥
तैं धवलागिर ओर पठाए ॥
तिनकी तनक भनक सुनि पाई ॥
निसरी सस्त्र अस्त्र लै माई ॥३॥६७॥

इस अध्याय के आगामी नौ रुआल छंदों में युद्ध का बड़ा चित्रमयतापूर्ण चित्रण है। उदाहरण स्वरूप—

रेल-रेल चलै हएन्द्रन पेल-पेल गजेन्द्र ॥
झेल-झेल अनन्त आयुध हेल-हेल रिपेन्द्र ॥
गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहिबाहि खतंग ॥
अंग-भंग गिरे कहूँ रण रंग सूर उतंग ॥६॥७०॥

और अन्त में—

चंड मुंड मारे दोऊ काली कोप कवार ॥
अउर जिती सैना हुती छिन मो दई सघार ॥१७॥७७॥

चतुर्थ अध्याय

चंड और मुंड की मृत्यु के पश्चात् शुंभ ने अपने भाई निशुंभ से विचार-विमर्श किया और रक्तबीज को युद्ध के लिए भेजा। रक्तबीज विशाल वाहिनी लेकर चला। उसके

नगाड़े की चोट देव लोक तक सुनाई दी। भूमि कांपने लगी, आकाश थर्रा गया, देवताओं सहित इन्द्र भी भयभीत हो गया—

रक्तबीज दै चल्यो नगारा ॥
देव लोक लउ सुनी पुकारा ॥
कंपी भूम गगन यहराना ॥
देवन जुति दिवराज डराना ॥३॥८०॥

धवल गिरि (कैलाश) के निकट जब चंडी ने दैत्य सेना का कोलाहल सुना तो वह अस्त्र शस्त्रों से सज्जित होकर पर्वत से नीचे उतर आयी। भयानक युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक ओर रक्तबीज क्रोधित होकर आक्रमण कर रहा है दूसरी ओर देवी खड्ग प्रहार कर रही है—

उत कोपीय स्रोण बिंद सु बीर ॥
प्रहार भली भाति सो आन तीर ॥
उत दउर दैवी करयो खग्ग पात।
गिरयो मुरछ हुऐ भयो जानु घात ॥६॥८६॥

दोनों ही पक्ष युद्ध में लीन हैं जैसे साधक साधना में लीन होता है। वहां बाणों की मचना हो रही है और धनुर्वेद की ही चर्चा हो रही है—

रस रुद्र राच ॥ उभ जुद्ध माचे ॥
करे बाण अरचा ॥ धनुरबेद चरचा ॥२०॥९८॥

युद्ध चित्रण की सजीवता के लिए इस रचना में सामान्य छन्दों में संगीत स्वरों का समावेश किया गया है। इन पदों का अर्थ की दृष्टि से कम पठन की गतिमयता की दृष्टि से अधिक महत्व है। इनकी ताल में वाद्य यन्त्रों (मृदंग) के बोल ध्वनित होते हैं। भुजंग प्रयात के इन सात छंदों को रचनाकार ने संगीत भुजंग प्रयात की संज्ञा दी है—

कागड्दग काली कटारी कड़ाकं ॥
तागड्दग तीरं तुपक तड़ाकं ॥
झागड्दग नागड्दग बागड्दग बाजे ॥
गागड्दग गाजी महां गज्ज गाजे ॥३५॥११२॥

रक्तबीज जितने रूप धारण करता है, देवी सबका संहार कर देती है। उसके रक्त की जितनी बूंदें पृथ्वी पर गिरती हैं काली उन्हें पी जाती है—

जितेक रूप धारीय ॥ तितेक देवि मारीय ॥
जितेक रूप धारही ॥ तितउ दुर्गा संघारहीं ॥४२॥११९॥
जितेक सस्त्र का झरं ॥ प्रवाह स्रोन के परं ॥
जितो किबिन्दु का गिरं ॥ सुपान कालका करे ॥४३॥१२०॥

और इस प्रकार वह रक्त हीन हो गया। उसके अंग क्षीण हो गए, वह भूमि पर गिर पड़ा मानो बादल पृथ्वी पर गिर पड़ा हो—

हुउ स्रोण हीन ॥ भयो अंग छीन ॥
गिरियो मत्त भूम ॥ मनो मघ भूम ॥४४॥१२१॥

पंचम अध्याय

रक्तबीज के वध का समाचार सुन शुभ निशुभ स्वयं सेना लेकर युद्ध के लिए आ गये—

शुभ निसुभ सुण्यो जबै रक्तबीज को नास ॥
आप चढ़त भे जोर दल सजै परसि अरु पांसि ॥१॥१२३॥

उनकी विशाल वाहिनी और नगारों की तीव्र ध्वनि से डर कर सूर्य और चन्द्र आदि देवता भागकर छिप गये। देवराज इन्द्र भी भयभीत हो गये—

चढ़े सुभ नैसुभ सूरा अपारं ॥
उठे नद्द नादं सु धउसा धुकारं ॥
भई अस्ट सै कोस लउ छत्र छाय ॥
भजे चन्द्र सूरं डरियो देवराज ॥२॥१२४॥

इस अध्याय में ५ बेलीबिद्रुम छन्दों की सहायता से युद्ध का बड़ा ही चित्रमय दृश्य उपस्थित किया गया है—

कह कह सु कूकत ककीय ॥ बहि बहत बीर सु बकीय ॥
लह लहत बाणि क्रिपाणय ॥ गहगहत प्रेत मसाणय ॥११॥१३३॥

युद्ध में अपनी सेना की पराजय देखकर शुभ क्रोधित हो उठा। उसने पृथ्वी पर पैर पटकते हुए निशुभ को दुर्गा को बाँधकर ले आने की आज्ञा दी—

निसुभ सुभ कोपकै ॥ पठियो सु पाव रोपकै ॥
कह्यो कि सीघ्र जाइयो ॥ दुर्गहि बांधि लिआईयो ॥१८॥१४०॥

निशुभ अपनी विशाल सेना लेकर दुर्गा से युद्ध करने चल दिया, सभी देवता भय-त्रस्त हो गए। इस कठिन परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए शिव ने इन्द्र को विचारार्थ बुला भेजा—

कप्यो सुरेस ॥ बुल्यो महेस ॥
किन्नो बिचार ॥ पुच्छे जुभार ॥२१॥१४३॥

उन्होंने सोचा कि कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे दुर्गा माता की विजय हो। अन्त में निश्चय यह हुआ कि सभी देवता अपनी अपनी शक्ति निकालकर दुर्गा को भेजें—

सकतं निकार ॥ भेजो अपार ॥
सत्रन जाइ ॥ हनि है रिसाइ ॥२३॥१४५॥

सभी देवताओं की शक्तियाँ दुर्गा की सहायतार्थ आ गईं। उनसे समन्वित होकर दुर्गा और उसके सिंह ने दैत्यों की सेना का संहार किया। अन्त में निशुभ का भी वध हुआ। सभी दुष्ट भाग गये। दुर्गा के सिंह ने विजय का गम्भीर गर्जन किया—

निसुभ सघार्‍यो ॥ दलं दैत मार्‍यो ॥
सबै दुस्ट भाजे ॥ इतै सिंघ गाजे ॥३३॥१५५॥

षष्ठम अध्याय

अपने छोटे भाई निशुभ के वध का समाचार सुनकर दैत्यराज शुभ अस्त्र शस्त्रों से सज्जित होकर घोर नाद से आकाश गुंजाता हुआ चला। उस दैत्य से शिव सहित सभी देवता कम्पित हो गए—

लघु भ्रात जुह्यो सुन्यो सुभ रायं ॥
सजे सस्त्र अस्त्र चढ्यो चउप चाय ॥
भयो नाद उच रह्यो पूर गैण ॥
त्रसे देवता दैत कंप्यो त्रिनैण ॥१॥१५७॥

उसे देखकर ब्रह्मा भी डर गये । इन्द्र अपने स्थान से भाग गया । दैत्यों ने सभी साज सजाए हुए हैं । क्रोध से भरे हुए वे हो हो का भयावह नाद कर रहे हैं। उनकी विशाल *आकृतियाँ सुमेर के सातवें शृंग के समान शोभायमान हो रही हैं।*[1]

शुभ की सेना सजी हुई है । उच्च स्वर से नाद कर रहा है, जिसे सुनकर गर्भिणियों के गर्भ गिरे जा रहे हैं । क्रोध से भरकर युद्ध हो रहा है । शस्त्रो की झंकार सुनाई दे रही है । चारो ओर चुड़ैलें बोल रही हैं । डाकिनियाँ डकार रही हैं ।[2]

असुर शुभ क्रोधित होकर जितने भी दैत्यो को दुर्गा से युद्ध करने के लिए भेजता है, उन्हें देवी वैसे ही नष्ट कर देती हैं जैसे तप्त तवे पर पानी की बूँद नष्ट हो जाती है ।[3]

चतुर्थ अध्याय में भुजंगप्रयात छंद को सगीत रूप दिया गया है । इस अध्याय मे मधुभार छद को वही रूप देकर उसी प्रकार युद्ध की गतिमयता उत्पन्न की गई है ।

कागड़द कड़ाक ॥ तागड़द तड़ाक ॥
सागड़द सुबीर ॥ गागड़द गहीर ॥१०॥१६६॥
नागड़द निसाण ॥ जागणद जुआण ॥
नागड़दी निहग ॥ पागड़दी पलग ॥११॥१६७॥

जब शुभ की चतुरगिणी सेना मे कोई न बचा तो वह स्वयं भगवान शिव का स्मरण करता हुआ युद्धार्थ निकला —

है गै रथ पैदल कटे बचयो न जीवत कोई ॥
तब आपो निकसियो नृपति सभु करै सो होई ॥३८॥१६४॥

तब दुर्गा ने एक शिवदूती को शिव के पास इसलिए भेजा कि वे उस दैत्य को पराजय स्वीकार कर लेने और युद्ध से विरत हो जाने के लिए समझाएं ।[4] शिवदूती ने यह सुनकर शिवजी को दूत बनाकर शुभ के पास भेजा । इसी समय से दुर्गा का नाम शिवदूती भी पड़

---

१. डर्यो चार बक्त्रं टर्यो देवराजं ॥
डिगे पब्व सरब सजे सुभ साजं ॥
परे हूह दैके भरे लोह क्रोह ॥
मनो मेर को सातवें स्रिंग सोह ॥२॥१५८॥

२. सज्यो सैणो सुंभ कीयो नाद उच्च ॥ सुणे गरभणीआन के गरभ मुच्च ।
परियो लोह क्रोहं उठी सस्त्र झारं ॥ चवीं चावडा डाकणीयं डकारं ॥३॥१५९॥

३. सुभासुर जेतिक असुर पठव कोपु बढाइ ॥
ते देवी सोखत करे बूंद तवा की निआइ ॥८॥१६४॥

४. सिवदूती इक दुर्गा बुलाई ॥ कान लाग नीकै समझाई ॥
सिव को भेज दीजिए तहाँ ॥ दैतराज इसथित है जहाँ ॥३६॥१६५॥

गया।[1] शिव ने दैत्यराज से कहा, "हे दैत्यराज हमारी बात सुनो, जगत माता (दुर्गा) ने कहा है कि या तो देवताओं को राज्य दे दो, अन्यथा हमसे युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ।"[2] दैत्यराज ने शिव की बात न मानी, वह अभिमानी स्वयं जूझने के लिए चल दिया और वहाँ पहुँचा जहाँ दुर्गा कालकी गर्जन कर रही थी।[3]

सुभ ने बहुत समय तक युद्ध किया अन्त मे काली के हाथों मारा गया—

रण कोप काल करालीय ॥ पट अग पाण उछालीयं ॥
सिर सुभ हत्यहु छडीय ॥ इक चोट दुस्ट बिहडीय ॥६२॥२१८॥

कवि की आकांक्षा है कि हे देवि, जिस प्रकार तुमने अधिक क्रोधित होकर सुभ का संहार किया, उसी प्रकार सतो के जितने भी शत्रु हैं उन्हें विकराल रूप धारण कर चबा जाओ—

जिम सुभासुर को हना अधिक कोप के कालि ॥
त्यो साधन के सत्र सभ चाबत जाहु कराल ॥६३॥२१६॥

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय के ३७ छदों मे देवी की स्तुति की गई है। चडी चरित्र का कथा प्रसग षष्ठ अध्याय में ही समाप्त हो जाता है।

सभी देवताओं ने मिलकर देवी की स्तुति की और ब्रह्म कवच का जाप किया—

उसतत सबहूँ करी अपारा ॥ ब्रह्म कवच को जाप उचारा ॥
सत सबूह प्रफुल्लत भए ॥ दुस्ट अरिस्ट नास हुए गए। २॥२२१॥

मार्कण्डेय पुराण के इक्यानवें अध्याय में देवताओं द्वारा देवी की ३४ छदों मे स्तुति है। चडी चरित्र का अश मार्कण्डेय पुराण के इस स्तुति अंश से प्रभावित है। मार्कण्डेय पुराण मे तो देवी के सभी रूपो और सभी कल्पनाओं में स्तुति है परन्तु चण्डी चरित्र के इस अश मे अधिकाशतः उसके दैत्य सहारकारी और साधु हितकारी रूप का ही बार-बार स्मरण किया गया है, जो कवि का अभिप्रेत था—

नमो जोग ज्वाल धरीअं जुआलं ॥
नमो सुभ हती नमो क्रूर काल ॥
नमो स्रोण बीरजारदनी धूम्र हती ॥
नमो कालका रूप जुआला जयती ॥४॥२२३॥

इस स्तुति का एक स्पष्ट रहस्य है, दुर्गा शत्रुओं को नष्ट करने वाली है, उनका गर्व नष्ट करने वाली है—

---

१. सिवदूती जब इम सुन पावा ॥ सिवहिं दूत करि उतै पठावा ॥
सिवदूती तातै भयो नामा ॥ जानत सकल पुरख अरु बामा ॥४०॥१६६॥

२. सिव कही दैतराज सुनि बाता। इह बिधि कह्यौ तुमहु जगमाता ॥
देवन को दैकै ठुकराई ॥ कै आवहु हम सग लराई ॥४१॥१६७॥

३. दैतराज इह बात न मानी ॥ आप चले जूझन अभिमानी ॥
गरजत कालि काल जयो जहाँ ॥ आपति भयो असुर पति तहाँ ॥४२॥१६८॥

नमो सत्र चरबाइणी गरब हरणी ॥
नमो तोखणी सोखणी सरब भरणी ॥३४॥२५३॥

और अन्त मे कवि की अपनी भावना इन आत्म निवेदन के शब्दो मे व्यक्त होती है—

सर्वे सत उबारी बरं ब्यूह दाता ॥
नमो तारणी कारणी लोक माता ॥
नमसतय नमसतयं नमसतय भवानी ॥
सदा राखले मुहि कृपा के कृपानी ॥३७॥२५६॥

अष्टम अध्याय

मार्कण्डेय पुराण के बानवें अध्याय के २६ छदों मे देवी अपनी स्तुति का महत्व बताती है। इस रचना के छदों के अन्तिम अध्याय मे चडी चरित्र के पठन-पाठन का माहात्म्य बताया गया है—

पढ़े मूढ़ याको धनं धाम बाढ़े ॥
सुनै सूम सोफी लरै युद्ध गाढ़े ॥
जगें रैण जोगी जपै जाप याको ॥
धरै परम जोगं लहै सिद्ध ताको ॥४॥२६०॥

पढ़ै याहि बिद्यारथी बिद्या हेत ॥
लहै सरब सास्त्रान को मद्ध चेत ॥
जपै जोग सन्यास बैराग कोई ॥
तिसै सरब पुन्यान को पुन्नि होई ॥५॥२६१॥
जे जे तुमरे धिम्रान को नित उठि धिमैहै सत ॥
अंत लहैंगे मुकति फलु पावहिगे भगवत ॥६॥२६२॥

चौबीस अवतार

गुरु गोबिन्दसिंह ने भारतीय धर्म ग्रथो मे वर्णित लगभग सभी अवतारो का चित्रण किया है। कुछ अवतारों की *कथा विस्तार से कही गई है, यथा कृष्णावतार, रामावतार* और कल्कि अवतार तथा अन्य अवतारो का वर्णन बहुत सक्षिप्त किया गया है। इन अवतार कथाओं मे विष्णु के २४, ब्रह्मा के ७ और रुद्र के २ अवतारों का वर्णन है।

दशम ग्रथ मे वर्णित अवतारों का विवरण देने के पूर्व कवि की अवतार सम्बन्धी धारणा को हृदयगम करना बहुत आवश्यक है। सिख परम्परा मे अवतारों को अधिक महत्व नहीं दिया गया है। सिख गुरुओ ने अवतारों का भी निर्माण करने वाले सर्वशक्ति सम्पन्न ब्रह्म, जिसे उन्होंने अकाल या अकाल पुरुष के नाम से अभिहित किया है, पर ही अपनी अन्तिम आस्था केन्द्रित रखी है।

गुरु गोबिन्दसिंह के पूर्ववर्ती नौ गुरु निराकार ईश्वर के उपासक है। उन्होंने परमात्मा को अनेक विशेषताओं से युक्त मानते हुए भी अवतारवाद का खण्डन किया है। गुरु नानक देव ने रामावतार के सम्बन्ध मे अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं—

मन महि झूरै रामचन्दु सीता लछमणु जोगु ।
हणवतरु आराधिआ आइआ करि संजोगु ॥

भूला दैतु न समझई तिनि प्रभ कीए काम ।
नानक वेपरवाहु सो, किरतु न मिटई राम ।।२६।।
(सलोक वारां ते वधीक, पृ० १४१२)

अर्थात् "रामचन्द्र ने सीता और लक्ष्मण के लिए मन मे दुःख प्रकट किया। उन्होंने हनुमान को स्मरण किया और संयोगवश वे आ गये। मूर्ख रावण यह नही समझता था कि मेरी मृत्यु का कारण राम नही, परमात्मा है। नानक कहते हैं कि परमात्मा सर्वथा स्वतन्त्र है, क्योंकि राम भी भाग्य-रेखा नहीं मेट सके।"

गुरु नानक देव के आसा राग में रामावतार और कृष्णावतार का खण्डन इस प्रकार हुआ है :—

पउणु उपाई धरी सभ धरती जल अगनी का बंधु कीआ ।
अंधुलै दहसिरि मूंड कटाइया रावणु मारि किआ वडा भइआ ।।
... ...
जीअ उपाई जुगति हथि कीनी, काली नथि किआ वडा भइआ ।
किस तूं पुरखु जोरु कउणु कहिए सरब निरंतर रवि रहिआ ।
नालि कुटुम्ब साथि वरदाता ब्रह्मा भालण सृस्टि गइआ ।
आगै अंतु न पाइओ ताका कंसु छेदि वडा भइआ ।।३।।७।।
(गुरु ग्रंथ साहिब, रागु आसा, महला १, पृ० ३५०)

अर्थात्, परमात्मा ने पवन की रचना की, सारी पृथ्वी को धारण किया और जल तथा अग्नि का मेल मिलाया। अंधे रावण ने अपने दस सिरो को कटवाया। रावण को मारने से परमात्मा को क्या बड़प्पन मिला ? जिस ईश्वर ने सभी जीवों को उत्पन्न किया और उनकी मुक्ति अपने हाथो मे रखी तो भला बताओ (कालिया) नाग के नाथने से उसे क्या बडाई प्राप्त हुई। तुम किसके, तुम्हारी स्त्री कौन है ? तुम तो सभी में रम रहे हो। वरदाता ब्रह्मा जिसका स्थान कमल नाल है, सृष्टि रचना के विस्तार का पता लगाने के लिए गए। परन्तु सृष्टि के आदि अन्त का पता उन्हें न लगा। भला ऐसे परमात्मा को कंस के मारने से क्या बड़ाई प्राप्त हो सकती थी ?

परन्तु वे अवतारो के सभी प्रचलित नामो को स्वीकार करते हैं। गुरु ग्रंथ साहब मे अवतार कथाएँ भी वर्णित हैं और यह वर्णन श्रद्धापूर्वक हुआ है। किन्तु गुरु गोबिन्दसिंह को न्यूनाधिक रूप से इस सम्बन्ध मे अपना मत स्पष्ट करना पड़ा है।

वस्तुतः सिख गुरुओं की अवतार भावना अद्वैत के बहुत निकट है। अद्वैत के अनुसार ब्रह्म की सत्ता ही सत्य है, अन्य सब कुछ असत् है, मिथ्या है। असत् प्रपंच की समस्याओं को सुलझाने के लिए इसमे ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति, माया को भी स्वीकार किया जाता है। *जिन्हें हम जीव कहते हैं, वे भी अन्त मे ब्रह्म के ही रूप हैं और यह जो जड़ जगत* दिखाई दे रहा है, वह भी अपने नाम और रूप को छोड़कर उसी ब्रह्म में लीन हो जाता है।[1]

अवतारों के सम्बन्ध में अद्वैतवादी दृष्टिकोण इस प्रकार है। मायावाद के अनुसार जीव-संज्ञक, ब्रह्म की कई कोटियां हैं। जो जीव जितना ही अधिक माया के प्रभाव से पृथक् होता जाता है, वह उतना ही अधिक आत्म साक्षात्कार के निकट पहुँच जाता है। पूर्ण

---

१. प्रथम जा : डा० मुंशीराम शर्मा, पृ० ६७।

आत्मबोध ही माया के प्रपंच से पार्थक्य सूचित करता है। अतः मायालिप्त जीवों का उद्धार करने के लिए अवतार होता है। यह अवतार भी ईश्वर पद प्राप्त जीवो का ही होता है।[1]

गीता के अनुसार :—

> यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
> तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम् ॥१०-४१॥

अर्थात्, जिस प्राणी मे विभूति, श्री और तेज दिखाई पड़े, वह भगवान के ही अश से पैदा हुआ है, ऐसा समझना चाहिए। ईश्वर इन विशिष्ट शक्तियो से सम्पन्न जीव का ही *नाम है। अद्वैतवादियों ने विकास के क्षेत्र मे ईश्वर को ब्रह्म से नीचा स्थान दिया है।* अवतार भी वे इस ईश्वर का मानते हैं ब्रह्म का नही। परन्तु जब अद्वैतवाद के स्थान पर *आचार्य वल्लभ ने शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया तो ईश्वर और ब्रह्म का भेद जाता* रहा।[2]

हिन्दी मे जिन भक्त कवियो ने अवतारों की कथाओ का वर्णन किया है, वह विशुद्ध भक्ति भावना से प्रेरित होकर ही किया है। इन भक्त कवियो की दृष्टि मे ब्रह्म और ईश्वर मे कोई भेद नही *था*, इसलिए जिन अवतारो को उन्होने अपना इष्ट माना उनमे और ब्रह्म में उन्होने कोई अन्तर स्वीकार नहीं किया। परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह की अवतार कथा का चित्रण भक्ति भाव से प्रेरित नही था। अपनी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति के लिए उनके पास पूर्ववर्ती गुरुओं द्वारा प्रशस्त मार्ग था। 'अकाल स्तुति' और 'जाप' उनकी उसी मार्गानुगामी रचनाएं हैं। अवतारो की कथा तो वे विशिष्ट उद्देश्य से प्रेरित होकर लिख रहे थे इसलिए इन रचनाओं मे अन्य भक्त कवियो के समान उन्होंने अवतारो के ईश्वरीय और अलौकिक महत्व प्रतिपादन मे इतनी *रुचि नहीं ली, जितनी उनके जीवन कार्यों के चित्रण मे ली है।*

इस विषय पर अधिक विवेचन इसी प्रबन्ध के भक्ति भावना अध्याय मे किया *गया है।*

विष्णु के चौबीस अवतारो का चित्रण करने के पूर्व कवि ने ३८ छन्दो में अवतारों के जन्म का उद्देश्य[3] अवतारों को भी जन्म देने वाली महाशक्ति *'काल'* का चित्रण, उसके विभिन्न गुण और उन गुणो के कारण उसके विभिन्न अभिधान[4] तथा अनेकानेक बाह्य-

---

१. प्रथम आ: पृ० ६८।

२. वही।

३. *जब जब होत अरिस्ट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा ॥२॥*

४. काल सभन का करत पसारा। अन्त काल सोई खापन हारा ॥
आपन रूप अन्तन धरहीं। आपहि मद्ध लीन पुन करहीं ॥३॥
... ...
जे चउबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए ॥
... ...
सभहीं छलत न आप छलाया। ताते छलिया आप कहाया।
सतन दुःखी निरख अकुलावै। दीनबंध ताते कहलावै ॥८॥
... ...
रहा अनन्त अन्त नहिं पायो। याते नामु बिअन्त कहायो ॥
जग मो रूप सभन के धरता। याते नाम बखनीयत करता ॥१८॥

डम्बरों का खण्डन किया गया है।[1] कवि के दार्शनिक विचार धार्मिक मान्यताओं एवं अवतार-वाद सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने के लिए ये छंद बहुत आवश्यक हैं।

विष्णु के चौबीस अवतारों ने प्रचलित मान्यता के अनुसार ही दस प्रमुख तथा चौदह गौण अवतार स्वीकार किये हैं।[2] वैसे सम्पूर्ण अवतार कथा वर्णन में कौन से दस प्रमुख हैं और चौदह गौण हैं इसका स्पष्ट उल्लेख कवि ने नहीं किया है।

चौबीस अवतारो की नामावलि इस प्रकार है :—

१. मच्छ (मत्स्य)
२. कच्छ (कच्छप)
३. नर
४. नारायण
५. मोहिनी
६. बराह (वराह)
७. नरसिंह (नृसिंह)
८. बावन (वामन)
९. परसराम (परशुराम)
१०. ब्रह्मा
११. रुद्र
१२. जालन्धर
१३. बिसन (विष्णु)
१४. शेषशायी
१५. अर्हन्तदेव
१६. मान राजा
१७. धनन्तर (धनवन्तरि)
१८. सूरज (सूर्य)
१९. चन्द्रमा
२०. राम
२१. कृष्ण
२२. नर (अर्जुन)
२३. बुद्ध
२४. निह कलंकी (कल्कि)

---

१. पेट हेत नर डिंभु दिखाहीं। डिंभ करै बिनु पईयत नाहीं ॥२४॥
... ...
कान छेद जोगी कहवायो। अति प्रपंच कर बनहि सिधायो ॥
इक नाम को तत्तु न लयो। बन को भयो न ग्रिह को भयो ॥२७॥

२. इनमहि स्रिसटि सु दस अवतारा। जिन महि रमिया राम हमारा ॥
अनत चतुर दस गन अवतारु। कहो जु तिन तिन कीए अखारु ॥४॥

इन अवतारों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

१ मच्छ (मत्स्य)

दशम ग्रंथ म मच्छावतार की कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है —

एक बार एक सखासुर नाम का दैत्य बहुत शक्ति सम्पन्न हो गया, उसे नष्ट करने के लिए विष्णु ने मच्छ का अवतार ग्रहण किया। मच्छ ने पहले लघु रूप धारण किया समुद्र की तह में बैठकर उसे झकझोर दिया। फिर उसने धीरे धीरे अपना विशाल रूप धारण किया, इस पर सखासुर क्रोधित हो उठा और उसने चारों वेदों को उठाकर समुद्र म फेंक दिया। वेदों के रक्षार्थ मच्छ अवतार ने सखासुर से महाभयानक युद्ध किया और अन्त में उसे मार कर वेदों का उद्धार किया।

मच्छ अवतार की कथा का वर्णन १६ छदों म है। १६ म से ११ छन्दों में मच्छ और सखासुर के युद्ध का चित्रण है। युद्ध चित्रण के लिए भुजगप्रयात और रसावल छन्द का प्रयोग हुआ है। दोनों ओर सेनाएं हैं और उन सेनाओं म भयानक युद्ध हो रहा है —

लग ठाम ठाम दमाम दमके ॥
खुने खेत मो खग्ग खूनी खिमग ॥
भए क्रूर भांत कमाण कड़क्के ॥
नचे बीर बैताल भूत भड़क्के ॥४६॥

मच्छावतार और सखासुर म द्वन्द्व युद्ध होने का भी वर्णन है —

भयो दुद जुद्ध रण मत्त मच्छ ॥ मनो दो गिर जुद्ध जुटै सपच्छ ॥५२॥

अन्त मे मच्छ ने सखासुर को मार कर वेदों का उद्धार किया। मच्छ रूप त्याग कर सुन्दर वस्त्रों से अपने आपको सज्जित किया, देवताओं को यथावत् स्थापित किया और जिनके कारण सभी लोग त्रस्त थे ऐसे दानवों को दूर किया —

कीयो उद्धार बद हते सख बीर ॥ तज्यो मच्छ रूप सज्यो सुन्द्र चीर ॥
सर्व देव थापे कीयो दुस्ट नास ॥ टरे सरब दानो भरे जीव त्रास ॥५३॥

२ कच्छ अवतार (कच्छप)

समुद्र मथन के लिए सभी देवता और दैत्य एकत्र हुए। मदराचल पर्वत को उन्होंने मथानी बनाया और वासुकी नाग को रस्सी। किन्तु इतने बड़े मन्दराचल को सभाले कौन ? भगवान् विष्णु ने कच्छप रूप धारण किया और मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया।

इस अवतार का कथा वर्णन कुल ५ छन्दों म किया गया है। सभी भुजगप्रयात हैं। अवतार ग्रहण सम्बन्धी अन्तिम छन्द इस प्रकार है—

इसो कउण बीचो धरै भाऊ पब्ब ॥ उठे काप बीर दित्यादित्य सब्ब ॥
तबै आप ही बिसन मत्र बिचार्यो ॥ तरै पबत कच्छप रूप धार्यो ॥५॥

३ ४ नर नारायण अवतार

सभी देवताओं और दैत्यों ने मिलकर समुद्र मथन किया और उसमे रत्न और उपरत्न निकाले। किन्तु रत्नों के बटवारे के समय आपस मे सघर्ष प्रारम्भ हो गया। ऐसे

समय में विष्णु ने नर-नारायण रूप में अवतार लेकर दैत्यों से युद्ध किया। यह विष्णु का तृतीय अवतार था—

परयो आप मो लोहि क्रोह अपारं ॥ धरयो ऐस कै बिसन त्रितीयावतारं ॥
नरं एक नारायणं दुऐ सरूप ॥ दिपै जोति सज्जर जु धारे अनूपं ॥१६॥

किन्तु इस युद्ध मे देवताओं की पराजय हुई और अमृत प्राप्ति के लिए विष्णु को मोहिनी का अवतार धारण करना पड़ा :—

जबै जग हारियो कीयो बिमन मत्र ॥ भयो अत ध्यानं कर्यो जान तत्रं ॥
महा मोहिनी रूप धार्यो अनूप ॥ छकै देखि दोऊ दितियादिति भूप ॥२०॥

इस अवतार का वर्णन ६ भुजग छन्दो मे हुआ है।

५. महामोहिनी अवतार

महामोहिनी अवतार का वर्णन आठ छन्दों में हुआ है। इसमें अधिकांश छन्द भुजग है (५ छन्द) इन छन्दों में वर्ण्य विषय शृंगार है परन्तु शब्द चयन और गतिशीलता वीर रस के वातावरण के अनुकूल है :—

फदे प्रेम फांदं भयो कोप हीणं ॥ लगै नैन बैनं घयो पान पीणं ॥
गिरे झूमि भूम छुटे जान प्राण ॥ सभै चेत हीण लगे जान बाण ॥१२॥

जो कार्य विष्णु के नर और नारायण अवतार धारण से नहीं हुआ वह महामोहिनी के अवतार द्वारा सम्भव हुआ। देवताओं और दैत्यो मे सभी रत्नों का ठीक से बटवारा हो गया और झगडा समाप्त हुआ।

रहे रीझ ऐसे सबै देव दानं ॥ म्रिगी राज जैसे सुने नाद कानं ॥
बटे रतन सरब गई छूट रारं ॥ धर्यो ऐस श्री बिसन पंचम वतार ॥८॥

६. बैराह (बराह) अवतार

समुद्र मंथन से निकाले हुए सभी रत्नों का बटवारा हो गया। सभी देवता और दैत्य अपने-अपने स्थानों को चले गये। किन्तु कुछ समय पश्चात् उनमें फिर विरोध बढा। दैत्य शक्तिशाली हो गये, देवता भागने लगे। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नाम के दो बड़े प्रबल दैत्यों ने सभी लोको को जीतकर सबको अपना दास बना लिया। हिरण्याक्ष ने सभी को युद्ध के लिए ललकारा :—

लहै जुद्ध मोसो करै आन कोऊ ॥ बली होइ बासो भिरे आन सोऊ ॥३॥

ऐसे समय मे जब पृथ्वी रसातल में चली गयी थी, विष्णु का वराहावतार हुआ। वराह रूपी विष्णु समुद्र जल मे प्रविष्ट हो गए। वहा उनका हिरण्याक्ष से भयानक युद्ध हुआ। अन्त में दैत्य का संहार हुआ और विष्णु ने पृथ्वी की रक्षा और वेदों का उद्धार किया।

इस प्रंग मे कुल १४ छन्द हैं।

७ नृसिंह अवतार

नृसिंहावतार का वर्णन ४२ छन्दो में हुआ है। इस कथा मे भक्त प्रह्लाद की बहु प्रचलित कथा का निरूपण है। जब देवताओं का अभिमान बढ़ गया तो शक्तिशाली दैत्य

भी संगठित होकर उठे और उन्होंने देवों का राज्य समाप्त कर अपना राज्य स्थापित कर लिया। दैत्यराज हिरण्यकशिपु की पत्नी के गर्भ से भक्त प्रह्लाद का जन्म हुआ। पाठशाला में प्रह्लाद को गोपाल नाम पढ़ते देख दैत्यराज क्रुद्ध हुआ और उसने खंभे से प्रह्लाद को बांधकर मार डालना चाहा। उस खम्भे में से नृसिंह का अवतार हुआ और उन्होंने हिरण्यकशिपु का वध कर प्रह्लाद को दैत्यों का राजा बना दिया।

प्रह्लाद की इस लोकप्रिय कथा में कवि ने पौराणिक पक्ष (हिरण्यकशिपु की तपस्या और वर-प्राप्ति, प्रह्लाद की हरि-भक्ति का कारण, हिरण्यकशिपु द्वारा उसे विभिन्न उपायों से मारने का असफल प्रयास, पिता-पुत्र का हरि के अस्तित्व के सम्बन्ध में वाद-विवाद और अन्त में खम्भा फाड़कर नृसिंह का आगमन आदि) को बहुत संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। बयालीस छन्दों में से प्रथम आठ छन्दों में ही यह कथा समाप्त हो जाती है और आठवें छन्द में नृसिंह अवतार हो जाता है।

> गहि भुइ चले सिसु मारन कौ ॥ निकस्यौ जगपाल उबारन कौ ॥
> चकचउंध रहे जनु देख सबै ॥ निकस्यौ हरि फारि किवार जबै ॥

पौराणिक कथाओं में नृसिंह और हिरण्यकशिपु के युद्ध का चित्रण कहीं नहीं हुआ है। वहां तो नृसिंह दैत्यराज को अपनी जांघों पर डालकर तत्क्षण उसका वध कर डालते हैं। किन्तु गुरु गोबिन्दसिंह ने तीस पदों में नृसिंह और हिरण्यकशिपु के ससैन्य युद्ध का वर्णन किया है और उस युद्ध में दैत्य सेना का संहार कर अन्त में नृसिंह हिरण्यकशिपु का संहार करते हैं।

इस प्रसंग का युद्ध वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी प्रभावशाली है। युद्धभूमि का दृश्यांकन तो बड़ा स्वाभाविक हुआ है। घावों से भरे हुए घायल सिपाही युद्ध भूमि में इस तरह झूल रहे हैं जैसे फागुन में वसंत फूला हुआ झूलता है।[1] नृसिंह ने अनेक दैत्य योद्धाओं को एक साथ ऐसे काट दिया जैसे तार साबुन काट देती है।[2]

सारी सेना कट गई हिरण्यकशिपु स्वयं सन्नद्ध होकर युद्ध के लिए आया।[3] आठ दिन और आठ रातें उन दोनों (नृसिंह और हिरण्यकशिपु) का भयानक युद्ध होता रहा, फिर असुर मुरझा गया और पुराने वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा।[4]

अन्त में नृसिंह ने उस दुष्ट का वध किया, इस प्रकार विष्णु का सप्तम अवतार हुआ। उन्होंने अपने भक्त की रक्षा की और सृष्टि-कर्म को सुस्थिर किया।[5]

---

१. घाव लगे इम घायल झूलै। फागुनि अंत बसंत सफूलै ॥२३॥
२. काटि गिरे भट एकइ बारं। साबुन जान गई बह तारं ॥२६॥
३. हिरनाक्स तब आप रिसाना। बाधि चल्यो रण को कर गाना ॥२८॥
४. अस्ट दिवस अस्टे निसि जुद्धा। कीनो दुहूं भटन मिलि क्रुद्धा ॥
   बहुरो असुर किछुक मुरझाना। गिर्‌यो भूम जन बिच्छ पुराना ॥३६॥
५. कीनी नृसिंह दुस्टं संघार। धर्‌यो नविसन सपतम अवतार ॥
   लीनो सु भगत अपनो छिनाइ। सब सिसट धरम करमन चलाइ ॥४०॥

८. बावन अवतार (वामनावतार)

दशम ग्रंथ में वर्णित वामनावतार की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है।

नृसिंह अवतार को हुए बहुत दिन बीत गये। फिर चारों ओर पाप बढ़ गया। दैत्य और दानव यज्ञादि करने लगे। बलि राजा के अन्दर बहुत अभिमान आ गया। देवता भयभीत हो गए। इन्द्र की राजधानी का विनाश हो गया। सभी देवताओं ने मिलकर आराधना की और इससे काल पुरुष प्रसन्न हुए। 'काल पुरुष' ने विष्णु को आज्ञा दी कि तुम अपना आठवां अवतार वामन के रूप में धारण करो। आज्ञा पाकर विष्णु एक दरिद्र भिखारी का रूप बनाकर चल पड़े। बलि की राजधानी में पहुंचकर वामन ने वेदों का उच्चारण किया। बलि ने उन्हें बहुत कुछ दक्षिणा में देना चाहा किन्तु उस ब्राह्मण (वामन) ने उसे हाथ भी न लगाया। उसने कहा, मुझे ढाई पग भूमि दे दो। दैत्यों के गुरु, आचार्य शुक्र, राजा के पास ही थे। वे सब भेद समझ गए। जैसे ही बलि ने वचन देना चाहा, पुरोहित शुक्र ने उन्हें मना किया। शुक्र ने समझाया कि इसके लघु स्वरूप को न देखो, इसे विष्णु का अवतार समझो। यह सुनकर सभी दैत्य हंस पड़े। उन्हें इस पर विश्वास न हुआ कि यह लघु स्वरूप धारी ब्राह्मण उनका विनाश कर सकता है। शुक्र ने समझाया कि आग की एक चिनगारी सम्पूर्ण वन को जला देती है, उसी तरह यह ब्राह्मण लघु से विराट स्वरूप धारण कर सकता है।[1]

बलि राजा ने हंसकर शुक्र से कहा कि तुम बात नहीं समझ सके। चाहे इस समय मेरा सब कुछ नष्ट हो जाए परन्तु हरि जैसा भिक्षुक मुझे दुबारा कब मिलेगा। यह कहकर बलि ने भृत्य से कमण्डल मांगा और संकल्प देने लगा। शुक्र ने मन में सोचा कि यह अज्ञानी राजा सारे भेद को नहीं समझ रहा है। वे लघु रूप धारण करके कमण्डल के छेद पर बैठ गए। बलि ने संकल्प के लिए जल हाथ में लेना चाहा तो छिद्र से जल बाहर न निकला। वामन सब समझ गए। उन्होंने राजा को एक तिनका देकर छिद्र साफ करने के लिए कहा। तिनका शुक्र की आंख में लगा और उस आंख से जो जल निकला, बलि ने उसी से संकल्प लिया।

इसी समय वामन ने अपना विराट रूप धारण कर लिया। वह रूप देखकर लोग विस्मित हो गए। दानव मूर्छित होने लगे। विराट वामन ने एक पग में पाताल नाप डाला, दूसरा पग आकाश तक पहुंच गया। आधे पग के लिए नृप ने अपने आपको प्रस्तुत कर दिया और इस प्रकार संसार में यश प्राप्त किया। इस प्रकार के वचन पालन पर विष्णु बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि जब तक गंगा-जमुना में जल है तुम्हारी यह कथा प्रचलित रहेगी और मैं सदा तुम्हारा द्वारपाल होकर रहूंगा।

---

१. दीयो आरसं काल पुरखं अपारं ॥ धरो बावना बिसन असटम् वतारं ॥
लई बिसन आगिआ चल्यो धाई ऐसे ॥ लह्यो दारदी भूप भंडार जैसे ॥ ३ ॥

२. जिम चिनगारी अगन की गिरत सघन बन माहि ॥
अधिक तनक ते होत है तिम दिजबर नर नाहि ॥ १२ ॥

जब भी कभी साधु पुरुषों पर संकट आता है, ईश्वर इसी प्रकार उनके सहायक बनते हैं। अपने भक्तों के लिए वे द्वारपाल होकर रहते हैं।[1]

इस अवतार कथा का वर्णन २७ छन्दों में हुआ है।

६. परसराम अवतार (परशुराम)

परशुराम कथा का संक्षेप इस प्रकार है :—

"इस प्रकार बहुत दिन बीत गए (वामनावतार को हुए) क्षत्रियों ने सारी पृथ्वी पर अधिकार कर लिया। वे संसार में अपने आपको ऊंचा घोषित करने लगे। उनके अत्याचारों से देवता त्रस्त हुए और सब मिलकर इन्द्र के पास गए। उन्होंने कहा, सब असुरों ने क्षत्रियों का रूप धारण कर लिया है। सभी देवताओं ने मिलकर विचार किया और क्षीर सागर की ओर चल दिए। वहां जाकर उन्होंने काल पुरुष की स्तुति की और उन्हें इस प्रकार की आज्ञा प्राप्त हुई, हे विष्णु तुम जमदगनि (जमदाग्नि) के घर जाकर अवतार ग्रहण करो।[2]

इस प्रकार जमदाग्नि के घर रेणुका के गर्भ से परशुराम का जन्म हुआ, मानो क्षत्रियों के पापों ने स्वयं काल के रूप में जन्म लिया।

सहस्रबाहु ने जमदाग्नि की कामधेनु बलपूर्वक छीन ली और उनका वध किया। परशुराम को ज्ञात हुआ तो शस्त्र लेकर सहस्रबाहु का संहार करने पहुंचे। वहां भयानक युद्ध हुआ, अन्त में राम (परशुराम) ने उस अभिमानी राजा का सेना सहित संहार कर दिया।

परशुराम ने क्षत्रियों से राज्य छीनकर ब्राह्मणों को दे दिया। जहां-जहां भी ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के अत्याचारों से पीड़ित होकर उन्हें पुकारा, राम अपना कुठार लेकर सरोष चल दिए। बड़े-बड़े राजाओं ने राम से युद्ध किया किन्तु उन्होंने सभी को युद्ध में पराजित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियविहीन कर दिया।

इस ग्रंथ में कुल ३५ छन्द हैं। कथा को संक्षिप्त रखने की ओर कवि ने प्रारम्भ और अन्त में संकेत किया है :—

कहा गम एनी कथा सरब भाखउ ॥ कथा तृषि ते थोरिए बात राखउ ॥६॥
कथा सरब जउ छोर ते लै सुनाऊं ॥ हृदै ग्रंथ कै बाढवे तै डराऊ ॥३४॥

अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कवि ने ३४ छन्दों में से लगभग २२ छन्दों में युद्ध वर्णन किया है। युद्ध वर्णन के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

घणे ढोल वज्जे। महाबीर गज्जे ॥ मनो सिंध छूटे। इम बीर जुट्टे ॥२०॥
जिते सत्र आए। तिते राम धाए ॥ चले भाज सरबं ॥ भयो दूर गरबं ॥२६॥
गह्यो राम पाणं कुठारं कराल ॥ कटी सुंड सी राज बाहं बिसाल ॥
भए भंग भग करं काल हीणं ॥ गयो गरब सरब भई सैण छीणं ॥२६॥

---

1. जब साधन संकट परे तह-तह भए सहाइ ॥ दुआर पाल हुए दर बसे भगत हेत हरि राइ ॥२६॥
2. सब देवन मिलि कर्‌यो विचारा ॥ छीर समुंद कहु चले मुरारा ॥
काल पुरख की करी बडाई ॥ इम आगिआ तह ते तिन पाई ॥३॥
दिज जमदगन जगत मो सोहत ॥ नित उठि करत अघन अघन हत ॥
तह तुम धरो बिसन अवतारा ॥ हनहु सत्रु के सत्रु हुमारा ॥४॥ (द० ग्र० पृ० १६१)

१०. ब्रह्मावतार

चौबीस अवतारों के वर्णन में ब्रह्मा को विष्णु का दसम अवतार कहा गया है। इस अवतार का वर्णन बहुत संक्षिप्त, केवल सात छन्दों में है। ब्रह्मावतार के उद्देश्य का वर्णन इस प्रकार है :—

जब-जब बेद नास होइ जाहीं ।। तब-तब पुन ब्रह्मा प्रगटाहीं ।।
ताते बिसन ब्रह्म बपु धरा ।। चतुरानन कर जगत उचरा ।।२।।
जब ही बिसन ब्रह्म बपु धरा ।। तब सब बेद प्रचुर जग करा ।।
सासत्र सिमृत सकल बनाए ।। जीव जगत के पथ चलाए ।।३।।

इस प्रकार संक्षेप में ब्रह्मावतार उस समय हुआ जब लोग वेद विरत हो गये, पापों की ओर प्रवृत्त हुए और ज्ञान-ध्यान से हीन हो गये। उस समय ब्रह्मा ने लोगों को वेद का ज्ञान दिया। उनके लिए धर्म का मार्ग प्रशस्त किया।

११. रुद्रावतार

मार्कण्डेय पुराण में रुद्र के जन्म का वर्णन इस प्रकार हुआ है :—जब प्रभु ब्रह्मा जी ने कल्प के आदि में अपने समान पुत्र उत्पन्न करने का विचार किया तो उनके आठ पुत्र और आठ पुत्रियां उत्पन्न हुई और वे पुत्रियाँ उन आठ पुत्रों की स्त्रियां हुई। ब्रह्मा जी के अंक से जो नील वर्ण पुत्र हुआ वह दौड़कर बड़े ऊंचे स्वर में रोने लगा। ब्रह्मा जी ने उस रोते हुए पुत्र से पूछा कि तुम क्यों रोते हो ? उसने कहा कि मेरा नाम रखिए। इस पर जगत के स्वामी ब्रह्माजी उससे बोले—हे देव, तुम रोओ मत, धैर्य रखो, तुम्हारा नाम रुद्र होगा।[1]

दशम ग्रंथ में विष्णु के रुद्र के रूप में अवतार ग्रहण करने का कारण इस प्रकार दिया हुआ है—

जग जीवन भार भरी धरणी ।। दुख आकल जात नही बरणी ।।
धर रूप गऊ दध सिंध गई ।। जग नाइक पै दुख रोत भई ।।२।।

गाय का रूप धारण कर पृथ्वी जगनायक के सम्मुख गयी और अपनी व्यथा कही। श्रीकाल प्रसन्न हुए और उन्होंने विष्णु को बुलाकर अवतार ग्रहण करने की आज्ञा दी :—

हंस काल प्रसन्नि भए तब ही ।। दुख स्रउनन भूप सुन्यो तब ही ।।
ढिग बिसन बुलाइ लयो अपने ।। इह भात कह्यो तिहको सुपने ।।
सु कह्यो तुम रुद्र सरूप धरो ।। जग जीवन को चलि नास करो ।।
तबहो तिह रुद्र सरूप धर्यो ।। जग जंत संघार कै जोग कर्यो ।।

विष्णु रुद्र का अवतार कब ग्रहण करते हैं—

'जब होत धरन भाराकरात ।। तब परत नहीं तब हिदे शान्त ।।
थल दध समुद करई पुकार ।। तब धरत बिसन रुद्रावतार ।।

---

१. मार्कण्डेय पुराण, बावनवां अध्याय।

रुद्रावतार ग्रहण कर विष्णु क्या काम करते हैं ?

तब करत सकल दानव संघार ॥ कर दनुज प्रलय सतन उधार ॥
इह भांति सकल करि दुस्ट नास ॥ पुनि करत ह्रिदं भगवान वास ॥

प्रारम्भ के इन आठ छन्दों तक रुद्रावतार की आवश्यकता का वर्णन है । नवें छन्द से रुद्र की कथा प्रारम्भ होती है । कथा का प्रथम प्रसंग त्रिपुर[1] दैत्य का वध है—

जोउ एक ही बाण हणे त्रिपुरं ।
सोउ नास करें तिह दैत दुर ॥
अस को प्रगट्यो कब ताहि गनें ।
इक बाण ही सो पुर तीन हनें ॥१०॥

त्रिपुर नाश के पश्चात् अंधक वध का प्रसंग है जिसका वर्णन २७ छन्दों में हुआ है । अधिकांश छन्दों में युद्ध चित्रण है । रुद्र और अंधक की दैत्य सेना में युद्ध का बड़ा सजीव वर्णन इन छन्दों में हुआ है । दैत्य सेना जब पराजित होकर भागने लगी तब अंधक स्वयं युद्ध करने के लिए आया :—

धायो तबै अंधक बलवाना । संग लै सैन दानवी नाना ।
अमित बाण नंदी कहु मारे । बेध अंग कहु पार पधारे ॥३१॥

अपने वाहन नन्दी को अंधक के बाणों से त्रस्त देखकर शिव के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ ।

जब ही बाण लगे बाहण तन । रोस जग्यो तब ही सिव के मन ॥

अन्त में शिव ने अंधक का सिर अपने त्रिशूल से काट दिया :—

कर कोप बली बरख्यो बिसखं ॥ इह ओर लगे निसरे दुसर ॥
तब कोप करं सिव सूल लीयो ॥ अर को सिर काट दुखंड कीयो ॥३६॥

---

१. महाभारत के अनुसार तारक दैत्य के तीन पुत्रों (तारकाक्ष, कमलाक्ष, विद्युन्माली) के लिए मय दानव की बनाई हुई तीन पुरियां । इनमें से एक स्वर्ण की स्वर्ग में, दूसरी चांदी की आकाश में, तीसरी लोहे की पृथ्वी पर थी । जब इन तीनों के स्वामी दानवों ने देवताओं को बहुत दुखी किया तब शिव ने एक तीर से तीनों पुरियों और तीनों भाइयों का नाश कर दिया ।— (महान कोष, पृष्ठ १८११) ।

'कल्याण' के हिन्दू संस्कृति अंक (पृष्ठ ७६०) पर त्रिपुर की कथा इस प्रकार वर्णित है :— मय ने स्वर्ण, रजत और लोहे के तीन नगर बनाए थे । वे नगर गगन में उड़ते थे । मय के तीनों पुत्र इनके अधिपति थे । वे दानव पृथ्वी पर चाहे जहां नगरों को उतार कर भूतल के प्राणियों का नाश कर डालते । गगन में देवताओं के विमान तोड़ डालते । देवलोक तथा लोकपालों की दिव्य पुरियां उन विमानों से ध्वस्त होती रहतीं । सबने विवश होकर भगवान विश्वनाथ की शरण ग्रहण की । पिनाकपाणि प्रभु असुरों से युद्ध करने लगे ।

मय ने अमृतरस का कूप बना लिया था । युद्ध में मृतदानव कूप में डाले जाते और जीवित हो जाते । भगवान् विष्णु ने गौ रूप धारण किया और ब्रह्मा बछड़े बने, इनको सुन्दर गौ का बोध दानव कोई न कर सके, गौ ने देखते-देखते कूप का समस्त रस पी लिया । देव मय रथ पर भगवान् शंकर विराजमान हुए । तीनों पुर मारे घात के लिए परस्पर एक में मिले, इसी समय बाण छूटा और वे भस्म हो गए ।

३६ छन्दों में त्रिपुर और अंधक के बध का वर्णन है। इसके पश्चात् ५० छंदों में जलन्धर के जन्म, सती का यज्ञ कुण्ड में जलना, शिव का दक्ष प्रजापति से युद्ध का वर्णन है।

१२. जलन्धर अवतार

विष्णु के बारहवें अवतार का वर्णन ग्यारहवें अवतार के साथ ही हुआ है।

सती ने पर्वतराज के घर में पार्वती के रूप में जन्म लिया। बाल्यावस्था समाप्त कर जब वह युवा हुई तो अपने पति (शिव) के साथ उसी प्रकार आ मिलीं जैसे :—

जिह बिधि मिली राम सों सीता ॥ जैसक चतुर बेद तन गीता ॥
जैसे मिलत सिंधु तन गंगा ॥ त्यो मिल गई रुद्र के संगा ॥२॥

पार्वती का रूप देखकर जलन्धर का मन लोभ से भर गया। उसने एक दूत शिव से पार्वती को छीन लाने को भेजा अन्यथा शिव को युद्ध के लिए सन्नद्ध होने की चुनौती दी।

इधर एक दिन लक्ष्मी ने विष्णु के लिए सुस्वाद भोजन का निर्माण किया और कहीं से घूमते-फिरते क्षुधातुर नारदजी आ पहुंचे। उन्होंने भोजन की मांग की, किन्तु एक पत्नी अपने पति को भोजन कराए बिना दूसरे को भोजन किस प्रकार करा दे? लक्ष्मी ने कहा कि इस प्रकार तो भोजन अशुद्ध हो जायगा, आप विष्णु भगवान के आने तक प्रतीक्षा कीजिए। नारदजी रुष्ट हो गए और उन्होंने लक्ष्मी को शाप दे दिया कि तुम्हें बिन्द्रा नाम की राक्षसी के रूप जन्म लेना होगा और जलन्धर की पत्नी बनना होगा।

लक्ष्मी ने विष्णु के आने पर शाप की बात बताई। उन्होंने लक्ष्मी की छाया लेकर बिन्द्रा की रचना की और उसने धूम्रकेश दानव के घर जाकर जन्म ग्रहण किया। लक्ष्मी के उस छाया रूप का उद्धार करने के लिए विष्णु को जलन्धर का रूप धारण करना पड़ा :—

जैसक रहत कमल जल भीतर ॥ पुनि नृप बसी जलन्धर के घर ॥
तिह निमित जलन्धर अवतारा ॥ धरहै रूप अनूप मुरारा ॥

जलन्धर नाम का राक्षस शिव को व्याकुल कर ही रहा था। उससे बहुत युद्ध हुआ किन्तु वह पराजित न हुआ। शिव ने थोकाल से प्रार्थना की और उनकी आज्ञा से विष्णु ने जलन्धर का रूप धारण किया—

जीय भो सिव ध्यान धरा जबही ॥ कल काल प्रसन्न भए तबही ॥
कह्यो बिसन जलन्धर रूप धरो ॥ पुनि जाइ रिपेस को नाश करो ॥

इस प्रकार विष्णु ने अपनी पत्नी, जो छाया रूप में जलन्धर की पत्नी थी, का उद्धार किया। उन्होंने जलन्धर का रूप बनाकर बिन्द्रा का सतीत्व भंग कर दिया। उसी दिन से उसने अपना असुर रूप छोड़ दिया।

फिर जलन्धर से शिव का भयानक युद्ध हुआ। उसकी पत्नी के सतीत्व नष्ट हो जाने से उसका बल क्षीण हो ही गया था। साथ ही शिव की सहायतार्थ दुर्गा जालन्धरी बनकर आई। अन्त में जलन्धर का नाश हुआ।

१३. बिसन (विष्णु) अवतार

जिस समय पृथ्वी पर बहुत भार बढ़ गया और उसने काल पुरुष के सम्मुख अपनी पुकार की तब उस महाशक्ति ने सभी देवताओं का थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर विष्णु की रचना की।

सब देवन को अंस लै तत आपन ठहराइ ॥
बिसन रूप धार तत दिन ग्रिह आदित के आइ ॥

इस प्रकार वे पृथ्वी का भार हरते हैं, अनेक प्रकार से असुरों का संहार करते हैं। भूमि का भार उतार कर स्वर्ग में जाकर काल पुरुष में लीन हो जाते हैं।

इस अवतार का वर्णन कुल पांच छन्दों में है। कवि कथा को संक्षिप्त ही रखना चाहता है।

सकल कथा जउ छोर सुनाऊं ॥
बिसन प्रबन्ध कहत सम पाऊ ॥
ताते थोरीऐ कथा प्रकासो ॥
रोग सोग ते राख अबिनासी ॥४॥

१४. मधु कैटभ का संहारक (हयशीर्ष) अवतार

चौदहवें अवतार का वर्णन कुल सात छन्दों में हुआ है। इस अवतार का कोई नाम कवि ने नहीं दिया है, किन्तु यह स्पष्ट कर दिया है कि जिस अवतार ने मधु-कैटभ के संहार के निमित्त अवतार ग्रहण किया था वही चौदहवां अवतार है :—

मधु कैटभ बध नमित जा दिन जगत मुरार ॥
सुकवि स्यामि ताको कहै चौदसवों अवतार ॥

कान की मैल से दो दैत्य उत्पन्न हुए और बड़े शक्तिशाली हो गए। विष्णु के इस अवतार ने उनसे पांच सहस्र वर्ष युद्ध किया। अन्त में काल पुरुष सहायक हुए और विष्णु ने इन दोनों दैत्यों का संहार किया।

'कल्याण' के हिन्दू संस्कृति अंक में इस अवतार का नाम हयशीर्ष दिया है और इस की कथा का सारांश निम्न प्रकार से दिया है :—

क्षीरोदधि में अनन्तशायी प्रभु की नाभि से पद्म प्रकट हुआ। पद्म कर्णिका से सिन्दूरारुण चतुर्मुख लोक स्रष्टा व्यक्त हुए। क्षीरोदधि से दो बिन्दु कमल पर पहुंच गए। वह चेतनात्मक नाभि पद्म दोनों बिन्दु सजीव हो गए। वे ही आदि दैत्य मधु कैटभ थे। दैत्यों ने कमल कर्णिका पर बैठे ब्रह्माजी को देखा। वे एकाग्र मन से भगवान के निश्वास से निकली श्रुतियों को ग्रहण कर रहे थे। दैत्यों ने श्रुति का हरण किया और वहां से नीचे भाग गए। आदि में ही अनाधिकारियों को श्रुति की प्राप्ति, ब्रह्माजी चंचल हुए। उन्होंने भगवान की स्तुति प्रारम्भ की। प्रभु प्रसन्न हुए। उन्होंने हयशीर्ष रूप धारण किया। दैत्यों को मारकर उन्होंने श्रुति का उद्धार किया।

(कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ८१०)

१५. अरहंत देव

अरहंत देव के अवतार का संकेत जैन धर्म के आदि तीर्थंकर ऋषभ देव की ओर है। जिस समय असुर अपना पसारकर लेते हैं, विष्णु उनका सहार करते हैं :—

जब-जब दानव करत पसारा ॥ तब-तब बिसन करत सघारा ॥१॥

सभी दैत्यों ने अपने गुरु (शंकराचार्य) से इस विषय पर विचार-विमर्श किया कि ये देवता अन्त में विजयी क्यों होते हैं और हमारा पराभव क्यों होता है। दैत्य गुरु ने कहा, हे दानवो, तुम इस भेद को नहीं जानते। देवता मिलकर यज्ञ करते हैं। इसी से उनको इतना यश मिलता है। इसलिए तुम भी यज्ञारम्भ करो।

गुरु के आदेशानुसार दैत्यों ने यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। यह बात सुनकर सुर लोक थर्रा उठा। सभी देवताओं ने विष्णु से विचार किया, विष्णु ने काल पुरुष से आराधना की। काल पुरुष ने प्रसन्न होकर विष्णु को आज्ञा दी कि अरहत देव के रूप में अवतार ग्रहण करो। काल पुरुष की आज्ञा पाकर उन्होंने एक नया पन्थ चला दिया :—

बिसन देव आगिआ जब पाई ॥ काल पुरुष की करी बड़ाई ॥
भुअ अरहत देव बन आयो ॥ आन और ही पंथ चलायो ॥८॥

हिन्दू संस्कृति अक 'कल्याण' में ऋषभ देव के अवतार का वर्णन है। ऋषभ देव को जैन अपना आदि तीर्थंकर मानते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह ने इसी अवतार का चित्रण अरहंत देव नाम से किया है। इस अवतार ने नया पथ (जैन मार्ग) चलाया। इस अवतार ने लोगो को हिंसा से विरत किया :—

जीअ हिंसा ते सबहु हटायो।

बिना हिंसा के यज्ञ होता नहीं था इसलिए यज्ञ होना बन्द हो गया :—

बिन हिंसा कीअ जग्ग न होई ॥ ताते जग्ग करै ना कोई ॥

इस प्रकार अरहत देव के रूप मे अवतरित विष्णु के इस अवतार ने यज्ञों का विरोध कर दैत्यों को यज्ञ करने से विरत कर दिया।

जैन धर्म मे किसी सृष्टा के रूप में ईश्वर का अस्तित्व भी नही स्वीकार किया गया। जैसे अन्न से अन्न और घास से घास उत्पन्न हो जाता है उसी तरह मनुष्य से मनुष्य उत्पन्न हो जाता है, इनका कोई निर्माता नहीं है :—

अन्न-अन्न ते होतु ज्यों घासि-घासि ते होइ ॥
तैसे मनुछ-मनुछ ते अवरु न करत कोइ ॥१४॥

विष्णु के इस पन्द्रहवें अवतार ने दैत्यों को वैदिक यज्ञ मार्ग से भटका दिया, जिनसे उनका बल क्षीण हो गया :—

सावगेस को रूप धर दैत कुपथ सब डार ॥
पन्द्रहवों अवतार इम धारत भयो मुरार ॥२०॥

इस प्रसंग मे कुल बीस छन्द हैं।

१६. मनु राजा अवतार

इस अवतार का वर्णन कुल आठ छन्दों में हुआ है। विष्णु ने अरहत देव के रूप में अवतार ग्रहण कर जैन मार्ग की स्थापना की। परिणाम यह हुआ कि लोग (वैदिक) धर्म, कर्म से दूर हो गए। साधु-असाधु सभी एक जैसे हो गए। सबने धर्म-कर्म छोड़ दिए :—

साधि असाधि सबै हुए गए। धरम करम सबहूं तज दिए॥

ऐसे अवसर पर काल पुरुष की आज्ञा से विष्णु ने मनु के रूप में अवतार ग्रहण किया। मनु स्मृति की रचना की और प्रतिपादित मत का प्रचार किया :—

काल पुरख आज्ञा तब दीनी॥ बिसन चन्द सोई विधि कीनी॥१॥
मनु ह्वै राजवतार अवतारा॥ मनु सिमरतहि प्रचुर जग करा॥

इस अवतार ने पुनः ईश्वर के नाम की प्रतिष्ठा की और (नास्तिक) श्रावग धर्म को दूर किया :—

नाम दान सबहून सिखारा। स्रावग पथ दूर कर डारा॥४॥

१७. धनवन्तर (धनवन्तरि) अवतार

संसार में सभी लोग धनधान्य से पूर्ण हो गए। उन्हें किसी प्रकार का दुःख न रहा। वे भांति-भांति के पकवान खाने लगे और उससे उनकी देह में नित नए रोग उत्पन्न होने लगे। इस प्रकार सारी प्रजा रोगाकुल हो गई। सभी ने मिलकर काल पुरुष की स्तुति की। उन्होंने विष्णु को धन्वन्तरि का अवतार ग्रहण करने और आयुर्वेद का निर्माण करने की आज्ञा दी :—

रोगाकुल सबही भए लोगा॥ उपजा अधिक प्रजा को सोगा॥
परम पुरख की करी बड़ाई॥ कृपा करी तिन पर हरि राई॥२॥
बिसन चन्द को कहा बुलाई॥ धर अवतार धनन्तर जाई॥
आयुरवेद को करो प्रकासा॥ रोग प्रजा को करियहु नासा॥३॥

इस तरह सभी देवता (दैत्य भी) एकत्र हुए, उन्होंने समुद्र मथन किया और उसमें से रोगनाशक, प्रजा का हित चाहने वाले धन्वन्तरि को निकाला :—

ताते देव इकत्र हुऐ मथ्यो समुद्रहि जाई॥
रोग बिनासन प्रजा हित कर्‌यो धनतर राइ॥४॥

१८. सूर्य अवतार

दिति के पुत्र दैत्यों का प्रभाव जब बहुत बढ़ गया तो काल पुरुष की आज्ञा से विष्णु ने सूर्य के रूप में अवतार ग्रहण किया :—

बहुर बढ़े दिति पुत्र अतुलि बलि॥ घर अनेक जीते जिन जल थल॥
काल पुरख की आज्ञा पाई॥ सूरज अवतार धर्‌यो हरि राई॥१॥

सूर्य देव बलवान असुरों का नाश करते हैं। पृथ्वी से अन्धकार हरते हैं। प्रजा के लिए सदैव कार्यरत रहते हैं :—

जे-जे होत असुर बलवाना॥ रवि मारत तिनको बिधि नाना॥
अन्धकार धरनी ते हरे॥ प्रजा काज ग्रह के उठ परे॥

सूर्य देव के उदय होते ही सभी लोग आलस्य छोड़कर उठ खड़े होते हैं, जाप जपते हैं, ध्यान धरते हैं, कर्म करते हैं, गायत्री पढ़ते हैं और सध्या करते हैं।

इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दीर्घकाम नाम का राक्षस बड़ा बलशाली हो गया। उसने अपनी दीर्घ काया के मद में सूर्य का सतत् भ्रमणशील रथ रोक दिया। उस राक्षस से सूर्य का भयकर युद्ध हुआ। अन्त में सूर्य देव ने उस राक्षस का संहार कर दिया।

यह प्रसंग २७ छन्दों मे वर्णित है। लगभग १९ छन्दों मे सूर्य एव दीर्घकाम के युद्ध का वर्णन है।

१९. चद (चन्द्र) अवतार

चंद्रावतार का वर्णन १५ छन्दों मे हुआ है। सूर्य के प्रकाश से धरती तप्त रहती थी। रातें सदा गहन अधेरी होती थी। कृषि उत्पन्न नही होती थी। लोग भूखों मरने लगे थे :—

> नैक कृपा कहु ठउर न होई ॥ भूखन लोग मरै सभ कोई ॥
> अंध निसा दिन भानु जरावै ॥ तातै कृस कहु होन न पावै ॥२॥

व्याकुल होकर लोगो ने हरि की सेवा की, जिससे गुरुदेव प्रसन्न हुए।

स्त्रियां चन्द्रमा के बिना काम प्रेरित नही होती थी इसलिए वे अपने पतियो की सेवा नहीं करती थी। यह अवस्था देखकर काल पुरुष ने विष्णु को बुलाकर चन्द्रावतार ग्रहण करने की आज्ञा दी।

चन्द्रावतार होते ही कामिनियो को काम के बाण लगने लगे। उनका गर्व क्षीण हुआ और वे पति सेवा करनी लगी। चन्द्रमा के कारण कृषि भी होने लगी।

विष्णु ने चन्द्रमा के बड़े सुन्दर स्वरूप में अवतार ग्रहण किया। अपने सुन्दर स्वरूप का उसे अभिमान हो गया और उसने बृहस्पति की पत्नी का सतीत्व भग कर दिया। मुनि ने इस पर अपार क्रोध किया और शाप दे दिया। इसी से चन्द्रमा में कलक लग गया। उसके रूप में अस्थिरता आ गई। वह सदैव घटता-बढ़ता रहता है। इस शाप से चन्द्रमा बहुत लज्जित हुआ और उसके सौन्दर्य का अभिमान भंग हो गया।

२०. रामावतार

विष्णु के चौबीस अवतारों के वर्णन मे रामावतार का वर्णन कवि ने पूर्व वर्णित अवतारो की अपेक्षा अधिक मनोयोग से किया है। इस रचना मे कुल ८६४ छन्द हैं।

राम-जीवन की यह सम्पूर्ण कथा लगभग २५ छोटे-बड़े प्रंसगों मे विभाजित है। इनमें राम का जन्म, सीता स्वयंवर, अवध-प्रवेश, बनवास, बन-प्रवेश, खर-दूषण बध, सीता हरण, सीता की खोज, बालि बध, हनुमान की शोध, प्रहस्त युद्ध, कुम्भकर्ण का बध, त्रिमुड युद्ध, महोदर मन्त्री का युद्ध, इन्द्रजीत युद्ध, अतिकाय दैत्य युद्ध, मकराक्ष का युद्ध, रावण युद्ध, सीता मिलन, अयोध्या आगमन, माता मिलन, सीता बनवास, लवकुश से युद्ध, पुनः अवध प्रवेश, सबका अन्त, महात्म्य आदि प्रंश हैं।

यदि रामचरित मानस के अनुसार इस रचना का अध्याय विभाजन किया जाय, तो उसकी रूपरेखा इस प्रकार बन सकती है—

१. बालकाण्ड—सीता स्वयंवर तक	—१५३ वें छन्द तक
२. अयोध्याकाण्ड—बनवास तक	—२२२ वें „ „
३. अरण्यकाण्ड—सीता हरण तक	—३५५ वें „ „
४. किष्किंधाकाण्ड—वालि बध तक	—३६१ वें „ „
५. सुन्दर काण्ड—हनुमान की खोज, युद्धारम्भ तक	—३९५ वें „ „
६. लंका काण्ड—सीता मिलन तक	—६५२ वें „ „
७. उत्तर काण्ड—अन्त तक	—८६४ वें „ „

कथा सार

चारों ओर असुरों का प्रभाव बढ़ गया। सभी देवतागण इकट्ठे होकर काल पुरुष के पास पहुंचे और उनसे राम का अवतार धारण करने की प्रार्थना की। राजा दशरथ अयोध्या में राज्य करते थे। उन्होंने कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी से विवाह किया। एक बार शिकार खेलते समय राजा दशरथ से श्रवणकुमार की हत्या हो गयी। पुत्र वियोग से पीड़ित हो श्रवणकुमार के अन्धे मां-बाप ने दशरथ को पुत्र-वियोग से पीड़ित होकर मरने का शाप दिया। दशरथ यह शाप सुनकर बहुत दुःखी हुए, उसी समय देववाणी हुई—हे राजन्! तुम्हारे घर विष्णु स्वयं अवतार ग्रहण करेंगे और सब कामनाएं पूर्ण करेंगे। उनके अवतार का नाम रामावतार होगा। वह सारे जगत का उद्धार करेंगे। तुम घर जाओ और राज्य के ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ आरम्भ करो।

राजधानी में वापस आकर राजा दशरथ ने वशिष्ठ मुनि को बुलाकर राजसूय यज्ञ आरम्भ किया। बहुत समय तक यज्ञ करने के बाद यज्ञ-कुण्ड से यज्ञ-पुरुष आकुल होकर प्रगट हुए और उन्होंने खीर का पात्र राजा दशरथ के हाथ में दिया। राजा ने उसके चार भाग किये, दो पत्नियों को एक-एक भाग तथा एक को दो भाग खाने के लिए दिये। वे तीनों गर्भिणी हुईं। उनसे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न राजकुमार उत्पन्न हुए।

राजा ने राजकुमारों की सब प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध किया। उन्हीं दिनों ऋषि विश्वामित्र ने पितरों की प्रसन्नता के लिए पितृ-तोष नामक यज्ञ आरम्भ किया। हवन की सुगन्धि पाकर सभी राक्षस वहां आ पहुंचे और यज्ञ की सामग्री लूटकर खाने लगे और साधु-महात्माओं को मारने पीटने लगे। यह देखकर विश्वामित्र अयोध्या आये और राम और लक्ष्मण को साथ ले गए। राम ने ताड़का, सुबाहु और मारीच आदि राक्षसों का वध किया और विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की। अनन्तर विश्वामित्र उन्हें जनकपुर के सीता-स्वयंवर में ले गये जहाँ राम ने धनुष भंग में सफलता प्राप्त कर सीता का पाणिग्रहण किया। धनुर्भंग के कारण परशुराम बड़े क्रुद्ध हुए। युद्ध की स्थिति आ गयी किन्तु अन्त में उन्हें नीचा देखना पड़ा। राम, सीता सहित अयोध्या वापस आये। राजा दशरथ ने धन की वर्षा करके आनन्दोत्सव मनाया। सारी प्रजा ने भी बड़ा आनन्द मनाया। राजा ने तीनों दूसरे पुत्रों का भी विवाह रचा दिया। फिर राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया और देश देशान्तरों के राजाओं को अपने आधीन किया।

राजा ने तीन दिशाएं तो अपने तीन पुत्रों को बाँट दीं और सारी राजधानी राम को देने के लिए वशिष्ठ मुनि को बुलाकर कुछ पहर तक विचार किया। तब राम के राज्याभिषेक की सारी सामग्री तैयार की गई। उस समय ब्रह्मा ने एक गन्धर्वणी मंथरा को भेजा। उसने कैकेयी को वर माँगने के लिए प्रेरित किया। कैकेयी ने पहले वर के अनुसार राम को बनवास और दूसरे वर से अपने पुत्र भरत के लिये राज्य माँगा। राजा दशरथ इस माँग से बहुत व्याकुल हुए। उन्होंने सभी प्रकार से कैकेयी को समझाना चाहा, परन्तु त्रिया-हठ के सम्मुख उनकी एक न चली। अन्त में उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा।

मुनि वशिष्ठ ने यह निर्णय राम को सुनाया। वे किसी प्रकार की चिन्ता न करते हुए इसके लिये तत्पर हो गये। राम ने सीता को माता कौशल्या के पास रहने को कहा। परन्तु वे किसी प्रकार तैयार न हुईं और उन्होंने साथ चलने का ही आग्रह किया। जब यह समाचार लक्ष्मण ने सुना तो वे बहुत क्रुद्ध हुए, फिर वे भी राम के साथ वन जाने को तत्पर हो गये।

राम के वन जाने पर दशरथ ने प्राण त्याग दिये वशिष्ठ ने भरत के पास दूत भेजा। अपनी ननिहाल से वापस आकर भरत ने अपने मृत पिता को देखा और अपनी माँ कैकेयी को उस कर्म के लिए बहुत बुरा-भला कहा। पिता का अन्तिम संस्कार करने के पश्चात वे राम से मिलने के लिये चल दिये।

जहाँ राम टिके थे, वहाँ पहुँचने पर भरत और शत्रुघ्न, राम और लक्ष्मण से मिलकर बहुत रोये। भरत राम से वापस चलने का आग्रह करने लगे। राम ने भरत को समझाया कि वन में उन्हें बहुत आवश्यक कार्य सम्पन्न करने हैं। उनकी बात को सभी चतुर पुरुष समझ गये। भरत राम के खड़ाऊँ लेकर चले आये।

वन में विराध राक्षस से राम का युद्ध हुआ। अन्त में राक्षस मारा गया। वहाँ से राम आगे बढ़कर अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ भी राम ने मुनि-शत्रुओं का संहार किया। वहाँ से आगे बढ़कर राम गोदावरी तट (पंचवटी) पर पहुँचे। शूर्पणखा लक्ष्मण से प्रणय-प्रदर्शन पर अपनी नाक कटा बैठी।

शूर्पणखा ने अपने भाई रावण को रो रोकर अपने अपमान की कथा सुनायी। रावण ने क्रुद्ध होकर अपनी बहन के प्रतिशोध के लिए खर और दूषण नामक दानवों को भेजा। उन्होंने आकर राम और लक्ष्मण से युद्ध किया और उनके हाथों मारे गये। रावण ने इस पर मारीच को कपट मृग बनाया और उसी के बहाने राम की कुटी को निर्जन पाकर वहाँ से सीता को हर ले गया।

राम ने वापस आकर देखा कि सीता को कोई हर ले गया है। वे बहुत व्याकुल हुए और विरह में इधर-उधर भटकने लगे। उधर जटायु ने रावण के मार्ग में भरसक बाधा पहुँचाई परन्तु असफल रहा। जटायु से भेंट होने पर राम को सीताहरण का पूरा समाचार मिला। आगे बढ़ने पर उनकी भेंट हनुमान से हुई। हनुमान की प्रेरणा से कपिराज सुग्रीव राम के चरणों में आए। सब ने एक जगह बैठकर मंत्रणा की। सब ने यही निश्चय किया कि सुग्रीव अपने वीरों के साथ राम की सहायता करें। राम ने भी उनकी सहायता का

वचन दिया और सुग्रीव को सताने वाले उसके भाई बलि को मारकर सीता की खोज मे लका की ओर बढे।

सुग्रीव ने अपने वीरों को सीता का पता लगाने के लिए चारों दिशाओं में भेज दिया और हनुमान को लंका की ओर भेजा। वे समुद्र पारकर वहां पहुँचे, जहां सीता थी। हनुमान लकापुरी को जलाकर वापस आए और सब कुछ राम को बताया।

राम ने वानरों की सेना एकत्र की। समुद्र पर पुल बांधा और लका में प्रवेश किया। उन्हें रोकने के लिए रावण ने अपने दो योद्धाओं धूम्राक्ष और जाबमाली को सेना सहित भेजा। परन्तु थोड़े युद्ध मे ही वे दोनो मारे गये। फिर रावण ने अकपन दैत्य को ससैन्य भेजा। उनका युद्ध अगद से हुआ। अन्त मे वह भी मारा गया।

इसके पश्चात राम ने अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा। अंगद ने रावण को सीता को लौटा देने के लिए बहुत समझाया। परन्तु गर्वोन्मित रावण पर उसका कुछ भी प्रभाव न हुआ। अन्त मे अगद विभीषण को साथ लेकर वापस आ गया। राम ने विभीषण का 'लकेश' सम्बोधन से स्वागत किया। अन्त मे दोनो पक्षों मे भयकर युद्ध छिड़ गया। पहले रावण ने अपने मन्त्री प्रहस्त को भेजा। उसके सहार के पश्चात कुम्भकर्ण को जगाया गया। राम के बाणो की वर्षा से वह भी मारा गया। फिर त्रिमुड आया। हनुमान ने उसका सहार किया। तत्पश्चात महोदर मत्री युद्ध के लिए आया। भयंकर युद्ध के पश्चात् वह भी मारा गया।

महोदर मंत्री की मृत्यु के पश्चात इन्द्रजीत मेघनाद युद्ध के लिए आया। वह युद्ध विद्या मे बहुत प्रवीण था। उसने मत्रादि पढ़कर तीरों की इतनी वर्षा की कि रघुराज रामचन्द्र आदि भी मूर्छित से हो गये और उनके दूसरे योद्धा दल सहित अधीर होकर भूमि पर गिर पड़े। रावण ने उसी समय त्रिजटा को बुलाकर कहा—सीता को युद्ध मे मरे हुए राम दिखाओ। वह सीता को लेकर वहां गयी जहां राम युद्ध क्षेत्र मे गिरे पड़े थे। सीता ने जब स्वामी को इस तरह पड़े हुए देखा, तब उसे बहुत क्रोध आया और उसने नाग मत्र पढ़कर वह नागपाश काट दिया और राम तथा लक्ष्मण को सचेत कर दिया।

राम अपनी सेना सहित सम्भलकर फिर युद्ध करने लगे। उधर मेघनाद ने अपने शरीर से मांस काटकर हवन करना आरम्भ किया। यह देखकर भूमि कांप उठी और आकाश चकित हो गया। तब लक्ष्मण वहां पहुचे। उन्होने अपने एक बाण से मेघनाद के दो टुकड़े कर दिये।

इसके पश्चात अतिकाय और मकराक्ष दैत्य युद्ध में मारे गये। फिर क्रोध से भरा हुआ रावण स्वयं युद्ध के लिए आगे बढ़ा। रावण ने इतनी वीरतापूर्वक युद्ध किया कि लक्ष्मण मूर्छित होकर युद्ध भूमि मे गिर पड़े। चारों ओर निराशा छा गयी। ऐसे समय हनुमान संजीवनी बूटी लेने गये और बूटी के बदले पूरा पहाड़ ही उठा लाए। उस बूटी से लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हुई। चारों ओर फिर भयकर युद्ध शुरू हो गया। रावण अपने बीसों हाथों में शस्त्र धारण कर युद्ध कर रहा था। उसके एक हाथ में चन्द्रहास तलवार, दूसरे मे पोप (बरछी), तीसरे में कटार, चौथे में सैहथी, पांचवें मे गोफन, छठे में गुर्ज, सातवें मे खड्ग, आठवें मे गदा, नवें मे त्रिशूल, दसवें मे छुरा, ग्यारहवें में जनुमा, बारहवें में बाण, तेरहवें में

धनुष, चौदहवें मे ढाल, पन्द्रहवें में गलौल, सोलहवें में पाश, सत्रहवें मे परशु, अठारहवें में हथनाल, उन्नीसवें मे बिछुआ और बीसवें मे पटा लिए ऐसे घुमा रहा था मानो साक्षात यमराज भयकर रूप धारण करके आया हो।

रावण अपने दस मुखो से विभिन्न कार्य कर रहा था। एक से शिव का जाप कर रहा था, दूसरे से सीता का सौन्दर्य देख रहा था, तीसरे से वीरों को ललकार रहा था, चौथे से 'मारो-मारो' पुकार रहा था, पाँचवें से हनुमान को अधीरता से देख रहा था, छठे से विभीषण को देखकर क्रुद्ध हो रहा था, सातवें से राम-लक्ष्मण को देख रहा था, आठवाँ मुंह इधर-उधर घुमा रहा था, नौवें से सबको देख रहा था और दसवाँ मुख रोष मे भरकर लाल हो रहा था।

अन्त मे राम के द्वारा रावण की बीसो भुजाएँ और दसों सिर काट दिये गये।

युद्ध जीतकर राम ने लका का राज्य विभीषण को दे दिया। हनुमान अशोक वाटिका से सीता को ले आए। वे आकर राम के चरणों से लिपट गयी। राम ने उन्हें अग्नि परीक्षा देने के लिए कहा। सीता अग्नि मे इस प्रकार बैठ गयी जैसे बादलो मे बिजली होती है। अग्नि-शुद्धि के बाद सीता कुन्दन की तरह बनकर बाहर निकलीं। राम ने उन्हे गले से लगा लिया।

राम पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौटे। वहाँ बडे समारोह के साथ उनका राज्याभिषेक हुआ। राम धर्मनीति के अनुसार राज्य चलाने लगे। इन्ही दिनो वहाँ एक ब्राह्मण आया, जिसका पुत्र मर गया था। उसने राम से कहा, या तो वे उसे जीवित करें नहीं तो शाप के भागी बनें। राम ने उस ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु का पता लगाया। उत्तर दिशा मे एक शूद्र सिर नीचे किये हुये कुएँ मे लटक कर तपस्या कर रहा था। वह बड़ा तेजस्वी था। राम ने उसका सहार किया और ब्राह्मण पुत्र को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ।

राम राज्य मे चारो ओर सुख का साम्राज्य छा गया। राम ने शत्रुघ्न को मथुरा का राजा बनाया। वहाँ लवण नामक एक राक्षस रहता था जिसे शिव ने स्वय अपना त्रिशूल दिया था। राम ने शत्रुघ्न को अपना एक अभिमन्त्रित बाण दिया। उस राक्षस से शत्रुघ्न का बड़ा भयंकर युद्ध हुआ और अन्त मे उन्होने उसका सहार कर दिया।

कुछ समय पश्चात् सीता गर्भिणी हुई। उन्होंने राम से वन-विहार की आज्ञा मागी। राम ने लक्ष्मण को सीता के साथ भेज दिया वहाँ लक्ष्मण ने उन्हें घने जगल मे छोड़ दिया और स्वयं वापस आ गये (वहाँ कवि ने सीता निर्वासन का कोई कारण नहीं दिया है)। निर्जन वन में अपने आपको अकेला पाकर सीता विलाप करने लगीं। वन मे वाल्मीकि ने उनकी पुकार सुनी और उन्हें वे अपने आश्रम में ले गए। आश्रम मे सीता के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक बार सीता उस बालक को लेकर स्नानार्थ गयी क्योंकि उस समय वाल्मीकि ऋषि समाधिस्थ थे। वाल्मीकि की समाधि टूटी तो बालक को वहाँ न देखकर वे घबराए। सीता के आने के पूर्व ही उन्होने एक दूसरे बालक की रचना कर डाली। इस प्रकार सीता के दो पुत्र, लव और कुश, हो गये।

इधर राम ने अयोध्या मे अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ का घोड़ा देश-देशान्तरों के राज्यों में घूमा, उसे पकड़ने का साहस किसी को न हुआ। चारों दिशाओ को

विजय करता हुआ यह घोड़ा वाल्मीकि मुनि के आश्रम की ओर आ निकला। यहाँ सिया-पुत्र लव ने उसे देखा और पकड़कर एक पेड़ से बाँध दिया। यहाँ राम का लव और कुश से भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध मे लक्ष्मण, भरत, विभीषण, सुग्रीव आदि राम-पक्ष के सभी योद्धा मूर्छित होकर गिर पड़े। अन्त मे राम सेना सहित युद्ध करने के लिये आये। उन्होंने राम की सारी सेना का सहार कर दिया। स्वयं राम भी युद्ध मे घायल होकर मूर्छित हो गये। उनकी सम्पूर्ण सेना भाग गई।

लव-कुश सज्ञाहीन योद्धाओं और अश्वसहित आश्रम में आए। वहाँ सीता ने राम को मूर्छितावस्था में देखा और विलाप करने लगीं। राम को मृत जान कर सीता सती हो जाने की तैयारी करने लगीं। तभी आकाशवाणी हुई और सीता ने हाथ मे जल लेकर कहा कि यदि मैंने मन, वाणी और कर्म से श्रीराम के सिवा किसी और का ध्यान न किया हो तो श्रीराम सहित सभी वीर जीवित हो जाए। बस सभी वीर तुरन्त जीवित हो गये। राम सीता और लव-कुश को साथ लेकर अयोध्या वापस आ गये।

अयोध्या आकर राम ने अनेक यज्ञ किये। सहस्रो वर्षों तक धर्मानुसार राज्य किया। एक बार स्त्रियो के पूछने पर सीता ने रावण का चित्र दीवार पर बना दिया। जब उस चित्र को राम ने देखा तो मन मे विचारा कि सीता को रावण से कुछ न कुछ प्रेम अवश्य है इसीलिए उसका चित्र इसने दीवार पर बनाया है।

सीता ने उनका सन्देह दूर करने के लिये पृथ्वी से प्रार्थना की कि यदि मैंने मन, वचन, कर्म से अपने हृदय मे सदा राम को ही स्थान दिया हो तो तुम मुझे अपने मे स्थान दो। यह सुनते ही धरती फट गई और सीता उसमे समा गयीं।

सीता के बिना राम भी जीवित न रह सके। उन्होंने योग द्वारा अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया। उसके पश्चात् भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी योगाभ्यास द्वारा परम धाम सिधार गये।

उसके बाद चारो भाइयो की सन्तानो ने सम्पूर्ण राज्य अपने मे बाँट लिया। लव ने राजधानी का शासन संभाला, कुश ने उत्तर का राज्य लिया, भरत-पुत्र ने पूर्व, लक्ष्मण पुत्र ने दक्षिण और शत्रुघ्न पुत्र ने पश्चिम का राज्य लिया।

हिन्दी रामकाव्य की परम्परा और 'रामावतार'

हिन्दी मे रामकाव्य के विकास पर अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं। इनमें डा० बुल्के का शोध प्रबन्ध 'रामकथा' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि इनमे से किसी भी ग्रथ में गुरु गोबिन्दसिंह विरचित हिन्दी रचना 'रामावतार' की कोई चर्चा नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व (सन् १९५३ ई० में) पटियाले के सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्ती ने इस ग्रन्थ का सम्पादन करके इसे हिन्दी मे सटीक प्रकाशित कराया था। परन्तु फिर भी इस रचना की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया।

जे दुख देह कटे सिय हितके ते रण ग्राज प्रतच्छ दिखाए।
राजिवलोचन राम कुमार घनो रण घाल घने घर पाए।
(द० ग्रं०—रामावतार, पृ० २३७)

श्री रघुनन्दन की भुज तें जब छोर सरासन बान उड़ाने।
भूमि अकास पताल चहूं चक पूर रहे नहिं जात पछाने।
तोर सनाह सुबाहन के तन श्राह करी नहि पार पराने।
छेद करोटन भोदन कोट ग्रटान भों जानको बान पछाने।
(द० ग्रं०—रामावतार, पृ० २३६)

रचना का उद्देश्य

यह बात ग्रन्यत्र भी कही गयी है कि राम, कृष्ण ग्रथवा ग्रन्य ग्रवतारों के जीवन पर काव्य रचना करने में कवि का दृष्टिकोण एक भक्त का दृष्टिकोण न होकर एक राष्ट्र-नायक का दृष्टिकोण रहा है। तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना की, राम भक्ति का प्रचार करने के लिए। डा० श्रीकृष्ण लाल ने रामचरित मानस की रचना के उद्देश्य का विवेचन करते हुए लिखा है।

"रामचरित-मानस की रचना का उद्देश्य ग्रथारंभ में ही दिया गया है कि—

नाना पुराणनिगमागमसम्मत यद्
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वातः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा—
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति ॥

ग्रर्थात् तुलसीदासजी ने स्वयं ग्रपने ग्रतःकरण के सुख के लिए इस ग्रथरत्न की रचना की। परन्तु ज्यो-ज्यो हम ग्रथ मे बढ़ते चलते हैं, त्यों-त्यों यह स्पष्ट होता चलता है कि इस ग्रंथ-रचना का उद्देश्य केवल ग्रपने ग्रन्तःकरण को सुख देना नहीं है, साधारण जनता में राम-भक्ति का प्रचार ही इसका प्रमुख उद्देश्य है, इसलिए तो रामकथा का ग्रारम्भ करने से पहले रचयिता ने एक ग्रतिविस्तृत भूमिका दे रखी है। सच तो यह है कि जनता को राम-भक्ति के प्रति ग्राकृष्ट करने का जितना सफल प्रयास रामचरित मानस में मिलता है उतना शायद ही ग्रौर कहीं मिल सके। कथा ग्रौर प्रसग से, प्रतीति ग्रौर प्रमाण से, उपदेश ग्रौर निदेश से, जितनी प्रकार भी सभव था मानसकार ने रामभक्ति को सबसे ग्रधिक सहज, सुलभ ग्रौर फलदायक प्रमाणित किया।"[1]

परन्तु रामावतार की रचना की पृष्ठभूमि पर गुरु गोविन्दसिंह का उद्देश्य वही है जिसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने 'कृष्णावतार' में किया है—

दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ।
ग्रवर वासना नाहि प्रभु धरम जुद्ध को चाइ।
(द० ग्रं०—कृष्णावतार, पृ० ५७०)

---

१. मानस दर्शन, पृ० १६३-६४।

इसीलिए जहाँ रामचरित मानस मे प्रत्येक काड के अन्त मे तथा अनेक स्थानो पर रामचरित के श्रवण-पठन के महात्म्य का वर्णन है वहाँ रामावतार मे इस महात्म्य परम्परा की परिपाटी का निर्वाह ग्रंथ के अन्त मे केवल एक बार किया गया है—

जो इह कथा सुनै अरु गावै। दुःख पाप तिह निकट न आवै।
बिसन भगति की ए फल होई। आधि व्याधि छ्वै सकै न कोई।

(द० ग्र०—रामावतार, पृ० २५४)

राम का सन्तपालक और दुष्टनाशक रूप कवि अपने युग मे प्रतिष्ठित करना चाहता था। वह राम के उस रूप को समाज के सम्मुख प्रेरणास्रोत के रूप मे प्रस्तुत करना चाहता था। इसलिए अपनी कथा योजना में कवि रामजन्म के राक्षसों को नष्ट करने वाले उद्देश्य को सदा प्रमुख रखता है। राम को वन मे भेजकर राक्षसो को नष्ट कराने के लिए ब्रह्मा स्वयं मंथरा को अयोध्या भेजते हैं[1] —

मथरा इक गान्ध्रबी ब्रह्मा पठी तिह काल।
बाज साज सर्गं चढ़ी सम सुभ्र घउल उताल।

(द० ग्र०—रामावतार, पृ० २०१)

वन मे भरत से भेंट होने पर भी राम अपने विशिष्ट कार्य का उन्हे सकेत करना नहीं भूलते—

पान पियाय जगाय सुबीरहि।
फेरि कह्यो हँस श्री रघुबीरहि।
त्योदस बरख गए फिरि ऐहैं।
जाहु हमे कछु काज किवै है ॥२८६॥

इस उद्देश्यपूर्ति की सबसे विशिष्ट बात तो यह है कि सम्पूर्ण रामावतार मे ८६४ छन्द हैं और इनमें से ४०० से अधिक छन्दो मे केवल युद्ध का ही वर्णन है। करुण, भक्ति, शृंगार तथा अन्य किसी प्रकार के वर्णन में कवि की दृष्टि अधिक नहीं ठहरती। उसकी रुचि युद्ध चित्रण मे है और जहाँ कहीं भी उसे यह सुयोग मिलता है वह इसका पूरा लाभ उठाता है।

रामावतार की कथा-योजना

रामचरितमानस की रचना रामावतार से लगभग सवा सौ वर्ष पहले हुई थी परन्तु रामावतार की रचना पर उसका प्रभाव बहुत कम दृष्टिगत होता है। रामावतार की कथा योजना पर अधिक प्रभाव वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण का दिखाई देता है। वाल्मीकि रामायण की तरह रामावतार मे सीता स्वयवर का कोई विस्तृत आयोजन नहीं दिखाया गया और न उसमें 'मानस' का सा कोई फुलवारी-प्रसग ही दिया गया है। धनुष-भग के पश्चात् 'मानस' मे परशुराम-लक्ष्मण वार्तालाप होता है और लक्ष्मण उनसे व्यग्य भरी बातें

---

१. रामचरित मानस में देवताओं के आग्रह पर सरस्वती मथरा की बुद्धि फेर देती है—
नामु मथरा मदमति चेरी कैकई केरि।
अजस पिटारी ताहि करि गई गिरामति फेरि ॥१२॥ (अयोध्या काण्ड)

करते हैं। वाल्मीकि रामायण में इसकी चर्चा नहीं है। वहाँ तो परशुराम द्वारा 'वैष्णव धनु' की प्रशंसा की जाने पर राम उसे उनके हाथ से लेकर उस पर रौदा चढ़ा देते हैं। रामवतार में भी राम परशुराम का अन्य धनुष चढ़ा कर उसके दो टुकड़े कर देते हैं और इस प्रकार उनका अभिमान भग्न करते हैं।

'रामावतार' की कथा प्रवाह का विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि घटना क्रम के विवेचन की दृष्टि से गुरु गोबिन्दसिंह ने मुख्य रूप से आध्यात्म रामायण को अपने सम्मुख आदर्श रखा था। स्वयं गो० तुलसीदासजी ने 'मानस' की कथा योजना के लिए सबसे अधिक सहायता आध्यात्म रामायण से ली थी।[1] रामावतार के रचयिता ने घटना-क्रम की दृष्टि से सहायता लेते हुए भी जहाँ-तहाँ अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। आध्यात्म रामायण पौराणिक प्रसंगों, महात्म्य वर्णनों और स्तुति-चर्चाओं से भरी हुई है। रामावतार में इनका रूप बहुत संक्षिप्त कर दिया गया है। आध्यात्म रामायण का प्रारम्भ पार्वती के इस प्रश्न से होता है—

"कुछ लोगों का कहना है कि परब्रह्म होने पर भी राम अपनी माया के कारण आत्मस्वरूप से अपरिचित थे और वशिष्ठादि के उपदेशों द्वारा उन्हें आत्मतत्व का बोध हुआ। अतः मैं पूछती हूँ कि यदि उन्हें आत्मतत्व का ज्ञान नहीं था और वे सर्वसाधारण की भांति अपनी पत्नी सीता के लिए विलाप करते थे तो उनका भजन क्यों किया जाए? मेरा सन्देह दूर कीजिए।"[2] और शिव पार्वती की इस शंका का समाधान करते हैं। रामावतार का सीधा प्रारम्भ उस अंश से होता है जहाँ सभी देवता विष्णु के पास अवतार धारण करने की प्रार्थना लेकर पहुँचते हैं। आध्यात्म रामायण में यह प्रसंग बालकाण्ड के द्वितीय सर्ग में आता है।

बालकाण्ड के पंचम सर्ग में राम और लक्ष्मण का मारीच और सुबाहु से युद्ध का वर्णन कुल ३ छन्दों में समाप्त हो गया है, जबकि रामावतार में यह वर्णन २७ छन्दों में हुआ है।

युद्ध प्रसंगों का वर्णन रामावतार में वाल्मीकि रामायण, आध्यात्म रामायण और रामचरित मानस आदि की अपेक्षा बहुत विस्तृत हुआ है। अरण्यकाण्ड में दण्डक वन में प्रवेश करने पर विराध राक्षस से युद्ध का वर्णन आध्यात्म रामायण में ४ छन्दों में ही समाप्त हो जाता है। 'मानस' में इस विषय पर इतना ही लिखा है—

मिला असुर बिराध मग आता।
आवत ही रघुबीर निपाता।।
तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा।
देखि दुखी निज धाम पठावा।।

(रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, दोहा ७)

---

१. श्री रामचरित मानस की कथा जितनी आध्यात्म रामायण से मिलती-जुलती है उतनी और किसी से नहीं मिलती। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्री गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी का प्रामाण्य सबसे अधिक स्वीकार किया है।

(गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित आध्यात्म रामायण में अनुवादक की भूमिका)

२. आध्यात्म रामायण (बालकाण्ड) सर्ग १, श्लोक १३-१।

इस प्रसंग का वर्णन रामावतार में २२ छन्दो मे दिया हुआ है।

रामावतार मे लका काण्ड मे युद्ध-प्रसगो का आयोजन भी बहुत कुछ वाल्मीकि रामायण और आध्यात्म रामायण के अनुसार हुआ है। उदाहरणस्वरूप रामचरित मानस में दिखाया गया है कि युद्ध में लक्ष्मण को मेघनाद की शक्ति लगी थी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार लक्ष्मण को स्वय रावण द्वारा फेंकी हुई शक्ति लगी थी और वे मूछित भी हुए थे। रामावतार में भी लक्ष्मण को रावण की ही शक्ति लगती है। तुलसी ने मानस का यह प्रसग भवभूति के महावीर चरित नाटक से लिया है, जिसमे लक्ष्मण को मेघनाद की शक्ति से मूर्छित होते हुए दिखाया गया है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार मेघनाद राम और लक्ष्मण को नागफास द्वारा बाध देता है। उस समय रावण की आज्ञा से त्रिजटादि सीता को युद्धस्थल पर ले जाकर दिखाती हैं कि युद्ध में राम और लक्ष्मण की मृत्यु हो गयी है। यह प्रसग न तो आध्यात्म रामायण में है न ही रामचरित मानस मे, परन्तु रामावतार के रचयिता ने इस प्रसग का वर्णन किया है। वाल्मीकि रामायण मे वह दृश्य देखकर सीता विलाप करने लगती हैं परन्तु रामावतार में क्रुद्ध होकर नाग मत्र पढ कर राम और लक्ष्मण के बन्धन काट देती हैं।

रामावतार का उत्तर काण्ड बहुत कुछ वाल्मीकि रामायण पर आधारित है, यद्यपि कुछ प्रसंग आध्यात्म रामायण से भी मिलते हैं। शम्बूक बध, शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का बध, सीता त्याग, लव-कुश का जन्म, अश्वमेध यज्ञ, लव-कुश का राम की सेनाओ से युद्ध, सीता का पृथ्वी प्रवेश आदि प्रसग वाल्मीकि रामायण पर आधारित हैं।

२१—कृष्णावतार

कृष्णावतार गुरु गोबिन्दसिंह की सर्वाधिक दीर्घ प्रबन्धात्मक रचना है। इस रचना की छन्द सख्या २४९२ है। कृष्ण चरित्र पर हिन्दी मे प्रबन्ध काव्य लिखने की कोई पुष्ट परम्परा हमारे साहित्य मे उपलब्ध नही होती। रामकथा पर प्रबन्ध काव्यो की परम्परा प्राचीन है किन्तु कृष्ण कथा पर कुछेक प्रबन्ध काव्यो की रचना आधुनिक युग मे ही हुई है। इस रचना का महत्त्व इस दृष्टि से भी बहुत बढ़ जाता है कि यह ब्रज भाषा मे कृष्ण के जीवन पर आधारित उस युग का एक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है।

रचना काल

गुरु गोबिन्दसिंह की कुछेक रचनाए ही ऐसी हैं जिनमे उनका रचना काल दिया हुआ है। कृष्णावतार उनमें से एक है। रचना के अन्त में इस प्रकार ग्रन्थ-कर्त्ता ने उसका रचना काल और उद्देश्य अकित किया है :—

दोहा :—सत्रह से पैंताल महि सावन सुदि थिति दीप ॥
नगर पावटा सुभ करन जमना बहै समीप ॥२४९०॥
दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ ॥
अवर वासना नाहि प्रभ परम जुद्ध के चाइ ॥२४९१॥

वर्ण्य विषय

जैसा कि २४९१वें दोहे से स्पष्ट है कि यह रचना श्रीमद्भागवत के दसवें स्कध पर, जिसमे कृष्ण चरित्र अकित है, आधारित है। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी अनेक रचनाएं, अपनी

कथा, चण्डी चरित्र (उक्ति विलास), चण्डी चरित्र (द्वितीय) आदि को अध्यायो मे विभाजित किया है और क्रमानुसार उनकी सख्या दी है। कृष्णावतार इस प्रकार स्थूल अध्यायों में विभाजित नहीं है। सम्पूर्ण रचना लगभग एक सौ लघु आकार के परिच्छेदों मे विभाजित है। कवि ने इन परिच्छेदों या लघु अशों के लिए अध्याय (अधिआइ या अध्याइ:) शब्द का उल्लेख भी अनेक स्थानो पर किया है। किन्तु इस प्रकार के अध्यायो की क्रम सख्या केवल आरम्भ मे दो स्थानों पर दी गई है।

> इति देवकी को जनम बरनन प्रिथम धिआइ समापत मसतु ॥
> इति श्री बचित्र नाटक ग्रथे क्रिसनावतारे गोपन मे खेलबो बरनन
> असटम धिआइ समापत।

किन्तु यह क्रमसंख्या यहीं (अष्टम अध्याय के साथ ही) समाप्त हो जाती है। शेष अशो में क्रम सख्या का कोई उल्लेख नहीं। स्थूल रूप से इस सम्पूर्ण रचना को पाँच मुख्य भागो मे विभाजित किया जा सकता है :

१.	बाल लीला	४४० छन्द तक
२.	रास मण्डल	४४१ से ७५६ „ „
३.	मथुरा गमन-गोपी विरह	७५७ से १०२८ „ „
४.	युद्ध प्रबन्ध	१०२९ से १९६२ „ „
५.	स्फुट घटनाए	१९६३ से २४९२ „ „

इन भागों के विभाजन मे कुछेक सकेत रचना में उपलब्ध है। प्रथम भाग जिसे "बाल लीला" का अभिधान दिया जा सकता है, इस नाम से ग्रंथ में सम्बोधित नहीं है किन्तु द्वितीय भाग के प्रारम्भ और अन्त में स्पष्ट उल्लेख है। 'बाल लीला' के अन्तिम २० छन्द ४२१ से ४४० तक, देवी स्तुति के हैं (अथ देवी जू की उसतति कथन)। इसलिए इस भाग का अन्त देवी की स्तुति से ही होता है (इति श्री देवी उसतति समापति)। यही से द्वितीय भाग प्रारम्भ होता है। अश के प्रारम्भ मे 'अथ रास मण्डल' अकित है और अश के अन्त मे 'इति श्री दसम सिकन्धे पुराणे बचित्र नाटक ग्रथे क्रिसनावतारे रास मण्डल बरनन धिआइ समापत मसतु सुभ मसतु' लिखकर इस भाग को पूर्ण किया गया है।

तृतीय भाग (मथुरा गमन-गोपी विरह) की योजना भी हमे ही बनानी पड़ती है, क्योकि इस भाग के प्रारम्भ में या अन्त मे इस प्रकार का कोई अभिधान नही है। इस अश का प्रारम्भ सुदर्शन नामक ब्राह्मण को अजगर की योनि से उद्धार करने के प्रसग से होता है।

"सुदरसन नाम ब्रहमणु भुजग जोनते उद्धार करन कथन ॥"

और इस अश की समाप्ति उग्रसेन को मथुरा का राज्य देने से होती है।

"इति श्री दसम सिकन्धे बचित्र नाटकके क्रिसनावतारे राजा उग्रसेन कउ मथुरा को राज दीबो।"

परन्तु चतुर्थ भाग का नामकरण कवि द्वारा उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार द्वितीय भाग का नामकरण।

इस भाग का प्रारम्भ इस प्रकार है :—

"अथ जुद्ध प्रबन्ध जरासिंध जुद्ध कथन ॥"

द्वितीय भाग की समाप्ति 'रास मण्डल बरननं धिआइ समाप्त' और चतुर्थ भाग का प्रारम्भ 'अथ जुद्ध प्रबन्ध''''''' से होती है। मध्य के तृतीय भाग की सीमा रेखा इस प्रकार आप ही निर्धारित हो जाती है और उसे, मथुरा गमन-गोपी विरह का नाम, उस अंश में वर्णित विषय के आधार पर देना समीचीन है।

चतुर्थ भाग का प्रारम्भ 'जुद्ध प्रबन्ध' नाम से होता है, किन्तु रास मण्डल अध्याय की भांति इसकी समाप्ति उल्लिखित नहीं है। इस अंश का एक वैशिष्ट्य भी है। इस भाग के साथ लगभग ११ परिच्छेदों में ग्रंथ की समाप्ति पर 'दसम सिकन्धे बचित्र नाटक, क्रिसनावतारे' के साथ ही 'जुद्ध प्रबन्ध' का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार का अन्तिम उल्लेख १६०२ छन्द के पश्चात् जरासंध को पकड़कर छोड़ने पर है :—

"इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिसनावतारे जुद्ध प्रबन्धे नृप जरासिंध को पकर कर छोर दीबो समापत।"

इससे आगामी अंश में २१ छन्दों में काल यमन के वध का वर्णन है तथा २६ छन्दों में जरासंध को पकड़कर पुनः छोड़ने का वर्णन है। इस प्रकार युद्ध प्रबन्ध १६५१ छन्द तक निर्विघ्न रूप से चलता है। किन्तु इस युद्ध प्रबन्ध भाग में ११ छन्द और जोड़े जा सकते हैं। यद्यपि उनमें किसी युद्ध का वर्णन नहीं है किन्तु उन छन्दों का सम्बन्ध युद्ध प्रबन्ध से ही है। ये ११ छन्द ९३४ छन्दों के विशाल युद्ध प्रबन्ध भाग के उपसंहार सरीखे हैं। जरासंध को पकड़ कर पुनः छोड़ने पर यादव बहुत दुःखी हुए। उन्हें भय हुआ कि यह जरासंध पुनः सेना एकत्र कर उन पर आक्रमण करेगा। इस भय से त्रस्त होते हुए और कृष्ण की शक्ति पर सन्देह करते हुए यादव पुनः समुद्र के अन्दर बसी द्वारिकापुरी में आश्रय ग्रहण करने लगे। यादवों के उस मतिभ्रम को, बलराम ने कृष्ण की स्तुति कर और उनकी अलौकिक शक्ति का वर्णन कर नष्ट कर दिया। यादवों का मतिभ्रम जरासंध को छोड़ने का कारणीभूत है और युद्ध प्रबन्ध का ही एक भाग है।

पंचम भाग अनेक स्फुट घटनाओं से भरा हुआ है।

प्रथम भाग—बाल लीला

प्रारम्भ में कवि कृष्ण जन्म का कारण देता है :—

अब बरणों क्रिसना अवतारू ॥ जैस भांत बपु धर्‌यो मुरारू ॥
परम पाप ते भूप डरानी ॥ डगमगात बिध तीर सिधानी ॥१॥

ब्रह्मा जी के नेतृत्व में सभी देवता क्षीर सागर गए जहां विष्णु स्थित थे। देवताओं की पुकार सुनकर उन्होंने अवतार ग्रहण करने का आश्वासन दिया। साथ ही सभी देवताओं को भी पृथ्वी पर जन्म लेने की आज्ञा दी।[1]

---

१. ब्रह्मा गयो छीर निध जहां ॥ काल पुरख इसथित थे तहां ॥
कह्यो बिसन कह निकट बुलाई ॥ किसन अवतार धरो तुम जाई ॥२॥

२. फिर हरि यह आगिआ दई देवन सकल बुलाइ ॥
आप रूप तुमहूं धरो हउहूं धरिहौ आइ ॥११॥

इधर महाराजा उग्रसेन के घर में देवकी का जन्म हुआ।[1] देवकी जब विवाह योग्य हुई तो उसके लिए वर ढूंढ़ने के लिए दूत भेजे गए। दूतों ने वासुदेव को देखा जो सुन्दर थे और तत्व-भेद को समझते थे। उन्ही को उन्होंने तिलक दे दिया। देवकी और वासुदेव का बड़े घूम-धाम से विवाह हो गया। राजा उग्रसेन ने दहेज में असख्य वस्तुएं दीं। देवकी का भाई कस स्वय इस दहेज की सामग्री का रक्षक बन कर विदा होते समय वासुदेव और देवकी का रथ हाकने लगा। मार्ग मे आकाशवाणी हुई—'अरे मूर्ख, इसे कहा लिए जा रहा है। इस देवकी का आठवा गर्भ तुझे मारेगा।' यह सुन कस ने वासुदेव और देवकी को मार डालने के लिए खड्ग निकाल ली। वे दोनो भयभीत हो गए। वासुदेव ने कस से कहा 'यदि देवकी का पुत्र तुम्हारे सकट का कारण है तो तुम उसका वध कर देना।' कंस ने इसे स्वीकार कर लिया और वासुदेव तथा देवकी को बन्दीगृह मे डाल दिया।

कुछ दिन पश्चात् कीरतमत (कीर्तिमान) नामक पुत्र देवकी के उत्पन्न हुआ, वासुदेव उसे कस के पास ले गये। उस शिशु को देखकर कस के मन मे करुणा उत्पन्न हुई और उसने उसे क्षमा कर दिया। वासुदेव उस पुत्र को वापस तो ले आए किन्तु उनका मन प्रसन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपने मन मे विचार किया कि मूढमति कस इसे अवश्य मार डालेगा।

इसी समय नारद जी प्रकट हुए। उन्होने आठ लकीरें खीचकर कंस पर (आठो ही सतानो के कष्टदायी होने का) भेद प्रकट किया। नारद की बात सुनकर कस ने अपने भृत्यों को वासुदेव पुत्र को मार डालने की आज्ञा दी। इस प्रकार कंस ने देवकी के छः पुत्रों का वध कर दिया। सातवें पुत्र के रूप मे बलभद्र गर्भ मे आए तो दोनों (वासुदेव और देवकी) ने मिलकर विचार किया और उसे मंत्र के प्रभाव से देवकी के गर्भ से निकाल कर (वासुदेव की दूसरी पत्नी) रोहिणी के गर्भ मे स्थित कर दिया गया।

अन्त मे शंख, गदा और त्रिशूलधारी, हाथ मे तलवार, धनुष, पीताम्बरधारी विष्णु प्रकट हुए। देवकी ने उन्हें पुत्र के रूप में न देखकर हरि के रूप में देखा और उनके चरणो पर प्रणाम किया। कृष्ण जन्म से सर्वत्र आनन्द हो गया। देवताओं ने सुमन वर्षा की, चारो ओर जय-जयकार होने लगा।

वासुदेव और देवकी जो, कंस से अत्याचारों के त्रसित थे, ने मिलकर विचार किया। उन्होंने कृष्ण को नद के घर मे छोड़ आने का निश्चय किया। कृष्ण ने उन्हें भय रहित होकर जाने का ढाढ़स दिया। चारों ओर माया की कनात खिंच गयी। चौकियो पर जितने असुर थे सब सो गए।

गोकुल में यशोदा के गर्भ से योगमाया ने जन्म लिया। उसी माया के प्रभाव से यशोदा निद्राग्रस्त हो गई और वासुदेव, कृष्ण को उनकी शैया पर रखकर पुत्री रूपी माया को उठा लाए। बदीगृह में जब उस बालिका के रुदन की ध्वनि उत्पन्न हुई तो प्रहरियों को

१. गुरु गोबिन्दसिंह ने देवकी को उग्रसेन की कन्या लिखा है:—

उग्रसेन की कन्या का नाम देवकी तास॥ सोमवार दिन अठर तै कीनौ ताहि प्रकास॥१६॥

किन्तु श्रीमद्भागवत (दसम स्कन्ध) तथा विष्णु पुराण आदि ग्रन्थों में देवकी के पिता का नाम देवक लिखा है। उग्रसेन-पुत्र कस उसका चचेरा भाई था। (गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित दशम स्कन्ध पृष्ठ ७, उसी प्रकाशन के विष्णु पुराण का पृष्ठ ३७१)

२. दूत पठयो तिन जाइकै निरख्यो है वसुदेव। मदन बदन सुख को सदन लखै तरत को भेव॥१८॥

निद्रा टूटी और उन्होंने कस को जाकर समाचार दिया कि तुम्हारे शत्रु ने जन्म लिया है। यह समाचार सुन कंस हाथ मे तलवार लेकर बंदीगृह में आया।

देवकी ने उससे प्रार्थना की वह इस कन्या का वध न करे, किन्तु कस ने उसे उठाकर पत्थर पर पटक दिया। वह कन्या हाथ से छूट कर आकाश में बिजली की तरह चमक उठी। आकाश मे वह आठ बड़े-बड़े हाथो मे शस्त्र लिए हुए दीख पडी। उसने कस से कहा—हे मतिहीन, तेरा संहार करने वाला तो कहीं जन्म ले चुका है। यह सुनकर कस देवताओ की निंदा करता हुआ पश्चात्ताप करने लगा, कि उसने व्यर्थ ही अपनी बहिन की सतानो का सहार किया। वासुदेव और देवकी से क्षमा याचना करते हुए उसने उन दोनो को मुक्त कर दिया।

कस ने मत्रियो से विचार किया कि मेरे देश में जितने भी बालकों ने जन्म लिया है उन्हें मार डाला जाय।

कवि कहता है कि भागवत की इस शुद्ध कथा को मैंने भली-भांति कहा है, अब मैं ब्रज मे कृष्ण के जन्म की कथा का वर्णन करता हूं। कृष्ण जन्म को सुनकर सभी देवता प्रसन्न हुए, सभी नर-नारी हर्षित हुए। घर-घर मंगल गान होने लगा।

पूतना वध

कस की आज्ञा पाकर पूतना कृष्ण को मारने के लिए अपने स्तनो में विष लगा, सुन्दर रूप धारण कर[1] नन्द के द्वार पर आई। यशोदा को अपनी मीठी बातों से उसने प्रभावित किया और कृष्ण को गोद में उठा कर स्तनपान कराने लगी। इन दुर्बुद्धि जीवों के भी बड़े भाग्य हैं, जिन्होंने भगवान के मुंह मे अपने स्तन दिए।[2] किन्तु कृष्ण ने दूध और रक्त के साथ उसके प्राण भी निकाल लिए।

पूतना वध के अतिरिक्त इस भाग मे नामकरण, तृणावर्त वध माता यशोदा को विश्व रूप दिखाना, यमलार्जुन उद्धार, बकासुर दैत्य का वध, अघासुर दैत्य वध, ब्रह्मा जी का मोह नाश, धेनक दैत्य वध, कालिया नाग की कथा, प्रलम्ब दैत्य वध, चीर हरण, विप्र पत्नियों पर कृपा, गोवर्धन पर्वत को धारण करना, इन्द्र की क्षमा प्रार्थना और उन्हें गोविंद नाम से विभूषित करना, वरुण लोक से नन्द जी को छुड़ाकर लाना प्रसंगो का वर्णन है।

ये सभी प्रसग भागवत के दशम स्कन्धो के लगभग समानातर ही चलते हैं। केवल दो-एक प्रसंग ही आगे-पीछे हुए हैं। उदाहरणार्थ—भागवत मे तृणावर्त उद्धार नामकरण सस्कार से पहिले है जबकि कृष्णावतार में इस प्रसंग का वर्णन नामकरण के पश्चात् हुआ है।

भागवत मे सभी प्रसगो के साथ वक्ता (श्री शुकदेवजी) द्वारा श्रोता (परीक्षित) को

---

१. काजर नैन दिए मन मोहत इंगर की बिदरी जु बिराजै॥
टाड भुजान बनी कटि के हरि पाइन नूपर की धुन बाजै॥
हार गरे मुक्ताहल के गई नन्द दुआरहिं कंस के काजै॥
बाम सुबास बसो सबहीं तन आनन पै ससि कोटिक लाजै।८४॥

२. भाग बड़े दुरबुद्धन के भगवानहि को जिन असथन दीनो॥८७॥

सम्बोधन जुड़ा हुआ है, किन्तु कृष्णावतार के ये सभी प्रसंग इस प्रकार के सम्बोधन से रहित हैं।[१]

बाल लीला भाग के अन्त और रास मंडल भाग के प्रारम्भ के मध्य कवि ने २० छन्दों में देवी की स्तुति की है। यह स्तुति भागवत प्रेरित न होकर कवि प्रेरित है। गुरु गोबिन्दसिंह का इष्टदेव ब्रह्म का काल रूप ही देवी के रूप में प्रख्यात है। वही वह शक्ति है जो वराह बनकर हिरण्याक्ष का, नृसिंह बनकर हिरण्यकशिपु का संहार करती है। वामन बनकर तीनों लोक नाप लेती है। देव और दानवों का निर्माण करती है। राम बनकर रावण का, और कृष्ण बनकर कंस का नाश करती है, काली बनकर शुंभ निशुंभ को खपाती है।[२]

देवी स्तुति के इस अंश में कवि का अपना मनोरथ एवं सिद्धान्त पक्ष स्पष्ट होता है। अनेक अवतारों की कथा का वर्णन करता हुआ भी वह इन पर अपनी अन्तिम आस्था नहीं प्रकट करता। ये तो सभी माध्यम हैं। शक्ति स्रोत तो कोई और ही है जिससे इन्हें शक्ति प्राप्त होती है। वह शक्ति पुंज देश-काल-जन्म-मृत्यु से परे है। उसके लिए लिंग भेद भी नहीं है। इसलिए उसे देवी कहो या देवता,[३] काली कहो या काल बात एक ही है। इसलिए इस अंश के प्रथम १२ छन्दों में (४३२वें छन्द तक) स्तुति का सम्बोधन स्त्री शक्ति के लिए है और शेष ८ छन्दों में (४३३ से ४४०) तक यह स्तुति पुरुष-शक्ति के लिए हो जाती है, जिनमें कवि उस महान शक्ति से अपने लिए कुछ मांगता है और अपने शत्रुओं के विनाश की कामना करता है।[४]

---

१. रास मंडल खंड में परीक्षित शुकदेव से एक प्रश्न पूछते हैं:—
राजा परीछत बाच सुक सो:—
सुक संग राजै बहु कही जूध दिजन के नाथ ॥
अगन भाव किह बिधि बहै क्रिसन भाव के साथ ॥४६३॥
सुक बाच राजा सों.—
राजन पारा ब्यास को बाल कथा सु अरोचक भात सुनावै ॥
ब्यारनिआ बिरहानल भाव करे बिरहानल को उपजावै ॥
पंच भुआतम ल बन को इह कउतक कै अति ही उर पावै ॥
कान्ह के ध्यान करैं जबहीं बिरहानल की लपटान बुझावै ॥४६४॥
(यह प्रश्नोत्तर भागवत दशम-स्कन्ध-(श्री प्रेम सुधासागर) के पृष्ठ १०६, अध्याय २६ में है।)

२. तुमी ब्राह्मणी ह्वै हिरनाछ मार्यो ॥ हरनाकसे सिंगणी ह्वै पछार्यो ॥
तुमी बावनी ह्वै तिनै लोक मापे ॥ तुमी देव दानो कीए जच्छ थापे ॥४३१॥
तुमी राम ह्वै कै दसाग्रीव खंड्यो ॥ तुमी क्रिसन ह्वै कंस केसी बिहंड्यो ॥
तुमी जालपा ह्वै बिडालाछ घायो ॥ तुमी सुंभ ते सुंभ दानो खपायो ॥४३२॥
(कृष्णावतार)

३. गुरु गोबिन्दसिंह ने चंडी चरित्र (द्वितीय) में चण्डी के लिए पुल्लिंग (देवता) शब्द का प्रयोग भी किया है।
जेजै सत्र सामहे आए ॥ सबै देवता मार गिराए ॥२६॥ प्रथम अध्याय।

४. दास जानि कर दास परि कीजै क्रिपा अपार ॥
आप हाथ दे राख मुहि मन क्रम बचन बिचार ॥४३३॥
मैं न गनेसहि प्रिथम मनाऊं ॥ किसन बिसन कबहू नह धिआऊं ॥
कान सुने पहिचान न तिन सो ॥ लिव लागी मोरी पग इनसों ॥४३४॥

कृष्ण के बालरूप का चित्रण

कृष्णावतार में कृष्ण के बालरूप का चित्रण साधारण कोटि का है और कवि ने इस चित्रण में अपनी कल्पना शक्ति का अधिक उपयोग नहीं किया है। कृष्णावतार का बालरूप वर्णन न्यूनाधिक रूप से भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित घटनाओं का ही पुनर्प्रस्तुतीकरण है।

कृष्ण घुटनों के बल चलते हैं। माता यशोदा यह देखकर वात्सल्य रस में डूब जाती हैं :—

> कान चले घुंटुआ घरि भीतर मात करै उपमा तिह चगी ॥
> लालन की मन खाल किधों नन्द चेन सबै तिहके सभसगी ॥
> लाल भई जसुधापिख पुत्रहि जिउ घनि मे चमके दुत रगी ॥
> किउ नहि होवे प्रसन्न सु मात भयो जिनके पुहतात त्रिभंगी ॥११४॥

कृष्ण बड़े हो गए, अपने ग्वाल बालों सहित यमुना के तट पर खेल में मगन रहते हैं। घर में तो उनके पैर टिकते ही नहीं :—

> आइ जबै हरि जी ग्रह अपने खाइके भोजन खेलन लागे ॥
> मात कहे न रहे घरि भीतर बाहरि को तबहीं उठि भागे ॥
> स्याम कहै तिनकी उपमा ब्रिज के पति बीथन में अनुरागे ॥
> खेल मचाइ दयो लुकमीचन गोप सबै तिहके रस पागे ॥१२१॥

माखन चुराने की कथा तो कृष्ण चरित्र के साथ अनन्य रूप से सम्बद्ध है। कृष्ण काव्य के रचयिता सभी कवियों ने इस विषय पर अपनी प्रतिभा का बढ़-चढ़कर प्रयोग किया है। भागवत में भी इस प्रसंग का पर्याप्त उल्लेख है। कृष्णावतार के रचयिता ने भी कुछ सुन्दर पदों की रचना इस प्रसंग में की है।

कृष्ण खेलने के बहाने किसी गोपी के घर में घुस जाते हैं, फिर संकेत से अन्य ग्वाल बालों को बुला लेते हैं। अन्दर बैठकर सब माखन खाते हैं। शेष बचा हाथ में ले आते हैं और बन्दरों को खिला देते हैं। इस प्रकार गोपियों को खिझाते हैं :—

> खेलन के मिस पै हरि जी घरि भीतर पैठ के माखन खावे ॥
> नैनन सैन तबै करिकै सम गोपन को तबहीं सुभु लावे ॥

महा काल रखवार हमारो ॥ महा लोह मैं किंकर थारो ॥
अपना जान करो रखवारा ॥ बाह गहे की लाज बिचारा ॥४३५॥
अपना जान मुझे प्रतिपरीऐ ॥ चुन चुन सत्र हमारे मरीऐ ॥
देग तेग जग मैं दोउ चले ॥ राख आप मुहि अउर न दले ॥४३६॥
तुम मम करहु सदा प्रतिपारा ॥ तुम साहिब मैं दास तिहारा ॥
जान आपना मुझे निवाज ॥ आप करो हमरे सभ काज ॥४३७॥
तुम हो सभ राजन कर राजा ॥ आपे आपु गरीब निवाज ॥
दास जानकर कृपा करहु मोहि ॥ हार परा मै आन द्वार तुहि ॥४३८॥
अपना जान करो प्रतिपारा ॥ तुम साहब मै किंकर थारा ॥
दास जान दे हाथ उबारो ॥ हमरे सम बैरीअन सधारो ॥४३९॥
प्रथम धरो भगवत को ध्याना ॥ बहुरि करो कविता विधि नाना ॥
क्रिसन जथा मत चरित्र उचारो ॥ चूक होइ कवि लेहु सुधारो ॥४४०॥

बाकी बच्यौ अपने करि लैकर बानर के मुख भीतर पावै ।।
स्याम कहै तिहकी उपमा इहके विघ गोपन कान्ह रिझावे ।।१२३।।

गोपिया यशोदा से आकर कृष्ण की शरारतो का उलाहना देतीं हैं। कृष्ण भी उत्तर देने मे किसी से पीछे नही है। वे कहते हैं कि ये गोपिया ही उन्हे बहुत खिझाती हैं। माता पूछती है कि ये तुझे क्यो खिझाती हैं तो उनका उत्तर है :—

मात कह्यो अपने सुत को कहु किउ करि तोहि खिझावत गोपी ।।
मात सो बात कही सुत यो करि सो गहि भागत है मुहि टोपी ।।
डार कै नास बिखै अगुरी सिर भारत है मुझ को वह थोपी ।।
नाक घिसाइ हसाइ उनै फिर लेत तबै वह देत न टोपी ।।१२७।।

किन्तु इस प्रकार के पद कृष्णावतार मे बहुत कम हैं। गुरु गोबिन्दसिंह मुख्यत: वीर रस के कवि हैं। इस बाल लीला भाग मे भी उनकी रुचि विशुद्ध बाल लीलाओ के वर्णन में नहीं रही है। बकासुर, तृष्णावर्त आदि दैत्यो से बालकृष्ण के द्वन्द्व के चित्र उन्होने विशेष कौशल और तन्मयता से प्रस्तुत किए हैं।

तृष्णावर्त

जउ हरि जी नभि बीच गयो कर तउ अपने बल को तन चट्टा ।।
रूप भयानक को धरिकै मिलि जुद्ध कर्यो तब राछस फट्टा ।।
फेरि संसार दसो नख आपने कैकै तुरा सिर सत्र को कट्टा ।।
रुण्ड गिर्यो जन पेडि गिर्यो इस मुण्ड पर्यो जन डारते खट्टा ।।१०६।।

बकासुर

जबै दैत आयो महा मुखि चवरायो जब,
जानि हरि पायो मन कीनो वाके नास को ।।
सिद्ध सुर जाप तिनै उखार डारी चोच बाकी,
बली मार डार्यो महाबली नाम जास को ।।
भूमि गिरि पर्यो ह्वै दुटूक महा मुखि बाको,
ताकी छबि कहिबे को भयो मन दास को ।।
खेलबै को राज बन बीच गए बालक जिउ,
लै कै करि मद्धि चीर डारै लाबे घास को ।।१६३।।

अघासुर

देहि बढाइ बडो हरि जी मुख रोक लयो उह राछस ही को ।।
रोक लए सभही करि कै बल सासि बढ्यो तब ही उह जी को ।।
कान्ह विदार दयो तिह को सिर प्रान भयो बिन भ्रात बकी को ।।
गूद पर्यो तिहको इम जिउ सवदागर को टूट गयो मट घी को ।।१७३।।

कालिया नाग

कान लपेट बडोवह पन्नग फूकत है कर कद्धहि कैसे ।।
जिउ घन पात्र गए धन ते अति भूरत लेत उसासन तैसे ।।
बोलत जिउ घमिआ हरि मै सुर कै मधि स्वास भरे वह ऐसे ।।
भूभर बीच परे जल जिउ तिहके फुनि होत महा धुनि जैसे ।।२१०।।

रास मंडल

३१६ कवित्त सवैयों के इस खण्ड में कृष्ण और गोपियों की रास लीला का वर्णन है। यह लीला कार्तिक ऋतु से प्रारम्भ होती है।[1] बसंत, ग्रीष्म और पावस ऋतुओं मे कृष्ण की गोपियों के संग लीला का संक्षिप्त वर्णन बाल लीला खण्ड में हुआ है।[2] इस खण्ड में कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य को चित्रित करने का विशेष आग्रह है[3] किन्तु यह सम्पूर्ण चित्रण और उसमें प्रयुक्त उपमाएं परम्परागत हैं।

यद्यपि रास मडल के इस भाग मे एन्द्रिय वातावरण की प्रधानता है फिर भी कृष्ण के संत उबारन और दुष्ट विनाशन रूप को कही भी दुर्लक्ष्य नहीं किया है। घोर शृंगारी और एन्द्रिय वातावरण के मध्य भी कवि इस प्रकार के छन्दों की योजना करता है जिससे

---

१. जब आइ है कातक की रुत सीतल कान तबै अतही रसीआ ॥
संग गोपन खेल विचार कर्यो जदुनो भगवान महा जसीआ ॥
अपवित्रन लोगन के जिह के पग लागत पाप सभै नसीआ ॥
तिहको मुनि श्रीयन के संग खेल निवारहु मान इहै मसीआ ॥४४१॥

२. बसंतः—माघ बितीत भए रुत फागुन आई गई सम खेलत होरी ॥
गावत गीत बजावत ताल कहै मुखते भरुआ मिलि जोरी ॥
डारत है अलता बनिता छटका संग मारत बैसन थोरी ॥
खेलत स्याम धमार अनूप महा मिलि सुन्दरि सांवल गोरी ॥२२५॥

ग्रीष्म— अन्त बसन्त भए रुत ग्रीषम आइ गई हरि खेल मचायो ॥
आवहु पिक दुहूं दिस ते तुम कान भए घनठीसुख पायो ॥
दैत प्रलम्ब बडो कपटी तब बालक रूप धर्यो न बनायो ॥
कँध चढ़ाइ हली को उड्यो तिन मूकन सो घर मार गिरायो ॥२२६॥

पावस— *अन्त भए रुत ग्रीषम की रुत पावस आइ गई सुखदाई ॥*
कान फिरै बन बीथन मै संगि लै बछरे तिनकी अरु माई ॥
बैठ नवे फिर मद्ध गुफा गिर गावत गीत सभै मनु भाई ॥
ता छबि की अति ही उपमा कवि कै मुखते इम भाख सुनाई ॥२३०॥

३. आनन जाहि निसापति सो द्रिग कोमल हैं कमला दल कैसे ॥
है भरटे घन से धरनी सर दूर करै तन के दुखरे से ॥४४२॥
दिय जाहि मृगी पति की सम है मुख जाहि निसा पति सी छबिपाई ॥
जाहि कुरंगन के रिप सी कटि कंचन सो तनने छबि छाई ॥
पाटबनै कदली दल द्वै जंघा पर तीरन की दुति गाई ॥
अंग प्रतंग सु सुन्दर स्याम कहू उपमा कहिए नहिं जाइ ॥४४५॥

... ...

मोर की पंख बिराजनि सीस सुराजत कुंडल कानन दोऊ ॥
लालकी माल सु छाजत कंठहि ता उपमा सम है नहिं कोऊ ॥
जो रिप पै मग बात चल्यो सुन कै उपमा चलि देखत उऊ ॥
अउर की बात कहा कहिऐ कवि स्याम सुरादिक रीझत सोऊ ॥५१६॥

कृष्ण के शृंगारी नायक के रूप के साथ ही साथ उनके अवतार होने, दुष्टों को नष्ट करने और सन्तों की रक्षा करने का रूप भी दिग्दर्शित होता रहता है।[१]

मुरली

भागवत कथा ग्रन्थ सम्पूर्ण कृष्ण साहित्य मे कृष्ण के साथ मुरली का सयोग राधा के समान ही अपरिहार्य है। 'बाल लीला' और 'रास मण्डल' दोनो ही खण्डो मे कृष्ण की मुरली, उससे निकलने वाला स्वर और उसके प्रभाव की पर्याप्त चर्चा है।

कृष्ण अपनी बासुरी पर अनेक राग छेड़ते हैं :—

रामकली अरु सोरठि सारग मालसिरी अरु बाजत गउरी ॥
जैतसिरी अरु गौड़ मलार बिलावल राग बसै शुभ ठउरी ॥
मानस की कहु है गनती सुन होत सुरी असुरी धुन बउरी ॥
सो मुनि कै धुनि स्रउनन मे हरनी हरनी जिम आवत दउरी ॥३३१॥

कृष्ण की बासुरी का प्रभाव सासारिको पर तो होता ही है स्वर्ग के देवता भी उसे सुनने के लिए लालायित हैं। देव कन्याए उसे सुनने के लिए भागी आती हैं :—

करुना निधान बेद कहत बखान याकी,
बीच तीन लोक फैल रही है सु बासुरी ॥
देवन की कनिआ ताकी सुनि धुनि स्रउनन मे,
धाई धाई आवै तजि कै सुरग बासुरी ॥
ह्वै कर प्रसन्न रूप राग को निहार कह्यौ,
रच्यौ है विधाता इह रागन को बासुरी ॥
रीझै सभगन उडगन मै मगन जब,
बन उपबन मे बजाई कान्ह बासुरी ॥

कृष्ण की बांसुरी सुनकर गोपियाँ बावरी होकर कृष्ण की ओर दौड़ी चली जाती हैं। उस समय उन्हें अपनी लज्जा का भी विचार नही रहता। वे किसी के रोके नहीं रुकतीं।

गोपन की बरजी न रही सुर कान्ह के सुनबे को आधी ॥
नास चली अपने ग्रह इउ जिमु मत्त जुगीस्वर इद्रहि लाधी ॥
देखन को मुखि आहि चली जोउ काम कला हुको है फुन बाधी ॥
डार चली सिर कै पट इउ जनु डार चली सम लाज बहाधी ॥४५०॥

---

१. देत सखासुर के मबे कहु रूप धर्‌यो जल मैं जिन मच्छा ॥
सिंध मथ्यो जबही असुरासुर मेर तरै भयौ कच्छप रच्छा ॥
सो अब कान भयौ इह ठउर धरावत है निज के सब बच्छा ॥
खेल दिखावत है जगको इह है करता सभ जीवन रच्छा ॥३५४॥
... ...
जाहि भभीछन राज दयो अर रावन आदि मर्‌यो करि क्रोहै ॥
चक्र के साथ कियौ जिनहू सिसपाल को सीस कट्यो कर छोहै ॥
मैन सु अउ सीय को भरता जिह मूरत की सम तुल्लि न कोहै ॥
सो करलै अपने मुरली अब सुन्दर गोपिन के मन मोहै ॥६४४॥

कृष्ण की मुरली के ये सभी रूढ़ चित्र हैं। कवि ने इन चित्रों का वर्णन कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध इनकी अपरिहार्यता जानकर ही किया है।

गोपियां

इस खण्ड में यद्यपि अनेक गोपियो के नामों का कुछ स्थानों पर उल्लेख हुआ है।[1] परन्तु प्रमुख नायिका राधा ही है। राधा के सौन्दर्य का वर्णन कवि ने कुछ स्थलो पर किया है। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है .—

> ब्रिखभान सुता की बराबर मूरति स्याम कहै सुनहो ग्रितची है ॥
> जा सम है नही काम की त्रीया नही जिसकी सम तुल्लि सची है ॥
> मानहु लै ससि को सभ सार प्रभा करतार इही मै गची है ॥
> नन्द के लाल बिलासन को इह मूरत चित्र बचित्र रची है ॥६३२॥

वातावरण

इन गोपियो के साथ रास लीला के सयोग शृगारमय वातावरण का निर्माण कवि ने बड़ी सफलतापूर्वक किया है। नृत्य, गान, जलविहार आदि लीलाओं का वर्णन पर्याप्त विस्तार से किया गया है। प्रसगानुसार अभिसार, मान, दूती आदि का विशेष चित्रण हुआ है। गर्व, लज्जा, ईर्ष्या, जड़ता, मान आदि लगभग सभी सचारियों के उदाहरण इस भाग में उपलब्ध हैं।

कृष्णावतार के संयोग शृंगार एन्द्रिय स्थूलता से पूर्ण हैं। चुम्बन, आलिंगन, कुच-मर्दन, केलि आदि के दृश्य हिन्दी की रीतिकालीन परम्परा के अनुकूल ही हैं। यद्यपि शृगार गुरु गोबिन्दसिंह का प्रिय रस नहीं परन्तु उनका शृगारिक दृश्यो का चित्रण किसी भी रीति-कालीन कवि के वर्णन से कम प्रभावशाली नहीं है। राधा रूठ जाती है। कृष्ण उसे मनाने के लिए दूती भेजते हैं किन्तु राधा किसी तरह नही मानती। अन्त मे कृष्ण स्वयं मनाने जाते हैं। राधा मान जाती है। कई दिनो से बिलगाव के पश्चात राधा और कृष्ण मिलते हैं।

> दोऊ जउ हसि बातन संग ढरं तु हुलास बिलास बढै सगरे ॥
> हसि कंठ लगाइ लई ललना गहि गाढ़े अनंग ते अक भरे ॥
> लरको है तनी, दरगी अगिआ गर माल ते टूट कै लाल परे ॥
> पिय के मिलए त्रिय के हिय तै अंगरा बिरहा गिनके निकरे ॥७४६॥

तृतीय भाग

गोपी विरह

इस भाग मे इन प्रसंगो का वर्णन है :—

१. सुदर्शन नामक ब्राह्मण का भुजंग की योनि से उद्धार।

---

१. चन्द्र प्रभा अरु चन्द्र मुखी जिनके जिख मान सुना संग गावैं ॥५५६॥

... ...

रूम सची इक चन्द्र प्रभा इक मैनकला इक मैन की मूरत ॥
बिज्जु छटा इक दारम दाम बराबर जाहि की है न कछू रत ॥
दामिन अउ जिन की भिगनी सम्नाई जिसे पिखि होत है चूरत ॥
सोउ कथा कवि स्याम कहै सम रीझ रही हरि की पिख मूरत ॥५६७॥

२. ब्रिसभासुर (ग्ररिष्टासुर, जो वृषभ का रूप धारण कर श्राया) का वध।
३ कैसी (केशी) दैत्य का वध।
४ नारद जी का कृष्ण के पास श्रागमन।
५. बिस्वासुर दैत्य वध।
६. श्रक्रूर का कृष्ण को मथुरा ले जाना।
७. मथुरा प्रवेश श्रौर धोबी को दण्ड देना।
८. बागवान (माली) का उद्धार।
९. कुब्जा का उद्धार।
१०. धनुष भग।
११ (कुवलापीड़) हाथी का वध।
१२. चडूर (चाणूर) मुस्ट (मुष्टिक) पहलवानों का वध।
१३. कंस वध।
१४. माता-पिता को मुक्त करना।
१५. नन्द बाबा को ब्रज मे वापस भेजना।
१६. गोपियो का विरह।
१७. यज्ञोपवीत।
१८. उग्रसेन को राज्य देना।
१९. धनुर्विद्या शिक्षण।
२० उद्धव को ब्रज भेजना।
२१. कुब्जा गृह प्रवेश।
२२. श्रक्रूर के घर जाना।
२३. श्रक्रूर को कुन्ती (कुन्ती) के पास भेजना।

उक्त प्रसंगो से युक्त २७१ छन्दों के इस भाग मे विरह सम्बन्धी छन्द १४० के लगभग हैं। इन विरह छन्दों को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है :—

१. माता यशोदा का विरह।
२. पिता नन्द का विरह।
३. गोपियों का विरह।

करुण घटनाश्रों के विस्तृत चित्रण मे कवि की श्रधिक रुचि नहीं है। 'श्रपनी कथा' में गुरु गोबिन्दसिंह ने श्रपने पिता के ऐतिहासिक महत्व से पूर्ण निधन का वर्णन कुल चार पंक्तियो में किया है। इस प्रसग मे भी यशोदा विलाप के कुल दो-तीन दृश्य उपलब्ध हैं।

---

१. मथुरा हरि के जान की सुनी जसोदा बात।
तब लगी रोदनि करन भूल गई सुध गात ॥७६३॥
रोवत लाग जब जसोदा अपने मुखि ते इह भात सौ भाखै ॥

एक उस समय जब कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा जाने की तैयारी करते हैं और दूसरा वह जब नन्द बाबा कृष्ण को मथुरा में ही छोड़कर अन्य गोपों सहित ब्रज में लौट आते हैं।[1]

यशोदा के मातृ हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति का परिचय एक स्थान पर मिलता है। उद्धव ब्रिज होकर वापस मथुरा लौटे। कृष्ण के कहने के लिए गोप-गोपियों, माता-पिता सभी ने उन्हें संदेश दिए हैं। वे संदेश कृष्ण को सुना रहे हैं :—

ग्वारनि मो सग ऐसो कह्यो हम डरते स्याम के पाइन पइऐ ॥
मों कहियौ पुर बासन को तजिकै ब्रिज बासन को दुख दइऐ ॥
जसुधा इह भांति करी बिनती बिनती कहीयो सग पूत कनइऐ ॥
उद्धव ता संग यों कहीयौ बहुरौ फिरि प्राइकै माखन खइऐ ॥६५६॥

'बहुरौ फिरि प्राइकै माखन खइऐ' में मा के प्रेम की सरल अभिव्यक्ति की मार्मिकता झलक उठी है। इसी प्रसंग में यशोदा उद्धव के द्वारा कृष्ण को कहलाती हैं कि जब तुम अजान थे तो मेरी बात मानते थे, अब सयाने होकर बात क्यों नहीं मानते :—

मात करी बिनती तुम पै कबि स्याम कहै जोउ है ब्रिज रानी ॥
ताही को प्रेम घनो तुमसो हम आपने जो महि प्रीत पछानी ॥
ताते कहिउ तजि कै मथुरा ब्रिज आवहु या विधि बात बखानी ॥
इयाने हुते तब मानते थे अब सयाने भए तब एक न मानी ॥६६१॥

गोपियों का विरह वर्णन अपेक्षाकृत कहीं अधिक प्रभावशाली है और कवि ने उसमे रीति निर्वाह का पूरा प्रयास किया है। इस खण्ड के विरह वर्णन की विशेषता यह है कि कवि ने इसे विशुद्ध भाव के स्तर पर ही रखा है, भक्ति, ज्ञान या सगुण-निर्गुण का साम्प्रदायिक अथवा दार्शनिक विवाद उठाने का प्रयत्न इसमें नहीं किया गया। फलतः गुरु गोविन्दसिंह की गोपिया, सूर, नन्ददास और रत्नाकर की गोपियों की भांति वाक्चतुर और तीक्ष्ण व्यग करने वाली स्त्रियां नहीं हैं। वे सीधी-सादी, सरल, संयमित एवं सदाशय से पूर्ण ग्रामीण महिलाएं हैं, जैसी कि वे थीं।

कृष्ण के जाने का समाचार सुनकर गोपिया हक्की-बक्की सी खड़ी हैं। उनसे कुछ बोला ही नहीं जा रहा है। बोला भी कैसे जाए? मन तो कृष्ण की प्रीति में जल चुका है।

जब ही चलिबे की सुनी बतिया तब ग्वारनि नैन ते नीर ढर्‌यो ॥
गिनती तिनके मन बीच भई मन को सभ प्रानन्द दूर कर्‌यो ॥
जितनौ तिन में रस जोबन थे दुख की सोई ईंधन माहि जर्‌यो ॥
तिनते नहि बोल्यो जात कछू मत कान्ह की प्रीत के सग जर्‌यी ॥

कृष्ण के वियोग में कुछ गोपिया जोगिन बनना चाहती हैं तो कुछ आत्महत्या करके उसका पाप कृष्ण के सिर पर डालना चाहती हैं —

अग विखै सजकै भगवे पर हाथ न मैं चिपीआ हम लै हैं ॥
सीस धरै गी जटा अपने हरि मूरति भिच्छ कउ मांग अर्वहैं ॥

---

१. बच्यो जिन ताप बड़े अहिवे जिनहू बीर बली हनि दईया ॥
ज्याहि मर्‌यो अर नाम महा रिपु पै पिअरवा मुरलीधर भईया ॥
जो तपस्या करिके अपने कवि स्याम कहै परि पाइन लईया ॥
सौ पुर बासन छीन लयो हम ते सुनीये सखी पूत कन्हईया ॥८६०॥

स्याम चलैं जिह ठउर विखै हमहूं तिह ठउर विखै चलि जैहैं ॥
स्याम कह्यो हम धामन को सभहीं मिलकै हम जोगन ह्वै हैं ॥८०२॥

... ...

कै बिख खाइ मरैगी कह्यो अपने तन को नहिं घात करैहैं ॥
मार छुरी अपने तन मैं हरि के हम ऊपर पाप चढैहैं ॥
नातर ब्रह्म के जा पुर मे बिरथा इह की सु पुकार करैहैं ॥
ग्वारनिया इह भांत कहै ब्रिज ते हरि को हम जान न दै हैं ॥८०६॥

उद्धव से अपने सवाद मे भी गोपियो ने कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम का परिचय बड़े कौशल से दिया है। उनमें आतुरता भी है और क्रोध भी। कृष्ण से मिलना भी चाहती हैं साथ ही क्रोध मे यह भी कहती जाती हैं कि यदि कृष्ण नगर जाकर हमे भूल गए हैं तो हम भी उन्हे भुला देंगी—

एक कहै अति आतुर ह्वै इक कोप कहै जिनते हित भाग्यो ॥
उद्धव जू जिह वेखने को हमरो मनुआ अति ही अनुराग्यो ॥
सो हमको तजि ग्यो पुर बासन के रस भीतर भाग्यो ॥
जउ हरि जू ब्रिज नार तजी ब्रिज नारन भी ब्रिजनाथ तिआग्यो ॥६०६॥

मथुरा मे जाकर कुब्जा के प्रेम मे सब कुछ भूल जाने वाले कृष्ण पर गोपियो को खीझ भी आती है और उस खीझ में वे उन्हें कोसती भी हैं—

प्रेम छकी अपने मुख तें इह भात कह्यो ब्रिखभान की जाई ॥
स्याम गए मथुरा तजि कै ब्रिज हो अब धौं हमरी गति काई ॥
देखत ही पुर को त्रिय को सु छकै तिनके रस मे जीय आई ॥
कान्ह लयो कुब्जा वसि कै टसक्यो न हियो कसक्यो न कसाई ॥

सभी मिलकर उद्धव से यह कहती हैं कि कृष्ण को कहना कि वे उनकी भी कभी-कभी सुध लेते रहे :—

मिलकै तिन उद्धव संग कह्यो हरि सो सुन उद्धव यों कहियो ॥
कहि कै करि उद्धव ज्ञान जितो पठियो तितनो सभही गहियो ॥
सभही इन ग्वारनि मैं कवि स्याम कह्यो हित आसन सो चहियो ॥
इनको तुम त्याग गए मथुरा हमरी सुध लेत सदा रहियो ॥६२६॥

गोपियो के मन मे व्याकुलता है, पीड़ा है, क्रोध है और इन सभी भावो की अभिव्यक्ति भी वे करती हैं, परन्तु अन्त मे भाग्यवाद की उसी कठोर देहरी पर आ जाती हैं जहां कोई भी भारतीय स्त्री अपने सकटों एव दु.खो का कारण अन्य किसी को न बताकर स्वयं अपने भाग्य को ही उसका उत्तरदायी ठहराती है। उद्धव वापस मथुरा जा रहे हैं। राधा आदि सभी गोपियों के नेत्र भीगे हुए हैं और अपने दुर्भाग्य का विचार ही उनके सन्तोष का कारण बना हुआ है।

गहि धीरज उद्धव सो बचना ब्रिखभान सुता इह भात उचारे ॥
नेहु तज्यो ब्रिज बासन सो तिहते कछु जानत दोख विचारे ॥
बैठ गए रथ भीतर आपन ही इनकी सोऊ ओर निहारे ॥
स्याम गए ब्रिज को मथुरा हम जानत हैं घट भाग हमारे ॥६४१॥

गोपियों के इस निश्छल प्रेम के प्रभाव से उद्धव जैसा महाज्ञानी भी अछूता नहीं रहता। कल-कल निनाद करती हुई प्रेम की सरिता में वह अपने ज्ञान के वस्त्र उतारकर कूद ही तो पड़ता है :—

जब उद्धव सो इह भांत कह्यो तब उद्धव के मन प्रेम भर्‌यो है ॥
भउर गई सुध भूल सभै मनते सभ ज्ञान हुतो सु टर्‌यो है ॥
सो मिलिकै संग ग्वारन के अति प्रीति के बात के संग ढर्‌यो है ॥
ज्ञान के डार मनो कपरे हित की सरिता महि कूद पर्‌यो है ॥६३०॥

इस विरह खंड का सर्वाधिक वैशिष्ट्य एवं मौलिकता उस बात में है जो हिन्दी में कृष्ण चरित्र में सदैव उपेक्षित रही है। माता यशोदा तथा प्रेमिका गोपियों के विलाप और विरह पर कृष्ण साहित्य में उक्तियों का अभाव नहीं। परन्तु माँ और प्रेमिका के अतिरिक्त भी एक व्यक्ति है जो वियोग की पीड़ा से पीडित होता है परन्तु मुंह से बहुत कम बोलता है और वह है पिता। गुरु गोबिन्दसिंह ने नन्द बाबा की मनःस्थिति का परिचय देने वाले कुछ पद लिखे हैं जो अपनी मार्मिकता एवं मौलिकता में हिन्दी साहित्य में अद्वितीय हैं।

कृष्ण के आदेशानुसार उद्धव व्रज आए हैं। पुत्र वियोग से व्याकुल नन्द उनसे यही प्रश्न करते हैं कि क्या कभी कृष्ण उनको याद करते हैं और यह कहते-कहते वे मूर्छित हो जाते हैं :—

प्रात भए तै बुलाइकै उद्धव मै ब्रिज भूमहि भेज दयो है ॥
सो चलि नन्द के धाम गयो बतिया कहि सोक असोक भयो है ॥
नन्द कह्यो सगि उद्धव के कबहूं हरिजी मुहि चित्त कयो है ॥
यो कहिकै सुधि स्यामहि कै धरनी पर सो मुरझाइ पयो है ॥८६४॥

विधि की भी क्या विडम्बना है ? नन्द बाबा को उसने एक पुत्र दिया, फिर बिना किसी अपराध के ही उनसे छीन भी लिया। निरीह पिता विधि की इस विडम्बना पर रोदन न करे तो क्या करे :—

स्याम गए तजिकै ब्रिज को ब्रिज लोगन को अति ही दु:ख दीनो ॥
उद्धव बात सुनो हमरी तिह के बिनु भ्यो हमरो पुर हीनो ॥
दै बिधि नै हमरे ग्रह बालक पाप बिना हमते फिर छीनो ॥
यौ कहि सीस झुकाइ रह्यो बहु सोक बढ्यो अति रोदन कीनो ॥

वे बार-बार उद्धव से कृष्ण के विषय में पूछते हैं। वे जानना चाहते हैं कि उनके किस पाप के कारण कृष्ण उनसे रुष्ट हो गए हैं :—

कहि कै इह बात पर्‌यो धरि पै उठ फेर कह्यो सग उद्धव इउ ॥
तजि के ब्रिज स्याम गए मथुरा हम सग कहो अब कारनि किउ ॥
तुमरे अब पाइ लगो उठि क मुभई बिरथा सु कहो सभ जिउ ॥
तिहते नहि लेत कछू सुधि हैं मुहि पाप पछान कहू रिस सिउ ॥८६७॥

पिता के हृदय की यह व्याकुलता देखकर उद्धव भी विचलित हो गए। नन्द बाबा को सान्त्वना देते हुए कहने लगे कि प्रभु ने कृष्ण को तुमसे छीना नहीं है, वे तो वासुदेव के ही पुत्र थे। यही सच्चाई थी। किन्तु कितनी कठोर सच्चाई थी यह। अनेक वर्ष जिस व्यक्ति

ने किसी बालक को अपना पुत्र समझ कर पाला हो, एकाएक उसे ज्ञात हो कि वह उसका पुत्र नहीं है तो उसकी क्या अवस्था होगी। उद्धव के सान्त्वना भरे शब्द सुनकर नन्द बाबा ठण्डी सास लेकर रह गए। उनका धैर्य छूट गया, रोदन फूट निकला, उन्हें रुदन करते देख उद्धव भी रो पड़े :—

सुनिकै तिन उद्धव यौ बतिया इह भातनि सिउ तिह उत्तर दीनो ॥
या सुत सो बसुदेवहि को तुमते सभ पै प्रभजू नही छीनो ॥
सुनकै पुर कौ पतियो बतिया कवि स्याम उसास कहै तिन लीनो ॥
धीर गयो छूट रोवन स्यो इनहूं तिह देखत रोदन कीनो ॥८६८॥

बारह मासा

भारतीय लोक काव्य मे बारह मासे का चित्रण प्रमुख रूप से होता रहा है। सम्पूर्ण दशम ग्रंथ मे लोक काव्य के इस प्रमुख रूप का प्रयोग इस विरह खण्ड मे दो बार हुआ है। ग्रामीण वातावरण से युक्त विरह खंड मे इन बारह मासों का प्रयोग कवि ने विरहिणी की मनोदशा चित्रित करने के लिए किया है। इस चित्रण में ग्रामीण जीवन की सरलता एवं स्वाभाविकता विद्यमान है। दोनो बारह मासों से दो-दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

ज्येष्ठ

जेठ समै सखी तीर नदी हम खेलत चित्त हुलास बढाई ॥
चंदन सो तन लीप सभै सु गुलाबहि सो धरनी छिरकाई ॥
लाइ सुगध भली कपरयो पर ताकी प्रभा बरनी नही जाई ॥
तौन समै सुखदाइक थी इह अउसर स्याम बिना दु:खदाई ॥८७०॥

सावन

ताल भरे जल पूरनि सो अरु सिंघ मिली सरता सभ जाई ॥
तैसे घटान छटान मिली अति ही पपिहा पिय टेर लगाई ॥
सावन माहि लगिउ बरसावन आवन नाहि इहा घर आई ॥
लाग रह्यो पुर भामन सो टसक्यो न हीयो कसक्यो न कसाई ॥६१८॥

माघ

मघ समै सब स्याम के संग हुइ खेलत थी मन आनन्द पाई ॥
सीत लगै तब दूर करै हम स्याम के अग सो अग मिलाई ॥
फूल चबेली के फूल रहे जिन्ह नीर घट्यो जमुना जीअ आई ॥
तउन समै सुखदाइक थी रित अउसर याहि भई दु:खदाई ॥८७६॥

फागुन

फागुन फाग बढ्यो अनुराग सुहागन भाग सुहारा सुहाई ॥
केसर चौर बनाई सरीर गुलाब अबीर गुलाल उडाई ॥
सो छबि मैं न लखी जन द्वादस मास की सौमत आग जगाई ॥
मास को त्याग निकास भई टसक्यो न हीयो कसक्यो न कसाई ॥६२५॥

चतुर्थ भाग

युद्ध प्रबन्ध

लगभग ६०० छन्दो का यह वृहत् खंड कृष्णावतार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है। यह भी कहा जा सकता है कि इसी भाग की रचना के लिए सम्पूर्ण कृष्णावतार की रचना की गयी है।

गोपी विरह प्रसंग मे ही कृष्ण कंस का वध करके मथुरा मंडल का राज्य उग्रसेन को सौंप देते हैं :—

दुस्ट अरिस्ट निवार कै लीनो सकल समाज ॥
मथुरा मडल को दयो उग्रसेन को राज ॥१०२८॥

युद्ध प्रबन्ध का प्रारम्भ जरासंध के युद्ध से होता है। कंस की मृत्यु के पश्चात् कंस की पत्नियां अपने पिता जरासंध के पास जाकर विलाप करती हैं और जरासंध उन्हें कृष्ण और बलराम के संहार करने का आश्वासन देता है :—

हरि हलधरहि संघारहौं दुहिता प्रति करि बैन ॥
रजधानी ते निसरियो मंत्र बुलाए सैन ॥१०३०॥

जरासंघ के जिन प्रमुख सेनापतियों से इस युद्ध मे कृष्ण से युद्ध होता है और अन्त मे कृष्ण के हाथो जिनका संहार होता है, उनका उल्लेख इस प्रकार है :—

१. गुज सिंह का वध।
२. अमिट सिंह का वध।
३. पाच राजाओ (धूपसिंह, धुजसिंह, मनसिंह, धराधरसिंह और बजरसिंह) का दो अक्षौहणी सेना सहित वध।
४. बारह राजाओं का शक्तिसिंह सहित वध।
५. दस राजाओ का अनूपसिंह सहित वध।
६. खड़क सिंह का वध।
७. काल यमन का वध।

इनमें खड़क सिंह का युद्ध प्रसंग सबसे विस्तृत (३४७ छन्द) है।

जैसा कि इसके पूर्व भी कहा गया है कि कृष्णावतार आदि अवतारो की कथा की रचना की पृष्ठभूमि पर गुरु गोबिन्दसिंह का एक निश्चित उद्देश्य था। मात्र अवतारों की कथा का पुराणों के आधार पर गायन कर देना उनका अभिप्रेत नही था। अपने उद्देश्य को स्थान-स्थान पर उन्होंने स्पष्ट भी किया है।'धर्म जुद्ध को चाई' ही उनकी इन सभी रचनाओ की पृष्ठभूमि पर सर्वत्र परिलक्षित होता है।

गोपी विरह तक कृष्णावतार का कथा प्रसंग लगभग पूर्णरूप से श्रीमद्भागवत के समानांतर चला है। इन सभी प्रसंगों का वर्णन करना न तो कवि का उद्देश्य है ना ही इसमें उनकी अधिक रुचि है। युद्ध प्रसंग आते ही मानो कवि को अपना अभिप्रेत प्राप्त हो जाता है। श्रीमद्भागवत अथवा कृष्ण चरित्रों के अन्य स्रोतों का सहारा छोड़कर अपने काव्य एवं कल्पना जगत में स्वतन्त्र होकर वह विचरण करना प्रारम्भ कर देता है। कृष्ण चरित्र

का भक्ति भाव से गायन तो होता ही रहा है। कवि को तो इस महान् लोकप्रिय अवतार की प्रभावशाली जीवन गाथा से अपने युग की पीड़ित जनता मे शक्ति एवं नवजीवन का संचार करना है। इसलिए इस प्रसग मे कवि का यह उद्देश्य युद्ध भाव, सामयिकता, ऐतिहासिकता, देशकाल आदि सभी बन्धनो को तोड़कर अबाध गति से प्रवाहित हो उठता है।

भागवत के दशम स्कन्ध के पाचवें अध्याय मे जरासंध से युद्ध का प्रारम्भ और काल यमन के बध तक का वर्णन कुल आठ पृष्ठो मे हो गया है।[१] कृष्णावतार मे यह युद्ध प्रसंग लगभग उतने ही बड़े ११० पृष्ठों मे पूर्ण हुआ है।

कृष्णावतार का यह विस्तृत युद्ध प्रसग पौराणिक आधार पर खड़ा किया गया काल्पनिक भवन है। पृष्ठभूमि के कुछ पात्र, जरासध, कालयमन आदि तो पुराण उल्लिखित हैं किन्तु इन कुछ पात्रो को लेकर युद्ध का इतना विशाल भवन खड़ा करना तो संभव नहीं था, इसलिए कवि ने अनेक काल्पनिक पात्रो की रचना की। लगता है कि इन काल्पनिक पात्रो की रचना करते समय कवि के मन मे यह भी विचार रहा कि ये कल्पित पात्र तत्कालीन जनता की कल्पना के बिल्कुल निकट हों। उन्हें वे काल्पनिक न समझकर सत्य लगें और यह सम्पूर्ण युद्ध प्रसग उनके लिए किसी दैवी, अमानवीय और पूर्ण कल्पना लोक की ही वस्तु बनकर न रह जाय वरन् वे उसे अपने इतने निकट अनुभव कर सकें कि वह सब कुछ उनके लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा का माध्यम बन जाय।

गुरु गोबिन्दसिंह के युग मे युद्ध भूमि मे दो प्रकार के नाम ही उपलब्ध थे। एक राजपूती परम्परा के हिन्दू नाम जिनके अन्त मे सिंह लगता था जिसे स्वयं कवि ने आगे चलकर अपने और अपने अनुयायियों के लिए स्वीकार किया। दूसरे पठान परम्परा के मुसलमानी नाम जिनके अन्त मे 'खान' शब्द लगता था। कृष्णावतार के युद्ध प्रसग के लिए उन्होंने दोनो प्रकार ने नामो की कल्पना कर ली। जरासध की सेना के सेनापति तथा उनके अन्य सहायक राजाओं के नाम इस प्रकार हैं :—

नरसिंह, गजसिंह, धनसिंह, हरिसिंह, रनसिंह, अगणसिंह, अचलसिंह, अमितसिंह, अमरसिंह, अनघसिंह, अटलसिंह, अमिटसिंह, धूमसिंह, धुजसिंह, मनसिंह धराधरसिंह, धउरसिंह, साहिबसिंह, सदासिंह, सुन्दरसिंह, साजनसिंह, शक्तिसिंह, सैनसिंह, सफलसिंह, अरिसिंह, हरिसिंह, मुचकुंदसिंह, सगरसिंह, अनुरुद्धसिंह, बीरभद्रसिंह, वासुदेवसिंह, बीरसिंह, अबलसिंह, अभैसिंह, असमसिंह, इन्द्रसिंह, जयसिंह, इच्छसिंह, सुभटसिंह, उत्तरसिंह, उज्ज्वलसिंह, उधमसिंह, संकरसिंह, ओजसिंह, उद्धसिंह, मनोजसिंह, उग्रसिंह, अनूपसिंह, अनूपमसिंह, अपूरबसिंह, कंचनसिंह, गोपसिंह, मोहसिंह, कटकसिंह, किशनसिंह, कनकाञ्चनसिंह, ईसरसिंह, करमसिंह, जयसिंह, जालपसिंह, राजासिंह, जगतसिंह, क्रिताशत्रुसिंह, कठिनसिंह, खड्गसिंह, बटसिंह, पवनसिंह, सरससिंह, सूरतसिंह, सम्पूरनसिंह, मतिसिंह, करनसिंह, अरनसीसिंह, धनसिंह, घातसिंह, धनमुरसिंह, घमंडसिंह, चपलसिंह, चतुरसिंह, चित्रसिंह, चउपसिंह, छत्रसिंह, मानसिंह, जीवनसिंह, तेजसिंह, भट्टाजससिंह, बीरमसिंह, मोहनसिंह, उदयसिंह, अलेसिंह, परमसिंह, पवित्रसिंह, महाबलीसिंह, श्रीसिंह, फतेसिंह, फौजसिंह, भीमसिंह, भुजसिंह, मदनसिंह, बिकटिसिंह, रुद्रसिंह, हिम्मतसिंह।

---

१. गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की हिन्दी व्याख्या—श्री प्रेम सुधासागर।

इस युद्ध में यवन और म्लेच्छ सेनाओं ने भी भाग लिया। काल यवन[1] स्वयं म्लेच्छ था। उसके साथियों का उल्लेख इन नामों से हुआ है जो कवि के काल में म्लेच्छ (मुसलमान) नाम थे। म्लेच्छ सेनाओं ने कृष्ण के विरुद्ध ही युद्ध किया हो ऐसी बात नहीं। कृष्ण की सहायतार्थ जब पाण्डव आए तो वे अपने साथ दो अक्षौहिणी म्लेच्छ सेना भी ले आए जिसने कृष्ण के पक्ष में जरासंध के प्रतापी सेनापति खड्गसिंह से युद्ध किया।[2] म्लेच्छ सेनापतियों की नामावली इस प्रकार है—

अजाइबखां, गैरतखां, शेरखान, संदखां, मीरखां, नाहरखां, भडानदखां, जादहखां, जब्बरखां, वाहदखां, ताहरिखां, दिलावरखां, दिलेलखां, फरजुल्लहिखां, निजाबतखां, जाहरखां, लतफुल्लहखां, हिम्मतखां, जाफरखां।

हिन्दू और मुसलमान नामों की यह तालिका महाभारत कालीन वातावरण के लिए अटपटी सी लगती है। काल दोष का आरोप बड़ी सरलता से लगाया जा सकता है। परन्तु कवि के (जो कवि से अधिक एक राष्ट्रनायक है) दृष्टिकोण और अभिप्राय की दृष्टि में रखने से इन नामों की उपयोगिता नापी जा सकती है।

कृष्ण के वीर रूप की प्रतिष्ठा

भारत में कृष्ण भक्ति का विकास जिस प्रक्रिया से हुआ उसमें अन्ततोगत्वा कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा ही भक्त कवियों द्वारा जन साधारण के मध्य हुई। भक्ति दो प्रकार की मानी गई है:—१ वैधी और २. रागानुग॥ वैधी भक्ति शास्त्रों के विधि निषेध का अनुसरण करती हुई चलती है, पर रागानुगा भक्ति शुद्ध रूप से भावना राग अथवा प्रेम पर अवलम्बित है। सगुण भक्ति धारा में रामभक्ति अधिकांशतः वैधी और कृष्ण-भक्ति रागानुगा रही है। इस प्रकार की भक्ति के अन्तर्गत कृष्ण के जिस रूप की प्रतिष्ठा हुई उसमें गोपियों के साथ रास लीला करने वाले, गौवें चराने और माखन चुराने तथा अपनी किलोलों से सम्पूर्ण वायुमण्डल को रससिक्त करने वाले मधुर-कोमल कृष्ण का रूप ही जनता के नेत्रों में समाया।

कृष्ण के इस मधुर रूप के दर्शनों में आत्मविभोर होकर उस युग की पराधीन, शोषित और उत्पीड़ित भारतीय जनता कुछ क्षणों के लिए अपने बाह्य सामाजिक-राजनीतिक दुखों को भूल गई। किन्तु आत्मविस्मृति करने वाली भक्ति का मद पीकर दुखों को भुला देने वाली युक्ति दुखों के विनाश का स्थायी साधन तो नहीं थी, कष्टों का विनाश कष्टों की ओर से आँख मीचने में नहीं, उनका कारण ढूंढकर विधिवत् उपचार करने से ही होता है।

---

१. A Yavan or foreign king who led an army of barbarians to Mathura against Krishna. That hero lured into the cave of the mighty Muchukunda, who being disturbed from sleep by a kick from Kala-yavan, cast a fiery glance upon him and reduced him to ashes.
(A Classical Dictionary of Hindu Mythology, P. 141)

२. जुद्ध करौ इत होत भयो उत हरि हेत सहाइ।
पांचो पाडव स्याम मन निहता पहुचे आइ॥१२१०॥
छोहण दोह मलेच्छ के लिह सेना के संगि॥
कच्चौ खड़गी सकति धरि कट लिधि कसे निसंगि॥१२१२॥

१३वीं से १७वीं शताब्दी तक के भक्त कवियों ने भारतीय जनता को भक्ति में आत्मविभोर कर बाह्य दुखो से उनकी दृष्टि को अन्तर्मुखी किया किन्तु १७वी शताब्दी में देश की जनता का नेतृत्व इन भक्तों के हाथो से निकलकर, भक्तो द्वारा ही प्रेरित, उन महापुरुषो के हाथों में आया जिन्होने दुख भूलने के स्थान पर दुख नष्ट करने के सक्रिय साधनो को अपनाना अधिक उपयुक्त समझा। गुरु गोबिन्दसिंह, छत्रपति शिवाजी, राणा राजसिंह, वीर दुर्गादास, महाराज छत्रसाल आदि राष्ट्रनायक ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होने हिन्दू-जाति को भक्ति की आत्मविस्मृत करने वाली निद्रा से जगा कर विदेशी आततायी शासन के विरुद्ध सक्रिय और शक्ति सम्पन्न होकर प्रतिरोध करने की प्रेरणा दी और स्वय उस महा अभियान का नेतृत्व सभाला।

उपर्युल्लिखित महापुरुषो मे गुरु गोबिन्दसिंह का स्थान सर्वथा विशिष्ट है। वे जाति उद्धारक होने के साथ-साथ जाति निर्माता भी थे। जिस जाति मे उन्होने आततायी के विरुद्ध संगठित होकर प्रतिरोध करने की प्रेरणा भरी उसमे उन्होने किसी भी उन्नतिशील एवं सघर्परत जाति के लिए आवश्यक तत्वों के निर्माण के सभी उपादान भी उत्पन्न किये। गुरु गोबिन्दसिंह की अधिकाश काव्य रचना उसी जाति-निर्माण कार्य का एक महत्त्वपूर्ण अग है।

जैसा कि इसके पूर्व भी कहा गया है कि कृष्णावतार की रचना के पीछे कवि का उद्देश्य अन्य कृष्ण भक्त कवियो की भाति विशुद्ध भक्ति भाव नहीं था। वे तो समाज मे आत्म गौरव का निर्माण एव उसमे शक्ति सचार करने के लिए प्राचीन भारतीय इतिहास एवं युगानुकूल आदर्शों को प्रतिष्ठा करना चाहते थे। इस कार्य के लिए उन्हें देश, काल की सीमाओं का अतिक्रमण भी करना पड़ा किन्तु उन्होने इसकी भी चिन्ता नहीं की।

कृष्णावतार मे कृष्ण के वीर रूप की प्रतिष्ठा उस महान् प्रयास का एक अंग है। भारतीय साहित्य मे कृष्ण का यह रूप पूर्णतया नवीन नही है।

जरासंध की विशाल वाहिनी मथुरा की ओर आक्रमण हेतु आ रही है। बड़े-बड़े धूरवीर क्षत्रीय भयभीत होकर भागने की तैयारी कर रहे हैं। महाराज उग्रसेन स्वय घबड़ा गये हैं। ऐसे समय मे कृष्ण उन्हे इन आत्मविश्वास पूरित शब्दो मे ढाढस बधाते हैं:—

राज न चित करो मन मे हम हू दोउ भ्रात सुजाइ लरैंगे ॥
बान, कमान, कृपान, गदा गहिकै रणन भीतर जुद्ध करैंगे ॥
जो हम ऊपर कोप कै आइहैं ताहि कै अस्त्र सउ प्रान हरैंगे ॥
पै उनको मरि हैं डरिहैं नहि, आवह तै दुइ न टरैगे ॥१०४३॥

कृष्ण युद्ध मे रत होकर शत्रु सेना का सहार कर रहे हैं—

स्रउनत तरगनी उठाइ कोप बल बीर, मार मार तीर रिप खड किए रन मे ॥
बाज गज मारे रथी बिथी करि डारै, कैते पैदल बिदारे सिंह जैसे म्रिग बन मे ॥
जैसे सिव कोप के जगत जीव घार प्रलै, तैसे हरि अरियो सघारे आई मन मे ॥
एक मार डारै एक घाइ छित मारै एक, त्रसै एक हारे जाके ताकत न तन मे ॥
॥१०५४॥

मोर मुकुट, बैजन्तीमाला, हाथ में बासुरी धारण किए मधुर रूप वाले कृष्ण की चर्चा

तो सदा होती रही है, परन्तु युद्ध भूमि में विकराल भयावह रूप धारण करने वाले कृष्ण को आज तक किसने देखा है—

श्री नन्दलाल सदा रिप घाल कराल बिसाल जबै धनु लीनो ।।
इष्ठ सरजाल चलै तिह काल तबै अरिसाल रिसै इह कीनो ।।
धाइन लगि गिरी चतुरग चमू सभ को तन सजनत कीनो ।।
मानहु पन्द्रसवो विधने सु रच्यो रग मारन लोक नवीनो ।।१०६१।।

कृष्ण के धनुष से निकले हुए असख्य बाणों से युद्ध भूमि की अवस्था किस प्रकार की बन जाती है, इसका एक आलंकारिक चित्र—

जदुबीर कमान ते बान छुटे अवसान गए लख सत्रन के ।।
गजराज मरे गिर भूमि परे मनो रख कटे करवत्रन के ।।
रिप कउन गनो जु हने तिह ठा मुरझाइ गिरे सिर छत्रन के ।।
रन मानो सरोवर आधी बहे टुट फूल परे सत पत्रन के ।।१७४८।।

कृपाणपाणि कृष्ण युद्ध भूमि मे शत्रुओं का किस प्रकार सहार कर रहे हैं—

पान कृपान गही घनिस्याम बडे रिप ते बिन प्रान किए ।।
गजबाजन के असवार हजार मुरार सधार विदार दिए ।।
अर एकन के सिर काट दए इक बीरन के दए फार हिए ।।
मनो काल सरूप कराल लख्यो हरि सत्र भजे इक मार लिए ।।१७५०।।

कृष्ण के वीर रूप का एक अन्य चित्र—

कान्ह कमान लिए कर मे रन में जब केहरि जिउ भभकारे ।।
को प्रगटिउ भट ऐसो बली जग धीर धरे हरि सो रन पारे ।।
अउर सु कउन तिहूं पुर मे बलि स्याम सिउ बैर को भाउ बिचारे ।।
जो हठ के कोउ जुद्ध करै सु मरे पल मे जम लोक सिधारे ।।१७६३।।

युद्ध भूमि में कृष्ण जिस तन्मयता से युद्ध कर रहे हैं उसे देखकर शत्रुओं का धैर्य छूटता जा रहा है । कृष्ण के युद्ध कौशल का यह कितना सजीव चित्र है—

काटत एकन के सिर चक्र गदा गहि दूजन के तन भारे ।।
तीजन नैन दिखाइ गिरावत चउथन चोप चपेटन मारे ।।
धीर दए अर के उर श्री हरि सूरन के अंग अग प्रहारे ।।
धीर तहाँ भट कउन धरे जदुबीर जबै तिह ओर सिधारे ।।१७६५।।

अपने सेनापतियों के संहार के पश्चात् जरासंध स्वयं कृष्ण से युद्ध करने आया । अपने उच्च क्षत्रिय वंश का अभिमान करते हुए उसने कृष्ण से कहा—तू ग्वाला होकर भला क्षत्रियों से क्या युद्ध करेगा ? यह गर्वोक्ति सुनकर कृष्ण ने बड़े विश्वास से उत्तर दिया—

छत्री कहावत धापन को भजि हो तबही जब जुद्ध मचैहो ।।
धीर तबै लखिहो तुमको जब भीर परै इक तीर चलैहों ।।
मूरछ ह्वै अब ही छिन मे गिरहो नहि सयंदन मे ठहरैहो ।।
एकहु बान लगे हमरो नभ मण्डल पै अबही उडजैहो ।।१८२६।।

कृष्ण के पराक्रमी रूप की प्रतिष्ठा करने वाले छन्दों का कृष्णावतार मे अभाव नहीं

है। कृष्ण का यही रूप गुरु गोविन्दसिंह को अभीष्ट था। अपने अनुयायियों के सम्मुख जिस आदर्श की प्रतिष्ठा वे करना चाहते थे वह इसी रूप से हो सकता था। युद्ध वर्णन के अन्त मे कवि अपना उद्देश्य स्पष्ट करता है—

किसन जुद्ध जो हउ कह्यो अति ही सग सनेह ॥
जिह लालच इह मे रच्यो मोहि वहै वर देहि ॥१८९१॥

पंचम भाग

अन्य घटनाएं

कृष्णावतार के इस अन्तिम भाग मे लगभग पाच सौ छन्द हैं। इसमे बलभद्र का विवाह, रुक्मिणी हरण, शम्बरासुर का वध, सत्राजित की कथा, कृष्ण का जामवन्त से युद्ध और जाम्बवती तथा सत्यभामा से विवाह, भौमासुरका बध, अनिरुद्ध का विवाह, बाणासुर से युद्ध, बलभद्र का गोकुल जाना, जरासध का वध, राजसूय यज्ञ, और शिशुपाल का बध, सुदामा का सत्कार, गोप-गोपियो से भेंट आदि युद्धोत्तर स्फुट घटनाओं का वर्णन है। ये अधिकाश घटनाए भागवत मे वर्णित घटनाओं के समानान्तर ही चलती हैं। इन घटनाओं मे अनेक विवाह और उनसे अनिवार्य रूप से सम्बद्ध युद्ध चित्र हैं।

२२. नर अवतार

विष्णु के बाइसवें अवतार अर्जुन हैं, जिन्हें नरावतार कहा गया है।[1]

अब बाइसवो गनि अवतारा ॥
जैस रूप कहु धरो मुरारा ॥
नर अवतार भयो अरजना ॥
जिह जीते जग के भट गना ॥१॥

इस अवतार का वर्णन कुल सात छन्दो मे हुआ है। अर्जुन ने इन्द्र के सकट को दूर किया। शिव से भी युद्ध किया और दुर्योधन को परास्त किया।

अर्जुन ने कृष्ण को प्रसन्न किया जिसमे उन्हें जय-पत्र प्राप्त हुआ :—

क्रिसन चद कहु बहुरि रिझायो ॥
जाते जैत पत्र कह पायो ॥५॥

२३. बऊध (बुद्ध) अवतार—

विष्णु का २३वां अवतार बुद्धावतार है। बुद्धावतार के सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद है।[2] किन्तु जो संकेत इस अवतार के सम्बन्ध मे पुराणो मे मिलते हैं उनसे स्पष्ट होता है

१. अर्जुन नर के अवतार कहे जाते हैं। सचमुच ही नर (मानव) के पूर्णतम आदर्श हैं। -
(कल्याण हिन्दू संस्कृति अक,पृष्ठ ८३२)

२. यह विवादास्पद विषय है कि पुराणों में जिस बुद्धावतार का वर्णन है वह महाराजा शुद्धोदन के पुत्र अभिराम गौतम बुद्ध ही हैं। पुराणों का बुद्धावतार कीकट देश में (गया के पास) ही हुआ था, यह तो ठीक, किन्तु उनके पिता को वहाँ 'अजिन' कहा गया है। जो भी हो यहाँ तात्पर्य भगवान के उस बुद्धावतार से है जिसका वर्णन पुराणों में है।

दैत्य प्रबल हो गये थे। स्वर्ग पर उनका अधिकार था। दैत्येन्द्र ने इन्द्र का पता लगाया और पूछा हमारा राज्य स्थिर कैसे रहे? इन्द्र ने शुद्ध भाव से उन्हें यज्ञ एवं वैदिक आचरण का
(क्रमशः)

कि पुराणकारों का अभिप्राय बुद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध की ओर था किन्तु इस सम्बन्ध में स्पष्ट चर्चा कहीं दिखाई नहीं देती।

गुरु गोविन्दसिंह ने भी इस अवतार का बड़ा अस्पष्ट वर्णन किया है। सम्पूर्ण प्रसग कुल तीन छन्दों में है—

अब मैं गनो बउध अवतारा। जैस रूप कह धरा मुरारा।
बउध अवतार इही को नाउ। जाकर नाव न थाव न गाउ ॥१॥
जाकर नाव न ठाव बखाना। बउध अवतार वही पहचाना।
सिला सरूप रूप तिह जाना। कथा न जाह कलू अहि माना ॥२॥
रूप रेख जा करत कछु अस कछु नाहि नाकार।
सिला रूप बरखत जगत सो बऊध अवतार ॥३॥

''सिला रूप' स्पष्ट ही बुद्ध की मूर्तियों की ओर संकेत है।

२४. निहकलंकी (कल्कि) अवतार

चौबीस अवतारो की कथा मे कृष्ण (२४६२ छन्द) और राम (८६४ छन्द) के अतिरिक्त निहकलंकी अवतार का विस्तृत वर्णन हुआ है। इस प्रश मे कुल ५८८ छन्द हैं और चौपाई, गीत, मालती, वृद्ध निराज (कहा तुमो), कुमार ललित, नग सरूपी, सोभराजी, प्रिया, गाहो, एला, घत्ता, नवपदी, अडिल, कुलक, पद्मावती, किलका, मधुभार, हरिगीतिका, त्रिभंगी, हीर, मधिसटका, मारह, हंसा, मालती, अतमालती, अभीर, सोरठा, कुण्डलियाँ, पाधरी, सिरखण्डी, समानका, भड्डयग्रा, अनूप, निराज, अकवा, चाचरी, कृपानकृत, भगवती, रसावल, भवानी, तोमर, हरिबोलमना, संगीत भुजगप्रयात नियपालक छन्द, दोहा, पकट वाटिका, सवैया, सुप्रिया, बिसेसचंचला, त्रिडका, अमृता, बिधूप नराज, उत्भुज, माधो, मनहद, मोहन मधाल, सुखदा, बिद, बान तुरगम आदि लगभग ६० प्रकार के छन्दो का प्रयोग इस अवतार कथा के वर्णन मे किया गया है।

कवि ने इस कथा का वर्णन चार अध्यायों मे किया है।

प्रथम अध्याय—अवतार के जन्म समय की स्थिति, जन्म तथा संभल के राजा से युद्ध और उसका वध—४५४ छन्द।

द्वितीय अध्याय—देशान्तर युद्ध (पश्चिम-दक्षिण विजय) ५२ छन्द।

उपदेश दिया। दैत्य यज्ञ परायण हो गये। वे यज्ञ के प्रभाव से अजेय थे। संसार में उनका उपद्रव बना था, विश्व में असुर भाव बढ़ रहा था।

'राम-राम यह तुम लोग क्या पाप करते हो। यज्ञ में कितनी हिंसा होती है। अग्नि में ही पता नहीं कितने कीट जलते हैं। भगवान विष्णु ने बुद्ध रूप धारण किया। वे एक हाथ में झाड़ू लिए चलते, स्वच्छ करके पादक्षेप करते एकुन्दे असुरों के पास। उनके वस्त्र मलिन थे। स्नान वे करते न थे। दन्त धावन के बिना दांत स्वच्छ न थे, सब में हिंसा जो थी। दैत्यों को उनका वह तत्वबोध ठीक जान पड़ा। यज्ञ छूट गया। देवताओं ने उन यज्ञहीन, मलिन, अल्पप्राण प्रतिरोधहीन असुरों को पराजित करके स्वर्ग से मार भगाया।

(कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ८०६।)

तृतीय अध्याय—देशातर युद्ध (पूर्व विजय) ४' छंद।
चतुर्थ अध्याय—देशातर युद्ध (चीन आदि उत्तरी देशों की विजय) ७८ छन्द।

प्रथम अध्याय

यह अध्याय सम्पूर्ण कथा प्रसग के तीन चौथाई भाग से भी बड़ा है। प्रथम १३६ छन्दों मे कलियुग की उस पापमय अवस्था का चित्रण है जहाँ नैतिक, धार्मिक मान्यताएँ नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँगी और चारों ओर दुराचार और अधर्म का बोलबाला होगा। विष्णु पुराण के षष्ठ अश, पहले अध्याय मे कलि धर्म का निरूपण लगभग ६० छन्दो में हुआ है।[1] उसी स्थिति का कुछ अधिक वर्णन कवि ने निहकलकी अवतार के इस प्रथम अध्याय मे किया है।

इस समय धरती पाप से आक्रान्त हो जाएगी, समाज की नैतिक मान्यताएँ टूट जाएँगी। माता, पुत्र, भाई-बहन और पिता-पुत्री के सम्बन्धों की कोई मर्यादा नहीं रहेगी—

भारा क्रित होत जब धरणी। पाप ग्रसत कछु जात न बरणी।
भांत भांत तन होत उतपाता। पुत्रह सेज सोवत लै माता ॥२॥
सुता पिता तन रमत निसका। भगनी भरत, भ्रात कह अका।
भ्रात बहन तन करत बिहारा। इम भी तजो सकल ससारा ॥३॥

ससार से सब धर्म भी नष्ट हो जाएँगे। शास्त्रो पर किसी को कोई विश्वास नहीं रहेगा। घर घरमें अपना-अपना मत प्रचलित हो जाएगा। कोई किसी के बताए मार्ग पर नहीं चलेगा—

ढूंढत साच न कतहू पाया। झूठहि सग सबो चित लाया।
भिन्न-भिन्न ग्रह-ग्रह मत होई। सासन सिम्रित छुए न कोई ॥६॥
हिंदव कोई न तुरका रहिहैं। भिन्न-भिन्न घर-घर मत गहिहैं।
एक एक के पथ न चलिहैं। एक एक की बात उचलिहैं ॥७॥

उस युग मे आडम्बर भी बहुत हो जाएगा। लोग ऊपर से तो बहुत पवित्र दिखाई देंगे परन्तु अन्दर ही अन्दर पापरत रहेंगे।

पाप करै नित प्रात घनै। जन दोषन के तर सुद्ध बनै।
जग छोर भजा गत धरमन की। सु जहाँ तहाँ पाप क्रिया प्रचुरी ॥६५॥

नए-नए मत प्रस्थापित होंगे। राजा प्रजा सभी कुकर्मों मे लग जाएगे। धर्म पख लगाकर उड़ जाएगा—

नए नए मारग चले जग मो बढ़ा अधरम।
राजा प्रजा सबै लगैं जह तह करन कुकरम।

---

1. दु-शीला दुष्टशीलेषु कुर्वन्त्यसतत स्पृहाम्। असदवृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलागना ॥३१॥
(उस समय की कुलागनाएं निरन्तर दुश्चरित्र पुरुषों की इच्छा रखने वाली एव दुराचारिणी होंगी तथा पुरुष के साथ असदव्यवहार करेंगी ॥ ३१॥
(विष्णु पुराण, षष्ठ अश, पहला अध्याय)

जह तह करन कुकरम प्रजा राजा नर नारी ।
धरम पंख कर उड़ा पाप की क्रिया बिथारी ।।१३५।।

ऐसी अवस्था मे धरती पाप से आक्रान्त होकर काल पुरुष का ध्यान करती है। वे पृथ्वी को ढाढस बंधाकर वापस भेजते हैं और अवतार ग्रहण करते हैं—

दीनन की रच्छा निमित करहैं आप उपाइ ।
परम पुरख पावन सदा आप प्रगट है आइ ।
आप प्रगट है भाई दीन रच्छा के कारण ।
अवतारी अतवार धरा के भार उतारण ।।१३६।।

कल्कि अवतार होगा कब ?

कलजुग के अन्तह समै सति जुग लागत आदि ।
दीनन की रच्छा लिए धरिहै रूप अनाद ।।
धरहै रूप अनाद कलहि कब तक कर भारी ।
सत्रन के नासारथ नमित अवतार अवतारी ।।१४०।।

कल्कि अवतार क्या कार्य सम्पन्न करेंगे :—

पाप समूह बिनासन कउ कलिकी अवतार कहावगे ।।
तुरकच्छि तुरंग सपच्छ बडो करि काढ़ क्रिपान खपावहगे ।।
निकसे जिमि केहरि परवत ते तम सोभ दिवालय पावहगे ।।
भल भाग भया इह संबल के हरिजू हरि मंदर आवहगे ।।१४१।।

आगामी अनेक पदों में कल्कि अवतार के पौरुष और उसके शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन है। अधिकांश आग्रह अवतार के वीर रूप का है।

कवच क्रिपान कटारी कमान सुरंग निखंग छकावहगे ।।
बरछी अरु ढाल गदा पर सोकर सूल त्रिसूल भ्रमावहगे ।।
अति क्रुद्धत ह्वै रण मूरधन मो सर उध प्रउध चलावहगे ।।
भल भाग भयो इह संबल के हरिजू हरि मंदर आवहगे ।।१४८।।

१६२ छन्द के पश्चात् एक ब्राह्मण की कथा का संक्षिप्त वर्णन है। ब्राह्मण चंडी का उपासक है। उसकी पत्नी को यह रुचता नहीं। दोनों में कलह होती है। पत्नी अपने पति की शिकायत संभल (सभर) के शूद्र राजा से कर देती है। शूद्र राजा ब्राह्मण को चंडी पूजा करने से मना करता है किन्तु ब्राह्मण इसे स्वीकार नहीं करता। अप्रसन्न होकर राजा उसे मृत्यु दंड देता है। जब बधिक ब्राह्मण का सिर काटने लगते हैं तो उसी क्षण कल्कि का अवतार होता है—

जब कियो चित्त मो बिप्र ध्यान ।। तिह दीन दरस तब काल आन ।।
नहीं करो चिंत चित माझि एक ।। तब हेत सत्र हनिहै अनेक ।।१७७।।
तब परी सूंक भोहर मझार ।। उपजिउ आन कलकीवतार ।।
ताइ प्रभानु कर असउ तत ।। तर कच्छ सुवच्छ ताजी सुरग ।।१७८।।

इसके पश्चात् कल्कि अवतार और उस शूद्र राजा मे भयानक युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध चित्रण पहिले लगभग १६० छन्दों में है, फिर जापु पद्धति की विशुद्ध

इष्ट स्तुति २० छन्दों में है, उसके पश्चात संगीत भुजंग प्रयात छन्द में युद्ध वर्णन पुनः आरम्भ हो जाता है। यह युद्ध प्रसग इस अध्याय के अन्त तक चलता रहता है।

कल्कि अवतार के युद्ध प्रसंग के कुछ उदाहरण यहाँ समीचीन होंगे—

देख भजी प्रितना अरकी कलकी अवतार हथ्यार संभारे ॥
बान कमान क्रिपान गदा छिन बीच सबै कर चूरन डारे ॥
भाग चले इह भाँत भटा जिम पउन बहै द्रम पान निहारे ॥
पैन परी कछु मान रहिउ नहीं वानन डार निदान पधारे ॥३६६॥

.. ..

सभर नरेस मारिउ निदान ॥
ढोले म्रिदग बज्जे प्रमान ॥
भाजे सुबीर तज जुद्ध त्रास ॥
तजि सस्त्र सरब है चित निरास ॥४५१॥

द्वितीय अध्याय

देसान्तर जुद्ध (देशान्तर युद्ध) पश्चिम और दक्षिण विजय।

इसके पश्चात कल्कि अवतार का देशान्तर युद्ध प्रारभ होता है :—

हन्यो संभरेस ॥ चतुर चार देस ॥
चली धरम चरचा ॥ करै काल अरचा ॥४५५॥

कल्कि अवतार की पश्चिमी देशों की विजय यात्रा :—

जिणे गख्खरी पख्खरी खग्गधारी ॥ हणे पख्खरी भख्खरी औ कंधारी ॥
गज सुलतान गाजी रजी रोह रूमी ॥ हणे सूर बके गिरे भूम भूमी ॥४६१
हणे काबली बावली बीर बंके ॥ कधारी हरेवी इरानी निसके ॥
बली बालखी रोह रूमी रजीले ॥ भजे त्रास कै कै भए बन्द ढीले ॥४६२॥

पश्चिम दिशा के देशों को जीतकर कल्कि अवतार ने दक्षिण की ओर प्रयाण किया।

जीत सरब पच्छम दिसा दच्छन कीन पिप्रान ॥
जिम जिम युद्ध तहा पर तिम तिम करो बखान ॥४६६॥

हने पच्छमी दीह दानो दिवाने ॥
दिसा दच्छनी भ्रान बाजे निसाने ॥
हने बीर बीजा पुरी गोल कुण्डी ॥
गिरे तच्छ मुच्छं नची रुड मुण्डी ॥५०४॥
सबै सेत बधी सुधी बद्र बासी ॥
मण्डे मच्छ बंद्री हठी जुद्ध रासी ॥
द्रहो द्राबड़े तेज ताते तिलंगी ॥
हते सूरती जग भगी फिरंगी ॥५०५॥

चपे चांद राजा चले चांद बासी ॥ बडे बीर बईदरभि सरोस रासी ॥
जिते दच्छनी संग लीने सुधारं ॥ दिसा प्राचीअं कोप कीनो सवार ॥५०६

तृतीय अध्याय (पूर्व विजय)

इस अध्याय में कुल चार छन्द हैं। पश्चिम और दक्षिण दिशाओं की विजय यात्रा समाप्त कर कल्कि अवतार ने पूर्व की ओर प्रयाण किया :—

पच्छमहि जीत दच्छन उजार ॥ कुपिउ कल्कि कलकीवतार ॥
कीनो पयान पूरब दिसाण ॥ बजी अजैत पत्रं निसाण ॥५०७॥

उस दिशा में किन-किन देशों को कल्कि ने जीता :—

मागध महीप मडे महान ॥ दस चार चार विद्या निधान ॥
बगी, कलिंग अंगी अजीत ॥ मोरंग अगोर नगपाल अभीत ॥५०८॥

इन सब दिशाओं को जीतने का उद्देश्य है राक्षसों का विनाश, जो शक्तिशाली होकर सभी दिशाओं के स्वामी बन बैठे :—

दिनो निकार राक्षस ब्रुबुद्ध ॥ किन्नो पयान उत्तर सुक्रुद्ध ॥

चतुर्थ अध्याय (उत्तर विजय)

पश्चिम, दक्षिण और पूर्व दिशाओं में धर्म विरोधी तत्वों का विनाश कर कल्कि अवतार ने उत्तर दिशा की ओर प्रयाण किया। उनका पहला आक्रमण चीन देश पर हुआ :—

अभीते जीत जीतकै अभीरी भाजे भीर ह्वै ॥
सिधारे चीन राजयं ॥ सयोई सरब साथ कै ॥५२५॥
चढ़ियो चीन राजं ॥ सजे सरब साजं ॥
खुले खेत खूनी ॥ चढ़े चौप दूनी ॥५३५॥

अन्त में चीन के राजा ने हार स्वीकार करली। उसने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया :—

मिलिउ चीन राजा ॥ भए सरब काजा ॥
लइउ सग कै कै ॥ चलिउ अग्र ह्वै कै ॥५४१॥

इसके पश्चात मचीन (मन्चूरिया) पर आक्रमण हुआ और उसे भी जीत लिया गया। चीन मचीन को जीतकर और उत्तर की ओर कल्कि का प्रयाण हुआ। उत्तर दिशा के सभी राजाओं ने उनकी आधीनता स्वीकार करली। उन्होंने अनेक प्रकार की भेंट प्रस्तुत कर कल्कि के सम्मुख अपनी अधीनता स्वीकार की। इस प्रकार कल्कि ने असतो का सहार कर सन्तों की रक्षा की :—

कीने जग्य अनेक प्रकारा ॥ देस देस को जीत नृपारा ॥
देस विदेश भेट ले आए ॥ सन्त उवार असन्त खपाए ॥५५०॥

चारो ओर धर्म की चर्चा होने लगी, पाप नष्ट होने लगे। इतने में कलियुग की अवधि समाप्त हुई और सतयुग के आगमन के लक्षण प्रगट होने लगे :—

तब लौ कलयुगान्त नीयरायो ॥ जह तह भेद सबन सुन पायो ॥
कलकी बात तबै पहचानी ॥ सति जुग की आगमता जानी ॥५५२॥

इस प्रकार सम्पूर्ण संसार को विजित कर कल्कि ने समार पर दस लाख बीस सहस्र वर्ष राज्य किया। शक्ति पाकर अभिमान सभी में आ जाता है। यही अवस्था कल्कि की भी हुई। सारा ससार जीतकर उसमें भी गर्व भर गया और उसने अकाल पुरुष को भुला दिया

और मन में यह विचार किया कि संसार में उसके समान तो दूसरा कोई है ही नहीं :—

जग जीतिउ जब सरब ॥ तब बाढिउ ग्रत गरब ॥
दी अकाल पुरख बिसार ॥ इह भांत कीन बिचार ॥५८३॥

जब उसकी इस प्रकार की अवस्था हो गई तो काल पुरुष क्रुद्ध हुए और उन्होंने महिंदी मीर नाम के एक अन्य पुरुष की रचना की :—

नहि काल पुरख जपन्त ॥ नहि देव आप भजंत ॥
तब काल देव रिसाइ ॥ इक अउर पुरख बनाइ ॥५८६॥
रचि अस महिन्दी मीर ॥ रिसवन्त हाठ हमीर ॥

काल पुरुष ने अपनी इस रचना द्वारा कल्कि का संहार करवाया :—

तिह तउन को बधु कीन ॥ पुन आप मो कीअ लीन ॥५८७॥

मन्हिदीमीर

हिंदू अवतारों के साथ-साथ एक मामी अवतार का संक्षिप्त वर्णन भी दशम ग्रंथ में हुआ है। हिन्दुओं में जिस प्रकार कल्कि अवतार की कल्पना है, मुसलमानों में उसी प्रकार महिंदी मीर की कल्पना की गयी है। भविष्य में जन्म लेने वाले इस इमाम के सम्बन्ध में मुसलमानों की धारणा है कि वह कुमार्ग पर चलने वालों को सत्य-मार्ग प्रदर्शित करेगा। शीया मुसलमानों के अनुसार महिंदी मीर का जन्म हो चुका है, परन्तु अभी तक वह गुप्तावस्था में है। उपयुक्त समय पर वह प्रकट होकर दुष्टों को दंड देगा और इस्लाम की अवस्था को सुधारेगा।[1]

दशमग्रंथ के अनुसार जब निहकलंकी अवतार भी सम्पूर्ण संसार पर अपना अधिकार स्थापित कर शक्ति मदान्ध हो जायगा तो महिंदी मीर का जन्म होगा और वह उसका वध करेगा। कुछ समय पश्चात् महिंदी मीर भी अभिमानी हो जाएगा तो काल पुरुष एक कीड़े को उसके कान में प्रविष्ट कराके उसका भी वध कर देगा :—

तब जान काल प्रबीन ॥ तिह मारिउ करि दीन ॥
इक कीट दीन उपाइ ॥ तिस कान पैठो जाइ ॥१०॥
धसि कीट कानन बीच ॥ तिस जीतयो जिम नीच ॥
बहु भाँति दे दुख ताहि ॥ इह भाँति मारिउ वाहि ॥११॥

ब्रह्मा के सात अवतार

विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने ब्रह्मा के सात अवतारों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया है। ये अवतार निम्न हैं :—

१. बाल्मीकि, २. कश्यप, ३. शुक्र, ४. बाचेस (बृहस्पति), ५. व्यास, ६. षट् ऋषि, ७. कालिदास।

इन अवतारों के वर्णन के पूर्व ४१ छन्दों की एक भूमिका है जिसमें कवि ने कालरूप ब्रह्म के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। उस शक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। सभी रंगों एवं रूपों में उसी का अस्तित्व देखा है :—

---

१. महान कोष (भाग ४), पृ० २७६३।

बिन एक दूसर नाहिं ॥ सभ रंग रूपन माहिं ॥
जिह जापिआ तिह जाप ॥ तिन के सहाई आप ॥४॥

उस महान शक्ति के सम्मुख अनेक इन्द्र पानी भरते हैं, अनेक ब्रह्मा वेदों का गायन करते हैं, और उसके द्वार पर अनेक शिव बैठे रहते हैं।[1] कृष्ण के कोटियों अवतार, राम के अनेक रूप, अनेक मच्छ (मत्स्य) कच्छ उसका द्वार देखा करते हैं।[2] अनेक शुक्र और बृहस्पति, अनेक दत्त और गोरख, अनेक राम कृष्ण और रसूल सब उसकी दया के भिखारी हैं, उसका नाम जपते हैं क्योंकि बिना नाम भक्ति के वह किसी को स्वीकार नहीं करता।[3]

ब्रह्मा की यह स्तुति १६ छन्दों में चलती है। २०वें छन्द में कवि कहता है कि विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन करने के पश्चात् मैं उप अवतारों का वर्णन करता हूं :—

गनि चउबिसे अवतार ॥ बहुके कहै बिसथार ॥
अब गनो उप अवतार ॥ जिम धरे रूप मुरार ॥२०॥

काल पुरुष की आज्ञा से ब्रह्मा ने वेदों की रचना की। किन्तु अपनी इस रचना से ब्रह्मा को गर्व हो गया। वह अपने आप को बहुत बड़ा कवि समझने लगा। काल देव इस पर रुष्ट हुए और उन्होंने ब्रह्मा को पृथ्वी पर भेज दिया। ब्रह्मा ने यहां लाखों वर्षों तक काल पुरुष की सेवा की। उसने अपना अभिमान त्याग दिया। काल पुरुष ने ब्रह्मा की सेवा से प्रसन्न होकर कहा, 'तुमने गर्व क्यों किया। यह मुझे भाता नहीं। तुम्हारा उद्धार तब होगा जब तुम पृथ्वी पर सात अवतार धारण करो।" इस आज्ञा को ब्रह्मा ने स्वीकार किया, और उसने पृथ्वी पर नये जन्म ग्रहण किए।[4]

ब्रह्मा से काल पुरुष ने एक बात और कही कि विष्णु मेरा प्रिय भक्त है। उसने अपनी सेवा से मुझे प्रसन्न किया है। उसने जो भी वर मांगा, मैंने उसे दिया है। सब लोक जानते हैं कि मुझ में और उसमें कोई भेद नहीं है। इसलिए विष्णु जब-जब अवतार धारण करें और जो पराक्रम करें तुम उनका विस्तार पूर्वक वर्णन करो।

१. बाल्मीक (वाल्मीकि) अवतार

ब्रह्मा का प्रथम अवतार वाल्मीकि के रूप में हुआ। इस अवतार का वर्णन कवि ने सात छन्दों में किया है। विष्णु के अवतार राम की कथा का उत्तम काव्य में बाल्मीक ने कथन किया :—

---

१. कई इन्द्र पान पहार ॥ कई ब्रह्म बेद उचार ॥
कई बैठ दुआर महेस ॥ कई सेसनाग असेस ॥

२. कई कोट किसन अवतार ॥ कई राम बार मुरार ॥
कई मच्छ कच्छ अनेक ॥ अवलोक दुआर बिसेख ॥११॥

३. कई सुक्र ब्रसपत देख ॥ कई दत्त गोरख भेख ॥
कई राम किसन रसूल ॥ बिनु नाम को न कबूल ॥१२॥

४. तै गरब कीन सु काहि ॥ नहिं मोहि भावत ताहि ॥
अब कहौ एक बिचार ॥ जिम होइ तोहि उधार ॥३४॥
धरि सपत भूमि अतार । तब होइ तोह उधार ॥
छोड़ मान ब्रहमा लीन ॥ धरि जनम जगत नवीन ॥ ३५ ॥

सुधारि मानुखी बपं संभार राम जागि है ॥
बिसार सस्त्र अस्त्रण जुभार सत्र भागि है ॥
बिचार जौन जौन भयो सुधार सरब भाखियो ॥
हजार को न कियो करों विचार सबद राखियो ॥४०॥
चितार बैण वाकिस विचार बाल्मीक स्यो ॥
जुभार रामचन्द्र को विचार चार उचर्‌यो ॥
सु सपत काडणो कथ्यो असकत लोक हुइ रह्यो ॥
उतार चग्र आन नो सुधार ऐस कै कह्यो ॥४१॥

२. कस्सप (कश्यप) अवतार

ब्रह्मा के दूसरे अवतार कश्यप का वर्णन कुल तीन छन्दों मे है। कश्यप ने वेदों का पठन-पाठन किया है। उसने चार विवाह किए[1] और उससे सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न किया। उन्हीं से देवता और दैत्यादि उत्पन्न हुए :—

पुन धरा ब्रह्म कस्सप वतार ॥ श्रुति करे पाठ त्रीअ बरी चार ॥
मेधिनी सुसटि कीनी प्रगास ॥ उपजाइ देव दानव सु वास ॥७॥

३ सुक्र (शुक्र) अवतार

शुक्र अवतार का वर्णन कुल दो छन्दों मे है। शुक्र दैत्यों के गुरु थे। दैत्यो को अपनी ही संतान मानकर उनकी सहायता के लिए ब्रह्मा ने शुक्र के रूप मे तीसरा अवतार ग्रहण किया :—

बड पुत्र जानि कीनी महाइ ॥ तीसर अवतार भइउ सुक्र राइ ॥२॥

४. बाचेस (बृहस्पति) अवतार

इस अवतार का वर्णन कुल दो छन्दों मे है। जब दैत्यो का राज चारो ओर स्थापित हो गया और देवता निराश्रित हो गये तो दीन देवताओ ने काल की सेवा की। काल पुरुष प्रसन्न हुए और बृहस्पति के रूप में ब्रह्मा का चौथा अवतार हुआ। बृहस्पति ने देवताओं का आचार्यत्व ग्रहण किया। फलतः इन्द्र की विजय हुई, असुर पराजित हुए :—

मिलि दीन देवता लगे सेव ॥ बीते सौ बरख रीझे गुरुदेव ॥
तब धरा रूप बाचेस आन ॥ जीता सुरेस भई असुर हान ॥३॥

५. बिआस (व्यास) अवतार

ब्रह्मा के व्यासावतार का वर्णन अन्य ब्रह्मावतारो की अपेक्षा बहुत विस्तृत है। कुल वर्णन २९४ छन्दों मे है।

---

१. पुराणों में लिखा है कि दक्ष प्रजापति की तेरह पुत्रियों से कश्यप ने विवाह किया। और उनसे सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई। कश्यप की पत्नियों के नाम इस प्रकार दिये है—अदिति, दिति, दनु, विनता, खसा, कद्रु, मुनि, क्रोधा, अरिष्टा, इरा, ताम्रा, इला और प्रधा। (महान कोष, पृ० ८५८)

उन्होंने "(प्रजापति ने) अपनी पत्नि से ५३ कन्यायें उत्पन्न की, १३ महर्षि कश्यप को विवाही गयीं। महर्षि कश्यप से विवाहित १३ कन्याओं से ही जगत के समस्त प्राणी उत्पन्न हुए, वे लोक माताएं कही जाती हैं। (कल्याण हि. सं. अंक, पृ० ७८५)

ब्रह्म के, स्वीकार, १. मह

कवि के अनुसार त्रेता व्यतीत होने और द्वापर प्रारम्भ होने पर व्यास का अवतार हुआ।[1] व्यास ने वेदों को निश्चित स्वरूप दिया और पुराणों की रचना की। अपनी उन कृतियों में उन्होंने अनेक राजाओं का वर्णन किया है। कवि की इच्छा भी उन राजाओं में से कुछ के संक्षिप्त चरित्र लिखने की थी।[2] इसीलिए मनु, पृथ (पृथु) सागर (सगर) जुजात (ययाति), वन (वसु), मान्धाता, दिलीप, रघु और अज राजाओं का वर्णन इस प्रसंग में किया गया है।

पृथ (पृथु) नाम के जिस राजा का चित्रण कवि ने किया है, वह पुराण वर्णित पृथु नहीं है। उसके स्थान पर कवि ने दुष्यन्त का चित्रण किया है। यद्यपि दुष्यन्त का नाम कहीं नहीं आता, फिर भी जो कथा इस प्रसंग में वर्णित है वह पृथु की अपेक्षा दुष्यन्त के अधिक निकट है। शिकार खेलते हुए राजा की शकुन्तला से भेंट,[3] दोनों का परस्पर में प्रेम होना और शारीरिक सम्बन्ध[4]। बाद में राजा का शकुन्तला को भूल जाना, फिर उसे स्मरण होना और अन्त में भरत का राज्य प्राप्त करना दुष्यन्त के प्रसंग का स्मरण कराते हैं।[5]

६ पस्ट (षट्) ऋषि अवतार

पुराणों आदि का निर्माण करने के कारण व्यास का गर्व भी बढ़ गया। उन्होंने अपने आपको सबसे बड़ा मान लिया। उस गर्व पर काल पुरुष ने क्रोधित होकर व्यास के छः टुकड़े कर दिये।[6] किन्तु उन टुकड़ों से प्राण नहीं निकल गये और वहीं ६ ऋषि हुए जिन्होंने षट् शास्त्रों की रचना की। षट् शास्त्रों की रचना करने वाले षट ऋषि ही ब्रह्मा का छठा अवतार था।

७ काल दास (कालिदास) अवतार

कलियुग में ब्रह्मा ने कालीदास के रूप में सातवाँ अवतार ग्रहण किया। विक्रमजीत

---

१ त्रेता बितीत जुग दुआपुरान ॥ बहु भांति दस्स खेले खिलान ॥
जब भयो आन कृष्णावतार ॥ तब भए व्यास मुख आन चार ॥५।
जिह भांति कथ्यि कीनो पसार ॥ तिह भांति कवि कथि है विचार ॥
कहो जैस वाच्य कहियो नियाम ॥ तउनेक थान कत्यो प्रसंस ॥७॥

२ जे भए भूप भुअ मो महान ॥ तिनको सुजान कथत कहान ॥
कहु लगो तासि किज्जै बिचार ॥ सुणि लेहु बैण सचप यार ॥८।

३ वह नार सकुन्तल तेज धरे ॥ ससि सूरज की लखि कान्ति हरे ।२४॥

४ नृप बाह गही ॥ त्रीअ मौन रही ॥
रस रीत रच्यो ॥ दहु मैन मच्यो ॥२६॥
बहु भांत भजी ॥ निस लौ न तजी ॥
दोऊ रीझ रहे ॥ नहिं जात कहे ॥३०॥

५ खंड खंड अखंड उरवी बीर लीन कुमार ॥
सप्त दीप भए पुनिर नव खंड नाम विचार ॥
जेरट पुत्र भरी धरा तिह भरथ नाम बखान ॥
भरथ खंड बखान हो दस चार चार निधान ॥५३।

६ तब कोप काल कराल ॥ जिहं जाल ज्वाल बिसाल ॥
खट टुकरा कह कीन ॥ पुन बानकै निन दीन ।३॥

(विक्रमादित्य) उन्हें देखकर प्रसन्न हुए।[1] कालिदास ने रघुवंश आदि काव्यों की रचना की।[2] इस प्रकार ब्रह्मा ने अपना सातवां अवतार धारण किया।

रुद्र अवतार

दशम ग्रंथ में रुद्र के केवल दो अवतारों का वर्णन मिलता है। यह वर्णन पर्याप्त विस्तृत है। प्रथम अवतार दत्तात्रेय के चित्रण में ४९८ छन्द हैं तथा दूसरे अवतार पारसनाथ का ३५८ छन्दों में वर्णन है।

दशम ग्रंथ की प्रकाशित प्रतियों में पारसनाथ अवतार के अन्त में वह पंक्ति उपलब्ध नहीं होती जो विचित्र नाटक महाग्रंथ के प्रत्येक अध्याय के अन्त में उपलब्ध होती है। रुद्र के प्रथम अवतार दत्त के अन्त में यह पंक्ति अंकित है—

"इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ दत्त महातम रुद्रावतार प्रबन्ध समापत सुभमस्तु गुरु चउबीस।।"

इस प्रकार की पंक्तियां अपनी कथा, चण्डी चरित्र, विष्णु के चौबीस अवतारों, ब्रह्मा के सात अवतारों के अध्यायान्त में मिलती हैं। पारसनाथ अवतार के अन्त में इस पंक्ति का न होना यह सन्देह उत्पन्न करता है कि यह वर्णन अधूरा है। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट नहीं हो पाता कि दशम ग्रंथ के रचयिता के मन में रुद्र के कितने अवतारों के वर्णन की योजना थी। कुछ विद्वानों का मत है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने रुद्र के अनेक अवतारों, दत्तात्रेय से लेकर गोरखनाथ तक, का चित्रण किया होगा। पारसनाथ अवतार के पश्चात् का भाग या तो कहीं युद्धों में नष्ट हो गया है या अन्य किसी भी प्रकार वह उपलब्ध न हो सकने के कारण दशम ग्रंथ के संकलनकर्ता द्वारा उसे इस ग्रंथ से सम्पादित नहीं किया जा सका है।

डा० त्रिलोचन सिंह ने 'सिख रिव्यू' के जून १९५५ के अंक में प्रकाशित अपने लेख *The History and Compilation of the Dasm Granth* में इस सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है—

"Avtars of Rudra—This section is also unfortunately not complete. Guruji described all the avtaras of Siva from Duttatreya to Gorakh and other naths and sidhas but the story was cut short at the death of Paras Nath. The rest of this section appears to be lost. There are only two major stories, the lives of Duttatreya and Paras Nath. In the life of Paras Nath comes a detailed reference to Machhindar and a vague reference to Charpat.

(रुद्र अवतार—अभाग्यवश यह अंश भी पूर्ण नहीं है। गुरुजी ने दत्तात्रेय से गोरख, तथा अन्य नाथों और सिद्धों तक शिव के सभी अवतारों का वर्णन किया था, परन्तु पारसनाथ की मृत्यु पर यह कथा टूट गयी है। ऐसा लगता है कि इस भाग का शेषांश कहीं खो गया है। इसमें केवल दो प्रमुख कथाएं हैं—दत्तात्रेय और पारसनाथ का जीवन। पारसनाथ के जीवन में मछिन्दरनाथ का विस्तृत उल्लेख है और चरपट (नाथ) का सामान्य उल्लेख है।

१. लखि रीझ बिक्रम जीत ॥ अति गरबवन्त अजीत ॥
अति गिआन मान गुनेन ॥ सुभ कान्त सुन्दर नैन ॥२॥

२. रघु काबि कीन सुधार ॥ कवि काल दास वतार ॥

इस सम्बन्ध मे एक बात और द्रष्टव्य है कि अन्य अवतारो के वर्णन में कवि ने लिखा है कि वह कितने अवतारो का चित्रण करने जा रहा है,[1] किन्तु रुद्रावतार के प्रारम्भ मे इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है। अतः यह निश्चय कर सकना बहुत कठिन है कि कवि रुद्र ने इन दो अवतारों के अतिरिक्त अन्य अवतारों का वर्णन किया था या नही।

रुद्र के अवतार का कारण भी ब्रह्मा के ही समान है। रुद्र ने अत्यधिक योग साधना की ओर फलतः उसमें भी गर्व उत्पन्न हो गया।[2] वह अपने बराबर किसी को न समझने लगा। इस प्रकार काल ने क्रोधित होकर कहा—जो लोग गर्व करते हैं, वे जान-बूझकर (ससार के) कूप मे गिरते हैं। हे रुद्र, इस बात का विचार कर लो कि मेरा नाम ही 'गर्व प्रहार' है।[3] ब्रह्मा ने गर्व किया। उसके चित्त में अविचार उत्पन्न हुआ। तब उसने सात अवतार धारण किए और उसकी बात बनी।[4] यह वचन सुनकर रुद्र ने अवतार ग्रहण किया।

दत्तात्रेय अवतार

आत्रेय मुनि ने रुद्र की घोर तपस्या की। रुद्र ने प्रसन्न होकर उन्हें वर मांगने के लिए कहा। अत्र (आत्रेय) हाथ जोड़कर खड़े हुए। उनका हृदय आनन्द से भर गया, वाणी गद्गद हो गई, रोमावलि पुलकित हुई। उन्होने कहा—हे रुद्र, यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो मुझे अपने जैसा पुत्र दीजिए।[5] तथास्तु कह कर रुद्र अन्तर्ध्यान हो गए। आत्रेय ने तपस्या से वापस आकर अपार सुदरी और गुणवती अनसूया से विवाह किया। उसकी कोख से दत्त का अवतार हुआ।[6] दत्त बड़े सुन्दर और विद्वान थे। सन्यास और योग को

---

१. विष्णु के अवतारा—
अब चउबीस उचरौ अवतार॥
जिह विध तिन का लखा अखारा॥
× × ×
ब्रह्मा के अवतार—
धरि सपत भूम वतार॥ तब होइ लोक उधार॥
सोइ मान ब्रह्मा लीन॥ धरि जगत नवीन॥३५॥

२. अति जोग साधन कीन॥ तब गरब के रसि भीन॥१॥

३. जे गरब लोक करन्त॥ ते जान कूप परन्त॥
गुर नाम गरब प्रहार॥ सुन लेहु रुद्र विचार॥३॥

४. कीअ गरब को मुख चार॥ कछु चित्त मो अबिचार॥
तब धरै तिन तन सात॥ तब बनी ताकि बात॥४॥

५. के देव रुद्र बस रीझ मोहि॥
गृहि होइ पुत्र सम तुलि तोहि॥१२॥

६. पुराणों में दत्तात्रेय को विष्णु का अवतार माना गया है। हिन्दू संस्कृति अंक (कल्याण) में दत्तात्रेय की कथा का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—
"जगत के अधिष्ठाता प्रभु प्रसन्न हों। मुझे वे अपने समान सन्तति प्रदान करें।" महर्षि अत्रि तप कर रहे थे। उनके मन में केवल पितामह की सृष्टि वर्द्धित करने का आदेश था।

(क्रमशः)

उन्होंने प्रकाशित किया ।[1]

कुछ दिनों पश्चात् दत्त योग साधना के लिए घर से निकल पड़े। जब उन्होंने बहुत दिन योग साधना की तो काल देव प्रसन्न हुए और दत्त के प्रति यह आकाशवाणी हुई— हे दत्त, गुरुहीन को मुक्ति नहीं मिलती। पहले गुरु धारण करो तब तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी।[2] काल देव की आज्ञा को दत्त ने शिरोधार्य किया और गुरु की खोज में निकल पड़े।

अपनी इस गुरु की खोज में दत्त ने २४ गुरु धारण किए। प्रथम गुरु उन्होंने स्वयं अकाल पुरुष को ही बनाया जिसने उन्हें गुरु धारण करने की प्रेरणा दी थी—

> प्रिथम अकाल गुरु कीआ जिह को कबै नही नास ॥
> जत्र तत्र दिसा विसा जिह ठउर सरब निवास ॥
> अंडजरज सेत उतभुज कीन जास पसार ॥
> ताहि जान गुरु कीयो मुनि सति दत्त सुधार ॥११६॥

दूसरा गुरु उन्होंने मन को बनाया—

> तजि सरब आस इक आस चित्त ॥
> अविकार चित्त परम पवित्त ॥१७२॥

दत्त ने तीसरा गुरु मकरका (मकड़ी) को धारण किया। जिस प्रकार मकड़ी पहले तारों का जाला बुन कर मक्खी को फंसाने के लिए एकाग्र चित्त होती है, उसी प्रकार साधक प्रेम के तारों का जाला बनाकर ईश्वर के प्रति अपनी तन्मयता प्रस्थापित करता है—

> प्रेम सूत की डार बढ़ावै ॥
> तबही नाम निरंजन पावै ॥१७७॥

"मैंने एक ही जगदाधारकी आराधना की है।" महर्षि को आश्चर्य हुआ। उनके सम्मुख वृषभारूढ़ कर्पूरगौर भगवान शशांकशेखर, हंसपर विराजमान सिन्दूरारुण भगवान चतुरानन और गरुड़ की पीठ पर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी मेघसुन्दर श्री रमानाथ एक साथ प्रगट हुए। जगत के ये तीनों ही अधिष्ठाता हैं। प्रभु त्रिमूर्ति में ही जगत का विनाश, सृष्टि और पालन करते हैं। महर्षि ने तीनों की पूजा की, तीनों की स्तुति की। तीनों के अंश से संतान प्राप्ति का उन्हें वरदान मिला।

महासती अनसूया की गोद तीन कुमारों से भूषित हुई। भगवान शंकर के अंश से तपोमूर्ति महर्षि दुर्वासा, भगवान ब्रह्मा के अंश से सचराचरपोषक चन्द्रमा और भगवान विष्णु के अंश से त्रिमुख, गौरवर्ण, ज्ञानमूर्ति श्री दत्तात्रेय प्रभु। (पृ० ८०७)

1. उपजिउ सु दत्त मोहनो महान ॥
   दस चार चार विदिआ निधान ॥
   सासत्रगि सुद्ध सुन्दर सरूप ॥
   अवधूत रूप गय सरब भूप ॥३७॥
2. गुरहीण मुक्त नही होत दत्त ॥
   तुहि कहो बात सुनि बिमल मत्त ॥
   गुरि करहि प्रिथम तब होहि मुक्ति ॥
   कहि दीन काल तिह जोग जुगत ॥६३॥

आपन आपु आप मो दरसै ॥
अतरि गुरु आतमा परसै ॥
एक छाडि कै अनत न धावै ॥
तब ही परम ततु को पावै ॥१७८॥

मकड़ी को अपना तीसरा गुरु बनाकर दत्त आगे बढ़े। चौथा गुरु उन्होंने बगुले को बनाया जो मछली के लिए एकाग्र ध्यान लगाता है। ईश्वर प्राप्ति के लिए भी उसी प्रकार ध्यान लगाना चाहिए—

ऐसो धियान नाथ हित लईऐ ॥
तबही परम पुरख कहु पईऐ ॥
मच्छातक लखि दत्त लुभाना ॥
चत्रथ गुरु तास अनमाना ॥१८४॥

आगे चलकर बिड़ाल मिला। उसे उन्होंने उसे अपना पाचवा गुरु माना। बिडाल मूस के लिए जैसे ध्यान लगाता है, उसी प्रकार साधक हरि के लिए ध्यान लगाता है—

मूस काज जस लावत धिआनू ॥
लाजत देख महन्त महानू ॥
ऐस धिआन हरि हेत लगईऐ ॥
तब ही नाथ निरजन पईऐ ॥१८६॥

इसी प्रकार धुनीआ उनका छठा गुरु हुआ जिसके सामने से एक राजा की बड़ी सेना निकल गई किन्तु जो अपने कार्य मे इतना ध्यानमग्न था कि उसने सिर तक नहीं उठाया—

भूप सैन जिह जात न लही ॥
ग्रीवा नीच नीच ही रही ॥
सगल सैन वाही मग गई ॥
ताकौ नैंक खबर नही भई ॥१८६॥

आगे जाकर दत्त ने अपना सातवा गुरु मछुहे को स्वीकार किया जो मछली की आशा मे अपना सब कुछ एकाग्र कर देता है—

एक सु ठाढ मच्छ की आसू ॥
राज पाट ते जान उदासू ॥
इह बिध नेह नाथ सो सौ लईऐ ॥
तब ही पूरन पुरख कह पईऐ ॥१८४॥

दत्त की आठवीं गुरु एक चेरी (दासी) बनी, जो एकाग्र होकर अपने स्वामी के लिए चदन घिस रही थी। चेरी की जैसी प्रीति अपने स्वामी के लिए थी वैसी ही साधक की साध्य के प्रति चाहिए—

ऐसी प्रीत हरि होत लगइऐ ॥
तब ही नाथ निरजन पइऐ ॥१९९॥

नवां गुरु एक बनजारा था जो द्रव्य की आशा मे गांवों और नगरों की यात्रा किया करता है। दिन की धूप, या रात्रि-दिवस का चक्कर उसे अपने कार्य से विरत नहीं करता। ईश्वर के प्रति भी ऐसी ही एकाग्रता होनी चाहिए—

ऐस भांति जो साहिब धिम्राईऐ ॥
तब ही पुरख पुरातन पाईऐ ॥२०४॥

दसवी गुरु एक काछिन थी जो अपने फूलों को बेचने के लिए अबाध रूप से पुकारती रहती थी। दत्त ने इससे यह भाव ग्रहण किया कि जो जागते हैं वे पाते हैं, जो सोते हैं वे खो देते हैं—

जै सोवै सो मूल गवावै ॥
जो जागै हरि हिर्दै बसावै ॥
सत्ति बोलि याको हम मानी ॥
जोग धिम्रान जागै ते जानी ॥३१०॥

ग्यारहवा गुरु सुरत्थ राजा था जो शक्तिशाली होते हुए भी सब कुछ छोड़कर सन्यासी बन गया था—

कि अचाचल अग ॥ कि जोर अभंगं ॥
कि अबियक्त रूप ॥ कि अनिआस भूप ॥२५१॥

दत्त ने बारहवें गुरु के रूप में गुड़िया से खेलती हुई बालिका को स्वीकार किया। बालिका की एकाग्रता ही इसका कारण थी—

गए मौन मानी ॥ तरै दिसट आनी ॥
न बाला निहारयौ ॥ न खेल बिसारयौ ॥२६३॥

एक स्वामिभक्त नौकर दत्त का तेरहवा गुरु बना। वह भृत रात को स्वामी के द्वार पर पहरा दे रहा था। मूसलाधार जल मे भी वह स्वर्णमूर्ति की तरह खड़ा रहता था—

एक चित्त ठाढ़ सु ऐस ॥ सोवरन मूरत जैस ॥

उसकी यह दृढता देखकर दत्त रीझ गए और उसे गुरु स्वीकार कर लिया—

तिह जानकै गुरदेव ॥ अकलक दत्त अभेव ॥
चित तासको रस भीन ॥ गुर अउदयो तिह कीन ॥२८६॥

चौदहवां गुरु एक पतिव्रता सुन्दर स्त्री थी—

तन मन भरता कर रस भीना ॥
चव दसवा ताको गुर कीना ॥३४२॥

पद्रहवें गुरु के रूप मे दत्त ने एक बाण निर्माता को ग्रहण किया। वह अपने बाणों को बनाने मे इतना दत्तचित्त था कि उसके निकट से एक राजा की सेना बडी ठाट-बाट से निकल गई और उसने सिर तक नही उठाया। उसकी एकाग्रता से प्रभावित होकर दत्त ने उसे अपना गुरु स्वीकार किया—

अविलोक सरं करि धिम्रान जतं ॥
रहि रीझ जटी हठवत ब्रतं ॥
गुरु मान सपच दसौ प्रबलं ॥
हठ छाडि सबै तिन पान परं ॥३५७॥

सोलहवा गुरु एक चील थी। वह मांस का टुकड़ा लेकर आकाश में उड़ी। उसका पीछा एक अधिक शक्तिशाली चील ने किया। उसने मांस का टुकड़ा अपनी चोंच से छोड़

दिया। दत्त ने यह भाव ग्रहण किया कि इसी प्रकार जो अपने धन का त्याग कर देते हैं उन्हें सत्य की उपलब्धि होती है—

कोऊ ऐस तजै जब सरब धनं ॥
करिकै बिन आस उदास मन ॥
तब पावउ इन्द्री तिआगि रहै ॥
इन चीलन जिउ सत ऐस कहै ॥३६४॥

दुघीर्य (दुधीरा) पक्षी को दत्त ने सत्रहवां गुरु धारण किया। दुघीर्य पक्षी सरिता पर मछली की आशा में मंडराता रहता है। सूर्य अस्त हो जाता है किन्तु उसकी साधना समाप्त नहीं होती—

थरकत हुतो इक चित्त नभ ॥
असि उज्जल अंग सुरंग सुभ ॥
नही आन बिलोकत आप इमं ॥
इह भांति रह्यो गड मच्छ मन ॥३६७॥

एक शिकारी को दत्त ने अपना अठारहवां गुरु बनाया, जो मृगया में इतना तन्मय था कि ऋषियों की एक टोली को भी मृग टोली समझ बैठा और उन पर भी शरसधान के लिए तत्पर होने लगा—

रिख पाल बिलोक तिसै दृढ़ता ॥
गुर मान करी बहुतै उपमा ॥
मृग सो जिह को चित ऐस लग्यो ॥
परमेसर के रस जान पग्यो ॥३८४॥

उन्नीसवां गुरु नलिनी शुक था, जो बंधन मुक्त होने पर उड़ गया। मनुष्य भी उसी प्रकार सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर उड़ सकता है—

निलिसनी सु किज्य ॥
तजिवं दिरब ॥
सफली करम ॥
लहितं सरबं ॥४३७॥

बीसवां गुरु वह व्यापारी था, जो धनोपार्जन में इतना व्यस्त था कि अपनी इस तल्लीनता में वह उन सन्यासियों की ओर भी ध्यान न दे सका जिनके प्रति असंख्य प्राणी श्रद्धा व्यक्त कर रहे थे—

तिह बैंपार करम कर भारी ॥
रिखीअन उर न द्रिस्टि पसारी ॥४४४॥
ऐस प्रेम प्रभ संग लगईऐ ॥
तब ही पुरख पुरातन पईऐ ॥४४५॥

इक्कीसवां गुरु तोते को पढ़ाता हुआ वह व्यक्ति था जो बाह्य जगत् की चिंता त्याग-कर मात्र अपने कार्य में व्यस्त था—

ऐसो नेह नाथ सो लावै ॥
तब ही परम पुरख कहु पावै ॥
इकीसवा गुरु ताकहु कीग्रा ॥
मन बच करम मंल जनु कीग्रा ॥४५०॥

एक हलवाहे (किसान) की पत्नी, जो अपने पति के भोजन ले जाने मे इतनी एकाग्र थी कि मार्ग मे युद्ध करते हुए सैनिको की ओर भी उसने दृष्टिपात नहीं किया, दत्त की बाईसवी गुरु बनी—

समर पार अवसनिनं जजम्पि जापणी रिसं ॥
निहारि पान पं परा बिचार बाइसवो गुर ॥४६२॥

एक यक्षणी दत्त की तेईसवीं गुरु हुई। गायन कार्य मे उसकी एकाग्रता दत्त के लिए प्रेरक हुई और उसे भी उन्होने गुरु स्वीकार कर लिया—

इह भाति जो हरि सग ॥ हित कीजिऐ अनभग ॥
तब पाईऐ हरि लोक ॥ इह बात मै नहि सोक ॥४७२॥

दत्त का अन्तिम, चौबीसवा गुरु ज्ञान था। तेईसवें गुरु की प्राप्ति के पश्चात् पर्वत पर जाकर तपस्या की। वहाँ उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ—

तिह चोबीऐ करि गिग्रान ॥
तब होइ पूरण ध्यान ॥
तिह जाणीऐ जत जोग ॥
तब होइ देह ग्ररोग ॥४७६॥

और एक बार ज्ञान रूपी गुरु प्राप्त हो गए तो चौबीसहो गुरु इसमे सम्मिलित हो जाते हैं—

जै एक के रस भीन ॥ तिन चउबिसो रसि लीन ॥
जिन एक को नहीं बूझ ॥ तिह चउबिसो नहीं सूझ ॥४८०॥

दत्त का यह प्रसंग लगभग ५०० छन्दो में है।

पारस नाथ रुद्र-अवतार

रुद्र के द्वितीय अवतार के रूप में पारस नाथ का वर्णन है। इस अंश में ३५८ छन्द हैं।

दत्त (दत्तात्रेय) के एक लाख दस वर्ष पश्चात् जब योग मत का चारों ओर प्रचार था, पारस नाथ का जन्म हुआ।[1] पारस नाथ बड़े तेजस्वी थे। सर्वत्र उनकी चर्चा होने लगी। कुछ लोगो ने राजा के पास जाकर उनकी तेजस्विता के सम्बन्ध मे कहा। राजा ने उन्हें बुला भेजा। जटाधारी साधु उन्हें देख आतंकित हो उठे। लगा ये (पारस नाथ) दत्त के दूसरे अवतार हैं और ये हमारा मत समाप्त कर देंगे।[2] राजा उनके रूप और तेज को

---

१. एक लच्छ दस बरख प्रमाना ॥ पाछे चला जोग को बाना ॥
ग्यारह बरख बितीतत भयो ॥ पारस नाथ पुरख भुअ भयो ॥२॥

२. निरख रूप कांपे जटाधारी ॥ यह कोऊ भयो पुरख अवतारी ॥
यह मत दूर हमारा के है ॥ जटाधार कोई रहे न पै है ॥ ८॥

देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। नर-नारियों ने उन्हें कामदेव, साधुओं ने सर्वसिद्धि दाता और योगियों ने योग रूप में उनकी कल्पना की। उनके रूप को देखकर रनवास लुभा गया। राजा ने अपनी पुत्री का विवाह उनसे करके उन्हें अपना जमाता बना लिया।

कुछ समय पश्चात् पारस नाथ ने देश विदेश के राजाओं, विभिन्न मतावलम्बी साधु-संन्यासियों को धर्म चर्चा के लिए अपने राज्य में आमन्त्रित किया।[1] देश विदेश के राजा एकत्र हुए। पारस नाथ ने उन सबका उत्तम रीति से स्वागत किया।

पारस नाथ ने यज्ञ का आयोजन किया, उसके पश्चात् उन्होंने देवी की स्तुति की। देवी प्रसन्न हुई, और उसने पारस नाथ से कोई वर माँगने के लिए कहा।[2] पारस नाथ ने वर माँगा, मैं सभी वेदों का ज्ञाता हो जाऊँ। सभी शस्त्रों को चला सकूँ। सभी देशों को पराजित कर अपना मत चलाऊँ। देवी तथास्तु कह अपने वाहन पर सवार हो अंतर्ध्यान हो गई।[3] देवी के वर के प्रभाव से पारस नाथ एक शक्तिशाली सम्राट बन गए। देश-विदेशों के नरेशों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

पारस नाथ ने राजाओं-महाराजाओं और साधुओं की एक और सभा बुलाई।[4] पारस नाथ ने उनसे कहा, या तो आप मुझे अपने योग का परिचय दें, नहीं तो अपनी जटाएँ मुड़वा दें। हे योगियो यदि योग जटाओं के भीतर ही होता तो तुम हरि का ध्यान छोड़कर दर-दर भीख न माँगते फिरते। जिसके रूप रंग के विषय में कोई कुछ नहीं जानता। जो वेष रहित, रेखाहीन है, वह तुम्हारे वेश के अन्तर्गत किस प्रकार आ गया।[5] इस प्रकार पारस नाथ ने उन्हें उस भ्रमजाल से मुक्त किया, जिसमें अधिकांश जटाधारी और उनके अनुयायी राजा फँसे हुए थे। पारस नाथ के इस उपदेश को सुनकर जो बुद्धिमान थे वे उठकर उनके

---

१. पठे का कागदां देस देसां अपारी॥ करी आनकै बेद बिद्या बिचारी॥
जटी दंड मुन्डी तपी ब्रह्मचारी॥ सधी सावगी बेद बिद्या बिचारी॥२८॥
हकारे सबै देस देसा नरेस॥ बुलाए गए मोन मानी सुवेस॥
जटा धार जेते वहू देस पहपे॥ बुलावे तिसे साथ भाखे बुलईये॥२६॥

२. कछु बर मागहु पूत सयाने॥
भूत भविख्य नहीं तुमरी सर साथ चरत हम जाने॥
जो बरदान चहो सो मागो सब हम तुमै दिवार॥
कंचन रतन बज्र मुकता फल लीजहि सकल सुधार॥१४।८८॥

३. सबही पढ़ा बेद बिद्दिया बिधि सबही सस्त्र चलाऊं॥
सबही देस जेरि करि आपन आपे मता मताऊं॥
कहि तथास्तु भई लोप चंडिका तास महा बर देके॥

४. इक दिन बैठे सभा बनाई॥
बड़े-बड़े छत्रि बसुधा के लीने निकट बुलाई॥
अरु जो हुते देस देसन मति ते भी सरब बुलाए॥
मुनि इह भाति जटनकह धारे अरु मुख बिभूत लगाए॥
बलकुल अंग दीरघ नख सोभत मृगपत देख लजाए॥
मुद्रत नेत्र ऊरध कर कंपत परम काछनी काछे॥
निस दिन जप्यो करत दत्तात्रे महा मुनीसर आछे॥२०॥६४॥

५. २१-६५।

पैरों से लिपट गए और जो मूढ़ अज्ञानी थे उन्होंने उनकी बात न मानी और उठ उठकर उनसे वाद-विवाद करने लगे। उनमे कुछ जगलो को वापस चले गए, कुछ जलसमाधिस्थ हो गए और जो जटाधारी योद्धा थे वे युद्ध के लिए तत्पर होकर अपने घोड़े नचाने लगे। इस प्रकार वहां भयंकर युद्ध छिड़ गया।[1]

इस भयानक युद्ध में अन्त में दत्त के अनुयायी पराजित हुए और पारस नाथ ने ससार मे अपना मत प्रस्थापित कर दिया।[2]

अपना प्रभाव स्थापित करने के पश्चात् पारस नाथ ने दस सहस्र वर्ष अपना एकछत्र राज्य कर अपने सभी विरोधियो को उन्होने समाप्त करा दिया। अपनी इस शक्ति से वे अभिमानी हो गये और उन्होने काल पुरुष को भुलाकर अपने आप को ही सब कुछ मान लिया।[3]

पारस नाथ ने अपने पास अतुल शक्ति और सम्पत्ति का संचय कर राजमेघ यज्ञ करने का निश्चय किया जैसा राजा जभ ने सतियुग में किया था। उनके मन्त्री ने कहा, एक लाख राजाओ का बध करने पर राजमेघ यज्ञ पूर्ण होता है। उस यज्ञ के लिए एक-एक ब्राह्मण को एक लाख घोड़े, एक लाख हाथी और एक लाख स्वर्ण मुद्रायें देनी पड़ती हैं। और यह दान करोड़ो ब्राह्मणो को अविलम्ब देने से ही यज्ञ पूरा होगा। पारस नाथ ने उत्तर दिया कि धन सम्पत्ति की तो कोई कमी नहीं है इसलिए यह सब पूर्ण किया जा सकता है।

मंत्री ने फिर कहा, हे नृपोत्तम, एक बात और सुनो, जितने संत, मुनि और राजा है उनसे एक उस रहस्य को जानो जो अभी आपके लिए प्रगट नहीं हुआ है। राजा ने वैसा ही किया। साम्राज्य के सभी राजाओं, साधुओ से उस रहस्य के बारे में पूछा गया किन्तु सभी ने अपनी असमर्थता प्रगट की। तब एक राजा ने अपने प्राणों की भिक्षा माँगते हुए कहा कि समुद्र मे मच्छ के उदर में एक मुनि है। एक बार शिव ने समुद्र में प्रवेश किया। वहाँ एक सुन्दरी को देखकर उनका वीर्यपात हो गया। वह वीर्य एक मछली के उदर में चला गया और उससे मछेन्द्रनाथ का प्रादुर्भाव हुआ जो आज भी उस मच्छ के उदर मे स्थित है। हे राजन आप उनसे ही यह प्रश्न पूछिए।

उस राजा की यह बात सुनकर पारसनाथ सिंधु में उस मच्छ की खोज मे रत हो गये। उन्होंने बड़े-बड़े जाल डलवाए। अपनी सेना समुद्र को मथने में लगवा दी। अनेक प्रकार के मच्छ और कच्छप समुद्र से निकाले गए। जल-जन्तुओं मे आतक छा गया। उन्होने समुद्र देव से अपनी रक्षा की प्रार्थना की। समुद्र ने ब्राह्मण का रूप धारण किया। समुद्र के अगणित रत्न और मोती उसने पारस नाथ को भेंट किए और प्रार्थना की कि आप

---

१. ९५-९६, ९६-१००, ९७-१०१।
२. ४३-११७।
३. इह विधि जीत देस पुर देसन जीत निसान बजायो॥
आपन करण कारण करि मान्यो काल पुरख बिसरायो॥११६॥

समुद्र के प्राणियों का क्यों संहार कर रहे हैं। जिस उद्देश्य से आप यहाँ आए हैं वह यहाँ पूर्ण नहीं होगा। मच्छ के उदर मे बैठा हुआ योगी तो क्षीरसागर मे है।

पारसनाथ ससैन्य क्षीर सागर को मथने चल दिए किन्तु वहाँ भी उन्हें सफलता नही मिली। तब किसी बुद्धिमान ने सुझाया कि साधारण जालों से यह मच्छ नहीं पकड़ा जाएगा, इसको पकड़ने के लिए ज्ञान का जाल डालो। यह उपाय सफल हुआ और वह मच्छ जल से बाहर आ गया, जिसके उदर मे वह योगी था।

फिर उस मच्छ को चीरने का प्रयास होने लगा, किन्तु सभी हथियार असफल हुए। जब ज्ञान गुरू से पूछा गया तो उन्होने कहा कि इसे विवेक की छुरी से चीरो। जब विवेक की छुरी से वह मच्छ चीरा गया तो उसमे से ध्यानस्थ मुनि प्रगट हुए। सात धातुओं का एक पात्र मुनि की दृष्टि से नीचे रखा गया। मुनि का ध्यान भग हुआ, उनकी दृष्टि उस पात्र पर पड़ी और वह भस्म हो गई। यदि अन्य कोई उस समय उनके नेत्रों के नीचे आ जाता तो वह किसी प्रकार न बच पाता।

जब उनका क्रोध शान्त हुआ तो पारसनाथ ने उनसे पूछा—"बताइए ससार में ऐसा कौन सा राजा, योद्धा या प्रदेश है जिसे मैं अभी तक अपने आधीन नही कर सका हूँ। मैंने अपना राज्य सर्वत्र फैला दिया है। मैंने अनेक यज्ञ किए हैं। मैं द्वितीय ईश्वर ही हूं।"

इस पर मच्छेन्द्र ने उत्तर दिया—क्या हुआ जो तुमने सम्पूर्ण संसार को जीत कर लोगों को त्रसित कर दिया है। क्या हुआ जो तुमने अपनी सेना स्थापित कर दी है, जो मन इस सम्पूर्ण संसार को जीतता है तुम उसी को अभी तक नही जीत सके हो। इस प्रकार तुमने अपना लोक परलोक दोनो ही गंवा दिया है।

मच्छेन्द्रनाथ ने उपदेश देते हुये कहा—भूमि का तुम क्या अभिमान करते हो यह तो किसी के साथ नही गई। यह पृथ्वी बड़ी छलिया है, यह न किसी की हुई है न किसी की होगी। तुमने अपने भण्डार भर लिए, अनेक पत्नियां रख लीं किन्तु ये तो साथ नहीं जाएगे और की क्या बात स्वयं तुम्हारी देह तुम्हारे साथ नही जाएगी।

पारस नाथ ने पूछा—मुझे उसका नाम बताओ जिसे मैं अभी तक जीत नहीं सका हूं।

मच्छेन्द्र ने कहा, उसका नाम अविवेक है और उसका स्थान हृदय है। तुम उसे जीत नहीं सकते। इस अविवेक ने बलि, वामन, कृष्ण, विष्णु, राम, रावण को अपने वश में कर लिया। इसी ने वीर सुंभासुर का बध करवाया। महिषासुर और मधुकैटभ को नष्ट किया। इसने कामदेव को अपना मन्त्री बनाया है और इतने देवता, दैत्यो, गधर्व सभी को दण्डित किया है। इसी ने कौरवों को रण में पराजित किया, रावण के दस शीश कटाए। जिन्होंने भी क्रोध किया, ऐसे देव दानव और यादव नष्ट हुए। इसलिए यह अविवेक रोष से भर कर जिस दिन सेना सहित आएगा उस दिन विवेक के अतिरिक्त और कोई इसका प्रतिकार नहीं कर सकेगा।

पारस नाथ ने पूछा—अविवेक और विवेक एक ही कुल, माता-पिता की सन्तान हैं फिर इनमें इतना वैर भाव क्यो है? मुझे यह समझाइए।

मच्छेन्द्र ने कहा, अविवेक का रंग काला है। वह काले घोड़ों वाले काले रथ पर चढ़ता है। उसका सारथी काला है। काला धनुष, काली ध्वजा से वह युक्त है। अपने इस रूप से वह ससार को मोहित कर लेता है। वह मानो दूसरा कृष्ण है।

इसके पश्चात् मच्छेन्द्र ने कामदेव, वसंत, हुलास, आनन्द, भ्रम, कलह, वैर, आलस्य, मद, कुवृत्ति, गुमान, अपमान, अनर्थ, निन्दा, नरक, दुःशील, क्षुधा, कपट, लोभ, मोह, क्रोध, अहंकार, द्रोह, सन्देह, झूठ, मिथ्या, चिन्ता, दारिद्र, शंका, अशोभा, असन्तोष, नाश, हिंसा, कुमन्त, अलज्जा, चोरी, व्यभिचार, स्वामिघात और कृतघ्नता, मित्रद्रोह, राजद्रोह, ईर्ष्या, उचाट, घात, वशीकरण, आपदा, मूल्हता, वंशकुठार, वियोग, अपराध, खेद, कुक्रिया, ग्लानि आदि मानवीय बुराइयों का बड़ा चित्रमय वर्णन किया है। ये बुराइयाँ किस प्रकार मनुष्य को अपने प्रभाव में ले आती हैं और उनसे बचने का उपाय शक्ति, सैन्य, धन या राज्य नहीं है। ये बुराइयाँ मानो अविवेक राजा के सुभट हैं। इनसे युद्ध केवल विवेक द्वारा ही किया जा सकता है।

इसके पश्चात् मछेन्द्रनाथ विवेक और उसके सुभटों का वर्णन करते हैं।[1] वे कहते हैं विवेक श्वेत रंग का छत्र धारण करता है, उसके घोड़े और रंग श्वेत हैं, श्वेत शस्त्रों से शरीर शोभित होता है जिन्हें देखकर देवताओं और मनुष्यों का भ्रम दूर होता है। उसे देखकर चन्द्रमा चकित हो जाता है। सूर्य अपनी भव्यता भूल जाता है। भ्रमर उसके सौन्दर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। सुर, असुर, नर डोल जाते हैं। हे राजा ये विवेक का सौन्दर्य है जो अति बलिष्ट है, जिसकी वन्दना बड़े-बड़े मुनि, महीप करते हैं और तीनों लोकों में जिसकी चर्चा होती है।[2]

विवेक के सुभट हैं—धीरज, व्रत, संयम, नियम, विज्ञान, स्नान, निवृत्ति, भावना, योग, अर्चा, पूजा, अविकार, विद्या, लज्जा, संयोग, सुकृति, अमोह, अलोभ, हठी, जपी, तपी, अकाम, अक्रोध, सुलज्ज, निरहंकार, भक्ति, शान्ति, पाठ, सुकर्म, सुयज्ञ, प्रबोध, दान, सुनियम, सत्य, सन्तोष, तप, जाप, प्रेम, प्राणायाम, ध्यान, शुभाचार, अनुरक्ति, समाधि, उद्यम, उपकार, सुविचार, संयोग, होम, पूजा, विरक्तता, सत्संग, प्रीति आदि।

इसके पश्चात् अविवेक और विवेक के मध्य सैन्य युद्ध का विस्तृत वर्णन है। यह युद्ध बीस लाख वर्षों तक चलता रहा, किन्तु कोई भी पराजित नहीं हुआ।[3] पारसनाथ ने यह

तब मछेन्द्रनाथ से कहा और मछेन्द्रनाथ की दृष्टि से चरपटनाथ का जन्म हुआ।[1] चरपटनाथ ने पारस नाथ को उपदेश दिया कि किस प्रकार आदि पुरुष ने सृष्टि की उत्पत्ति की। उसके मुँह से ओंकार निकला जिससे यह भूमि आकाश सभी बन गए। उसने अपने दाहिने भाग से सत्य को बाएं भाग से झूठ को बनाया। जन्म लेते ही ये दोनों (सत्य और झूठ) आपस में युद्ध करने लगे। यह युद्ध तभी से चला आ रहा है।[2] यदि सहस्रों वर्षों की आयु हो जाए, सहस्रों रसना सदा के लिए उसका गुणगान करने के लिए मिल जाए, सहस्रों युगों तक उस बात पर विचार किया जाए तब भी तुम्हारे ब्रह्म का पार नहीं पाया जा सकता।

व्यास पराशर आदि बड़े-बड़े ऋषि भी उसका अन्त नहीं समझ सके। उसके नाम के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है।

पारसनाथ ने कहा, मैं उसे (अविवेक को) जीत नहीं सका इसलिए मैं चिन्ता में भस्म हो जाऊंगा। यह विचार करके उसने प्रगट सभा में इसकी घोषणा कर दी। चिता बनाई गई, पारसनाथ ने स्वयं अग्नि प्रज्वलित कर ली और स्वयं उसमें भस्म हो गया।

ज्ञान प्रबोध

ज्ञान प्रबोध गुरु गोबिन्दसिंह की एक तात्विक रचना है जो पौराणिक कथा और पृष्ठभूमि से समन्वित है। इस रचना को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. स्तुति भाग।

२. पौराणिक कथा से पुष्ट तत्व ज्ञान भाग।

प्रथम भाग में १२५ छंद हैं जो विशुद्ध रूप से ब्रह्म या अकाल पुरुष की स्तुति से पूर्ण हैं। इन पदों में कवि ने ब्रह्म विषयक अपनी उसी धारणा की पुष्टि की है जो शुद्ध व भक्ति रचनाओं जापु और अकाल स्तुति के माध्यम से प्रकट हुई है।

वह कभी रूप, रेखा, वास, वेश, नाम अथवा वर्णन के अन्दर नहीं आता।[3] वह योनियों से परे है।[4] वह वीर रूप दुष्टों का दलनकर्त्ता है।[5] वस्तुत. उसका खल दल खण्डन रूप इस स्तुति अंश में भी प्रमुख है—

> खल दल बल हरणं दुस्ट विदरणं असरणं सरणं अमित गत ॥
> चंचल चख चारण मच्छ बिडारन पाप प्रहारण अमित मतं ॥
> आजान सुबाहं साहन साहं महिमा महं सरब मई ॥
> जल थल बन रहिता बन त्रिन कहिता खलदलि दहिता सुनरिसही ॥१०॥३०॥

उस अकाल पुरुष की सर्वोच्चता एवं सर्व शक्तिमत्ता इस छंद में मुखर हो उठी है—

> बेद भेद नहि लखै ब्रह्म ब्रह्मा नाहि बुज्झै ॥
> बिआस परासर सुक सनादि सिव अन्तु न सुज्झै ॥

---

१. बचनु मच्छिन्द्र सुनत चुप रहा ॥ धरानाथ सबनन तन कहा ॥
चक्रित चित्त चरपट ह्वै दिखसा ॥ चरपट नायक दिनसे निकसा ॥१०६॥३३३॥

२. १०९—३३६।

३. नहीं जान जाई कछू रूप रेखं ॥ कहा बास ताको फिरै कउन भेखं ॥
कहा नाम ताको कहा के कहावै ॥ कहा मै बखानो कहै मैं न आवै ॥३॥

४. अजोनी अजै परम रूपी प्रधानै ॥ अछेदी अभेदी अरूपी महानै ॥७॥

५. बचित्र चित्र चाप है ॥ अखण्ड दुस्ट खाप है ॥१०॥

सनति कुमार सनकादि सरब जिउ समा न पावहि ।।
लख लछमी लछ बिसन किसन कई नेत बतावहि ।।
असख रूप अनेभ प्रभा अति बलिस्ट जल थलि करए ।।
अच्युत अनन्त अद्वै नाथ निरंजन तव सरए ।।१२।।३२।।

इस प्रकार १२५ छंदों के इस खण्ड मे भक्त ने अपने आराध्य के प्रति अपनी आस्था प्रगट की है ।

द्वितीयांश का आरम्भ एक तात्विक प्रश्न से होता है—

एक दिन जीवात्मा ने आश्चर्यान्वित होकर ईश्वरात्मा[1] से पूछा—यह कौन है जिसका अमित तेज है और जो अद्भुत विभूति है ?[2]

परमात्मा ने उत्तर दिया—हे जीवात्मा यह ब्रह्म है । जिसका अमित तेज है, जो गति और कामना रहित है । जिसमे भेद, भ्रम, कर्म और काल नहीं है जो शत्रु मित्र सब पर कृपा रखता है ।[3] जो पानी में डूबता नहीं । (वायु से) सुखाया नहीं जा सकता । काटने से काटा नहीं जाता । अग्नि से जलता नहीं । सहस्रों शस्त्रो से जिसकी हानि नहीं होती । जिसका कोई शत्रु-मित्र, जाति बिरादरी नहीं है ।[4] यदि सहस्रों शत्रु एकत्र होकर उस पर प्रहार करें तो भी वह छेदा नहीं जा सकता, खण्डित नही होता, अग्नि मे जलता नहीं, सिन्धु में डुबोया नहीं जा सकता, वायु उसे सुखा नहीं सकती ।[5]

---

१. वेदान्त के अनुसार अविद्या में चेतन का आभास (अक्स) अविद्या का अधिष्ठान चेतन और अविद्या इन तीनों का समुदाय जीवात्मा है । जीवात्मा एक है, जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब हजारों घड़ों में एक है, उसी प्रकार सहस्रों शरीर में जीवात्मा है । यह वास्तव में सच्चिदानन्द रूप और देश काल-वस्तु परिच्छेद रहित है । जीवात्मा ब्रह्म से पृथक नही, केवल उपाधि के कारण अलग हो रहा है । (महान कोष पृ० २१२) ।
परमात्मा या ईश्वरात्मा को अद्वैतवादियों ने जीवआत्मा का विकसित रूप स्वीकार किया है और उसे ब्रह्म से नीचा माना है ।

(प्रथमजा—डॉ० मुन्शीराम शर्मा)

२. दिन अजब एक आतमा राम ।। अनुभउ सरूप अनहद अकाम ।।
अनिछिज तेज आजान बाहु ।। राजान राजु साहान साहु ।।१।।१२६।।
उचरिउ आतमा परातमा सग ।। उतभूत सरूप अबिगत अभग ।।
इक कउन आहि आतमा सरप ।। जिह अमित तेजि अति रति बिभूति ।।२।।१२७।।

३. यदि ब्रह्म आहि आतमा राम ।। जिह अमित तेजि अबिगत अकाम ।।
जिह भेद भरम नहीं करम काल ।। जिह सत्र मित्र सरबा दिआल ।।३।।१२८।।

४. डोबियो न डूबे सोखियो न जाइ ।। कटियो न कटे न बारियो बराइ ।।
छिज्जे न नेक सत सस्त्र पात ।। जाहि सत्र मित्र नही जात पात ।।४।।१२६।।

५. सत्र सहस सति-सति प्रघाइ ।। छिज्जे न नेक खडिउ न जाइ ।।
नहीं जरे नेक पावक मझार ।। बोरे न सिंध सोखे न बयार ।।१३०।।
तुलना कीजिए—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चेनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।२३।।

(भगवद्गीता-अध्याय २-२३)

फिर आत्मा ने प्रश्न किया—ससार में जो चार वर्ग हैं उनकी व्याख्या कीजिए ।[1]

परमात्मा ने उत्तर दिया—एक है राज धर्म, एक दान धर्म, एक भोग धर्म और एक है मोक्ष धर्म ।[2]

ज्ञान प्रबोध में वर्णित ये चार वर्ग (धर्म)

१. राजधर्म, २. दान धर्म, ३. भोग धर्म और ४. मोक्ष धर्म प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित पुरुषार्थ चतुष्टय, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ही हैं।

फिर जीवात्मा ने परमात्मा से कहा कि इन चारों धर्मों का विस्तार से वर्णन करो। पहले दान धर्म का वर्णन करो, किस प्रकार राजाओं ने इस धर्म का पालन किया ।[3]

परमात्मा ने उत्तर दिया, तीन युगों (सत्, त्रेता और द्वापर) के राजाओं का वर्णन अति कठिन है क्योंकि उनके दान धर्म की गाथा और उनकी संख्या अपार है ।[4] वर्णन कलियुग से प्रारम्भ होता है। कलियुग के प्रारम्भिक काल मे जो राजा हुए कवि उनका वर्णन करता है ।[5]

इस प्रकार ज्ञान प्रबोध मे वर्णित कथा का प्रारम्भ महाभारत के अन्तिम चरण से होता है। युधिष्ठिर बड़े ही प्रतापी सम्राट थे, उन्होंने एक वृहत् राजसूय यज्ञ किया और दूसरा अश्वमेध यज्ञ किया। उन्होने अपरिमित दान दिया, ससार के सभी राजाओं को अपने आधीन किया। अन्त में जम्बू द्वीप पर पाँच सौ वर्ष राज्य करने के पश्चात वे (अपने भाइयों सहित) हिमालय पर चले गए और राज्य परीक्षित को दे गए।

परीक्षित ने एक विशाल गज मेघ यज्ञ किया। एक बार वे बन मे आखेट के लिए गए। एक मृग का पीछा करते हुए उनकी भेंट एक ऋषि से हुई। उन्होने उससे पूछा कि क्या मृग इसी मार्ग से गया है। ऋषि तो समाधिस्थ थे, उन्होंने कोई उत्तर न दिया। परीक्षित ने क्रोधित होकर एक मृत सर्प को, जो वही पड़ा था, धनुष के अग्र भाग से उठाकर ऋषि के गले में डाल दिया। आँख खुलने पर मुनि ने राजा को उसी सर्प से डसे जाने का शाप दे दिया ।[6]

परीक्षित ने अपने बचाव के बहुत उपाय किए किन्तु सर्प दंश से उनकी मृत्यु हुई, उसके पश्चात उनके पुत्र जनमेजय राज्य के अधिकारी हुए।

जनमेजय ने पिता के प्रतिकार के निमित्त सर्पमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ मे अगणित सर्प भस्म हो गए। अन्त मे एक ब्राह्मण की ताड़ना से वह यज्ञ बन्द हुआ।

---

१. इक करियो प्रसन आतमा देव ॥ अनभंग रूप अनिभउ अभेव ॥
 यहि चतुर बरग ससार दान ॥ किहु चतुर वरगकिज्जै वखिआन ॥६॥१३१॥
२. इक राज धरम इक दान धरम ॥ इक भोग धरम इक इक मोख करम ॥
 इह चतुर वरग सभ जग भणंत ॥ से आतमहि परातमा पुछंत ॥७॥१३२॥
३. बरननं करो तुम प्रथम दान ॥ जिम दान धरम किय नृपान ॥ ६॥१३४॥
४. त्रै जुग महीप वरने न जात ॥ गाथा अनन्त उपमा अगात ॥
 जो कीए जगत में जग्ग धरम ॥ वरने न जाहि ते अमित करम ॥१०॥१३५॥
५. कलजुग ते आदि जो भए महीप ॥ इहि भरथ खंडि महि जबू दीप ॥
 तव बल प्रताप बरणो सुत्रैण ॥ राजा जुधिस्टर भू भरत एण ॥११॥१३६॥
६. पौराणिक कथाओं मे शाप ऋषिपुत्र द्वारा दिया जाता है।

जनमेजय ने काशी राज पर आक्रमण करके उसे पराजित किया और उसकी दो सुन्दरी कन्याओं से विवाह किया। विवाह में एक दासी भी मिली जो बड़ी सुन्दर और विदुषी थी। जनमेजय ने उससे एक पुत्र उत्पन्न किया। इन तीनों से उत्पन्न तीनों पुत्रों के नाम थे, असमेध, असमेधान और दासी पुत्र का नाम था अजैसिंह[1]। अजैसिंह बड़ा योद्धा और यशवाला था।

एक दिन राजा अपनी घोड़ी पर सवार होकर आखेट के लिए गया। वन में वह उसे एक जलाशय के निकट बाँधकर एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा। उस जलाशय से एक घोड़ा निकला, उसने राजा की घोड़ी से सम्भोग किया। घोड़ी को गर्भ रह गया और फिर उससे काले कानों वाला सुन्दर घोड़ा उत्पन्न हुआ।[2]

उस घोड़े से राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ के समय रानी किसी कार्य के लिए उठी और उसी समय वायु के वेग के कारण उसके वस्त्र का अग्रभाग उड़ा जिसे देखकर वहाँ उपस्थित सभी ब्राह्मण हँस पड़े। रानी का यह अपमान देखकर राजा क्रोधित हो गया और उसने अनेक ब्राह्मणों का वध करवा दिया।[3]

ब्रह्म हत्या के दोष के कारण राजा को कुष्ट रोग हो गया। राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर इस रोग से छुटकारे का उपाय पूछा। ब्राह्मणों ने कहा, हे राजा तुम व्यास जी से महाभारत की कथा सुनो, तुम्हारा रोग दूर हो जाएगा, तत्पश्चात् राजा ने व्यास जी से महाभारत की कथा सुनी।[4]

कथा के अन्त में जब व्यासजी ने कहा कि युद्ध में भीम द्वारा आकाश में फेंके हुए हाथी अभी तक आकाश में ही चक्कर काट रहे हैं, तो जनमेजय ने अविश्वास से नाक चढ़ा ली और कहा, यह ऐसे ही कहा है। परिणाम यह हुआ कि नाक के कुछ अंश पर कुष्ट रह गया और उसी से राजा की मृत्यु हुई।[5]

इस प्रकार चौरासी वर्ष सात मास और चौबीस दिन जनमेजय ने राज किया।[6]

जनमेजय के तीनो पुत्र, असमेध, असमेधान और अजैसिंह बड़े ही पराक्रमी और शक्तिशाली थे। मृत्यु के पश्चात ज्येष्ठ पुत्र राजा बना, दूसरा मन्त्री बनाया गया और दासीपुत्र प्रधान सेनापति बना।[7]

राज्य पाकर दोनों बड़े भाई (राजा और मन्त्री) सुन्दरी और सुरा में डूब गए, राज्य का सारा कार्य भार अजैसिंह के हाथ में आ गया। वह जैसा चाहता वैसा ही करता।[8]

---

१. अजसैन (महान कोष, पृ० ३३६)।
२. छन्द ३०-१९८।
३. ३२-२००,
४. ३६-२०७।
५. १८-२३६।
६. १९-२३७।
७. ८-२४५, ९-२४६।
८. छन्द, २४८, २४९, २५०, २५१।

एक दिन तीनों चौपड़ खेलने बैठे, खेल-खेल में ही एक ने अर्जसिंह पर व्यंग किया — अरे यह तो दासीपुत्र है, यह क्या करेगा ? यह क्या दाव लेगा ? इससे कौन सा शत्रु मरेगा ?[1]

इसके पश्चात खेल शुरू हुआ, उस खेल में दोनो बड़े भाई (राजकुमारियों से उत्पन्न) एक पक्ष में थे और अर्जसिंह दूसरी ओर। खेल में ही स्पर्द्धा बढ़ी और युद्ध की नौबत आ गयी। भाइयों में भयानक युद्ध हुआ और दोनों भाइयों की सेना अर्जसिंह द्वारा पराजित होकर भाग गयी। हारा हुआ असमेध उड़ीसा के राजा तिलकसेन के आश्रय में चला गया वहाँ उसकी भेंट एक सनाढ्य ब्राह्मण से हुई जो बड़ा विद्वान था और राज्य में जिसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उस ब्राह्मण के आश्रम में सदैव धर्म शास्त्र और ज्ञान की चर्चा हुआ करती थी। वहां किसी छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं था।

अर्जसिंह अपने भाइयों का पीछा करता हुआ उस आश्रम तक पहुँच गया। अर्जसिंह का आगमन सुनकर दोनों भाई बहुत डर गये और उस ब्राह्मण के चरण पकड़कर प्राणों की भिक्षा मांगने लगे।

उस ब्राह्मण ने अर्जसिंह से कहा कि मेरे आश्रम में सभी ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय एक भी नहीं। इस पर अर्जसिंह ने कहा, यदि सब ब्राह्मण हैं तो इन्हें अपनी कन्या दीजिए और मेरे साथ बैठकर भोजन कीजिए। राजा (अर्जसिंह) के भय से उन्होंने यह कार्य किया। उन लड़कियों के गर्भ से जो सन्तान हुई उनसे सनोढ़ गोत्र चला। जिन्होंने राजा के साथ भोजन किया और उन्हें कन्याएं दी उनसे राजपूत उत्पन्न हुए। जिन्होंने राजा की आज्ञा स्वीकार नहीं की उन्हें उसने अग्नि में भस्म कर दिया।

इस प्रकार बयासी वर्ष आठ माह और दो दिन राज्य करने के पश्चात अर्जसिंह की मृत्यु हुई।

अर्जसिंह के पश्चात जग राजा हुआ, उसने कामरूप प्राग्ज्योतिष से ब्राह्मण बुलाए और एक विशाल पशुमेध किया।

उसके पश्चात 'मुनी' राजा हुआ। यह बड़ा पराक्रमी था। इसने शत्रुओं का नाश किया। एक विशाल यज्ञ का इसने भी आयोजन किया।

ज्ञान प्रबोध ग्रंथ 'मुनी' के यज्ञ के साथ ही समाप्त हो जाता है। दशम ग्रंथ की उपलब्ध प्रतियों में अन्य ग्रंथों की भाँति इसकी समाप्ति की कोई चर्चा नहीं है। ग्रंथ के कथा प्रसंग का एकाएक समाप्त हो जाना भी इस ओर संकेत करता है कि यह पूर्ण नहीं है। संभव है इस ग्रंथ का कुछ भाग युद्धों की विभीषिका में कहीं नष्ट हो गया हो।

शस्त्र नाम माला

"शस्त्र नाम माला" गुरु गोबिन्दसिंह की दृष्टकूट शैली में लिखी हुई एक वैचित्र्यपूर्ण रचना है। दृष्टकूट शैली में अपनी बातों को व्यक्त करना उस युग के साहित्य की एक प्रवृत्ति थी। जिस प्रकार सन्त कवि भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति के लिए साधारण गेय-पद शैली को अपनाते थे, उसी प्रकार रहस्यात्मक भावों को प्रगट करने के लिए वे

१. कहा करे दाकह परे कह यह दावे सूत।
कहा शत्रु घावे मरे जो रजिमा का पूत ॥२।२६३॥

दृष्टकूट-पद-शैली का अनुसरण करते थे। आत्म-चिंतन के गूढ़ विषयों को रहस्यात्मक भाषा में प्रगट करने की परम्परा भारत में प्राचीन काल से ही चली आ रही थी। ऋग्वेद में बहुत कुछ प्रतीक रूप में कहा गया है, उपनिषद् तो गुह्यविद्या का ही मुख्य रूप से प्रतिपादन करते हैं। इस शैली में जहाँ एक ओर गूढ़ विषय का प्रतिपादन होता है, वहाँ दूसरी ओर आलंकारिकता भी स्वाभाविक थी। आगे चलकर संस्कृत-काव्यों में तो यह आलंकारिकता और चमत्कारवादिता इतनी अधिक प्रिय हुई कि एक-एक अक्षरों के श्लोक बनाये गये और अन्वय मात्र से भिन्नार्थ रखने वाले काव्यों का प्रणयन हुआ। संस्कृत-साहित्य में यह प्रवृत्ति नैषध काव्य तक चलती रही।[1]

सिद्धों और नाथपंथी हठयोगियों ने अपनी बानियों में इस रहस्यात्मक प्रवृत्ति को अपनाया। सहज भावाभिव्यक्ति वाले भक्तिकाव्य में भी इस रहस्यात्मक पद्धति को अपनाया गया। विद्यापति, जायसी, कबीर और सूरदास की रचनाओं में उलटबासियों और दृष्टकूट पदों का अभाव नहीं है। परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह की इस रचना का विषय कोई रहस्यात्मक अनुभूति नहीं है। अपनी भक्ति, वीर और शृंगार की रचनाओं में उन्होंने कहीं दृष्टकूट शैली का प्रयोग नहीं किया है।

शस्त्र नाम माला गुरु गोबिन्दसिंह की एक दीर्घ रचना है। इसमें कुल १३१८ छन्द हैं और ५ अध्यायों में विभाजित है। अध्यायानुसार उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

प्रथम अध्याय

इस अध्याय में कुल २७ छन्द हैं और उनमें शस्त्रों का देवीकरण कर उनकी स्तुति की गयी है।[2] युद्ध भाव प्रेरित कवि ने अपनी इस रचना में स्पष्ट घोषणा की है कि कृपाण, खड्ग, खड्ग, बन्दूक, गंड़ासा, तीर, तलवार, सरोही, बरछी आदि अस्त्र-शस्त्र ही मेरे इष्ट हैं—

> असि कृपान खंडो, खड्ग तुपक तबर अरु तीर ॥
> सैफ सरोही सैहथी यहै हमारे पीर ॥ ॥

इसके आगे के सभी छन्दों में कवि ने सभी अस्त्रों-शस्त्रों में उस महान काल शक्ति का ही आरोप किया है, जो उनका इष्ट है।[3] वह महान शक्ति सर्व-व्याप्त है। वही दिन है, वही

१. सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ० ४३३।

२. साग सरोही सैफ असि तीर तुपक तरवार ॥
सत्रांतक कवचांति कर करीयै रच्छ हमार ॥१॥
असि कृपान धराधरी सैल सूफ जमदाढ़ ॥
कवचांतक सत्रांत कर तेग तीर धरवाढ़ ॥२॥

३. तीर तुही सैंथी तुही, तुही तबर तरवार ॥
नाम तिहारो जो जपै भए सिंध भव पार ॥४॥
काल तुही काली तुही तुही तेग अरु तीर ॥
तुही निसानी जीत की आजु तुही जगबीर ॥५॥
श्री तूं सभ कारन तुही तूं बिद्या को सार ॥
तुम सभ को उपराजही तुम ही लेहु उबार ॥८॥

शक्ति है, वही जीवों की जन्मदाता है और अपने कौतुक के लिए उनमें (जीवों में) वाद-विवाद वह स्वयं ही उत्पन्न करती है।[1] जितने भी अवतार हुए हैं वे भी उसी महान कालशक्ति के ही रूप हैं।[2] और अस्त्र-शस्त्रों के रूप में व्यक्त उस महान काल शक्ति से ही वे अपने शत्रुओं का विनाश, अपनी विजय और मनोकामना की पूर्ति का वरदान मांगते हैं।[3]

इस अध्याय में लगभग ३० प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की चर्चा हुई है। इस गणना में एक ही शस्त्र के विभिन्न रूप भी आ गए हैं। वर्णित शस्त्रों की तालिका इस प्रकार है— सांग, सिरोही, सैफ (सीधी तलवार), असि, तीर, तुपक (बन्दूक), शूल, जमदाढ (कटार), खडा (दोनों ओर धारवाला अस्त्र), तेवर (गडासा), सेंहथी (बरछी), निखग, कटारी,सेल (बरछा), कर्द (छुरी), सिमर (ढाल), कवच, तलवार, बिछुआ, बांक,वज्र, गुरज (गदा जैसा लोहे का अस्त्र), गदा, तुफग, चाकू खजर, बुदगा (छुरा), पाटस (एक प्रकार का खंडा) और पाश।

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय में ४७ छन्द हैं। इस अध्याय में तलवार, जमदाढ़ (कटार), सेंहथी (कटारी), बरछी और चक्र अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन है।

इस रचना का शैली वैशिष्ट्य इस अध्याय से ही प्रारम्भ होता है। प्रारम्भिक छन्दों में अधिक चमत्कार प्रदर्शन नहीं है। इस अध्याय के पहले दोहे में कवि कहता है—पहले कवच शब्द कहो, फिर उसके साथ अरि शब्द लगा दो, कृपाण का अर्थबोध होगा।[4]

इसी प्रकार जमदाढ़ (कटार) के लिए कवि कहता है—पहले उदर शब्द कहो फिर अरि शब्द का उच्चारण करो। (उदर शब्द के पर्याय और अरि शब्दों के पर्यायों द्वारा) जो शब्द बनेंगे उनसे जमदाढ़ का ही बोध होगा।[5]

---

१. तुमही दिन रजनी तुही तुम ही जीवन उपाइ ॥
कउतक हेरन के नमित तिन मो बाद बढाइ ॥६॥
प्रिथम उपावहु जगत तुम तुमही पंथ बनाइ ॥
आप तुही झगरा करो तुमही करो सहाइ ॥१५॥

२. मच्छ कच्छ बाराह तुम, तुम बावन अवतार ॥
नार सिंघ बउधा तुंही-तुही जगत को सार ॥१६॥
तुही राम स्री क्रिसन तुम तुही बिसन को रूप ॥
तुहीं प्रजा सम जगत की तुही आप ही भूप ॥१७॥

३. असि क्रिपान खंडो खड्ग सैफ तेग तलवार ॥
रच्छ करो हमारी सदा कवचांतक करवार ॥१०॥
तुम ही गुरज तुमही गदा तुमही तीर तुफंग ॥
दास जान मोरी सदा रच्छ करो सरबंग ॥१३॥
सैफ सरोही सत्र अरि सारंगारि जिह नाम ॥
सदा हमारे चित बसो सदा करो मम काम ॥२७॥

४. कवच शबद प्रिथमै कहो अंत सबद अरि देहु ॥
सम ही नाम क्रिपान के जान चतुर जिअ लेहु ॥२८॥

५. उदर सबद प्रिथमै कहो पुनि अरि सबद उचार ॥
नाम सभै जमदाढ के लीजहु सु कबि बिचार ॥३१॥

शस्त्र नाम माला पुराण पौराणिक उल्लेखों का अथाह सागर है। रचनाकार के गहन पौराणिक ज्ञान का परिचय इस एक ग्रंथ से प्राप्त होता है।

चक्र विष्णु का प्रिय शस्त्र था। इसलिए चक्र की चर्चा करते हुए विष्णु और उनके कृष्ण रूप के विविध पौराणिक प्रसंगों की चर्चा की गयी है—

> बिसन नाम प्रथमे उचरि पुन पद शस्त्र उचारि ॥
> नाम सुदरसन के सभै निकसत जाहि अपार ॥५१॥

विष्णु के किसी भी नाम के साथ 'शस्त्र' शब्द जोड़ दिया जाए तो चक्र का भाव स्पष्ट हो जाता है। विष्णु के चक्र से मुर, मधु, नरकासुर, वक्त्र, शिशुपाल (चदेरीनाथ) आदि शत्रु मारे गये। इसलिए यदि उनके नामों के साथ मर्दन, हा, रिपु, सूदन आदि शब्द लगा दिए जाएं तो उससे चक्र का बोध होगा।[1]

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय में कुल १७८ छन्द हैं और सभी छन्दों में तीर के नामों का वर्णन है। प्रथम छन्द में कवि तीर के विभिन्न नामों की चर्चा करता हुआ उनसे अपनी विजय और अपना काम पूरा करने की कामना करता है—

> बिसख बाण सर धनुज भन कवचांतक के नाम ॥
> सदा हमारी जै करो सकल करो मम काम ॥७५॥

स्थूल ढंग से इन नामों को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है—

१. संहारक नाम।
२. व्यक्ति विशेष के प्रिय शस्त्र होने के सम्बन्धित नाम।
३. धनुष और भलक से सम्बन्धित नाम।
४. आकाशचर।
५. विष-युक्त।
६. अन्य।

---

१. मुर पद प्रिथम उचारि के मरदन शबुर कहो ॥
नाम सुदरसन चक्र के चित में चतुर लहो ॥५८॥
+ + + +
मधु को नाम उचारि के हा पद शतुर उचारि ॥
नाम सुदरसन चक्र के लीजै सुकबि सुधारि ॥५९॥
+ + + +
नरकासुर प्रिथम उचारि पुन रिपु सबद बखान ॥
नाम सुदरसन चक्र को चतुर चित्त में जान ॥६०॥
+ + + +
दैत बकत्र को नाम कहि सूदन शतुर उचार ॥
नाम सुदरसन चक्र को जान चित्त निरधार ॥६१॥
+ + + +
प्रिथम चदेरीनाथ को लीजै नाम बनाइ ॥
पुन रिपु नाम उचारियै चक्र नाम हुइ जाइ ॥६२॥

इन नामों में सबसे अधिक संख्या संहारक नामों की है। बाणों द्वारा पशु मारे जाते हैं इसलिए 'मृगहा'[1] पक्षी मारे जाते हैं इसलिए 'पक्षी पर'[2] वीर मारे जाते हैं, इसलिए 'सुभटहा'[3] आदि अनेक नाम बाण के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अधिकांश संहारक नाम पौराणिक पृष्ठभूमि और वैयक्तिक आधार पर हैं। कर्ण,[4] कृष्ण,[5] अभिमन्यु,[6] रावण,[7] कुंभकर्ण,[8] बालि[9] आदि पौराणिक पुरुषों की मृत्यु 'बाण' से हुई, इसलिए इनके विभिन्न नामों के साथ 'अरि' अथवा कोई पर्यायवाची शब्द लगा देने से बाण का बोध होता है।

कृष्णारि या दशाननारि मात्र कह देने से ही बाण का बोध कराया गया हो, इतना नहीं है। कृष्ण या रावण (इन दो की ही विशेष चर्चा है) को अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संकेतों द्वारा बोधगम्य करा कर कवि 'अरि' शब्द को उससे युक्त करता है और बाण का संकेत देता है। लगभग २० छन्द कृष्ण और २५ छन्द रावण से सम्बन्धित हैं। कृष्ण के लिए प्रयुक्त नामों में से कुछ इस प्रकार हैं—

१. हलधर + अनुज = कृष्ण	छन्द	१४१
२. रोहिणेय, मुसली, हली, बलराम + अनुज = कृष्ण	,,	१४२
३. अर्जुन + सूत = कृष्ण	,,	१४५
४. पवन सुत (भीम) अनुज (अर्जुन) + सूत = कृष्ण	,,	१४६
५. भीष्म-अरि (अर्जुन)—सूत = कृष्ण	,,	१६०
६. धर्मज (युधिष्ठिर)—बन्धु (अर्जुन)—सूत = कृष्ण	,,	१७०
७. सूर्य-पुत्र (कर्ण)—अनुज (अर्जुन) सूत = कृष्ण	,,	१७३
८. कालिन्दी—अनुज (यम)—तनुज (युधिष्ठिर)—अनुज (अर्जुन) अग्र (सारथी)—कृष्ण	,,	१७४

---

१. सभ मृगयन के नाम कहि हा पद बहुर उचार ॥
नाम सभै स्री बाण के जाणु छिदै निरधार ॥७६॥

२. सभ पच्छन के नाम कहि पर पद बहुर बखान ॥
नाम सिलीमुख के सबै चित में चतुर पछान ॥८३॥

३. सुभट नाम उचारि के हा पद बहुत सुनाइ ॥
नाम सिलीमुख के सबै लीजहु चतुर बनाइ ॥८२॥

४. प्रिथम करन के नाम कहि पुन अरि सबद बखान ॥
नाम सकल स्री बान के लीजो चतुर पछान ॥११४॥

५. जदुपतारि बिस्नाधिपि अरि कुस्नांतक जिह नाम ॥
सदा हमारी जै करो सकल करो मन काम ॥१४०॥

६. पडु पुत्र कुर राज भनि बहुर अनुज पद देहु ॥
सुत उचारि अति अरि उचरि नाम बान लख लेहु ॥१७६॥

७. दस ग्रीवा दस कंठ भनि अरि पद बहुत उचार ॥
सकल नाम सद बान के लीजहु चतुर सुधार ॥१८८॥

८. कुंभ करन पद आदि कहि अरदन बहुत बखान ॥
सकल नाम स्री बान के चतुर चित्त मै जान ॥२३०॥

९. प्रिथम भाखि सुग्रीव पद अग्रजि बहुर बखान ॥
सकल नाम स्री बान के जानीअहु बुद्धि निधान ॥२४२॥

इसी प्रकार रावण के लिए प्रयुक्त नामों से कुछ इस प्रकार हैं—

१. दस ग्रीवा या दस कण्ठ	=रावण	छन्द	१८८
२. जटायु—अरि	=रावण	,,	१८६
३. मेघ—धुनि (मेघनाद)—पिता	=रावण	,,	१६१
४. नीर+धर (मेघ)—धुनि (मेघनाद)—पिता=रावण		,,	१६७

५. रावण मेघनाद का पिता था। मेघनाद के लिए मेघ धुनि (ध्वनि) जलद धुनि, अंबुद धुनि, धराधर धुनि, जलद नाद, नीरधर धुनि, घनसुतधर धुनि, आबाद धुनि, नीरद-धुनि, घनजधुनि आदि अनेक नामो का प्रयोग हुआ है।

अर्जुन ने द्रोपदी के स्वयंवर के समय ऊपर लटकती हुई मछली की नीचे जल में छाया देखकर बाण से उसकी आंख में निशाना लगाया और द्रोपदी को प्राप्त किया। इस प्रकार बाण मत्स्य-चक्षु-अरि हुआ। लगभग २५ छन्दों में इस प्रसंग का विविध प्रकार से आश्रय लेकर बाण को अभिहित किया गया है। उदाहरण स्वरूप—

> प्रिथम मीन को नाम लै चखु रिपु बहुर बखान॥
> सकल नाम स्री बान के लीजहु चतुर पद्यान॥२०७॥

मछली के लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम—

१. मत्स्य	छन्द	२०६
२. मीन	,,	२०७
३. मकर	,,	२०८
४. झख	,,	२०६
५. सफरी	,,	२१०
६. मछरी	,,	२११
७. जलचर	,,	२१२
८. संबरारि (कामदेव) ध्वज	,,	२१५
६. पिनाकी (शिव) अरि (कामदेव) ध्वज	,,	२१६
१०. कार्तिकेय पितु (शिव) अरि (कामदेव) ध्वज	,,	२१६
११. सलिल (गंगा) धर (शिव) अरि (कामदेव) ध्वज	,,	२२१
१२. पार्वतीश (शिव) अरि (कामदेव) ध्वज	,,	२२५

व्यक्ति विशेष के प्रिय शस्त्र होने से सम्बन्धित नाम

धनुष-बाण शिव, कामदेव और अर्जुन के प्रिय शस्त्र हैं। यदि शिवायुध, कामायुध अथवा अर्जुनायुध कह दिया जाए तो बाण का भाव स्पष्ट हो जाता है। तत्सम्बन्धी अनेक छन्द इस अध्याय में हैं।

शिवायुध

> सहस नाम शिव के उचरि अस्त्र सबद पुनि देहु॥
> नाम सकल स्री बान के चतुर चीन चित लेहु॥११३॥

कामायुध

> पुहुप धनुख के नाम कहि आयुध बहुर उचार ॥
> नाम सकल स्री बाण के निकसत चलै अपार ॥१०२॥
>
> \+ + +
>
> सकल मीन के नाम कहि केतुवायुध कहि अंत ॥
> नाम सकल स्री बाण के निकसत जाहि अनंत ॥१०३॥
>
> \+ + +

अर्जुनायुध

> सभ अरजुन के नाम कहि आयुध सबद बखान ॥
> नाम सकल स्री बान के लीजहु चतुर पछान ॥११६॥

धनुष और भलक से सम्बन्धित नाम

बाण धनुष से युक्त है और उसके आगे तेज फल होता है। इससे सम्बन्धित कुछ नाम इस प्रकार हैं—

> धनुख सबद प्रिथम उचरि अग्रज बहुत उचार ॥
> नाम सिलीमुख के सभै लीजहु चतुर सुधार ॥७६॥
>
> \+ + +
>
> सभ भलकन के नाम कहि आदि अंत धर देहु ॥
> नाम सकल स्री बाण के चीन्ह चतुर चित लेहु ॥१०६॥

आकाशचर

बाण को आकाशचर कहा गया है। तत्सम्बन्धी लगभग २० छन्द इस ग्रंथ में हैं—

> सभ आकाश के नाम कहि चर पद बहुर बखान ॥
> नाम सिलीमुख के सभै लीजै चतुर पधान ॥८५॥

आकाश के लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम

१. ख, आकाश, नभ, गगन	छन्द	८६
२. आसमान, सिपिहर, दिव, गरन्दु	„	८७
३. चन्द्र धर	„	८८
४. गो, मरीच, किरण+धर (चन्द्रमा) धर (आकाश)	„	८६
५. रजनीश्वर (चन्द्रमा) दिनहा (चन्द्रमा) धर	„	६०
६. रात्रि, निशा, दिन घातिनी+चर (चन्द्रमा) धर	„	६१
७. शशि उपार्जनि (रात्रि) रवि हरनि (रात्रि)+चर (चन्द्रमा)+धर	„	६२
८. किरण+धर (चन्द्रमा)+धर	„	६४
६. समुद्र+सुत (चन्द्रमा)+धर	„	६५
१०. जलजीव आश्रम (समुद्र)+सुत (चन्द्रमा)+धर	„	६६

विषयुक्त

युद्ध काल में बाण-फल को विषयुक्त कर दिया जाता था। तत्सम्बन्धी नामों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

बिज के नाम उचारिकै रच पद बहुर बखान ॥
नाम सकल हो बाण के सीजो चतुर पछान ॥१०८॥
+ + +
सकल सिंध को नाम लै तनै सबद को देहु ॥
घर पद बहुर बखानीऐ नाम बान लखि लेहु ॥१२६॥

ग्रन्य नाम

कवचभेदक

सकल कवच के नाम कहि भेदक बहुर बखान ॥
नाम सकल स्री बाण के निकसत चले प्रमान ॥८०॥

चर्मभेदक

नाम चरम के प्रिथम कहि छादक बहुर बखान ॥
नाम सभै ही बाण के चतुर चित्त मैं जानु ॥८१॥

अनेक शस्त्रों को नष्ट करने वाला

प्रिथम सस्त्र सभ उचरिकै अंत सबद अरि देहु ॥
सकल नाम स्री बाण के चीन्ह चतुर चितु लेहु ॥२३५॥
+ + +
सूल संहथी सत्र हा सिप्रादर कहि अंत ॥
सकल नाम स्री बाण के निकसत चलहि अनन्त ॥२३६

बाण की स्तुति में कवि ने एक प्रश्न उपस्थित किया है—

"वह बादलों की तरह बरसता है, उसमें यशरूपी खेती होती है परन्तु वह बादलों जैसा शीतल नहीं है—बताओ वह क्या है?"[1]

चतुर्थ अध्याय

इस अध्याय में कुल २०७ छन्द हैं और सभी छन्दों द्वारा "पाश"[2] का वर्णन है, जिसे कवि ने "पास" शब्द से सम्बोधित किया है।

पाश का वर्णन कवि ने मुख्यतः दो रूपों में किया है—

१. शक्ति या व्यक्ति विशेष के शस्त्र के रूप में।

२. संहारक के रूप में।

---

१. बारद जिउ बरसत रहै जसु अंकुर जिउ होइ ॥
बारद सो बारद नहीं ताहि बतावहु कोइ ॥१२७॥

२. महान कोष (पृ० २२७१) पर पाश की व्याख्या इस प्रकार दी हुई है—
धनुर्वेद में पाश के दो प्रकार लिखे हुए हैं, एक पशुओं के फंसाने के लिए और दूसरा मनुष्यों के फंसाने के लिए। प्राचीन काल में यह युद्ध का एक शस्त्र था। इसकी लम्बाई दस हाथ होती थी। सूत, चमड़े और नारियल की रस्सी से इसकी रचना होती थी और मोम आदि लगाकर इसे चिकना और मजबूत बनाया जाता था। इसके एक सिरे पर सिरका फुंदी वाली गांठ होती थी। इसे शत्रु के सिर की ओर फेंका जाता था। जब गले में पाश का चक्कर पड़ जाता तो बड़ी तीव्रता से उसे खींचा जाता। खींचने से शत्रु का गला घुटता, फलतः उसकी मृत्यु हो जाती या वह मूर्छित हो जाता।

शक्ति या व्यक्ति विशेष के शस्त्र के रूप में जिनका उल्लेख है, उनमें हैं—

१. वरुण
२. काल
३. उग्र

वरुणायुध

पाश वरुणदेव का प्रमुख शस्त्र है,[1] इस तथ्य का उल्लेख घुमा-फिराकर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नामों के द्वारा लगभग १०० छन्दों में हुआ है। प्रारम्भिक छन्दों में ही कवि कहता है—

बीर दिसउनी श्रीवधर वरुणायुध कहि मंत ॥
सकल नाम सी पास के निकसत चलें प्रतंत ॥२५३॥

वरुण के लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम

		छन्द
१. जलधिराज	छन्द	२५४
२. नदी+ईश—समुद्र—ईश	"	२५५
३. गंगा+ईश—समुद्र—ईश	"	२५६
४. चन्द्रभगा पति	"	३२३
५. शतुद्रवनाथ	"	३२४
६. सतलज—ईश	"	३२५
७. विपासा—ईश	"	३२६
८. रावी—ईश	"	३२७
९. सिन्धु—ईश	"	३२८
१०. विहथि (वितस्ता)—ईश	"	३३०
११. नील—ईश	"	३३२
१२. यमुना—पति	"	३३३
१३. कृष्णा—ईश	"	३३४
१४. भीमरा—ईश	"	३३५
१५. ताप्ती—ईश	"	३३६
१६. ब्रह्मपुत्र—ईश	"	३४०
१७. घाघरा—ईश	"	३४४
१८. सरस्वती—ईश	"	३४५
१९. आमू (ईरान की एक नदी) ईश	"	३४६

उपलिखित कुछ नाम वरुण के समुद्र के स्वामी होने के नाम को प्रगट करते हैं, किसी नदी के स्वामी समुद्र और उसके स्वामी होने के नाम को प्रगट करते हैं अथवा सीधा

1. In the Puranas, varuna is sovereign of the waters and one of his accompaniments is a noos, which the Vedic deity also carried for binding offenders, this is called 'Nagapasa', Pulaknga or Viswajit......Varune is also called.........Pasa-bhrit 'the noose carrier'.
(*A Classical Dictionary of Hindu Mythology*, p. 338)

हो किसी नदी के स्वामी होने के नाम को प्रगट करते हैं। ऊपर दी हुई तालिका में अनेक नदियों में गंगा और यमुना की विशेष चर्चा है, जिन्हें अनेक नामों से पुकारा गया है। कुछेक नाम ये हैं—

गंगा

जटज, जाह्नवी, अघहा, किलबिस, पाप रिपु, अघमं पाप नाशनी आदि।

यमुना

कालिन्दी, कालनुजा, कृष्णबल्लभा, सूर्यपुत्रि, भानु आत्मजा, सूर्य आत्मजा, काल पिता तनुजा, दिवकर तनुजा आदि।

वरुण के लिए तड़ाग-ईश शब्द का भी प्रयोग हुआ है—

प्रिथमं भाखि तड़ाग पद ईसरास्त्र पुनि भाखु ॥
नाम पासि के होत हैं चीन्ह चतुर चितु राखु ॥३७०॥

तड़ाग के लिए प्रयुक्त नाम

सरोवर, जलधर, मघजाधर, बारिधर, घनजधर, अंबुदजाधर, नीरधर, हरधर, जलजत्राणि आदि।

वरुण पश्चिम दिशा के स्वामी हैं। कवि ने उन्हें पश्चिमेश्वर नाम से भी सम्बोधित किया है—

पच्छम आदि बखानि के ईसर पद देहु ॥
आयुध बहुर बखानीऐ नाम पासि लखि लेहु ॥३०८॥

कालायुध

पाश के कालका शस्त्र होने का वर्णन अनेक छन्दों में है—

बीर प्रिसतनी सुभटहा कालायुध जिह नाम ॥
परो दुस्ट के कंठमें करो हमारो काम ॥२८४॥

दूसरे छन्द में काल को अनेक नामों से पुकारा गया है—

काल अकाल कराल भनि आयुध बहुर बखानु ॥
सकल नाम ए पासि के चतुर चित महि जानु ॥२८५॥

काल के लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम

१. सूर्य-पुत्र छन्द २८६

(सूर्य के लिए भानु, दिवाकर, दिनधि, दिनमणि, दिवकरि, रैनहा, दिनपति, निसरि, दिननाइक, अनेक पर्यायवाची नामों का प्रयोग हुआ है)

२. यम छन्द २९३
३. पितरराज „ २९६
४. दंडी „ २९७
५. यमुनाभ्रात „ २९८
६. पितर ईसर „ ३००
७. पितर नाइक „ ३०१
८. जगत धाइक „ ३०२

ठगायुध

पाश ठगों का भी प्रमुख शस्त्र रहा है। कवि कहता है—

प्रिथम ठगन को नाम ले भायुध बहुत बखान।
सकल नाम ए पासि के चतुर चित्त पहिचान ॥३१०॥

ठगोंके लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम

१. बाटिहा	छन्द ३११
२. मगछिद	,, ३१२
३. मारगमार	,, ३१३
४. पंथ करखए	,, ३१४
५. राह रिपु	,, ३१६
६. धनहरता	,, ३१७
७. माल काल	,, ३१८
८. माया हरन	,, ३१६
६. मगहा, पथहा, पैडहा, धनहा, द्रिवहा	,, ३२०
१०. बिस्वासघा	,, ३२१
११. बिस्व दाइक	,, ३२२

संहारक रूपमें

पक्षी सहारक

पाश या जाल को कवि ने पर्यायवाची ही माना है। जालसे पक्षी पकड़े जाते हैं, इस लिए कवि ने निम्न छन्द में पक्षियों के अनेक प्रकार देकर पाश को उनका 'अंतक' कहा है—

कोकी नोको पच्छि घर पत्री परी बखान॥
पच्छी पच्छि अंतक कहौ सकल पासि के नाम ॥२६४॥

कंठ रिपु

पाश गलेमें पड़ती है। कविने विविध विधि से कठरिपु कहा है—

नारि कठ गर ग्रीव मनि ग्रहिता बहुर बखान॥
सकल नाम ए पास के निकरत चलत अप्रमान ॥२८०॥

रिपु अंतक

रिपु पद प्रिथम बखानि के अतक बहुर बखान॥
नाम पासि के होत हैं लीजहु समझ सुजान ॥४०४॥

खल अंतक

आदि खल सबदु उचरि के अत्यांतक के दीन॥
नाम पांसि के होत हैं चतुर लीजमहु चीन ॥४०६॥

वीरप्रस्तनि

पाश वीर पुरुष को फसाकर उसका अंत कर देती है, इसलिए कविने उसे वीर ग्रस्तनि कहा है—

नाम सु वीरन के सभै मुख तै प्रिथम उचारि॥
ग्रिस्तनि कहि सभ पासि के लीजहु नाम सुधारि ॥३६१॥

वीर पुरुष सेनाका संहारक होता है, इसलिए उसे दलहा (सेनाका नाश करनेवाला) कहा है और पाशको 'दलहाम्रतक' कहा है—

दलहा प्रिथम बखानिके अरयातक को देहु ॥
नाम पासि के होत हैं चीन्हं चतुर चित लेहु ॥४१०॥

वीर पुरुष के लिए सेना से सम्बन्धित निम्न नामोंका प्रयोग हुआ है—

१. प्रितनातक	छन्द ४११
२. धुजनी अरि	,, ४१२
३. बाहनी रिपु	,, ४१३
४ सेना रिपु	,, ४१५
५. हयनी अतक	,, ४१६
६. गयनी अतक	,, ४१७
७. पतिनी अरि	,, ४१८
८. रथनी रिपु	,, ४१९
९. नृपणी रिपु	,, ४२०
१०. भटनी रिपु	,, ४२१
११. बीरणी रिपु	,, ४२२
१२. सत्रुणी रिपु	,, ४२३
१३. जुदनि रिपु	,, ४२४
१४. रिपुणी रिपु	,, ४२५
१५. अरिणी रिपु	,, ४२६
१६. राजनि रिपु	,, ४२७
१७. ईसरणी रिपु	,, ४३८
१८. भूपनि रिपु	,, ४२९
१९. नृपजन ईसणि रिपु	,, ४३०
२०. राजनि रिपु	,, ४३१
२१. एसनि अतक	,, ४३२
२२. नरेसणि रिपु	,, ४३३
२३. रावनी रिपु	,, ४३४
२४. राइनि रिपु	,, ४३५
२५. दंतनि रिपु	,, ४३८
२६. रदनी रिपु	,, ४३९
२७. बारणी रिपु	,, ४४०
२८. द्विपनी रिपु	,, ४४१
२९. दुरदनि रिपु	,, ४४२
३०. सावजनी रिपु	,, ४४३
३१. मातंगनि रिपु	,, ४४४

३२. तुरंगनि रिपु — छन्द ४४५
३३. हस्तनि रिपु — ,, ४४६
३४. दतनी रिपु — ,, ४४७
३५. पदमनि रिपु — ,, ४४९
३६. व्याला रिपु — ,, ४५०
३७. कुजरी रिपु — ,, ४५१
३८. इभी रिपु — ,, ४५२
३९. कुभनी रिपु — ,, ४५३
४०. करनी रिपु — ,, ४५४
४१. सिंधुरी रिपु — ,, ४५५
४२. अनकपी रिपु — ,, ४५६
४३. नागनी रिपु — ,, ४५७
४४. हरिनी रिपु — ,, ४५८
४५. मातंगनि रिपु — ,, ४५९
४६. बाजिनी रिपु — ,, ४६०

पंचम अध्याय

शस्त्रनाम माला में यह सब से बड़ा अध्याय है। इसका वर्ण्य विषय है तुपक (बन्दूक)। इसमें ८५८ छन्द हैं और उनमें पुनरावृत्तिकी भरमार है।

तुपकका वर्णन प्रमुख रूप से निम्न रूपों में हुआ है—

१. संहारक नाम
२. गुण सम्बन्धी नाम
३. रूप सम्बन्धी नाम

अधिकांश भाग तुपक से संहारक रूप से ही सम्बन्धित है। प्रमुख रूप से वह इनकी संहारिणी है

सेना, शत्रु, दुर्जन और सिंह।

सेना संहारिणी—

बाहिन आदि उचारीऐ रिपु पद अंत उचार।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सुकबि सुधार ॥४६१॥

सेना के लिए अनेक और बहुविधि निर्मित नामों का प्रयोग हुआ है। 'पाश' की चर्चा में चतुर्थ अध्याय में सेना के लिए प्रयुक्त ४६ नामों की सूची दी गयी है। इस प्रश्न में उन सभी नामों का घुमा फिराकर प्रयोग हुआ है।

शत्रु संहारिणी

शत्रु आदि सबद उचरीऐ सूलनि अंत उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं चीन चतुर चितु राख ॥६२८॥

दुर्जन संहारिणी

दुर्जन आदि सबद उचर के भछनी अंत उचार ॥
दुर्जन भछनी तुपक को लीजहु नाम सुधार ॥६३३॥

सिंह संहारिणी

तुपक के सिंह सहारक नामो का वर्णन लगभग ३०० छन्दों मे हुआ है—

सिंघ सबद को आदि बखान ॥ ता पाछे अरि सबद सु ठान ॥
नाम तुपक के सकल पछानहु ॥ या में कछू भेद नहीं मानहु ॥७२६॥

सिंह के लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम

१. पुण्डरीक	छन्द ७२७
२. हरजच्छ	,, ७२८
३. मृगराज	,, ७२६
४. पशुपतेश	,, ७३१
५. पशु शत्रु	,, ७३२
६. मृगपति	,, ७३३
७. सिंगी अरि	,, ७३५
८. कृष्णाजिन (हिरन) पति	,, ७३६
९. नैनोत्तम (हिरन) पति	,, ७४०
१०. उदरश्वेत चर्म (हिरन) नाथ	,, ७४४
११. त्रिणचर नाथ	,, ७६४
१२. त्रिणहा नायक	,, ७६६
१३. भू (पृथ्वी) जा (घास)-अतक (हिरन) नायक (पृथ्वी के लिए अनेक नाम)	,, ७७२

२. गुण सम्बन्धी नाम

गुण सम्बन्धी नामों में तीन प्रकार के नाम प्रमुख रूप से आए हैं—

१. तुपक बादलों की तरह ध्वनि उत्पन्न करती है—

घन पद आदि बखान के धुननी अंत उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं चीनहु चतुर अपार ॥६४१॥

२. वह ज्वाल धारिणी है—

ज्वाल आदि सब उचरि कै धरणी अंत उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सुमति सुधार ॥६३८॥

वह ज्वाला का वमन भी करती है—

ज्वाला वमनी आदि कहि मन में सुघर विचार ॥
नाम तुपक के होत हैं जान चतुर निरधार ॥६४०॥

३. वह गोलालय है—

गोला आदि उचार के आलय अंत उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं चीन्ह चतुर निरधार ॥६४६॥

रूप सम्बन्धी नाम

तुपक के रूप सम्बन्धी नाम थोड़े ही हैं। रूप-वर्णन मे 'काष्ठ-पृष्ठ' होना ही उसकी प्रमुख विशेषता है—

कास्ट पृस्टणी आदि उचारहु ॥
नाम तुपक के सकल बिचारहु ॥
भूमिज पृस्ठनि पुन पद दीजै ॥
नाम चीन्हु तुपक को लीजै ॥६७३॥

चरित्रोपाख्यान

दशम ग्रंथ में चरित्रोपाख्यान सर्वाधिक दीर्घ, साथ ही इस विशाल सकलन की सर्वाधिक विवादपूर्ण रचना है। वैसे तो सम्पूर्ण दशम ग्रन्थ का कर्तृत्व ही विवादास्पद रहा है परन्तु जितना मतभेद इस रचना के सम्बन्ध मे है उतना अन्य किसी के सम्बन्ध में नहीं है।

चरित्रोपाख्यान एक बृहत् कथा संग्रह है। कुल कथाओं में गणना तो ४०५ की दी गयी है, परन्तु इनकी संख्या लगभग ४०० है। ३२५वीं कथा बीच मे है ही नहीं तथा कुछ कथायें एक से अधिक कथाओं मे बटी हुई हैं।

भाई मनीसिंह के जिस ऐतिहासिक पत्र का इसके पूर्व उल्लेख किया गया है (अध्याय ३) उसमें लिखा है—"पोथियाँ जो ऋडांसिंघ हाथि भेजी थीं, उना विचि साहिबां दे ३०३ चरित्तर उपखिआन दी पोथी जो है सो सीहांसिंघ नू महल विचि देना जी।" भाई मनीसिंह इस पत्र में ३०३ चरित्रों के उपाख्यान का उल्लेख करते हैं, परन्तु आज दशम ग्रंथ में ये कथायें लगभग ४०० हैं। ज्ञानी हरज्ञानसिंह बल्लभ ने अपने एक लेख[1] मे लिखा है कि मूल पोथी में ३०३ चरित्र ही होंगे। बाद मे प्रतिलिपिकारों ने इस रचना में कुछ क्षेपक चरित्र जोड़ दिये होंगे।

चरित्रोपाख्यान की चरित्र-संख्या में एक अंक की गड़बड़ बहुत दूर तक चलती दिखाई देती है। कुछ कथाओं में चरित्र-संख्या का उल्लेख कवि ने ही कर दिया है परन्तु उस कथा की समाप्ति पर जो अंक दिया गया है वह उससे मेल नहीं खाता। उदाहरण-स्वरूप ग्यारहवें चरित्र में ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

बहुर मंत्रि बर राइ सो,
भेद कहिउ समझाई।
सभा बिखै भाखत भइउ,
दसमी कथा बनाइ ॥

इसी प्रकार जब हम ३७वें चरित्र पर पहुँचते हैं तो उसके प्रारम्भ में यह दोहा पढ़ते हैं—

नर चरित्र नृप के निकट,
मंत्री कहा बिहार।
तबै कथा छत्तीसवीं,
इह बिधि कही सुधार ॥

---

१. पंजाबी दुनिया (जून १९६० के अंक में प्रकाशित)।

ज्ञानी हरनामसिंह बल्लभ का मत है कि मूल पोथी में भगवती स्तुति वाला चरित्र नहीं होगा। प्रतिलिपिकार ने इस चरित्र को इस शृंखला में जोड़कर उसे प्रथम चरित्र का स्थान दे दिया। इस प्रकार प्रतिलिपि करते समय वह चरित्र एक को दो, दो को तीन आदि लिखता चला गया।

भाई मनीसिंह के पत्र में उल्लिखित ३०३ चरित्र और आज उपलब्ध ४०५ चरित्रों के मध्य क्षेपक अंश कितना है, इस दृष्टि से व्यापक शोध की आवश्यकता है।

इस रचना के अध्ययन से इतना तो स्पष्ट है कि यह अपने ढंग की एक अद्वितीय रचना है। पंजाबी के सुप्रसिद्ध आलोचक डा० मोहनसिंह का यह कथन उचित ही है कि यह रचना मध्यकालीन भारत में जानी जाने वाली सभी पंजाबी और गैरपंजाबी, भारतीय और गैर भारतीय कथाओं का विश्वकोश (Encyclopaedia) है।

इस संग्रह में संग्रहीत रचनाएं सभी दृष्टियों से इतनी विविधतापूर्ण हैं कि इस बात का आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि आनन्दपुर जैसे पहाड़ी प्रदेश में बैठकर गुरु गोबिन्दसिंह ने इनका संग्रह किस प्रकार किया होगा।

उद्देश्य

इन कथाओं के संग्रह की पृष्ठभूमि में क्या उद्देश्य हो सकता है? प्राचीन काल में इस प्रकार की रचनाएं किसी नैतिक उद्देश्य को दृष्टि में रखकर लिखी जाती थीं। पाठकों का मनोरंजन करना और उस मनोरंजन के माध्यम से किसी नैतिक तथ्य की प्रतिष्ठा करना इन कथाओं का उद्देश्य हुआ करता था। रोचक कथाओं को पढ़ने एवं सुनने की रुचि मनुष्य-मात्र में होती है। कौतूहल, शौर्य प्रदर्शन, चतुराई, छल-प्रपंच, हास्य आदि बहुत से विषय इन कथाओं में संजोए जाते रहे हैं। परन्तु स्त्री-पुरुषों के मध्य काम-व्यापार की कथाएं संसार भर के सभी कथा-संग्रहों में प्रमुखता पाती रही हैं। नर-नारी का शारीरिक सम्बन्ध मनुष्य की सृजनात्मक प्रकृति का आदि काल से प्रेरणा-स्रोत रहा है। प्राकृत-लोक जीवन में यह सम्बन्ध बड़ी मुखर काम-कथाओं के माध्यम से व्यक्त होता है। थोड़ी कलात्मक सूक्ष्मता ग्रहणकर यही सम्बन्ध साहित्य में 'रसराज' शृंगार के रूप में प्रतिष्ठित होता है और यही रति भाव अति सूक्ष्म होकर भक्तिभाव में परिणत हो जाता है।

चरित्रोपाख्यान की अधिकांश कहानियों का केन्द्रीय विषय भी स्त्री-चरित्र है और अनेक रूपों से उसके पुरुष-सम्बन्ध के द्वन्द्व को व्यक्त किया गया है। इन नारी पात्रों की कामुकता, प्रेम भावना, शौर्य, चतुराई, कर्तव्यपरायणता आदि का वर्णन इन कथाओं में है।

डा० हरिभजनसिंह ने इन उपाख्यानों की रचना के उद्देश्य का विश्लेषण करते हुए लिखा है—[1]

'इन कथाओं की रचना सं० १७५३ वि० में आनन्दपुर में हुई। इस समय गुरु गोबिन्दसिंह धर्मयुद्ध के लिये सेना संगठन कर रहे थे। इनकी श्रोता मंडली अधिकांशतः धर्मयुद्ध के सेनानियों की ही रही होगी, ऐसा अनुमान लगाना उचित ही होगा। कथाओं को अपने श्रोताओं के लिए सहज ग्राह्य बनाने के लिये कवि ने कई एक स्थानों पर कथन और

१. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ० ४१२-१३।

वर्णन मे सुसंस्कृत शैली की आवश्यकताओ की ओर ध्यान नही दिया। अतः कुछ स्थानो पर काम-क्रीड़ा का नग्न चित्रण उपस्थित हो गया है, जो शिष्ट-सस्कारों पर आघात करता है। सेनानियो के लिये नारी चरित्र का, विशेषतः उनकी कामपरकता और धूर्तता का अतिरंजित चित्र उपस्थित करने का दायित्व उन परिस्थितियों पर है जिनमे इस ग्रथ की रचना हुई थी। धर्मयुद्ध के लिए यह सगठन बहुत दिनो के पश्चात हो रहा था। इस सगठन के सदस्यों के लिए गृहस्थ के मोह का त्याग बहुत आवश्यक था। गुरु गोबिन्दसिंह से पहले गुरु तेगबहादुर द्वारा भी इसी त्याग का प्रचार प्रारम्भ हो चुका था। दूसरा कारण इस सगठन की भौगोलिक परिस्थिति में निहित था। आनन्दपुर शिवालिक पर्वतमाला की तलहटी में बसा हुआ एक नगर है। यहीं बैठकर गुरुजी को मुगल सत्ता के विरुद्ध धर्मयुद्ध का संचालन करना था। यहाँ युद्ध के साथ धर्म शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। वे अपने सेनानियों के युद्ध-कर्म को जितना महत्व देते थे, उतना ही उनके धर्म, उनके नैतिक विकास के लिये भी सतर्क थे। इन सेनानियों के मार्ग में नारी एक बहुत बड़ा प्रलोभन थी। गृहस्थ से दूरी, पार्वत्य क्षेत्र मे नैतिकता का पतनशील स्तर और युद्धों मे शत्रुओं की नारी पर बलात्कार करने की छूट—ये सब परिस्थितियाँ उपर्युक्त प्रलोभनों को बहुत कुछ यथार्थ रूप प्रदान कर रही थीं। गुरु गोबिन्दसिंह ने उपदेश और व्याख्यान, दोनो रीतियो से अपने अनुयायियों को इस प्रकार के प्रलोभन के प्रति सावधान किया। उन्होने अपने सैनिकों को जिन चार 'बज्जर कुरैहतो'—बज्र कुरीतियो अथवा घातक अपराधो से बचने का उपदेश बड़ी कड़ाई से दिया उनमें से एक था 'परस्त्री गमन'। इसी उपदेश को सेनानियो के हृदय मे बैठाने के लिए चरित्रोपाख्यानो की रचना हुई, ऐसा अनुमान सहज मे ही किया जा सकता है।"

चरित्रोपाख्यान जैसी रचनाओ के मूलभाव को आत्मसात करने के लिए उस युग की परिस्थितियों का सूक्ष्म आकलन बहुत आवश्यक है। 'परिस्थितियों की पृष्ठभूमि, अध्याय में इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला गया है। १७वीं और १८वीं शताब्दी के अतिशय काम-प्रधान युग में बादशाहों-नवाबों और राजे-महाराजो से लेकर सामान्य जनता तक के जीवन में, ऐसा लगता है कि, काम-व्यापार के अतिरिक्त कोई महत् उद्देश्य रह ही नहीं गया था। १५वीं, १६वीं शताब्दी का भक्ति आन्दोलन भी धीरे-धीरे अपने आध्यात्मिक रूप को खोकर स्थूल काम-चेष्टाओं की अभिव्यक्ति का साधन बनता जा रहा था। महलो से लेकर झोपड़ियो तक आशिकाना गजलों, फारस की अश्लील प्रेम कहानियों तथा लोक-जीवन मे प्रचलित काम-कथाओ को कहने-सुनने का आम रिवाज था। इन कथाओ के वक्ता, श्रोता और रचयिता अधिकतर पुरुष हुआ करते थे इसलिए इन कथाओं की केन्द्र ऐसी स्त्रियाँ हुआ करती थीं जो अपने छल, प्रपंच और धूर्तता से पुरुषों को सम्मोहित कर उन्हें अपने प्रेमपाश मे आवद्ध कर लेती थी।

चरित्रोपाख्यान की अधिकाश कथाएं इसी विषय की हैं। यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने सैनिकों को इस प्रकार के प्रलोभनों से सावधान करने के लिये ऐसी कथाओं का सकलन किया होगा। चरित्रोपाख्यान में सग्रहीत इक्कीसवें चरित्र में परनारीगमन की जितनी स्पष्ट शब्दों में निन्दा की गई है, वही इस रचना का

केन्द्रीय उद्देश्य बिन्दु ज्ञात होता है ।[1] परन्तु कुछ कथाओं का वर्णन इस सीमा तक अश्लील है, और उसमे प्रयुक्त शब्दावली इतनी नग्न है कि गुरु गोबिन्दसिंह जैसे धार्मिक पुरुषों के साथ उन्हें जोडना बहुत विचित्र लगता है और यही कारण है कि गुरु गोबिन्दसिंह के प्रति पूज्य भाव रखने वाला कोई भी व्यक्ति इस कल्पना मात्र से ही विचलित हो जाता है कि इन कथाओं को संकलित करने और उन्हें पद्य-बद्ध करने का कार्य स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह ने किया था ।

कठिनाई वहां उत्पन्न होती है जब हम आज के नैतिक मूल्यों, मान्यताओं, परिस्थितियों और व्यक्तित्व के आधार पर शताब्दियों पूर्व की कृतियों को परखना चाहते हैं । गुरु गोबिंद-सिंह की अधिकांश रचनाओं, विशेष रूप से चरित्रोपाख्यान के सम्बन्ध में यही कठिनाई है। उस युग के सम्पूर्ण परिवेश और स्वर को आत्मसात् किये बिना न तो इस प्रकार की रचनाओं के प्रति न्याय हो सकता है और न ही रचनाकार के प्रति ।

रचनाकाल

चरित्रोपाख्यान की रचना ग्रंथ के अंत में दी गई तिथि के अनुसार सम्वत् १७५३ की भाद्र सुदी अष्टमी को सतलज के तट पर हुई थी ।[2] ऐतिहासिक दृष्टि से यह समय गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन मे बहुत महत्वपूर्ण है । पहाड़ी राजाओं और मुगल सेनाओं से उनके कतिपय युद्ध हो चुके थे । उनके चारों ओर स्वयंसेवक तथा वेतनभोगी सैनिकों की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही थी । देश-विदेश से बड़े हुए उनके शिष्य युद्धोपयोगी सामग्री के रूप में अपनी भेंट लेकर बड़ी संख्या में उनके पास पहुँच रहे थे । पहाड़ी राजाओं और मुगल सेनाओं को कई बार पराजित करने के कारण एक राज-शक्ति के रूप मे उनका यश चारों ओर बड़ी तीव्र गति से बढ रहा था । गुरु-दरबार का वैभव किसी भी प्रतिष्ठित

१. परनारी के भजे सहस वासव भग पाए ॥
परनारी के भजे चन्द्र कालंक लगाए ॥
परनारी के हेत दससीस सीस गवायो ॥
हो परनारी के हेत कटक कवरन को घायो ॥
× × ×
परनारी सो नेहु छुरी पैनी करि जानहु ॥
परनारी के भजे काल व्यापयो तन मानहु ॥
अधिक हरीफी जानि भोग पर त्रिय जो करहीं ॥
हो अंत स्वान की मृत्यु हाथ लैंडी के मरहीं ॥
× × ×
सुधि जब ते हम धरी वचन गुर दए हमारे ॥
पूत इहै प्रन तोहि प्रान जब लग घट थारे ॥
निज नारी के साथ नेहु तुम नित बढ़ैयहु ॥
परनारी की सेज भूलि सुपनेहूं न जैयहु ॥

२. संवत सत्रह सहज भणिज्जै ॥
अरध सहस फुनि तीन कहिज्जै ॥
भाद्रव सुदि असटमि रविवारा ॥
तीर सतुद्रव ग्रंथ सुधारा ॥
(दशम ग्रंथ, पृ०)

राजदरबार से टक्कर ले रहा था और आश्रयाकांक्षी कविगण दूर-दूर से उनकी सेवा में उपस्थित हो रहे थे।

यही वह समय था जब संगठित होती हुई स्वयंसेवक सेना को नैतिक-पतन की सम्भावनाओं से भी परिचित कराया जाना था। युद्ध-त्रास के शारीरिक और मानसिक दबाव में जीने वाले, परिवार-विरत सैनिकों को हल्के-फुल्के मनोरंजन की भी कितनी आवश्यकता होती है यह सभी युद्ध-विशेषज्ञ और सैनिक-मनोविज्ञानवेत्ता अच्छी तरह जानते हैं। चरित्रोपाख्यान की कहानियाँ अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित सैनिकों के लिए यह महत्त्वपूर्ण कार्य भी करती होंगी।

कथा-सूत्र

चरित्रोपाख्यान की लगभग चार सौ कहानियाँ जिस मूलकथा से सम्बद्ध की गयी हैं, वह इस प्रकार है—

चित्रवती नामक नगरी में चित्रसिंह नाम का एक राजा था। इंद्रसभा की एक अप्सरा राजा का अनुपम रूप देखकर मोहित हो गयी। उन दोनों के मिलन से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम हनुवंतसिंह रखा गया।

कुछ वर्ष तक राजा के साथ आमोद-प्रमोद का जीवन व्यतीत कर अप्सरा इंद्रलोक वापस चली गई। उसके पश्चात राजा चित्रसिंह ने ओड़छा नरेश की कन्या चित्रमती से विवाह कर लिया। चित्रमती युवा राजकुमार हनुवंतसिंह पर मुग्ध हो गयी और उसने उसके सम्मुख काम-प्रस्ताव रखा। हनुवंतसिंह ने विमाता के काम-प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। अपमानिता चित्रमती ने हनुवंतसिंह से प्रतिशोध लेने के लिए राजा चित्रसिंह के सम्मुख उसके चरित्र पर मिथ्या आरोप लगा दिया। राजा ने क्रोधित होकर राजकुमार को प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी। परन्तु राजा के चतुर मन्त्री ने वास्तविकता बूझ ली और निर्दोष राजकुमार को बचाने के लिए राजा को अनेक 'त्रिया-चरित्र' सुनाने लगा। यह क्रम बहुत समय तक चलता रहा। प्रत्येक सध्या को राजकुमार बंदीगृह में भेज दिया जाता। प्रातःकाल उसे फिर बुला लिया जाता। तब मंत्री राजा को एक नई कथा सुनाने लगता।

परन्तु चरित्रोपाख्यान में अंत तक इस कथा-सूत्र का निर्वाह नहीं किया गया है। प्रत्येक कथा की समाप्ति पर कवि ने "मन्त्री भूप संवाद"[1] का उल्लेख तो किया है परन्तु अंत में परिणाम क्या हुआ, इसका कोई उल्लेख नहीं है। इस प्रकार जिस मूलकथा का अंग बनकर ये सभी कथायें उभरती हैं वह मूल कथा अन्त के पूर्व ही तिरोहित हो जाती है और सभी कथाएँ स्वतन्त्र सत्ता धारण कर चरित्रोपाख्यान को एक वृहत् कथा-संकलन मात्र बना देती हैं।

वर्ण्य विषय

चरित्रोपाख्यान सग्रहीत लगभग सभी कथाओं का केन्द्रीय विषय नारी-चरित्र है। अधिकांश कथाओं की नायिकायें काम कला में प्रवीण, छल-चातुरी में निपुण और स्वावलम्बी हैं। उत्तर मध्यकाल के भारतीय जन-जीवन में काम भावना किस गहराई तक व्याप्त थी और काम-तृप्ति में नारी, पुरुष की पदानुगामिनी बन किस प्रकार पहल करती हुई आक्रामक रूप धारण कर चुकी थी, इसका बहुविध चित्रण इन कहानियों में मिलता है। हमारी साहित्यिक परम्परा के सम्पूर्ण शृंगार काव्य में पुरुष की प्रधानता रही है और सभी

१. इति श्री चरित्रोपाख्याने त्रियाचरित्रे मंत्री भूप संवादे चारसौ तीन चरित्र समाप्तमस्तु शुभमस्तु।

नायिका-भेद पुरुष दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में ही रचे गये। परन्तु उस काल तक नारी किस प्रकार अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण कर चुकी थी और अब वह केवल अपने प्रेम-भाव का नारी सुलभ संकेत देने अथवा याचना करने की ही स्थिति में नहीं थी, वरन् उसकी प्राप्ति के लिए छल-कपट का सहारा लेती थी, आवश्यकता पड़ने पर पुरुष पर 'बलात्कार' करने से भी नहीं चूकती थी। चरित्रोपाख्यान में कुछ ऐसी कहानियाँ भी हैं जिनमें कोई शक्ति-सम्पन्न स्त्री किसी पुरुष पर मोहित होकर उसे पकड़ मँगवाती है, उसके सम्मुख काम-प्रस्ताव रखती है, पुरुष द्वारा अस्वीकार किये जाने पर वह उसे जूतों से पिटवाती है और उसे संभोग करने के लिए बाध्य कर देती है। छल-कपट, अपयश का भय दिखाना, नशीली चीज पिलाकर मदमस्त कर देना आदि हथकंडों का प्रयोग तो स्त्री नायिकाओं द्वारा इन कथाओं में अनेक स्थानों पर किया गया है।

इन सभी कथाओं में एक विशेष बात दिखाई देती है कि नारी कहीं भी अबला नहीं है। काम-कथाओं में तो वह पुरुष से प्रतिशोध लेती ज्ञात होती है। पुरुष की कामुकता ने ही नारी को युगों-युगों से पीड़ित किया था। यहाँ वह इस दुर्बलता का पूरा लाभ उठाती है और कामान्ध पुरुष को अपने इशारों पर नचाती है। इस प्रकार इन कथाओं में आए पुरुष-पात्र जहाँ कामी और मूर्ख हैं, वहाँ स्त्री-पात्र बड़े दृढ़निश्चयी, सतर्क, चतुर और संतुलित हैं।

चरित्रोपाख्यान की अधिकांश कथाओं का विषय काम है। कुछ कहानियों में भारतीय और सामी परम्परा की बहुख्यात प्रेम कथाओं का वर्णन है। कुछ कथाओं में नारी-पात्रों द्वारा अपने शील और पति-परिवार की रक्षा के लिए किये गये युद्धों का वर्णन है। कुछ कथाओं का विषय हास्य और विनोद है।

कदाचित इसी आधार पर डा० हरिभजनसिंह ने[1] इन सभी कथाओं को चार वर्गों में बाँटा है—

१. प्रेम कथाएँ
२. शौर्य कथाएँ
३. विनोद कथाएँ
४. काम कथाएँ अथवा छल कथाएँ

जैसा कि पहले कहा गया है, चरित्रोपाख्यान की अधिकाश कथाएँ अंतिम वर्ग की हैं। इन कथाओं का घटना-क्रम या तो नितान्त काल्पनिक रहा होगा अथवा उनकी प्रसिद्धि सीमित क्षेत्रों और वर्गों तक ही होगी। परन्तु अन्य वर्गों की कथाओं (प्रेम, शौर्य, विनोद) के घटना-क्रम और पात्र अपेक्षाकृत बहुख्यात, ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा काव्य-स्वीकृत थे।

चरित्रोपाख्यान में निम्नलिखित प्रेम-कथाएँ उपलब्ध हैं—

हीर-राझा (चरित्र ९८), सोहणी-महीवाल (चरित्र १०१), सस्सी-पुन्नूं (चरित्र १०८), मिर्जा-साहिबाँ (चरित्र १२९), सम्मी ढोला (चरित्र १६१), माधवानल काम-कंदला (चरित्र ९१), रत्नसेन-पद्मावती (चरित्र १६६), यूसुफ-जुलैखाँ (चरित्र २०१), कृष्ण-राधिका (चरित्र १२), कृष्ण-रुकमणी (चरित्र ३२०), भर्तृहरि-पिंगला (चरित्र २०२), नल-दमयंती (चरित्र १५७)।

---

१. *गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य*, पृ० ४१६।

शौर्य कथाएँ

राजा विजयसिंह की दुहिता का युद्ध (चरित्र ५२), मित्रसिंह की पत्नी की वीरता (चरित्र ६५), बैरम खाँ की पत्नी गौहर बेगम की वीरता (चरित्र ९६), कैकेयी द्वारा दशरथ के रथ का संचालन (चरित्र १०२), अभयसिंह की दो पत्नियों का युद्ध-भूमि में वीरगति प्राप्त करना (चरित्र १२२), मोहनी द्वारा असुरों को छला जाना (चरित्र १२३), इंद्रमती द्वारा निशाचर का छला जाना (चरित्र १२५), पति के वीरगति प्राप्त होने पर पत्नी का सती होना (चरित्र १२६), मानवती का अपने पति की रक्षा करना (चरित्र १२८), द्रौपदी की वीरता (चरित्र १३७), उषा-अनिरुद्ध की कथा (चरित्र १४२), कोह नामक बलोच की पत्नियों की वीरता (चरित्र १४७), कुपितसिंह की पत्नी का युद्ध संचालन (चरित्र १५१), जम्भासुर के मोहनी द्वारा ठगे जाने की कथा (चरित्र १५२), सुवीरमती का डाकुओं से युद्ध (चरित्र १५६), मारवाड़पति जसवन्तसिंह की पत्नियों का औरंगजेब से युद्ध (चरित्र १९५), कैलाशमती का शाहजहाँ से युद्ध (चरित्र २०४), मुसकमती का अकबर से युद्ध (चरित्र २०७), सिकंदर की विजय यात्रा (चरित्र २१७), मिद्रराज का शमसुद्दीन से युद्ध (चरित्र२६७), प्रीतिकला की चतुरता (चरित्र ३३३), कांवलदेवी का अलाउद्दीन की सेना से युद्ध (चरित्र ३३६), नरकासुर-कृष्ण युद्ध (चरित्र ३०२), महाकाल का तुरकों से युद्ध (चरित्र ४०५)।

विनोद कथाएँ

गप्पी वणिक की पत्नी द्वारा पति को मिथ्या भाषण से रोका जाना (चरित्र २६), मूर्ख जुलाहा किस प्रकार निरपराध होने पर भी अपनी मूर्खता के कारण पीटा गया (चरित्र ६३), चोर सुनार को एक सावधान स्त्री ने किस प्रकार ठगा (चरित्र ७०), कथा रचयिता (गुरु गोबिन्दसिंह) ने किस प्रकार कपाल मोचन नामक तीर्थ स्थान की पवित्रता को भंग करने वाले यात्रियों को दण्ड दिया और अपने अनुयायियों के लिए सिरोपाव का प्रबंध किया (चरित्र ७१), पलवल नगर के बनियों का बैरम खां नामक चोर द्वारा ठगा जाना (चरित्र ७४), गजनी निवासी मुग़ल का एक चोर द्वारा ठगा जाना (चरित्र ७५), चार ठगों ने एक मूर्ख से बकरा किस प्रकार छीना (चरित्र १०६)।

प्रारम्भ और अन्त

चरित्रोपाख्यान के प्रारम्भ (मंगलाचरणांश) और अंत (महाकाल का दीर्घदाढ़ से युद्ध) का इस ग्रंथ के अध्ययन में विशेष महत्व है। यही वह अंश है जो चरित्रोपाख्यान जैसी विवादास्पद रचना को दशम ग्रंथ की मूल सृजन-चेतना के साथ बाँधने में हमारी सर्वाधिक सहायता करता है। दशम ग्रंथ के मूल स्वर की चर्चा इस प्रबन्ध में अनेक स्थानों पर की गयी है। तत्कालीन पीड़ित, पराधीन और शक्तिहीन समाज को प्राचीन भारतीय ग्रंथों, वीर-प्रसंगों और ईश्वरीय शक्ति का आश्रय लेकर उसे सशक्त के लिए सन्नद्ध करना दशम ग्रंथ के रचयिता का मूल हेतु है। वीर भावों को जाग्रत करने के लिए 'काल' और 'काली' शक्ति स्रोत गुरु गोबिन्दसिंह के प्रिय इष्ट हैं। ये दोनों ही शब्द भारतीय जन मानस में अपने युद्धपरक, संहारक, विकराल और शक्ति-सम्पन्न स्वरूप के कारण शताब्दियों से गहरे पैठे हुए थे। गुरु गोबिन्दसिंह ने इन्हीं शब्दों को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वीकार किया। परन्तु इस स्वीकृति में उनका एक वैशिष्ट्य भी है। उन्होंने 'काल' और

'काली' को सामान्य देवता या देवी के स्तर से बहुत ऊपर उठाकर उनमे अपनी कल्पना और अपनी आस्था के 'परब्रह्म' का आरोप किया। यही वह वैशिष्ट्य है जो गुरु गोबिन्दसिंह को सर्वसामान्य 'देव पूजक' या 'देवी पूजक' स्थिति से पृथक कर देती है।

चरित्रोपाख्यान का प्रारंभ भी 'काली' की स्तुति से होता है—

तुही खड़गधारा तुही बाढ़वारी ॥
तुही तीर तरवार काती कटारी ॥
हलब्बी जुनब्बी मगरबी तुही है ॥
निहारौं जहाँ आपु ठाढ़ी वही है ॥१॥

कवि चाहता क्या है—

तुही आप को निहकलकी बने है ॥
सभे ही मलेछान को नास के है ॥
महया जान चेरो मया मोहि दीजे ॥
चहौं चित्त मैं जो वहै मोहि कीजे ॥१६॥

चरित्रोपाख्यान के मध्य की अनेक कथाओं में भी अनेक युद्ध-प्रसंग हैं, परन्तु इस ग्रंथ की समाप्ति एक लम्बे युद्ध-वर्णन से होती है।

सतयुग मे सत्य सन्धि नाम का एक राजा था। उसका यश चौदहों पुरियों में व्याप्त था। उसने दैत्यो का सहार कर देवताओं को निश्चिन्त कर दिया था। कुछ समय पश्चात् दीर्घदाढ़ नामक एक दैत्य उत्पन्न हुआ। वह एक विशाल सेना लेकर देवताओं से युद्ध करने के लिए आ गया। देवताओं ने भी अपनी सेना एकत्र की। उन्होने सूर्य को सेनापति बनाया। दक्षिण भुजा चन्द्र ने सभाली और वाम कीर्तिकेय ने। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध प्रारंभ हो गया। युद्ध में देवता दुर्बल पड़ने लगे तो सत्यसन्धि उनकी सहायता के लिए आ गया। इससे दीर्घदाढ़ उससे कुपित हो गया और सत्यसंधि से भी युद्ध करने लगा। यह युद्ध वर्षों तक चलता रहा। अंत में देवताओं की सहायतार्थ स्वयं 'महाकाल' अवतरित हुए। उन्होंने सभी दैत्यों का सहार किया और संतो की रक्षा की। जो लोग महाकाल की शरण मे आ गये, वे सुरक्षित रहे, शेष नष्ट कर दिये गये।[1] जो लोग उनकी पूजा नित्यप्रति करते हैं, असिकेतु उन्हें हाथ देकर बचा लेते हैं।[2]

इसी क्रम मे कवि अपनी मनोकामना व्यक्त करता है—

अब रच्छा मेरी तुम करो। सिख्य उबारि असिख्य सघरो ॥
दुस्ट जिते उठवत उत्पाता। सकल मलेच्छ करो रणघाता ॥३९६॥
जे असिधुज तव सरनी परे॥ तिनके दुस्ट दुखित ह्वै मरे ॥
पुरख जवन पगु परे तिहारे ॥ तिनके तुम सकट सभ टारे ॥३९७॥

क्योंकि उनके इष्टदेव का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है—

संतन दुख पाए ते दुखी ॥
सुख पाए साधन के सुखी ॥ (द० ग्र० पृ० १३८७)

---

१. महाकाल की जे सरनि परे सु लए बचाइ ॥
और उपजा दूसर अग भइयो सभै बनाइ ॥३९६॥

२. जे पूजा असिकेतु की नितप्रति करै बनाइ ॥
तिन पर अपनो हाथ दै असिधुज लेत बचाइ ॥३९७॥ (द० ग्र० पृ० १३८५)

गुरु गोबिन्दसिंह की भक्ति भावना

गुरु गोबिन्दसिंह लगभग दो सौ वर्ष पूर्व प्रस्थापित गुरुनानक की आध्यात्मिक परम्परा के दसवें उत्तराधिकारी थे। उस समय तक सिख गुरुओं के मत का प्रचार पंजाब और पंजाब के बाहर के प्रदेशों में हो चुका था। एक ओर काबुल और कान्धार से तथा दूसरी ओर आसाम से श्रद्धालुगण आकर सिख गुरुओं के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते थे। स्वाभाविक रूप से गुरु गोबिन्दसिंह ने उस उत्तरदायित्व के अनुकूल ही, अपनी भक्तिमयी अभिव्यक्ति पूर्ववर्ती नौ गुरुओं के अनुसार ही रखी है।

किन्तु गुरु गोबिन्दसिंह तक आते-आते सिख सम्प्रदाय एक विशिष्ट राजनीतिक स्वरूप भी ग्रहण कर चुका था। कुछ इतिहासकार गुरु गोबिन्दसिंह को शान्तिपूर्ण धार्मिक सम्प्रदाय को राजनीतिक स्वरूप देने का श्रेय (अथवा दोष) देते हैं किन्तु सिख इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन करने एवं उसके स्वरूप में क्रमिक घटित होने वाले परिवर्तन को ध्यानपूर्वक देखने वाले इतिहासज्ञ से यह छिपा नहीं है कि गुरु गोबिन्दसिंह का दिया हुआ स्वरूप आकस्मिक नहीं था। मध्यकालीन भारतीय संतों, विशेष रूप से सिख गुरुओं ने, पारलौकिक जीवन की उपलब्धियों के सम्मुख इहलौकिक जीवन की कभी उपेक्षा नहीं की। धर्म केवल हमारे पारलौकिक सुख का ही साधन नहीं है, ऐसा ऋषियों ने भी कहा है।[1] गुरु नानक प्रथम मुगल शासक बाबर के समकालीन थे। जैसे-जैसे मुगलों के अन्याय इस देश की जनता पर बढ़ते गए, वैसे ही वैसे गुरुओं द्वारा प्रस्थापित संगठन के स्वरूप परिवर्तन में क्षिप्रता आती गई। जहांगीर के हाथों पंचम गुरु अर्जुनदेव का बलिदान उसी विकसित होते हुए स्वरूप के प्रति मुगल शासन की आशंका थी।

गुरु गोबिन्दसिंह के पितामह छठे गुरु हरगोविन्द ने शाहजहाँ की सेनाओं से अनेक बार युद्ध किया और अपने रहन-सहन के ढंग में वही परिवर्तन किया, जिसे आगे चलकर गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनाया था। इसलिए गुरु गोबिन्दसिंह के सक्रिय सशस्त्र विद्रोह को पूर्ववर्ती गुरुओं के शान्त अहिंसात्मक विद्रोह से पृथक न मानकर उसकी विस्तृति के रूप में ही देखना चाहिए।

मध्यकालीन भक्तों ने ईश्वर के दो रूपों की प्रतिष्ठा अपनी रचनाओं में की है। एक वह जो सर्वोच्च सर्वशक्तिमान, जन्म-मरणहीन, सर्वव्यापी ब्रह्म है, जिसका कोई मित्र नहीं, कोई शत्रु नहीं, जो सबका निर्माता, सबका पालक है। दूसरा अवतारों की परम्परा का, जो

---

१. यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि सः धर्मः—कणाद ऋषि।

दुष्टों का संहार करने, सन्तों को उबारने, असत्य का विनाश कर सत्य की प्रतिष्ठा करने वाला है। पहले प्रकार का ईश्वर हमारी विशुद्ध भक्ति प्रेरणा का निरपेक्ष परिणाम है जबकि दूसरे प्रकार के ईश्वर को सम्भवत सामाजिक परिस्थितियों के कारण अस्तित्व मे आना पड़ता है। हिन्दी के सगुण साकारवादी भक्तो ने भी अपनी रचनाओ मे स्वीकार किया है कि वैसे तो ईश्वर रूप, रंग, आकारहीन है परन्तु वह अपने भक्तो के लिए साकार स्वरूप ग्रहण कर अवतार के रूप मे प्रगट होता है।[1] इसी भावना के अनुसार नृसिंह, राम और कृष्ण भक्त की कल्पना मे आते हैं, साथ ही हिरण्यकशिपु, रावण और कंस का अस्तित्व भी बनता है क्योंकि इनके बिना उन अवतारी ईश्वरों में जन्म की सार्थकता ही सिद्ध नहीं होती।

सिख गुरुओं ने ईश्वर के रूप का प्रतिपादन अधिकांशत. प्रथम रूप मे ही किया है। गुरु नानकदेव ने गुरु ग्रंथ साहब के मूल मन्त्र में उसके 'कर्त्ता पुरुष, निर्वैर, भय रहित, शत्रुता रहित, समय से परे और योनियो मे परे' होने की बात कही है।[2] गुरु ग्रंथ साहब में परमात्मा के सर्वव्यापी रूप का वर्णन स्थान-स्थान पर हुआ है। वह जड़ चेतन, स्थूल-सूक्ष्म सभी में व्याप्त है। चौदह भुवनों और चारों दिशाओ मे वही व्याप्त है।[3] वह सर्वशक्तिमान है, करण कारण समर्थ है।[4]

परमात्मा के इस स्वरूप पर अपनी आस्था रखते हुए भी गुरुओं ने उसके 'संत पालक दुष्ट घातक' स्वरूप की आवश्यकता भी समझी है। सिख गुरुओं ने आध्यात्मिक साधना को संसार से पृथक करके कभी नहीं देखा। उनका सदैव यही आग्रह रहा है कि मनुष्य अपने सांसारिक कर्तव्यों की पूर्ति करता हुआ भी आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है।[5] ईश्वर कहीं हम से बाहर तो है नहीं, वह तो हमारे अंदर उसी प्रकार है जिस प्रकार पुष्प मे गंध और शीशे में छाया व्याप्त है, इसलिए उसे खोजने के लिए वन मे जाने की क्या आवश्यकता है?[6] स्पष्ट है कि गुरुओं ने कर्म त्याग करने को कभी नहीं कहा, बल्कि सांसारिक कर्तव्यों के विधिवत् संपादन पर आग्रह किया है। उनका, मानों यह घोषित वाक्य है—

'मन से राम हाथ से काम'[7]

---

१. अगुन अरूप अलख अज होई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।—तुलसी

२. १ ओंकार सतिनाम, करता पुरखु निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजूनी सभं गुर प्रसादि।
(गुरु ग्रन्थ स.हब, पृ० १)

३. चारि कुंट चउदह भवन सगल बिआपत राम। पउड़ी १४॥ तिथि गउड़ी, महला ५॥

४. करण कारण समरथ प्रभ जो करे सो होई॥
खिन महि थापि उथापदा तिस दिन नहि कोई॥
(पौड़ी वार जेतसरी, महला ५)

५. उदम करेदिआ जीअ तू कमावदिआ सुख भुंचु॥
धिआइदिआ तू प्रभु मिलु नानक उतरी चित॥
(गूजरी की वार, महला ५, गु० ग्र० सा०, पृ० ५२२)

६. काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई॥
पुहुप मद्ध जों वास बसत है मुकुर माह जैसे छाई॥
तैसे ही हरि बसे निरन्तरि घट ही खोजो भाई॥

७. मन महि चितवउ चितवनी उदय करहु उठि नीत।
(गूजरी की वार, महला ५, गु० ग्र० सा०, पृ० ५१६)

और यदि व्यक्ति को गृहस्थ में रहकर, सासारिक उत्तरदायित्वों का भार वहन करते हुए परमात्मा की ओर प्रवृत्त होना है, तो परमात्मा की ओर उसकी प्रवृत्ति कभी उसे सामाजिक उत्तरदायित्वों की ओर से भी निरपेक्ष नहीं होने देगी। समाज पर असद् वृत्तियों वाले लोगो का दबाव बढ़ जाता है, संतजन दुष्टों से पीड़ित होने लगते हैं, तो ईश्वर के उस स्वरूप की कल्पना आवश्यक हो जाती है, जिसमे वह दुष्टो का संहार करके सतो का उद्धार करता है। गुरु गोबिन्दसिंह के पूर्ववर्ती सिख गुरुओ की अभिव्यक्ति मे इस सापेक्ष दृष्टिकोण के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह को ईश्वर के इन दोनों स्वरूपों की अनुभूति अपनी परम्परा से प्राप्त हुई। परन्तु पूर्ववर्ती गुरुओं की भक्ति भावना मे इन दोनो स्वरूपो का कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है। वे अगम अगोचर ईश्वर के अनेक गुणों का वर्णन करते हैं, साथ ही उसमे दुष्ट घातक संत पालक गुण[2] का भी आरोप कर देते हैं।

परन्तु *गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं मे ईश्वर का यह निरपेक्ष और सापेक्ष रूप बड़े* मुखर रूप मे उभरकर आता है। गुरु गोबिन्दसिंह के पूर्ववर्ती गुरुओ के भक्त और जाति-निर्माता या सुधारक रूप मे अधिक अन्तर नहीं था, छठे गुरु हरिगोबिन्द को छोड़कर। वस्तुत उनका भक्त रूप ही सदैव सम्मुख रहता है। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह के व्यक्तित्व मे दो विभिन्न रूप स्पष्ट रूप से झलकने दिखाई पड़ते हैं।

---

१. (१) हरि जुग जुग भगत उपाइआ पैज रखदा आइआ राम राजे।
हरणाखसु दुसटु हरि मारिया, प्रहलादु तराइया रामराजे ॥४॥१३॥२०
(आसा, महला ४, पृ० ४५१)

(२) जिउ पकरि द्रोपदी दुसटा आनी हरि हरि लाज निवारे ॥१॥५॥
(नट नाराइन, महला ४, पृ० ६८२)

२. सामान्यतः हिन्दी में निराकारवादी सतों को निर्गुण का उपासक कहा जाता है। सिख गुरु भी इसी श्रेणी में आते हैं। परन्तु इन सतो ने, विशेष रूप से सिख गुरुओं ने, ईश्वर को निराकार मानते हुए भी कभी निर्गुण नहीं माना। 'भक्ति का विकास' ग्रन्थ में पंडित मुन्शीराम शर्मा के विचार इस दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं—

"निर्गुण तथा सगुण शाखाओं में भक्ति काण्ड का विभाजन हमें सार्थक प्रतीत नहीं होता दार्शनिक दृष्टि से उसमें यथार्थता नहीं है। प्रभु वस्तुतः निर्गुण और सगुण दोनों ही है। प्राकृत गुणों से विहीन होने के कारण वह निर्गुण और स्वीय गुणों से युक्त होने के कारण सगुण है।.........

कबीर, नानक, दादू आदि सन्तों को निर्गुण का उपासक कहा जाता है, परन्तु उन्होंने प्रभु के गुणों का कीर्तन जी भर कर किया है। हा वे प्रभु को साकार नहीं, निराकार अवश्य मानते हैं। निराकार का अर्थ निर्गुण कभी नहीं होता। अनेक भाववाचक सज्ञाएँ निराकार हैं, पर वे सगुण भी हैं। प्रबल पिपासा, भीषण बिभुक्षा, विषय विकृतियां, दीर्घ निदाघ आदि का प्रयोग और अनुभव साहित्य तथा मानव मन किया ही करता है। निर्गुण निराकार तक भी मानव का प्रातिभ ज्ञान पहुंचा है, पर वह वर्णन का विषय नहीं बन सका। वाणी उसके सम्बन्ध में मूक है। वह परा अवस्था है जो साधारणतः पकड़ में नहीं आती। महत्व के उदय में अव्यक्त और निराकार जब सगुण रूप में प्रतिभासित होने लगते है, तभी वे अभिव्यक्ति के विषय बनते है और मनोभूमि तक आते आते वे मानव ग्राह्य हो जाते हैं।" (पृ० ४१०)

पहला, भक्त रूप—जिसमे वे विशुद्ध वैष्णव ढग के भक्त हैं। निराभिमानी, वैराग्य-पूर्ण, शत्रु-मित्र हीन, ईश्वर को सर्वत्र देखने वाले, मानवता की समता के समर्थक, ईश्वर के कृपालु, दयालु, सर्वस्नेही रूप को स्वीकार करने वाले साधक।

दूसरा, जाति निर्माता रूप—अपने पक्ष की विजय और दूसरे पक्ष को पराजय की इच्छा करने वाले। ईश्वर से शत्रुओं का सहार कर अपने और अपने सहायकों की रक्षा की प्रार्थना करने वाले।

पहले रूप मे गुरु गोबिन्दसिंह की परम आकाक्षा सदैव ईश्वर के चरणों मे एकाग्र रहने की है और दूसरे में वे ईश्वर से वह शक्ति चाहते हैं, जिससे वे अपने शत्रुओं से सफलता-पूर्वक युद्ध कर सकें और यदि आवश्यकता पड़े तो युद्धभूमि में शत्रुओ का विनाश करते हुए वीरगति को प्राप्त हों।

इस आधार पर गुरु गोबिन्दसिंह की सभी भक्तिपूर्ण रचनाओ को स्थूल रूप से दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है।

१. विशुद्ध भक्तिपूर्ण रचनाएं

जापु, अकाल स्तुति, स्फुट सैवये, स्फुट विष्णु पद तथा अपनी कथा, ज्ञान प्रबोध आदि रचनाओं के प्रारम्भिक छद।

२. उद्देश्य प्रेरित रचनाओ, चौबीस अवतार, चण्डी-चरित्र (द्वय) और चरित्रो-पाख्यान मे व्यक्त भक्तिपूर्ण अभिव्यक्तिया।

यह विभाजन स्थूल ही है क्योकि विशुद्ध भक्तिपूर्ण रचनाओं में भी ईश्वर के मित्र रक्षक और शत्रु विनाशक गुण की चर्चा अनेक बार की गई है। परन्तु इन रचनाओं में कवि ने शत्रुओं के विनाश की वैयक्तिक प्रार्थना नहीं की है।

वैसे किसी भी लेखक की भक्ति-भावना का मूल्याकन करते समय उसकी रचनाओं मे कोई आधारभूत भेद नहीं किया जा सकता। फिर भी लेखक की पृष्ठभूमि, उसके मूलभूत सिद्धान्त और उसकी प्रवृत्ति के आधार पर उसकी कुछ रचनाओं को इसका प्रमुख आधार बनाया जा सकता है। विशेष रूप से गुरु गोबिन्दसिंह की भक्ति-भावना का विचार करते समय यदि इस तथ्य को दृष्टि मे न रखा गया तो उनकी समस्त भावाभिव्यक्ति मे हमे स्थान-स्थान पर विरोधाभास नजर आएगा और इससे विचित्र सा मतिभ्रम उत्पन्न हो जाने की पूरी सम्भावना है। उदाहरणस्वरूप, एक उपन्यासकार, जिसने मौलिक उपन्यास भी लिखे हैं, साथ ही कुछ उपन्यासो का रूपान्तर भी किया है, का वैचारिक मूल्याकन उसकी मौलिक रचनाओपर ही आश्रित किया जाएगा। इसी प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह की भक्तिभावना का विवेचन उनकी विशुद्ध भक्तिपूर्ण रचनाओ को मुख्याधार बनाकर करना ही न्यायोचित है।

भक्ति क्या है ?

मनको सब ओर से हटाकर भगवान में लगा देना ही भक्ति है। मन यदि अपना हित पुत्र, पत्नी आदि मे देखता है, अशन वसन की चिन्ता करता है, तो वह भगवद्भक्ति के योग्य नहीं है।[1]

---

१. भक्ति का विकास, पृ० ६४२।

भक्ति का लक्षण शाण्डिल्य-सूत्र (२) में इस प्रकार दिया गया है—

'सा परानुरक्तिरीश्वरे'

अर्थात—ईश्वर के प्रति निरतिशय प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। देवर्षि नारद ने भक्ति सूत्र के अन्तर्गत भक्ति के निम्नलिखित भेद गिनाए हैं—गुण महात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, परम विरहासक्ति।[1]

भागवत् पुराण के अनुसार भक्ति नौ प्रकार की है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥[2]

प्रमुख रूप से भक्ति के दो भेद किये जाते हैं—

(१) वैधी भक्ति (२) रागात्मिका भक्ति अथवा प्रेमा भक्ति।

वैधी भक्ति अनेक विधि विधानों से युक्त होती है। इसमें विधि विधानों की इतनी अधिक जटिलता भरी है कि साधक निर्दोष वैधी भक्ति करने में कभी समर्थ ही नहीं हो सकता। यही कारण है कि यह भक्ति सिद्धिरूप न मानी जाकर साध्यरूप मानी जाती है। वैधी भक्ति का सच्चा उद्देश्य रागात्मिका भक्ति को उद्दीप्त करना है। अतः परमेश्वर में निरतिशय और निर्हेतुक प्रेम ही रागात्मिका अथवा प्रेमाभक्ति है। श्रद्धालु, साधक बाह्याडम्बरों और विधिविधान के नियमों से परे हो जाता है।[3]

सिख गुरु सदैव प्रेमा भक्ति के समर्थक रहे हैं। उन्होंने वैधी भक्ति का खण्डन किया है। वैधी भक्ति के समस्त विधि विधानों—तिलक, माला, आसन, पादुका, प्रतिमा-पूजन, पंचामृत, वस्त्र, यज्ञोपवीत, पुष्प, चन्दन, नैवेद्य, ताम्बूल, धूप, दीप आदि की निस्सारता स्थान-स्थान पर प्रदर्शित की गई है।[4]

उन्होंने वैधी भक्ति के बाह्य आचारों को 'पाखण्डपूर्ण भक्ति' के नाम से सम्बोधित किया है।

पाखंडि भगति न होवई पारब्रह्म न पाइआ जाइ ॥[5]

गुरु गोबिन्दसिंह का इष्टदेव

संसार के सभी धर्मों में परमात्मा के अस्तित्व का विश्वास किसी न किसी रूप में है। उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में चाहे जितने तर्क-वितर्क और प्रमाणों का सहारा लिया जाए, अन्ततोगत्वा श्रद्धापूर्वक उसकी अनुभूति ही उसके अस्तित्व को भक्त के हृदय में पुष्ट करती है। सिख गुरुओं ने ईश्वर के अस्तित्व को सर्वत्र देखा। ईश्वर उनके लिए प्रत्यक्ष है और प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

---

१. भक्ति सूत्र, नारद, सूत्र ८२।

२. श्रीमद् भागवत स्कन्ध ७, अध्याय ५, श्लोक २३।

३. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, डा० जयराम मिश्र, पृ० २८३।

४. पढि पुसतक संधिआ बाद। सिल पूजसि बगुल समाधं ॥
मुखि झूठ बिभूखण सारं। त्रैपाल तिहाल बिचारं ॥
गलि माला तिलकु ललाटं। दुइ धोती बसत्र कपाटं ॥
जे जाणसि ब्रहमं करमं। सभि फोकट निसचउ करमं ॥
(श्री गुरु ग्रन्थ, आसा दी वार, महला १, पृ० ४७०)

५. श्री गुरु ग्रन्थ साहब, बिलावलु की वार, महला ३, पृ० ८४६।

बेद कतेब ससार हमाहू बाहरा ।
नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा ॥

(आसा० म० ५, पृ० ३९७)

इसीलिए वे कहते हैं कि मैं जिधर भी देखता हू मुझे उसी के दर्शन होते हैं—

जह जह देखा तह तह सोई ॥

(प्रभाती म० १, पृ० १३४३)

परन्तु इतना प्रत्यक्ष होते हुए भी उस ईश्वर को सब तो नही देख पाते । उसे देखने के लिए तो विशेष दृष्टि उत्पन्न करनी पड़ती है । वे आँखें और ही होती हैं जो उसके दर्शन कर लेती हैं[1]—

नानक से अखडीआ बिअनि जिनी दिसदो माविरी ।

(वडहस म० ५, पृ० ५७७)

सिख गुरुओ ने ईश्वर के निराकार रूप पर ही अधिक आग्रह किया है । उसे जन्म-मरण से परे माना है—

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु कालु न करमा ।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु कालु न करमा ॥

(सोरठ म० १, पृ० ५९७)

गुरु गोबिन्दसिंह ने इसी भाव को 'जापु' के प्रथम पद मे इस प्रकार कहा है—

चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ॥
रूप रग अरु रेख भेख कोउ कहि न सकति किह ॥
अचल मूरति अनुभउ प्रकाश अमितोज कहिज्जै ॥
कोटि इद्र इद्राणि साहि साहाणि गणिज्जै ॥
त्रिभुवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत ॥
तब सरब नाम कत्थै कवन करम नाम बरणत सुमत ॥

(दशम ग्रंथ, पृ० १)

पौराणिकता

मध्ययुगीन भारतीय भक्ति-साधना मे पौराणिकता का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है । डा० मुंशीराम शर्मा ने अपने ग्रथ 'भक्ति का विकास' में लिखा है—

"सूक्ष्म को स्थूल, अव्याकृत एव अनिरुक्त को व्याकृत तथा निरुक्त रूप में कहने की प्रणाली पौराणिक है । पुराण साहित्य सूक्ष्म जगत के तत्त्वों को कथानकों के द्वारा समझने का प्रयत्न करता है । ऊपरी आवरण को देखने से कहानी कभी-कभी असगत भी प्रतीत

१. गीता में भी इसी भाव की पुष्टि की गई है:—
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥ अध्याय ११ ॥
[illegible] नहीं देख सकेगा ।
[illegible] द्वारा तू मुझ ईश्वर
[illegible]

होती है, पर रूपकथा अन्योक्ति के आवरण को हटाकर देखिए, तो कहानी के गर्भ में छिपे आध्यात्मिक संकेत स्पष्ट होने लगते हैं। कतिपय कहानियां ज्ञान कर्म या भक्ति की महत्ता प्रकट करने के लिए भी गढ़ी गई हैं। इस रूप में वे पुरानी होते हुए भी नवीन हैं। पुराण का अर्थ भी यही है। पुरा—प्राचीन—जिस पद्धति से नव—नया—बनता रहता है, वह पुराण है। ज्ञान के सूक्ष्म सूत्र समझ में कम आते हैं, पर पुराण की शैली में कहे गये वही सूत्र शीघ्र हृदयगम हो जाते हैं। पुराणों में जो कहानियां भक्ति मार्ग को प्रतिष्ठा और प्रचार के लिए लिखी गई थीं, उनका प्रयोग निर्गुण साधकों ने भी किया था और सगुण भक्ति के प्रतिपादकों ने भी।"

गुरु गोबिन्दसिंह के पूर्ववर्ती गुरुओं ने अवतारवाद का खण्डन करते हुए और निराकार, अगोचर, अजन्मा की भक्ति का प्रचार करते हुए भी 'अवतारों' से सम्बन्धित कथाओं और उनके द्वारा जिनका उद्धार हुआ, ऐसे भक्तों का उल्लेख, भक्ति की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए अनेक स्थानों पर किया है। प्रह्लाद, अजामिल, गणिका, द्रौपदी आदि कथाओं के संकेत गुरु ग्रंथ साहब में यत्र-तत्र मिलते हैं।

दशम ग्रंथ का अध्ययन करते समय हमारे सम्मुख पौराणिक भावना के दो रूप स्पष्ट होकर आते हैं।

१. जहां अवतारवाद का स्पष्ट खंडन किया गया है। निराकार परमात्मा की भक्ति का आग्रह है। फिर भी परमात्मा के दयालुता एवं कृपालुता आदि गुणों पर प्रकाश डालने के लिए पौराणिक कथाओं का उल्लेख आदि ग्रंथ के अनुसार हुआ है।

२. जहां अवतारवाद को स्वीकार किया गया है। परन्तु अवतारी ईश्वर को ब्रह्म के समकक्ष नहीं माना गया। यह दृष्टिकोण अद्वैतवादी दृष्टिकोण के निकट है। अद्वैतवादियों ने ईश्वर को ब्रह्म नहीं माना वरन् उसे विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न जीव ही स्वीकार किया है। उन्होंने विकास के क्षेत्र में ईश्वर को ब्रह्म से नीचा स्थान दिया है। अवतार भी वे ईश्वर का मानते हैं, ब्रह्म का नहीं।[१]

चौबीस अवतारों का वर्णन करते समय ब्रह्म अथवा काल पुरुष और विष्णु का यह अन्तर अनेक स्थानों पर दिखाई देता है।

प्रथम प्रकार की पौराणिकता गुरु गोबिन्दसिंह को परम्परा से ही प्राप्त हुई। जैसा कि कहा जा चुका है कि ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल, गणिका आदि की पौराणिक कथाएं परमात्मा की संरक्षणता एवं भक्ति की महिमा को सिद्ध करने के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती रही हैं। कबीर जैसे कट्टर निराकारवादी और अवतार विरोधी ने अपनी बात की पुष्टि के लिए इन कथाओं का सहारा लिया था।[२] गुरु गोबिन्दसिंह की विशुद्ध भक्तिपूर्ण रचनाओं में ऐसे कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं—

---

१. डा० मुन्शीराम शर्मा के निबन्ध संग्रह 'प्रथमजा' से इसकी पुष्टि में उद्धरण देकर इस सम्बन्ध में कुछ चर्चा इसी अध्ययन के 'रचनाओं का संक्षिप्त परिचय' अध्याय के 'चौबीस अवतार' खण्ड में की गई है।

२. संत प्रहलाद को पैज जिस राखी।
हरिनाखसु नख बिदर्यो। कबीर ग्रंथावली पद १२१, पृ० ३०२।

... ... (क्रमशः)

आदि अनादि अगाधि कथा ध्रुव से प्रह्लाद अजामल तारे ॥
नामु उचार तरी गनिका सोई नामु अधार बीचार हमारे ॥१०॥[1]

गुरु गोविन्दसिंह की विशुद्ध भक्तिपूर्ण रचनाओं में इस प्रकार के पौराणिक उदाहरण नहीं हैं। हां, परमात्मा का स्वरूप वर्णन करते हुए पौराणिक कल्पनाओं से युक्त साकार रूप की चर्चा उन्होंने अनेक स्थानों पर की है। चतुर्भुज, सारंगपाणि, नील बसन, आजान बाहु, बनवारी, मुरारी आदि नामों का उन्मुक्त प्रयोग हुआ है।[2]

द्वितीय प्रकार की अवतार भावना दशम ग्रंथ की प्रमुख अवतार भावना है। इस प्रबन्ध में अनेक स्थानों पर चर्चा की गई है कि गुरु गोबिन्दसिंह की यह अवतार भावना सोद्देश्य है। गुरु गोबिन्दसिंह केवल एक भक्त या भक्ति के प्रचारक मात्र नहीं थे। भक्त होते हुए भी वे एक राजपुरुष थे, अपने युग के आततायी शासन के विरुद्ध उभरते हुए जन-आन्दोलन के नेता थे। गुरु गोबिन्दसिंह के सहस्रों वर्ष पूर्व गीता में 'साधुओं के परित्राण एवं दुष्टों के विनाश' की व्यक्त उक्ति जन-मन में अवतार की कल्पना को सजीव बनाए हुए थी।[3] भारतीय जनता में यह अटूट विश्वास था कि जब-जब धर्म की हानि होती है और आततायियों का प्रभाव बढ़ जाता है, उस समय ईश्वर का अवतार होता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने स्वयं अपने आपको भी इसी परम्परा में स्वीकार किया है। यद्यपि वे अपने आपको ईश्वर नहीं कहते,[4] परम पुरुष का दास कहते हैं फिर भी उनके जन्म धारण का उद्देश्य वही अवतारों वाला ही है।[5]

राम जपो जिय ऐसे ऐसे ध्रव प्रहलाद जप्यो हरि जैसे ॥ (क० ग्र० पद १७१, पृ० ३२०)
... ...
राजा अम्बरीष के कारिणी, चक्र सुदर्शन जारै ॥
दास कबीर का ठाकुर ऐसो, भगत की सरन उबारै ॥
(क० ग्र० पृ० १२७, पद १२२)

भजन कौ प्रताप ऐसो तिरे जल पाखान।
अधम भील अजाति गनिका चढ़े जात बिमान। (क० ग्र० पृ० ११०, पद ३०१)

१. दशम ग्रंथ, पृ० ६१३।
२. नाम और रूप शीर्षकान्तर्गत विशेष विवरण।
३. जब जब होत अरिष्ट अपारा ॥
तब तब देह धरत अवतारा ॥ (द० ग्र० पृ० १५५)
४. गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने आप को ईश्वर नहीं कहा। परन्तु वे जनता की प्रवृत्ति जानते थे जो अपनी श्रद्धा भावना के कारण किसी भी महापुरुष को ईश्वरत्व का पद प्रदान कर देती है। इसलिए उन्होंने इस सम्बन्ध में स्पष्ट चेतावनी दी कि मुझे तो परमेश्वर का दास ही मानो, जो मुझे परमेश्वर कहेगा, वह नरक कुण्ड में गिरेगा—
जै हमको परमेसर उचरिहै ॥ ते सब नरकि कुंड महि परिहै ॥
मोकह दास तवन का जानो ॥ या मै भेद न रच पछानों ॥ ३२ ॥
(द० ग्र० पृ० ५७)
५. हम इह काज जगत मो आए ॥ धरम हेत गुरुदेव पठाए ॥
जहां तहां तुम धरम बिथारो ॥ दुस्ट देखियन पकरि पछारो ॥ ४२ ॥
(द० ग्र० पृ० ५७)
याही काज धरा हम जनमं ॥ समझ लेहु साधू सभ मनमं ॥
धरम चलावन संत उबारन ॥ दुस्ट सभन को मूल उपारन ॥ ४३ ॥
(द० ग्र० पृ० ५८)

इन अवतार कथाओं द्वारा गुरु गोबिन्दसिंह जनता में आत्मविश्वास और शक्ति का संचार करना चाहते थे। देवता कौन है और असुर कौन है? इसकी चर्चा कवि ने 'आत्म-कथा' में इस प्रकार की है—

साध करम जे पुरख कहावै ॥ नाम देवता जगत कहावै ॥
कुकित करम जे जग में करहीं ॥ नाम असुर तिनको सभ धरहीं ॥१५॥

(द० ग्र० पृ० ४८)

इन अवतार कथाओं का वर्णन करते समय कवि ने यह अनेक स्थानों पर स्पष्ट किया है कि अवतारों को जन्म देने वाली शक्ति 'काल' है। वही सबको जन्म देता है और अन्त में वही सबको नष्ट करता है।[1] वह स्वयं अनेक रूप धारण करता है फिर उन विभिन्न रूपों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है।[2] सभी अवतार इस महाकाल की आज्ञा द्वारा शासित है। कोटि-कोटि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इसी काल पुरुष के 'देहि' से जन्म लेते हैं।[3] कई स्थानों पर कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी 'काल पुरुष' को समझने में असमर्थ हैं।[4]

काल और विष्णु

पौराणिक साहित्य मे जो स्थान विष्णु को प्राप्त है, कवि ने लगभग वही स्थान 'काल' को अपनी रचनाओं मे दिया है। विष्णु के समान ही वह क्षीर सागर मे शेष नाग की शैया पर शयन करता है।[5] लक्ष्मी उसकी दासी है। विपत्ति पड़ने पर देवता क्षीर सागर में इसी 'काल पुरुष' के पास जाते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि जहा पौराणिक साहित्य में विष्णु सर्वोच्च देवता हैं और पृथ्वी पर असुरों की विजय और देवताओं की पराजय से उत्पन्न आर्तनाद से प्रेरित होकर स्वयं अवतार ग्रहण करते हैं वहां दशम ग्रंथ में 'काल' विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा देता है—

वामनावतार

दीयो आइसं काल पुरखं अपार ॥
धरो बावना बिसन असटम वतार ॥
लई बिसन आगिया चल्यो धाइ ऐसे ॥
लह्यो दारदी भूप भंडार जैसे ॥३॥

(द० ग्र० पृष्ठ १६७)

---

१. काल सभन का करत पसारा ॥
अत काल सोई खापन हारा ॥ (द० ग्र० पृ० १५६)

२. आपन रूप अनंतन धरहीं ॥
आपहि मद्धि लीन पुन करही ॥ (द० ग्र० १५६)

३. काल पुरख की देहि मो कोटिक बिसन महेस ॥
कोटि इन्द्र ब्रह्मा किते रवि ससि कोट जलेस ॥ (द० ग्र० पृ० १८२)

४. जो चउबीस अवतार कहाए ॥
तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए ॥ (द० ग्र० पृ० १५६)

५. शेष नाग पर सोइबो करे ॥
जग तिह सेष साइ उचरे ॥ (द० ग्र० पृ० ४७)

नृसिंह अवतार

सब देवन मिलि करयो बिचारा ॥
छीर समुद्र कहु चलै सुधारा ॥
काल पुरख की करी बड़ाई ॥
इम आगिआ तहसे तिन आई ॥३॥
दिज जमदगन जगत मो सोहत ॥
नित उठि करत अघन उघन हत ॥
तह तुम धरो बिसन अवतारा ॥
हनहु सक्र के सत्रु सुधारा ॥

(द० ग्र० पृष्ठ १६६)

रुद्रावतार

सु कहयो तुम रुद्र सरूप धरो ॥
जग जीवन को चलि नास करो ॥
तबही तिह रुद्र सरूप धरयो ॥
जग जत संघार कै जोग करयो ॥४॥

(द० ग्र० पृष्ठ १७३)

जालन्धरावतार

जीय मो सिव ध्यान धरा जबही ॥
कल काल प्रसन्नि भए तबही ॥
कह्यो बिसन जलन्धर रूप धरो ॥
पुनि जाइ रिपेस को नास करो ॥२०॥

(द० ग्र० पृ० १८१)

दशम ग्रंथ मे विष्णु के तेरहवें अवतार के रूप मे 'काल' ने विष्णु को विष्णु रूप में ही अवतार धारण करने के लिए कहा—

करत पुकार धरण भर भारा ॥
काल पुरख तब होत क्रिपारा ॥
सब देवन को अस लै तत आपन टहराइ ॥
बिसन रूप धार तत दिन ग्रह अदिन्त के आइ ॥३॥

(द० ग्र० पृ० १८२)

अरहृत देव

काल पुरख तब भए दइआला ॥
दास जान कह बचन रिसाला ॥
धर अरहृत देव को रूपा ॥
नास करो असुरन को भूपा ॥
बिसन देव आगा जब पाई ॥
काल पुरख की करी बड़ाई ॥

भुम अरहृत देव बन आयो ॥
आन अउर ही पंथ चलायो ॥८॥

(द० ग्र० पृ० १८३)

इसी प्रकार मनु, धन्वन्तरि, सूर्य, चन्द्र आदि अवतारों के सम्बन्ध में भी दशम ग्रंथ के रचयिता ने यही मत व्यक्त किया है।

इस दृष्टि से राम और कृष्ण के अवतारों के वर्णन को कुछ अधिक ध्यान से देखने की आवश्यकता है। यद्यपि ये दोनों अवतार भी इस बात के अपवाद नहीं है। वे भी विष्णु के अवतार हैं और काल पुरुष की आज्ञा से ही अवतार ग्रहण करते हैं—

रामावतार

असुर लगे बहु करै बिखाधा ॥ किनहू न तिनै तनक मैं साधा ॥
सकल देव इकठे तब भए ॥ छीर समुद्र जह थो तिह गए ॥२॥
बहुचिर बसत भए तिह ठामा ॥ बिसन सहित ब्रह्मा जिह नामा ॥
बार बार ही दुखत पुकारत ॥ कान परी कल के धुनि आरत ॥
बिसनादक देव लखे बिमनं ॥
मृद हास करी कर काल धुनं ॥
अवतार धरो रघुनाथ हरं ॥
चिर राज करो सुख सो अवधं ॥४॥

(द० ग्र० पृ० १८८)

कृष्णावतार

ब्रह्मा गयौ छीर निध जहां ॥ काल पुरख इसथित थे तहा ॥
कह्यो बिसन कह निकट बुलाई ॥ किसन अवतार धरो तुम जाई ॥
काल पुरख के बचन ते सतन हेत सहाइ ॥
मथरा मंडल के बिखे जनमु धर्यो हरि राइ ॥३॥

(द० ग्र० पृ० २५४)

परन्तु इन दोनों अवतारों का वर्णन करते हुए कवि ने इनके प्रति इस प्रकार की श्रद्धापूर्ण अभिव्यक्तियां की हैं जो इन्हें उपास्य परमेश्वर के बहुत निकट ले जाती हैं। उदाहरणस्वरूप, रामावतार में जिस समय कैकेयी दसरथ से भरत को राज्य और राम को बनवास की बात कहती है तो दसरथ के शब्दों में कवि ने राम की महत्ता का वर्णन इन शब्दों में किया है—

नर देव देव राम हैं ॥ अभेव धरम धाम हैं ॥
अबुद्ध नारि तै मनै ॥ बिसुद्ध बात को भनै ॥२०३॥
अगाधि देव अनन्त हैं ॥ अभूत सोभवंत हैं ॥
कृपाल करम कारणं ॥ बिहाल दिआल तारणं ॥२०४॥
अनेक सत तारणं ॥ अदेव देव कारणं ॥
सुरेख भाइ रूपणं ॥ समृद्ध सिद्ध कूपणं ॥२०५॥

(द० ग्र० पृ० २०४)

युद्ध में राम के हाथ में मारे गए राक्षस भव सिन्धु पार कर जाते हैं—

अधिक रोस कर राज पलरोधा धावहीं ॥
राम राम बिनु सक पुकारत आवहीं ॥
रुज्झ जुज्झ झड़ पड़त भयानक भूप पर ॥
रामचन्द्र कै हाथ गए भव सिन्ध तर ॥५५६॥

(द० ग्र० पृ० २३२)

कृष्णावतार में ऐसे अगणित स्थल हैं जहां कृष्ण के महत्त्व का वर्णन करते समय पूर्ण पौराणिक परम्परा के अनुसार उनके पूर्व अवतारों का वर्णन किया गया है। जिन्होंने पूतना का संहार किया, त्रिणावृत्त को मारा, अघासुर को समाप्त किया, शिला (अहिल्या) का उद्धार किया, बकासुर की चोंच चीर दी, राम होकर जिन्होंने दैत्यों की सेना का संहार किया और अपने विभीषण को सम्पूर्ण लंका दे दी, उसी प्रकार उन्होंने ब्राह्मणों की पत्नियों का भी उद्धार किया।[1] सखासुर दैत्य को मारने के लिए जिसने मत्स्य का रूप धारण किया। जिस समय सुरों और असुरों ने सिंधु मथा उस समय उन्होंने कच्छ का रूप धारण किया। वही अब यहां कृष्ण बनकर ब्रज में बछड़े चराता है। यह तो संसार को अपने खेल दिखाता है और सभी जीवों की रक्षा करता है।[2]

अनेक स्थानों पर यह बात भी कही गई है कि ब्रज के लोग (*गोपियां, गोप, ब्राह्मण आदि*) बड़े भाग्यशाली हैं कि जिस कृष्ण का सम्पर्क बड़े-बड़े ऋषि-मुनि निरन्तर तपस्या करके भी नहीं प्राप्त कर सकते, उनका सम्पर्क इन्हें कितनी सुविधानुसार प्राप्त है, कृष्णावतार में कृष्ण का यह रूप किसी भी कृष्ण भक्त वैष्णव के मत के अनुकूल ही है।[3]

---

१. पूतना संघारी त्रिणाव्रत को बिदारी देह,
दैत अघासुर हूं को सिरी आइ फारी है ॥
सिला आदि तारी बक हूं की चोंच चीर डारी ॥
ऐसे भूप भारी जैसे भारी चीर डारी है ॥
राम ह्वै के दैतन की सेना जिह मारी,
अरु आपनो बभीखन को दीनी लंका सारी है ॥
ऐसी भांत दिजन को पतनी उधारी,
अवतार लेके साध जैसे पृथमी उधारी है ॥ ३२७ ॥ (द० ग्र० पृ० २६५)

२. दैत सखासुर के मारबे कहु रूप धरयो जल में जिन मच्छा ॥
सिंध मथ्यो जबही असुरासुर मेर तरै भयो कच्छप इच्छा ॥
सो अब कान्ह भयो इह ठउर चरावत है बिज के सभ बच्छा ॥
खेल दिखावत है जग को यह, है करता सभ जीवन रच्छा ॥३५४॥ (द० ग्र० पृ०-२६६)

३. ये बड़भागी (गोपिया) उस (कृष्ण) के साथ खेलती हैं, जिसका अंत बड़े बड़े मुनि भी नहीं पाते—

जाको मुनि नहि अंत लहै इह ताही सो खेल करे बडभागी ॥

(द० ग्र० पृ० ३२६)

जा चतुरानन नारद कौ सिव कौ उठके मोकु धिआवे ॥
नार निवाइ भले तिनको फुन संख बजाइके धूप जगावे ॥

(क्रमशः)

यह तो स्पष्ट है ही कि गुरु गोबिन्दसिंह ने राम, कृष्ण आदि अवतारों की कथा तुलसी और सूर की भांति भक्ति भावना से प्रेरित होकर नहीं वरन् अपने युग की आवश्यकताओं से प्रेरित होकर की थी। इन रचनाओं के आधार वही पौराणिक ग्रंथ थे जिनमें उन अवतारों की कथा भक्ति भाव से कही गयी है। गुरु गोबिन्दसिंह ने उस कथा-परम्परा में अधिक परिवर्तन नहीं किया। उनका सबसे बड़ा परिवर्तन यही था कि उन्होंने विष्णु को सर्वोच्च न मानकर उन्हें भी किसी महत्तर शक्ति से प्रेरित माना परन्तु जहां तक कथा के अन्तर्भाग का सम्बन्ध है उसमें इन अवतारों के ईश्वरत्व को बनाए रखा गया है। इतना होते हुए भी इन अवतार कथाओं में जहां कहीं कवि ने अपना मत व्यक्त किया है वहां इन्हें 'काल पुरुष' के बहुत नीचे मानकर इन पर अपनी अनास्था ही प्रकट की है। रामावतार में उन्होंने एक स्थान पर कहा है जो उनकी (काल पुरुष) शरण में आया वह बच गया वैसे कोई नहीं बचा, चाहे वह कृष्ण हों, विष्णु हों या रघुराय (राम) हो।[1]

पौराणिक पद्धति के अनुसार राम कथा के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए भी[2] वे कहते हैं—हे असिपाणि, मैंने जब से तुम्हारे पांव गहे हैं तब से अन्य किसी को दृष्टि में स्थान नहीं दिया। लोग राम, रहीम, पुराण, कुरान अनेक की चर्चा करते हैं परन्तु मैं एक को नहीं मानता। स्मृतियां, शास्त्र, वेद सभी बहुत प्रकार के भेद बताते हैं, परन्तु मैं एक भी नहीं जानता। यह सब तुम्हारी ही कृपा है....[3]

कृष्णावतार में भी वे कहते हैं—मैं प्रथम गणेश को नहीं मानता, कृष्ण, विष्णु का ध्यान कभी नहीं करता। इन्हें मैंने कानों से सुना मात्र है, इनसे मेरी पहचान नहीं है। मेरी

(क्रमशः)

डारके फूल भली बिध सौ कवि स्याम भनै तिह सो सिर नावै ॥
ते ब्रिजनाथ के साधन को गुन गावत गावत पार न पावै ॥२२७५॥

(द० ग्र० पृ० ५४२)

सूरज चंद गनेस महेस सदा वठके जिह धिआन धरै ॥
अर नारद सो सुक सो दिज ब्यास सो स्याम भनै जिह जाप करै ॥
जिह मार दयो सिसपाल बली जिहके बल ते सभ लोकु डरै ॥
अब बिप्पन के पग धोवत है ब्रिजनाथ बिना ऐसी कउन करै ॥२३५२॥

(द० ग्र० पृ० ५५३)

१. जै तिनकी सरनी परे कर दे लए बचाइ ॥
यों नहीं कोऊ बाचिया किसन बिसन रघुराइ ॥८३६॥ (द० ग्र० पृ० २५२)

२. जो इह कथा सुनै अरु गावै ॥
दूख पाप तिह निकट न आवै ॥
बिसन भगत की ए फल होई ॥
आधि ब्याधि छ्वै सकै न कोई ॥८५९॥ (द० ग्र० पृ० २५४)

३. पाइ गहे जब ते तुमरे तबते कोऊ आंख तरे नहीं आन्यो ॥
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो ॥
सिम्रिति सास्त्र बेद सबै बहु भेद कहै हम एक न जान्यो ॥
स्री असपान क्रिपा तुमरी करि मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो ॥८६३॥

(द० ग्र० पृ० २५४)

लिव तो इन (महाकाल) के चरणों से ही लगी है।[1]

इन अवतारों के जन्म का उद्देश्य क्या था और कवि ने इन अवतार कथाओं का वर्णन क्यों किया है इसका स्पष्टीकरण कवि के इन्हीं अवतार कथाओं में अनेक स्थानों पर किया है। अवतार-जन्म का उद्देश्य तो एक ही है—

जब जब होत अरिस्ट अपारा,
तब तब देह धरत अवतारा ॥

(द० ग्र० पृ० १५५)

दुष्टों को दण्ड देना और सन्तों का उद्धार करना ही उनके जन्म का उद्देश्य है—

कारन याह धरी इह मूरत,
मारन को जग से सभ पापी ॥३८६॥

(द० ग्र० पृ० ३०४)

\+ \+ \+

पापन के बध कारन सो,
अवतार बिखै बिज कै अब लीमा ॥४००॥

(द० ग्र० पृ० ३०६)

असाधन को सिर जो कटीया,
अरु सापन को हरता जोऊ होलो ॥

(द० ग्र० पृ० ३३८)

गहि कैसन तै पटक्यो धर सों गहि गोडन ते तब घीस दयो ॥
नृप मार हुलास बढ्यो :जीय मैं प्रतिही पुर भीतर सोर भयो ॥
कवि स्याम प्रताप पिखो हरि को जिन साधन राख कै सत्रु छयो ॥
कट बंधन तात दए मन के सम ही जग मे जस बाढ़ि लयो ॥८५२॥

(द० ग्र० पृ० ३६७)

कृष्णावतार के अन्त मे कवि ने स्पष्ट शब्दो में कहा है कि भागवत के दशम स्कन्ध को भाषा मे लिखने में मुझे और कोई वासना नहीं है, केवल धर्म युद्ध का चाव है—

दशम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ ॥
अवर वासना नाहि प्रभु धरम जुद्ध को चाइ ॥२४६१॥

(द० ग्र० पृ० ५७०)

काल पुरुष और चण्डी या भगवती

परमात्मा के नारी रूप की ओर गुरु गोविन्दसिंह के पूर्ववर्ती सिख गुरुओं का कोई झुकाव नहीं था। उन्होंने अपने इष्ट को सदा पुरुष रूप मे ही देखा। उसे अकाल पुरुष, कर्त्ता पुरुष आदि अनेक नामो से पुकारा। भारतीय पौराणिक नामावली से भी उन्होंने परमात्मा को अभिहित करने के लिए बहुत से नाम ग्रहण किए परन्तु वे सब नाम भी पुरुष

---

१. मै न गनेसहि प्रिथम मनाऊं ॥ किसन बिसन कबहूं नह धिआऊं ॥
काल सुने पहचान न तिन सों ॥ लिव लागी मोरी पग इन सों ॥४३४॥

(द० ग्र०पृ० ३१०)

वाचक ही रहे। दाम्पत्य भाव की भक्ति को सिख गुरुओं ने अपने सम्मुख आदर्श रूप में रखा, जिसमें जीवात्मा अपने आपको पत्नी और परमात्मा को पति मानती है। गुरु अर्जुन देव ने एक ऐसी जीवात्मा रूपी स्त्री की कल्पना की है जो अनन्य भाव से परमात्मा रूपी पति में अनुरक्त है—

> गुन अवगुन मेरा कछु न बीचारो ॥
> नह देखिओ रूप रंग सींगारो ॥
> चज अचार किछु बिधि नहीं जानी ॥
> बांह पकरि प्रिय सेजै आनी ॥

(गु० ग्र० सा० आसा महला, ५, पृ० ३७२)

किन्तु गुरु गोबिन्दसिंह के काव्य में हमें इस दृष्टि से नवीनता दिखाई देती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में भगवती चण्डी को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। वैसे परमात्मा के लिए स्त्री नाम इस देश की परम्परा में स्वीकृत है।[1] परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह ने भगवती चण्डी का ही स्मरण विशेष श्रद्धा से किया है। उनके काव्य की यह वस्तु भी उस तत्कालीन परिस्थितियों की ओर इंगित करती है जिनसे उनका काव्य विशाल रूप से प्रभावित था। भगवती चण्डी को युद्ध की देवी के रूप में प्रतिष्ठा इस देश में युगों से चली आ रही है। 'धर्म जुद्ध के चाव' की भावना से पंथ सृजन करने वाले गुरु गोबिन्दसिंह ने चण्डी को उसी परम्परागत रूप में स्वीकार किया है। सामान्यतः गुरु गोबिन्दसिंह ने ब्रह्म को स्त्री और पुरुष के भेदों से परे ही माना है। वह पुरुष भी है, स्त्री भी है और न वह पुरुष है और न ही स्त्री—

> तेज को प्रचण्ड है अखण्डन को खण्ड है
> महीपन को मंड है कि इस्त्री है न नर है ॥६॥२६१॥

(द० ग्र० पृ० ३७)

फिर वही तो सबसे बड़ी शक्ति है। शक्तिमान और उसकी शक्ति अभेद है। सूक्ष्म ब्रह्म का स्थूल व्यापक रूप माया है। वही सूक्ष्म है, वही स्थूल है। परमात्मा के स्वरूप की यह व्यापकता और अभेदत्व पूर्ववर्ती सिख गुरुओं की वाणी में भी उपलब्ध है। गुरु नानक

ने एक स्थल पर कहा है—"परमात्मा ही पुरुष है, वही स्त्री है, वही जुए की पासा है और वही उसकी सारी है।"[1] गुरु गोबिन्दसिंह ने 'जापु' में ईश्वर के गुणों की स्तुति करते हुए उसे एक स्थान पर 'लोकमाता' भी कहा है—

नमो परम ज्ञाता ॥ नमो लोकमाता ॥ (द० ग्र० पृ० ३),

गुरु गोबिन्दसिंह ने 'चण्डी चरित्र उक्ति बिलास' में इस भाव को भली-भांति व्यक्त किया है—

> तारन लोक उधारन भूमहि दैत सघारन चंड तुही है ॥
> कारन ईस कला कमला हर अद्रसुता जह देखो उही है ॥
> तामसता ममता नमता कविता कवि के मन मद्धि गुही है ॥
> कीनो है कंचन लोह जगत्र मैं पारस मूरत जाहि छुही है ॥४॥

(हे काल ! लोक तारने वाला, धरती का उद्धार करने वाला, दैत्यों को मारने वाला तीव्र तेज तुही है। जगत का कारण ईश्वर (विष्णु) उसकी कला (लक्ष्मी) जगत को नाश करने वाला शिव और उसकी शक्ति (पार्वती) जहां देखता हूं, वही है। तमो गुण, रजो गुण, सतो गुण—तीनों गुणों की गुणत्व अवस्था की कविता को तुमने ही कवि के मन गूंथा है। तू पारस की मूर्ति है। जिसे छू लेता है, जगत मे वह लोहा सोना हो जाता है।)

कवि की दृष्टि में काल और भवानी मे कोई भेद नहीं है। 'चौबीस अवतार' के मंगलाचरण मे वह कहता है—

> प्रथम काल सभ जग को ताता ॥ ताते भयो तेज बिख्याता ॥
> सोई भवानी नाम कहाई ॥ जिन सिगरी यह सिस्टि उपाई ॥२६॥

इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह ने भगवती चण्डी को राम, कृष्ण, गणेश आदि देवताओं या अवतारों की साधारण श्रेणी मे न रखकर उसे महाकाल का ही नारी रूप स्वीकार किया है। दशम् ग्रंथ में एक स्थान ऐसा भी है जहां दीर्घदाढ़ नामक दैत्य से युद्ध करते समय सभी देवता पराजित हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भय से छिप-छिप जाते हैं, यहां तक कि काली भी दैत्य का सहार करने में अपने को असमर्थ पाती है। ऐसे मे वह भी महाकाल के सम्मुख आकर सहायता की प्रार्थना करती है और महाकाल उन्मुक्त रूप से हंसकर उसकी सहायता के लिए कमर में तलवार बांधकर रथ पर चढ़कर दैत्यों से युद्ध करता है और उनका विनाश करता है। यह प्रसग चरित्रोपाख्यान का अन्तिम उपाख्यान है। महाकाल को सम्बन्ध वाचक ढग से यदि पिता कहा जाय तो चण्डी को माता कहा जा सकता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने इस सम्बन्ध को अपनी कथा मे स्पष्ट स्वीकार किया है—

> सरब काल है पिता हमारा ॥ देबि कालका मात हमारा ॥
> मनुआ गुरमुरि मनसा माई ॥ जिन मोको सुभ क्रिया पढ़ाई ॥५॥

(द० ग्र० पृ० ७२)

'मैं न गनेसहि प्रथम मनाऊं।' कहने वाले लेखक ने कई रचनाओं के प्रारम्भ में भगवती चंडी का स्मरण किया है। चौबीस अवतार वर्णन में कई अवतार-कथाओं का

१. आपे पुरखु आपे ही नारी ॥ आपे पासा आपे सारी ॥५॥
(गुरु ग्रंथ साहिब मारु सोहले महला १, पृ० १०२०)

प्रारम्भ—

'श्री भगवती जी सहाय'

इन शब्दों से हुआ है। भगवती से हर प्रकार का वरदान प्राप्त होता है। गोपियाँ कृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए भगवती की आराधना करती हैं।[1] शूरवीर युद्ध में जय प्राप्त करने के लिए भगवती की वन्दना करते हैं। भगवती चंडी के उपासक स्वयं शिव और कृष्ण से पराजित नहीं होते।[2]

स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने कार्य की सफलता के लिये भगवती चंडी से वर-याचना की है—

देह शिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूँ न टरौं।
न डरो अरि सों जब जाई लरो निसचै करि अपनी जीत करो॥

(द० ग्र० पृ० ६६)

कवि ने चडी चरित्र की रचना एक उद्देश्य से प्रेरित होकर की। रचना के अन्त में कवि उसी की पूर्ति का वरदान भी मांगता है—

ग्रथ सतिसइया को करिउ जा सम अवरू न कोइ॥
जिह नमित कवि ने कहिउ सु देहु चडका सोइ॥२३३॥

(द० ग्र० पृ० ६६)

लीला

परमात्मा की लीला का वर्णन प्रत्येक भक्त ने किसी न किसी प्रकार किया है। यह लीला सृष्टि के सृजन, पालन और सहार तीनों कार्यों में प्रगट होती है। परमात्मा की यह लीला अपार है। सिख गुरुओं ने परमात्मा की इस लीला के लिए लीला शब्द का भी प्रयोग किया है—

जाकी लीला की मिति नाहि॥
सगल देव हारे अवगाहि॥१६॥

(गुरु ग्रंथ साहिब, गउडी सुखमनी, पृ० २८४)

परन्तु अनेक स्थानों पर उन्होंने इसे 'खेड' या खेल कहा है। यह सृष्टि रचना, यह सहार और विनाश और फिर उसी विनाश में से जीवन रचना यह सब उसके खेल हैं। गुरु अर्जुन कहते हैं—

अपना खेल (सृष्टि रचना) वह स्वयं करता है और स्वयं ही उसे देखता भी है। जब चाहता है, वह अपने पसारे हुये खेल को समेट कर अकेला हो जाता है।[3] जब उसकी इच्छा होती है तो वह सृष्टि उत्पन्न करता है और यदि उसकी इच्छा होती है, तो वह सृष्टि

१. दशम ग्रंथ पृ० २८४।
२. दशम ग्रंथ पृ० ४५२।
३. आपन खेलु आपि करि देखै।
खेलु संकोचै तउ नानक एकै॥७॥२१॥
(२८२ ५८)

अपने मे विलीन कर लेता है ।[1]

जन्म-मरण उसके लिये खेल मात्र है—

आवन जानु इकु खेलु बनाइआ ॥
आगिआकारी कीनी माइआ ॥६॥२३॥

(गउड़ी सुखमनी म० ५)

सचमुच न कोई मरता है न ही जन्म लेता है। ये तो उसके अपने चरित्र (खेल) हैं, जिन्हें वह आप ही समझता है—

नह किछु जनमै नह किछु मरै ।
आपन चलित आप ही करै ।

(गउड़ी सुखमनी म० ५)

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी अनेक रचनाओं में परमेश्वर की लीला का वर्णन किया है। पढ़ा चरित्र (उक्ति विलास) के प्रथम पद मे उन्होने लिखा है—

वह ब्रह्म जो आदि है, अपार है, अलेख है, अनन्त है, काल रहित, वेश रहित, नाश रहित है। जिसने अपनी कल्याण रूप शक्ति से चारों वेदों का निर्माण किया, जो तीनों गुणों और तीनों लोकों मे बसता है जिसने दिन-रात के लिये सूर्य-चन्द्रमा जैसे दीपक बना दिए हैं और पाँच तत्वों का प्रकाश करके जिसने सृष्टि की रचना की है। वही देवताओं और दैत्यों के मध्य वैर भाव उत्पन्न करता है, इनमे संघर्ष कराता है और स्वयं (अपनी इस लीला का) तमाशा देखता है।[2]

हमें ससार मे जन्म और मृत्यु, युद्ध और शांति आदि बड़े महत्त्व की वस्तुएं दिखती हैं किन्तु उस अकाल पुरुष के लिये यह एक तुच्छ तमाशा मात्र ही है। वही सबका निर्माण करता है, वही सबका सहार करता है परन्तु इस निर्माण और विनाश का श्रेय (या बुराई) वह औरों के सिर पर डाल देता है। बनाता भी वही है, बिगाड़ता भी वही परन्तु वह अपना नाम छिपाए रहता है। 'चौबीस अवतार' के प्रारम्भिक कुछ पदो मे गुरु गोबिन्दसिंह ने इस भाव को भली भांति व्यक्त किया है—

काल सभन का करत पसारा ॥
अंत काल सोई खापन हारा ॥
आपन रूप अनतन धरही ॥
आपहि मद्ध लीन पुन करही ॥३॥

(द० ग्र० पृ० १२६)

\+ + +

काल आपुनो नाम छपाई ॥
अवरन के सिर दे बुरिआई ॥

१. जा तिसु भावै तो सृष्टि उपाए । आपने भाणै लए समाए ॥१॥२३॥

(गुरु ग्रंथ साहिब, गउड़ी सुखमनी महला ५, पृ० २९२)

२. आदि अपार अलेख अनन्त अकाल अभेख अलक्ख अनासा ॥
के सिव सक्त दए स्रुति चार रजौ तम सत्त तिहू पुर वासा ॥
दिउस निसा ससि सूर के दीप सुस्रिसटि रची पच तत्त प्रकासा ॥
बैर बढाइ लराइ सुरासुर आपहि देखत बैठ तमासा ॥१॥

(द० ग्र० पृ० ७४)

आपन रहत निरालम जगते ॥
जान लए जा नामें तबते ॥५॥

(द० ग्र० पृ० १५६)

एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि केवल अपने कौतुक के लिए तुमने जीवों में विवाद उत्पन्न किया है—

तुमही दिन रजनी तुही तुमही जीअन उपाइ ॥
कउतक हेरन के नमित तिन मो बाद बढ़ाइ ॥६॥

नाम.

सम्पूर्ण सिख साहित्य में परमात्मा के नामों के सम्बन्ध में कोई विशेष आग्रह नहीं है। सिख गुरुओं ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए सभी प्रचलित नामों का उन्मुक्त प्रयोग किया, वे नाम चाहे निर्गुण भाव वाले हों या सगुण भाव वाले अथवा हिन्दू परम्परा के हों या इस्लामी परम्परा के। उनकी दृष्टि में परमात्मा के निकट कोई विशेष नाम या शब्द कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। नाम तो केवल भावों को व्यक्त करने के माध्यम हैं। परमात्मा हमारे आन्तरिक भावों को ही देखता है। उसे स्मरण करने के लिए किसी विशेष भाषा या शब्दावली की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए गुरुओं ने ईश्वर के नामों के सम्बन्ध में कोई आग्रह नहीं प्रगट किया। जो हिन्दू पौराणिक नाम पुराणों में देवता सूचक हैं सिख गुरुओं ने उनका एक मात्र परमात्मा के लिए ही प्रयोग किया है। हजरत मुहम्मद ने अल्लाह के नाम का भी इसी प्रकार प्रयोग किया था। अल्लाह पहले एक देवता का नाम था परन्तु कुरान शरीफ में इसका प्रयोग परमात्मा के लिए ही हुआ है। कहते हैं कि एक बार मुगल सम्राट जहाँगीर ने षष्ठ गुरु हरिगोबिन्द से पूछा कि हिन्दू राम, कृष्ण, नारायण आदि की पूजा करते हैं और मुसलमान अल्लाह को मानते हैं, दोनों में क्या अन्तर है? गुरु हरिगोबिन्द ने पंचम गुरु के शब्दों में उत्तर इस प्रकार दिया—

कारन करन करीम ॥ सरब प्रतिपाल रहीम ॥
अल्लह अलख अपार ॥ खुद खुदाइ बेसुमार ॥१॥
उनमों भगवन्त गुसाई ॥ खालकु रवि रहिआ सरब ठाई ॥१॥
जगन्नाथ जग जीवन माधो ॥ भउभजन रिद माहि अराधो ॥
रिखीकेस गोपाल गोबिन्द ॥ पूरन सरबत्र मुकुन्द ॥२॥
मिहरबान मउला तू ही एक ॥ पीर पैकाबर सेख ॥
दिल का मालकु रहे हाकु ॥ कुरान कतेब ते पाकु ॥३॥
नाराइन नरहर दइआल ॥ रमत राम घट-घट आधार ॥
बासुदेव बसत सभ ठाइ ॥ लीला किछु लखी न जाइ ॥४॥
मिहर दइआ करि करने हार ॥ भगति बंदगी देहि सिरजनहार ॥
कहु नानक गुरि खोए भरम ॥ एको अल्लहु पारब्रह्म ॥५॥३४॥४५॥

उपर्युक्त रचना से यह स्पष्ट है कि गुरुओं के लिए परमात्मा के नामों में कोई भेद नहीं था। वे सब एक ही सत्ता के नाम हैं इसीलिए "एको अल्लहु पारब्रह्म" कहा है।[1]

---

१. गुरमति दर्शन—डा० शेरसिंह, पृ० १५६।

श्री भगवन्त भज्यो न ग्ररे जड़ धाम के काम कहा उरझायो ॥३१॥

(द० ग्र० पृ० ७१६)

इस्लामी परम्परा के नाम

कि रोजी रजा कै ॥ रहीमे रिहाकै ॥
कि पाक विऐब है ॥ कि गैबुल गैब है ॥१०८॥ (जाप, द० ग्रं०, पृ० ६)

कि राजक रहीम हैं ॥ कि करम करीम हैं ॥११०॥ (जाप, द० ग्र० पृ० ६)
कि सरब कलीमे ॥ कि परम फहीमे ॥
कि ग्राकल ग्रलामे ॥ कि साहिब कलामे ॥१२०॥ (जाप, द० ग्र० पृ० ७)
कि हुसनल वजू है ॥ तमामुल रजू है ॥
हमेसुल सलामे ॥ सलीखत मुदामे ॥१२१॥ (जाप, द० ग्र० पृ० ७)

कि साहिब दिमाग हैं ॥ कि हुसनल चराग हैं ॥
कि कामल करीम हैं ॥ कि राजक रहीम हैं ॥१५१॥ (जाप, द० ग्र० पृ० ८)
करता करीम सोई राजक रहीम ग्रोई ॥
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो ॥१५॥८५॥

(ग्रकाल स्तुति, द० ग्र० पृ० १६)

ग्रल्लाह ग्रभेखु सोई पुरान ग्रौ कुरान ग्रोई ॥
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है ॥१६॥८६॥

(ग्र० स्तु०, द० ग्र० पृ० १६)

करता करीम कादर कृपाल ॥ ग्रद्वय ग्रभूत ग्रनभय दयाल ॥

(ग्र० स्तु०, द० ग्र० पृ० ३३)

सिख परम्परा के विशिष्ट नाम

ग्रकाल पुरुष, एकोंकार, सत्यनाम, वाहिगुरु, निरंकार ग्रादि कुछ ग्रप्रचलित नाम सिख गुरुग्रों द्वारा प्रयुक्त हुए। गोबिन्दसिंह ने इनका यत्र-तत्र प्रयोग किया है—

ग्रकाल पुरख की रच्छा हमनै ॥
सर्वलोह दी रच्छा हमनै ॥ (ग्र० स्तु०, द० ग्र० पृ० ११)
प्रणवो ग्रादि एकंकारा ॥
जल-थल महीग्रल कीग्रो पसारा ॥१॥ (ग्र० स्तु०, द० ग्र० पृ० ११)
निरंकार निबिकार निलम्भ ॥ ग्रादि ग्रनील ग्रनादि ग्रसंभ ॥

(चरित्रोपाख्यान, द० ग्र० पृ० ३९१)

गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त कुछ विशेष नाम

काल

गुरु गोबिन्दसिंह के सम्पूर्ण साहित्य मे परमात्मा के अगणित नामों का प्रयोग हुआ है परन्तु 'काल' इस साहित्य में ईश्वर का प्रतिनिधि नाम है। मध्यकालीन भक्तो की रचनाओं में ईश्वर के लिए विविध प्रकार के नाम प्रयुक्त किए गए किन्तु यह नाम कहीं दिखाई नहीं देता। पौराणिक साहित्य मे इस नाम को प्रतिष्ठा प्राप्त है। विष्णु पुराण में लिखा है—

वही (परमात्मा) इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) जगत के रूप से तथा (इसके साक्षी) पुरुष और (महाकारण) काल के रूप मे स्थित है।[1] हे द्विज ! परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) और व्यक्त (महदादि) उसके अन्य रूप हैं तथा (सबको क्षोभित करने वाला होने से) काल उसका परम रूप है।[2]

'काल' का परिचय विष्णु पुराण में इन शब्दो मे दिया गया है—

'हे विप्र ! विष्णु के परम (उपाधिरहित) स्वरूप से प्रधान और पुरुष—ये दोनो रूप हुए, उसी (विष्णु) के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनो (सृष्टि और प्रलय काल में) संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तर का ही नाम 'काल' है।[3]

'हे द्विज ! कालरूप भगवान अनादि हैं, इसका अन्त नहीं है इसलिए संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी कभी नहीं रुकते।[4]

इस नाम को अपने साहित्य में प्रतिष्ठित करने का गुरु गोबिंदसिंह का विशिष्ट उद्देश्य था। यहाँ फिर उनके उद्देश्यपरक दृष्टिकोण की बात उभरकर आती है। वे भक्त मात्र नहीं थे। उन्हें अपने समय के आततायी शासन के विरुद्ध जन-मत को संगठित करना था, उसे युद्ध जैसे क्रूर कर्म के लिए सन्नद्ध करना था।

ईश्वर के सुन्दर-सलोने रूप की प्रशस्ति से ही सम्पूर्ण निर्गुण और सगुण साहित्य भरा हुआ है। निर्गुण भक्तों ने ईश्वर को निराकार मानते हुए भी सदैव उसके प्रियतम रूप की कल्पना की। गुरु अर्जुन कहते हैं—

---

१. तदेव सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत्
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥१४॥
(श्री विष्णु पुराण, गीता प्रेस, पृ० ५)

२. परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम् ॥१५॥
(वही, पृ० ५)

३. विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे
रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते
रूपान्तरं तद्द्विज कालसंज्ञम् ॥२४॥
(वही, पृ० ६)

४. अनादिर्भगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः ॥२६॥
(वही, पृ० ६)

दाना दाता सीलवन्तु निरमलु रूप अपारु ।
सखा सहाई अति वड़ा ऊचा वड़ा अपारु ।

(श्री राग म० ५)

गुरु अमरदास ने उसके निर्मल रूप की कल्पना की—
मेरा प्रभु निरमल अगम अपारा ।
बिन तकड़ी तोले संसारा ॥

(माझ अस्टपदी, महला ३)

कबीरदास ने उसके रूप की तुलना सैकड़ों सूर्य की श्रेणियों से की है—
कबीर तेज अनन्त का मानो ऊगी सूरज सेणि ।

(कबीर ग्रंथावली पृ० १२)

कृष्ण भक्ति काव्य तो अपनी मधुर भाव की उपासना के कारण ही उस युग में इतना लोकप्रिय हुआ । संपूर्ण काव्य में कृष्ण के सुन्दरतम रूप की कल्पना की गयी । कृष्ण के रूप की वह शारीरिक सुन्दरता आगे चलकर हिन्दी साहित्य में नायक की शारीरिक सुन्दरता का प्रतीक बन गई । रीतिकालीन प्रत्येक नायक में कृष्ण के रूप की प्रतिष्ठा हुई । तुलसी के राम यद्यपि धनुष-बाण धारी हैं, परन्तु उनके सुन्दर सलोने रूप को उन्होंने अपनी दृष्टि से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं किया है । भक्ति साहित्य को प्रकारान्तर से प्रेम साहित्य भी कहा जा सकता है । भक्त कवियों ने अपने प्रेम के आलम्बन को सुन्दर, मनोहारी रूप में उपस्थित करने में ही अपनी प्रतिभा को सफल माना है । सूर के कृष्ण, तुलसी के राम और सिख गुरुओं के सगुणवत् चित्रित अकाल पुरुष सभी के व्यक्तित्व बड़े मनोहारी हैं, जिन पर भक्तजन इस प्रकार न्योछावर होते हैं जैसे स्त्री अपने प्रिय पति पर । डा० हरिभजनसिंह ने इस स्थिति का विश्लेषण इस प्रकार किया है ।[1]

"वस्तुतः हमारे सम्पूर्ण भक्तिसाहित्य में नारी-भावना का प्राधान्य है । नारी भाव से पुरुष परमेश्वर को चाहने की प्रवृत्ति ही हिन्दी काव्य की प्रधान वृत्ति है । सूर की गोपियाँ तो कृष्ण को नारी रूप से प्रेम करती ही हैं, निर्गुण सन्तों की रहस्यमयी वाणी में भी भक्त-भगवान का सम्बन्ध स्त्री-पुरुष का ही है । सिख गुरुओं ने भी अकाल पुरुष की उपासना नारी भाव से की । उनका कहना था कि पुरुष तो एक ही है, शेष सब नारियाँ ही हैं,[2] तुलसी के राम में भी स्त्री-मोहिनी शक्ति का निवास है । तुलसी स्वयं दास-भाव से राम की सेवा करते हैं । कहने की आवश्यकता नहीं कि तुलसी का दैन्य भी इतना पुरुषोचित नहीं जितना नारी सुलभ । वही नारी की सी विवशता और पुरुष की कृपाकोर की याचना उनके यहाँ पाई जाती है । रीतिकाल में जबकि गुरु गोबिन्दसिंह दसम ग्रंथ की रचना कर रहे थे हमारा काव्य और भी स्त्रैण हो उठा था ।

हमारे काव्य की इस स्त्रैणता का मुख्य कारण तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति है । मुस्लिम शासन से प्रपीड़ित और आतंकित भारत की अवस्था एक अबला से अधिक अच्छी

१. गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ० ६३ ।
२. ठाकुर एकु सबाई नारि—आदि ग्रन्थ, पृ० ९३३ ।

नहीं थी। भक्ति काव्य में अभिव्यक्त दैन्य एवं आत्म-समर्पण निरीह जनसाधारण की विवशता का ही प्रतीक है।'

गुरु गोबिन्दसिंह इस उत्पीड़न और आतंक के वातावरण तथा इस वातावरण से उत्पन्न मानसिक दौर्बल्य को बदल देना चाहते थे। गुरु गोबिन्दसिंह की वाणी में भी परमात्मा के सुन्दर-सलोने रूप की पर्याप्त चर्चा हुई, परन्तु वहाँ जैसे उनका परम्परागत विशुद्ध भक्त रूप ही बोलता है। वस्तुतः उनकी अधिकांश रचनाओं पर योद्धारूप छाया हुआ है इसलिए ईश्वर के उग्र रूप को उनकी अधिकांश रचनाओं में प्रधानता मिली है और 'काल' उस उग्र रूप का भली प्रकार प्रतिनिधित्व करता है।

वे केवल काल को ही कर्त्ता मानते हैं, जो आदि से लेकर अन्त तक अनन्त रूपों को बनाने बिगाड़ने वाला है—

केवल काल ही करतार ॥
आदि अन्त अनन्ति मूरति गड़न भजन हार ॥

(द० ग्र० पृ० ७११)

उस काल ने ही अपना प्रसार किया और ओंकार से सम्पूर्ण सृष्टि को बनाया—

पृथम काल जब करा पसारा ॥
उम्रकार ते स्रिस्टि उपारा ॥ (द० ग्र० पृ० ४७)

काल की आज्ञा से ही विष्णु, ब्रह्मा, शिव, योगी, सुरासुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प आदि जन्म लेते हैं। अन्त में ये काल (मृत्यु) की लपेट में आकर नष्ट हो जाते हैं। केवल काल ही अकाल है—

काल ही पाइ भयो भगवान सु जागत या जग जाकी कला है ॥
काल ही पाइ भयो ब्रह्मा सिव काल ही पाइ भयो जुगीआ है ॥
काल ही पाइ सुरासुर गंध्रब जच्छ भुजग दिसा विदिसा है ॥
अउर सकाल सभै बस काल के एक ही काल अकाल सदा है ॥

(द० ग्र० पृ० ४८)

अन्ततोगत्वा वह सभी को काल कवलित करता है इसीलिए तो उसे काल कहा जाता है :—

अन्त करत सभ जग को काला ॥
नामु काल तातें जग डाला ॥ (द० ग्र० पृ० १५६)

वैसे तो काल सभी कुछ है। वही बनाता है, वही बिगाड़ता है, परन्तु काल शब्द का ही उच्चारण करते विनाश और मृत्यु का भयानक स्वरूप सम्मुख आ खड़ा होता है। गुरु गोबिन्दसिंह को अपनी परिस्थिति के अनुसार ईश्वर के निर्माण और पोषण रूपों की इतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी विनाश करने वाले स्वरूप की। वे तो स्पष्टतः यह कहना चाहते थे कि जिस काल ने बड़े-बड़े देवताओं, दैत्यों, सम्राटों को क्षण भर में समाप्त कर दिया उसके सम्मुख कोई टिक सके, ऐसी किस में शक्ति है। कदाचित् यह कहकर उन्होंने अपने युग की उस शक्ति-मदान्ध मुगल सत्ता की ओर संकेत किया जिसकी विशाल शक्ति के सम्मुख काल का भरोसा लेकर ही वे जनता को तैयार कर रहे थे—

या कलि में सभ काल कृपान के भारी भुजान को भारी भरोसो ।
(द० ग्र० पृ० ४५)

उन्होंने बड़े विश्वासपूर्वक कहा है कि काल ने सुंभ, निसुंभ, धूम्रलोचन, चंड, मुण्ड, महिषासुर, चामर, चिच्छुर, रक्तबीज आदि राक्षसों को क्षण भर में नष्ट कर दिया ऐसे स्वामी का सहारा पाकर दास को भला किसकी परवाह हो सकती है—

सुभ निसुभ से कोटि निशाचर जाहि छिनेक बिखै हन डारे ॥
धूमर लोचन चंड अउ मुंड से माहख से पल बीच निवारे ॥
चामर से रन चिच्छुर से रकतिच्छण से झट दै झभकारे ॥
ऐसो सु साहिबु पाइ कहा परवाह रही इह दास तिहारे ॥६३॥
(द० ग्र० पृ० ४५)

'काल' को उन्होंने सर्वकाल,[1] महाकाल,[2] श्रीकाल[3] आदि अनेक नामों से पुकारा है। काल के रूप में गुरु गोबिन्दसिंह ने ईश्वर के वीर रूप या उग्र रूप की प्रतिष्ठा की। वह काल और उसकी शक्ति चंडी कहीं-कहीं अपने सुन्दर स्वरूप में है।[4] परन्तु अधिकांश में उनका रूप भी रौद्र है। डमरू बजाते, फणिधर के समान फुफकारते, बाघ के समान दहाड़ते, दामिनी के समान हँसते, रक्त पीते हुए, अष्टायुध धारण किये, सिंह पर सवार, अपनी दाढ़ में सभी को चबाते हुए भयावह रूप का चित्रण अनेक स्थानों पर हुआ है। अकाल स्तुति में काली का यह भयावह रूप द्रष्टव्य है—

डंवरू डवक्कै बबर बबक्कै भुजा फरक्कै तेज बरं ॥
लंकुड़ीआ फाधै आयुध बांधै सैन बिमर्दन काल असुरं ॥
अस्टायुध चमकै भूखण दमकै अतिसित झमकै फुंक फणं ॥
जय-जय होसी महिखासुर मर्दन रम्मक मर्दन दैत जिणं ॥३॥२१३॥
(द० ग्र० पृ० ३१)

'बिचित्र नाटक' से काल के इस रौद्र रूप का उल्लेख मात्र उदाहरण के लिए प्रस्तुत है। अन्यथा ऐसे रूपों का दशम ग्रंथ में कोई अभाव नहीं—

करं बाम चापियं कृपाणं करालं ॥
महातेज तेजं बिराजै बिसालं ॥
महादाढ़ दाढं सु सोहं अपारं ॥
जिसे चरबीयं जीव जग्यं हजारं ॥१८॥
डमा डम्म डवरू सितासत छत्रं ॥
हाहाहूहू हास झमा झम्म अत्रं ॥

---

1. सरब काल करुणा तब भरे ॥ सेवक जानि दया रस ढरे (द० ग्र० पृ० ७३)।
2. तहं हम अधिक तपस्या साधी ॥ महाकाल कालका आराधी ॥
(द० ग्र० पृ० ५५)
3. द० ग्र० पृ० ३६।
4. कहूं रूप धारे महाराज सोहं ॥
कहूं देव कन्निआन को मान मोहं ॥
(द० ग्र० पृ० ४१)

महा घोर सबद बजे सख ऐसे ॥
प्रलैकाल के काल की ज्वाला जैसे ॥१९॥

(द० ग्र० पृ० ४०)

शस्त्रधारी

'काल' का वर्णन करते हुए उसके साकार रूप की कल्पना भी कवि के सम्मुख अनायास आ गयी है। इस साकार कल्पना में काल का अस्त्र-शस्त्र धारी रूप ही उनके सम्मुख प्रमुख रूप मे रहा है। उसे उन्होंने खड्गपाणि,[1] कृपाणपाणि,[2] बाणपाणि,[3] दण्डधारी,[4] चक्रपाणि,[5] असिपाणि,[6] असिधुज (ध्वज),[7] खड्गकेतु,[8] धनुष बाणधारी[9] आदि अनेक शस्त्रधारी नामो से पुकारा। अस्त्र-शस्त्रों और ईश्वर के वीर रूप के प्रति उनकी तन्मयता इतनी बढ़ी कि उनकी दृष्टि में शस्त्र और शस्त्रधारी मे कोई अन्तर न रहा। स्वय खड्ग ही खड्गधारी का प्रतीक बन गया। वीर-कार्यों के प्रसग मे शस्त्र-पूजा इस देश की प्राचीन परम्परा रही है। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी कविता द्वारा इस परम्परा को और मुखर किया। बिचित्र नाटक ग्रथ का प्रारम्भ ही वे खड्ग की स्तुति से करते हैं—

नमस्कार श्री खड्ग कउ करौ सु हितु चितु लाइ ॥
पूरन करौ ग्रथ इह तुम मुहिं करहु सहाइ ॥१॥

(द० ग्र० पृ० ३९)

उसके पश्चात 'श्री कालजी की उसतति' शीर्षक से जो स्तुति प्रारम्भ होती है उसके प्रथम पद में तेग की ही स्तुति है।[10] उनकी दृष्टि से शस्त्र और शस्त्रधारी 'काल' अभेद हैं। काल के समान ही ये अस्त्र-शस्त्र भी सदा एकरूप हैं, निर्विकार हैं—

नमो खडग खड कृपाणं कटारं ॥
सदा एक रूप सदा निरविकार ॥८७॥ (द० ग्र० पृ० ४५)

---

१. खड्ग पाणि की कृपा ते पोथी रची बिचार ॥
भूल होइ तहं तहि सुकवि पढीअहु सभै सुधार ॥८६४॥ (द० ग्र० पृ० ३८६)
२. कृपाण पाणि जे जपे ॥ अनन्त थाट ते थपे ॥ (द० ग्र० पृ० ४४)
३. नमो बाण पाणं ॥ नमो निरभयाणं ॥८६॥ (द० ग्र० पृ० ४५)
४. नमो बाण पाणं ॥ नमो दण्ड धारियं ॥८७॥ (द० ग्र० पृ० ४५)
५. नमो चक्र पाणं ॥ अभूतं भयाणं ॥८६॥ (द० ग्र० पृ० ४५)
६. श्री असपान कृपा तुमरी करि मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो ॥ (द० ग्र० पृ० २५४)
७. असिधुज जू कोपा जब ही रन ॥
मारत भए सत्रुगन चुनि चुनि ॥ (द० ग्र० पृ० १३७१)
८. खड्गकेत मैं सरनि तिहारी ॥
आपु हाथ दे लेहु उबारी ॥४०१॥ (द० ग्र० पृ० १३८८)
९. धनुरबान धारे ॥ छके छैल मारे ॥३७॥ (द० ग्र० पृ० ४१)
१०. खग खंड बिहंड खल दल खंडं अति रण मंडं बरबंडं ॥
भुज दंडं अखंडं तेज प्रचंडं जोति अमंडं भान प्रभं ॥
सुख संता करणं दुरमति दरणं किलबिख हरणं असि सरणं ॥
जै जै जग कारण स्रिसट उबारण मम प्रतिपारण जै तेगं ॥२॥

(द० ग्र० पृ० ३९)

और इस प्रकार वे अपने तीर, तुफंग, तलवार, गदा, सैहथी आदि सभी शस्त्रों को नमस्कार करते हैं—

नमस्कारयं मोर तीर तुफंग ॥
नमो खग अदग अभेयं अभगं ॥
गदाय ग्रिस्टं नमो सैहथीयं ॥
जिनं तुल्य बीरं बीयो न बीयं ॥८८॥

(द० ग्र० पृ० ४५)

एक स्थान पर उन्होंने शस्त्रों को ही अपना 'पीर' माना है—

असु कृपान खंडो खड्ग तुपक तबर अरु तीर ॥
सैफ सरोही सैहथी यहै हमारै पीर ॥३॥

(द० ग्र० पृ० ७१७)

शस्त्रों के रूप में तेरा (कालका) नाम जपने वाला भवसागर पार हो जाता है—

तीर तुही सैंथी तुही तुही तबर तलवार ॥
नाम तिहारो जो जपै भए सिंध भवपार ॥४॥

(द० ग्र० पृ० ७१७)

उनकी दृष्टि में काल, काली, तेग और तीर में कोई अन्तर नहीं—

काल तुही काली तुही तुही तेग अरु तीर ॥
तुही निसानी जीत की आजु तुही जगबीर ॥५॥

(द० ग्र० पृ० ७१७)

गुरु गोबिन्दसिंह का तो मत है कि परमात्मा ने संसार रचना के पूर्व ही उसकी सुरक्षा का साधन (खंडा या खड्ग) बनाया। अपनी पंजाबी रचना 'चंडी दी वार' में वे कहते हैं, सबसे पहले उसने खंडे को बनाकर फिर सृष्टि की रचना की—

खंडा प्रिथम साज कै जिनि सभ सैसारु उपाइआ ॥

(द० ग्र० पृ० ११६)

इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी रुचि के अनुरूप अपने इष्टदेव को नए-नए अभिधान दिए और परम्परागत तथा नवीन सभी प्रकार के नामों द्वारा उसकी स्तुति की।

रूप

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने इष्टदेव को "रेख, भेष, रंग, रूप हीन" माना है—

न रागं न रंगं न रूपं न रेखं।

(द० ग्र० पृ० २०)

परन्तु किसी भी भक्त का इष्टदेव उतना ही तो नहीं होता जितना वह कह देता है। वह बहुत कुछ कह कर भी सदैव अपनी असमर्थता अनुभव करता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने स्वयं कहा है "यदि सभी द्वीपों को कागज बना लूं, सात समुद्रों के जल की स्याही बना ली जाय, सम्पूर्ण बनस्पति को लेखनी बना लें, सरस्वती स्वयं वक्ता बन जाय, गणेश कोटि

युगों तक लिखते रहें, तो भी बिना प्रार्थना के मैं तुम्हे प्रसन्न नहीं कर सकूंगा।"[1] ईश्वर तो वर्णनातीत है। उसके रूप का सभी प्रकार से वर्णन करके भी अन्त मे उसे रूपातीत ही कहना पड़ेगा।

गुरु गोबिन्दसिंह तत्वतः यह मानते हैं कि वही एक परम सत्ता जल और थल में अपना पसारा किए हुए है। उसी की ज्योति चौदहों दिशाओ मे प्रकाशित हो रही है।[2] इसलिए वह ससार मे दृष्टिगोचर होने वाली सभी वस्तुओ मे समाया हुआ है।[3] इसलिए वह निराकार या रूपहीन होते हुए भी साकार और सरूपवान है क्योंकि यह सृष्टि ही उसकी साकारता है और इस सृष्टि का रूप ही उसका अपना रूप है।

'अकाल स्तुति' में गुरु गोबिन्दसिंह ने ईश्वर की विचित्र लीला से चकित एक भक्त के हृदय में उठने वाले प्रश्नो को निम्न पद मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो,
कि भूपन के भूप हो कि दाता महादान हो ॥
प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया,
रोग सोग के मिटैया किधो मानी महामान हो ॥
बिदिआ के बिचार हो कि अद्वै अवतार हो,
कि सिद्धता की सूरत हो कि सुद्धता की सान हो ॥
जोबन के जाल हो कि काल हू के काल हो ॥
कि सत्रन के सूल हो के मित्रन के प्रान हो ॥६॥

(द० ग्र० पृ० १३)

यह सब होते हुए भी गुरु गोबिन्द ने अपने इष्ट के रूपो का वर्णन विविध रूप से किया है। यथा:—

निराकार से सम्बन्धित—

अलेख अभेखं अजोनी सरूप। (द० ग्र० पृ० २०)
न देव है न देत है न नर को सरूप है॥
न छल है न छिद्र है न छिद्र की विभूति है॥१३॥१७३॥

(द० ग्र० पृ० २७)

बरन चिह्न न चक्र जाको चक्र चिह्न अकार॥११॥१६१॥

(द० ग्र० पृ० २६)

---

१. कागद दीप सभै करिकै अरु सात समुन्द्रन की मसु कैहौ॥
काट बनासपती सगरी लिखबे हू के लेखन काज बनैहौ।'
सारसुती बकता करिकै जुगि कोटि गनेसिकै हाथ लिखैहौ॥
काल क्रपान बिना बिनती न तऊ तुमको प्रभु नेक रिझैहौ॥१०१॥

(द० ग्र० पृ० ४६)

२. प्रणवो आदि एकंकारा॥ जल थल महीअल कीओ पसारा॥
आदि पुरख अबिगति अबिनासी॥ लोक चतुर्दस जोति प्रकासी॥१॥

(द० ग्र० पृ० ११)

३. सरब ओत के बीच समाना॥ सबहूं सरब ठौर पहिचाना॥

(द० ग्र० पृ० ११)

अक्षय स्वरूप

अव्यक्त तेज अनुभव प्रकाश ॥ अच्छे सरूप अद्वै अनास ॥१॥१२१॥

(द० ग्र० पृ० २२)

अरूप

अछेद छेद है सदा अगज गज गज है ।
अभूत अभेद है बली अरूप राग रंग है ॥१५॥१७५॥

(द० ग्र० पृ० २७)

सम्बन्धहीन

न सत्रं न मित्र न पुत्र सरूपे ।
नमो आदि रूपे नमो आदि रूपे ॥५१॥१०५॥

(द० ग्र० पृ० २१)

ज्योति स्वरूप

अमित तेज जग जोति प्रकासी ॥ आदि अछेद अभै अबिनासी ॥
परम तत्त परमार्थ प्रकासी ॥ आदि सरूप अखड उदासी ॥५॥२५

(द० ग्र० पृ० १२६)

साकार सम्बन्धी

बिसाल लाल लोचनं ॥ मनोज मान मोचनं ॥
सुभत सीस सुप्रभा ॥ चक्रत चारु चन्द्रका ॥११॥१६॥

(द० ग्र० पृ० १२८)

कृपाल दिआल लोचनं ॥ मयंक बाण मोचनं ॥
सिरं किरीट धारीयं ॥ दिनेस क्रत हारीयं ॥१०॥१८॥

(द० ग्र० पृ० १२८)

ललित कला प्रधान रूप

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने इष्ट के रूप वर्णन में ललित कलाओं से सम्बन्धित शब्दावली का प्रयोग किया है। उनके इस रति आलम्बन को ललितमूर्ति कहा जा सकता है। इष्टदेव की मनोहरता की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने विभिन्न कलाओं में उसकी स्थापना की—

१. नव किंकण नेवर नाद हुअं । (द० ग्र० पृ० ४३)
२. घण घुंघर घंटण और सुरं । (द० ग्र० पृ० ४३)
३. घट भादव मास की जान सुभं । (द० ग्र० पृ० ४३)
४. तन सावरे रावरेअं हुलसं । (द० ग्र० पृ० ४३)
५. धमकि घुघरं सुर नवनं नाद नूपुरं । (द० ग्र० पृ० ४२)

करुणा प्रधान रूप

कृपाल दिआल करम हैं ॥ अगज भंज भरम हैं ॥
त्रिकाल लोक पाल हैं ॥ सदैव सरब दिआल हैं ॥७॥१५॥

(द० ग्र० पृ० १२८)

मृदु रूप

सम ठौर निरन्तर नित्त नयं ॥
मृद मंगल रूप तुयं सुभयं ॥५४॥ (द० ग्र० पृ० ४२)

वीर रूप

आजानु बाहु सारंग कर धरण ॥
अमित जोति जग जोति प्रकरण ॥
खड्ग पाण खलदल बल हरण ॥
महाबाहु विस्वंभर भरण ॥६॥२६॥

(द० ग्र० पृ० १३०)

अति बलिस्ट दल दुस्ट निकन्दन ॥
अमित प्रताप सगल जग बंदन ॥
सोहत चारु चित्र कर चंदन ॥
पाप प्रहारण दुस्ट दल खंडन ॥११॥३१॥

(द० ग्र० पृ० १३०)

तेजस्वी रूप

मुख मंडल पर लसत जोति उदोत अमित गति ॥
जटत जोत जगमगत लजत लख कोटि निखति पति ॥
चक्रवरती चक्रवै चक्रत चउ चक्र करि धरि ॥
पदम नाथ पदमाच्छ नवल नाराइण नर हरि ॥
कालख बिहंडण किलविख हरण सुरनरमुन बंदत चरन ॥
खंडण अखंड मंडण अभै नमो नाथ भउ भै हरण ॥३॥३४॥

(द० ग्र० पृ० १३०)

नख शिख रूप

कजलक नैन कबू ग्रीवहि कटि केहरि कुंजर गवन ॥
कदली कुरंक करपूर गत बिन अकाल दूजो कवन ॥६॥३७॥

(द० ग्र० पृ० १३१)

रौद्र रूप

महातेज तेजं महा ज्वाल ज्वालं ॥
महा मंत्र मंत्रं महा काल कालं ॥१७॥

(द० ग्र० पृ० ४०)

करं वाम चापियं कृपाणं करालं ॥
महातेज तेजं बिराजै बिसालं ॥
महा दाढ़ दाढ़ं सु सोहं अपारं ॥
जिनै चरबीयं जीव जग्गियं हजारं ॥१८॥

(द० ग्र० पृ० ४०)

भयावह रूप

डमा डम डमरू सितासैत छत्र ॥
हा हा हुह हासं झमा झम्म अत्रं ॥
महा घोर सबद बजे सख ऐस ॥
प्रलै काल के काल की ज्वाल जैस ॥१६॥

(द० ग्र० पृ० ४०)

सुभं जीभ जुआल ॥ सु दाढ़ड़ा कराल ॥
बजी बब सोख ॥ उठे नाद बखं ॥२३॥

(द० ग्र० पृ० ४१)

ढ़ढ़दाढ़ कराल द्वै सेत उध ॥
जिह भाजत दुस्ट बिलोक जुध ॥
मद मत्त कृपाण कराल धर ॥
जय सद्द सुरा सुरय उचरं ॥५५॥

(द० ग्र० पृ० ४२)

विविध रूप—एक रूप सम्बन्धी

विराट रूप

सहसराछ जाके सुभ सोहे ॥
सहस पाद जाके तन मोहे ॥१८॥

(द० ग्र० पृ० ४७)

विविध रूपी

कहूं फूल ह्वै के भले राग फूलें ॥
कहूं भंवर ह्वै के भली भात भूलें ॥
कहूं पवन ह्वै के बहे बेगि ऐसे ॥
कहै मो न आवै कथो ताहि कैसे ॥१२॥

(द० ग्र० पृ० ४०)

कहूं रूप धारे महाराज सोहं ॥
कहूं देव कनियान को मान मोहं ॥
कहूं बीर ह्वै के धरै बाण पानं ॥
कहूं भूत ह्वै के बजाए निसानं ॥३६॥

(द० ग्र० पृ० ४१)

एक रूप

सदा एक रूपं । सभै लोक भूपं ॥
अजेअं अजायं । सरनिय सहायं ॥३६॥

(द० ग्र० पृ० ४२)

सदैवं सदा सिद्ध वृद्धं सरूपे ।
नमो एक रूपे नमो एक रूपे ॥१२॥१०२॥

(द० ग्र० पृ० २१)

एक रूप भी—अनेक रूप भी

मु आदि अंत एकियं ॥ धरे सरूप अनेकियं ॥५०॥

(द० ग्र० पृ० ४२)

नमो एक रूपं अनेक सरूपे ॥
सदा सरब साह सदा सरब भूपे ॥२॥

(द० ग्र० पृ० १२७)

इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने इष्ट देव के विविध रूपों का वर्णन किया है। उसके निराकार रूप का भी, उसके साकार रूप का भी। उसके करुणाप्रधान रूप का भी, उसके भयावह रूप का भी। उसके एक रूप का भी, उसके अनेक रूप का भी। किन्तु यह तो सब उस अन्धे की पहचान के समान है जो हाथी के कानों को छूकर उसे पंखे की तरह समझ लेता है, उसकी सूंड छूकर उसे एक मोटी रस्सी की तरह समझ लेता है और उसके पैर छूकर उसे एक स्तम्भ की तरह समझ लेता है। जैसे वह अन्धा न तो हाथी का पूर्ण स्वरूप देख ही सकता है न ही उसका वर्णन कर सकता है उसी प्रकार किसी भक्त का भी विविध रूपों में किया हुआ परमात्मा का वर्णन भी एकांगी ही है। भक्त की इस असमर्थता और अल्पज्ञता से गुरु गोबिन्दसिंह भली प्रकार परिचित हैं, इसलिए विविध रूपों में उसका वर्णन करते हुए भी अपने अज्ञान और असामर्थ्य को वे कहीं नहीं भूलते—

नहीं जान जाई कछू रूप रेख ॥
कहा बास ताको फिरै कउन भेख ॥
कहा नाम ताको कहा कै कहावै ॥
कहा कै बखानो कहै मे न आवै ॥३॥६३॥

(द० ग्र० पृ० २०)

और सच बात तो यह है कि जिस प्रकार पुत्र अपने पिता के जन्म के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता वैसे ही भक्त भगवान के विषय मे कुछ कह सकने में असमर्थ है।

कहा लगै इहु कीट बखानैं ॥ महिमा तोरि तुही प्रभु जानैं ॥
पिता जनम जिम पूत न पावै ॥ कहा तवन का भेद बतावै ॥४॥

(द० ग्र० पृ० ४७)

गुण

स्वरूप और गुणों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक का दूसरे पर अनिवार्य प्रभाव पड़ता है। भगवान मे जो अनन्त सौन्दर्य है, वह उसके अनन्त गुणों के कारण है। अपने परम धाम मे वे अगुण, अखण्ड, अनन्त, अनादि, अरूप, अनीह, अनामय, अज, अलख, अविनाशी, निराकार, निर्मोह, निरंजन, नित्य तथा एक रस हैं। जीव की दृष्टि से वे न्यायी, कर्मफलदाता, नाना योनियों में घुमाने वाले, ज्ञानी तथा गुणधाम और जड़ जगत की दृष्टि से प्रकाशक, स्रष्टा, पालक, संहारक और सर्व व्यापक हैं। भक्त की दृष्टि से वे परम उदार, दानी, पतितपावन, उत्पीड़ितों के संस्थापक, अशरण, शरण और करुणा के कोष हैं।[1] गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने इष्टदेव में इन सभी गुणों का समावेश किया है।

---

१. भक्ति का विकास, पृ० ६६६।

निरपेक्ष गुण

'जाप' में ईश्वर के निरपेक्ष और सापेक्ष सभी गुणों का वर्णन है। यह रचना मानो ईश्वर के बहुविधि गुणों की तालिका है। निम्नलिखित निरपेक्ष गुण 'जापु' में वर्णित है—

अकाल, अरूप, अनूप, अभेख, अलेख, अकाय (कायारहित), अजाए (स्थान रहित), अगज, अभज, अनाम, अठाम, अकर्म, अधर्म, अजीत, अभीत, अबाह (वाहन रहित), अनील, अनाद, अछेद, अगाध, अपार, अभूत, निर्देश, निर्वेश, अशोक, निर्ताप, अथाय, अगाह (अग्राह्), अरग, अभग, अगम्य, निराश्रित, अजाति, अपाति, अजन्म, अबन्ध, अनन्त, अभीक (अथाह), निर्बूंक, अजाल, अछूत, अलौकिक, अनग, अनाथ, अभोगी, अमुक्त, आदि रूप, अनादि मूर्ति आदि।

सापेक्ष गुण

कृपालु, उदार, प्रभोग (भोगो का प्रदाता), सुजोग (सुयोग्य), रम्य, सर्वकाल, सर्वदयाल, सर्वरूप, सर्व भूप, सर्व खाप (सबको खपाने वाला), सर्व थाप (सबको स्थिर रखने वाला), सर्वपाल, देव, सर्व रग, सर्व भग, सर्व मवे, सर्व सोख, सर्व पोख, रफीक (हमराही), क्रूरकर्मी, रोगहर्ता, रागरूप, शहशाह, भूपों का भूप, दानदाता, सर्वदेशीय, सर्वबेधीय, कुकर्म प्रणासी, रिद्धि सिद्धि निवासी, सर्वदाता, सर्व ज्ञाता, सर्व प्राण, सर्व त्राण, सर्व भुक्ता, धर्मध्वजा, राजक (रोजी देने वाला), रहीम (दयालु), नर्कनाश कर्ता, करुणालय, अरिघालय, खल खडन, महि मडन, जगतेश्वर, परमेश्वर, कलि कारण, सर्व उबारन, धैर्य धारण, जग कारण, मन मान्य, जगजान्य, विश्वम्भर, सर्वेश्वर, नृप नायक, योग रूप, ज्ञान रूप, मत्र रूप, युद्ध रूप, भोज रूप, जल रूप, कलह कर्त्ता, शान्त रूप आदि।

ईश्वर के इन निरपेक्ष और सापेक्ष गुणो की चर्चा गुरु गोविन्दसिंह की प्रत्येक भक्ति रचना में है।

निरपेक्ष गुणों का वर्णन करते हुए अकाल स्तुति के एक पद मे वे कहते हैं—

न आध न व्याध अगाध सरूपे ॥
अखडत प्रताप आदि अछे बिभूते ॥
न जन्मं न मरन न बरनं बिआधे ॥
अखडे प्रचडे अदडे अगाधे ॥७॥६७॥

(द० ग्र० पृ० २१)

'विचित्र नाटक' मे यही भाव निम्न ढग के उद्धरित अनेक पदो में हुआ है—

अजेय अभेय अनाम अठाम ॥
महाजोग जोगं महाकाम काम ॥
अलेख अभेख अनील अनाद ॥
परेय पवित्रं सदा निर्बिखाद ॥६॥

(द० ग्र० पृ० ३६)

ज्ञान प्रबोध मे यही भाव इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

अलख रूप अलेख अबै अनभूत अभजन ॥
आदि पुरुख अबिकार अजे अनगाध अगजन ॥

निरबिकार निरजुर सरूप निरदेख निरजन ॥
अभजान भजन अनभेद अनभूत अभजन ॥७॥३८॥

(द० ग्र० पृ० १३१)

निराकार परमात्मा के निरपेक्ष गुणों के विशद् वर्णन के साथ ही उसके सापेक्ष गुणों की चर्चा भी हर पहलू से हुई है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सापेक्ष गुण—जगत की दृष्टि से

सृष्टि का रचयिता

जिन कीन जगत् पसार ॥ रचयो बिचार बिचार ॥६॥३६॥

(द० ग्र० पृ० १५)

सृष्टि का पालक और नाशक

बिस्व पाल जगत काल दीन दयाल बैरी साल,
सदा प्रतिपाल जम जाल तें रहत है ॥५॥७५॥

(द० ग्र० पृ० १७)

सृष्टि में व्यापक

जलें हरी ॥ थलें हरी ॥ उरें हरी ॥ बनें हरी ॥१॥५१॥
गिरें हरी ॥ गुफे हरी ॥ छितें हरी ॥ नभे हरी ॥२॥५२॥
ईहा हरी ॥ ऊहां हरी ॥ जिमी हरी ॥ जमा हरी ॥३॥५३॥

(द० ग्र० पृ० १६)

सब कुछ उसी से उत्पन्न होकर उसी में समा जाता है—

जैसे एक आग ते अनूका कोट आग उठे,
निआरे निआरे हुइके फेरि आग मै मिलाहगे ॥
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है,
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहगे ॥
जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत है,
पान के तरंग सबै पान ही कहाहिगे ॥
तैसे बिस्वरूप ते अभूत भूत प्रगट होइ,
ताही ते उपज सबै ताही मैं समाहगे ॥१०॥८७॥

(द० ग्र० पृ० २०)

जीव की दृष्टि से

दाता

ईश्वर जीव के लिए अनेक प्रकार की शक्तियों का प्रदाता है। वह जन्मदाता है, कर्म दाता है—

जन्मदाता कर्म जाता धर्मचरि बिचार ॥ (द० ग्र० पृष्ठ २१)

वह अन्न दाता है, ज्ञान दाता है।

अन्न दाता ज्ञान दाता सर्ब मान महिन्द्र। (द० ग्र० पृ० २१)

वह सिद्धि दाता है, बुद्धि दाता है—

सदा सरबदा सिद्ध दा बुद्धि दाता ॥ (द० ग्र० पृ० १२८)

सच बात तो यह है कि वह सब कुछ देता है, सब कुछ जानता है, सबका पालन करता है—

सर्ब दाता सर्ब ज्ञाता सर्ब को प्रतिपाल ॥ (द० ग्र० पृ० २६)

सृष्टि मे याचक तो अनेक हैं, परन्तु देने वाला तो एक ही है—

साहिबु श्री सबको सिर नाइक,
जाचक अनेक सु एक दिवैया ॥ (द० ग्र० पृ० १४)

और वह ऐसा दाता है कि चेतन, जड़, पृथ्वी और आकाश सभी को देता है—

जान को देत अजान को देत जमीन को देत जमान को दै है ॥
काहे को डोलत है तुमरी सुधि सुन्दर स्री पदमापति लै है ॥
(द० ग्र० पृ० ३५)

कृपाल

जीव की दृष्टि से ईश्वर का कृपालु होना बहुत महत्वपूर्ण गुण है—

कृपाल दिम्राल करम हैं ॥ अगंज भंज भरम हैं ॥
त्रिकाल लोकपाल हैं ॥ सदैव सरब दिम्राल हैं ॥७॥१५॥
(द० ग्र० पृ० १२८)

करुणानिधान

करुणानिधान कामल कृपाल ।
दुख दोख हरत दाता दिम्राल । (द० ग्र० पृ० ३४)

कारणस्वरूप

करुणानिधान ॥ कारण सरूप ॥
जिह चक्र चिह्न नहीं रंग रूप ॥ (द० ग्र० पृ० ३४)

उदार

पायो न जाइ जिह पैर पार ।
दीनान दोख दहिता उदार ॥ (द० ग्र० पृ० ३४)

दीन बन्धु, दीन दयाल, स्वामी

दीनबन्धु दयाल सुआमी आदि देव अपाल । (द० ग्र० पृ० १६)

रक्षक

साधन के रक्षक हैं गुनन को पहार हैं ॥ (द० ग्र० पृ० ३७)

यमजाल को काटने और कामना को पूर्ण करने वाले

जम जाल के कटैया हैं कि कामना को तरु हैं ॥

शत्रु-मित्र एक समान

जिह सत्र मित्र दोऊ एक सार ।
अच्छेद सरूप अबिचल अपार ॥ (द० ग्र० पृ० ३४)

क्योंकि न कोई उसका शत्रु है न मित्र है, न पुत्र है, न भाई है—

कहि नाम तास है कवन जात ।
जिह सत्र मित्र नहि पुत्र भ्रात । (द० ग्र० पृ० ३४)

सर्वव्यापक

घट घट महि सोई पुरख व्यापक ॥
सकल जीव जंतक के थापक ॥ (द० ग्र० पृ० १३३६)

सदा समर्थ करतार

भजन घड़न समरथ सदा प्रभ जानत है करतार।

(द० ग्र० पृ० ७११)

भक्त वत्सलता

हाथी की पुकार पल पाछे पहुचत ताहि,
चीटी की चिंघार पहले सुनीयत है।

(द० ग्र० पृ० ३६)

विरोधी गुणों का आश्रय

कहूं देवतान के दिवान मे विराजमान, कहूं दानवान को गुमान मत देत हो ॥
कहूं इन्द्रराजा को मिलत इन्द्र पदवीसी, कहूं इन्द्र पदवी छिपाइ छिन लेत हो ॥
कतहूं बिचार अबिचार को बिचारत हो, कहूं निज नार परनार के निकेत हो ॥
कहूं बेद रीत कहू तासिउं बिपरीत, कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सुरगुन समेत हो ॥

(द० ग्र० पृ० १२)

पक्षपाती ईश्वर

गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा ईश्वर के जिन निरपेक्ष और सापेक्ष गुणों की स्थापना हुई है उनमें से कुछ की चर्चा की गई है। अपनी भक्तिपूर्ण रचनाओं में गुरु गोबिन्दसिंह ने इस बात को अनेक बार दुहराया है कि ईश्वर का न कोई शत्रु है न मित्र है,[1] न माता है, न पिता है, न उसका किसी से (विशेष) स्नेह है, न उसका कोई (विशेष) घर है,[1] न उसका कोई पुत्र है, न भाई है,[3] जिसकी दृष्टि में शत्रु मित्र समान है[4] और वह सदैव सब पर, सर्वत्र स्नेह करता है,[5] उसे किसी से न मोह है, न क्रोध है, न द्रोह है, न द्वेष है।[6]

परन्तु भारतीय परम्परा मे अवतारी कल्पना के साथ एक ऐसे ईश्वर की भी प्रतिष्ठा हो चुकी थी जो प्रत्येक युग में कुछ की रक्षा करने के लिए और कुछ का विनाश करने के लिए जन्म लेता है।[7] यद्यपि वह जिनकी रक्षा करता है वे साधु पुरुष होते हैं और जिनका वह विनाश करता है वे दुष्ट होते हैं अर्थात् वह साधुओं का मित्र और दुष्टों का शत्रु बन जाता है और यहीं से उसके पक्षपाती रूप की स्थापना हो जाती है।

---

१. न सत्र न मित्रं न नेहं न गेहं। (द० ग्र० पृ० २१)
२. न तातं न मातं न जातं न कायं।
न नेहं न गेहं न भरमं न भायं। (द० ग्र० पृ० २१)
३. जिह पुत्र भात नहीं मित्र मात। (द० ग्र० पृ० २१)
४. जिह सत्र मित्र दोऊ एक सार। (द० ग्र० पृ० ३६)
५. सदैवं सदा सर्व सरवत्र सनेहं। (द० ग्र० पृ० २१)
६. न मोहं न क्रोहं न द्रोहं न द्वैखं। (द० ग्र० पृ० २०)
७. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता, अ० ४, श्लोक ८)

भक्ति साहित्य मे सगुण-साकारवादी भक्तो ने ईश्वर के अवतार रूप को अपना इष्ट बनाया, स्वाभाविक रूप से उनके इष्ट (राम अथवा कृष्ण) अपनी परम्परागत प्रतिष्ठा के अनुरूप हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, गोप-गोपियो, उद्धव, अर्जुन आदि के मित्र और बालि, रावण, कुम्भकर्ण, कस, शिशुपाल, जरासध आदि के शत्रु बन कर उनकी रचनाओं में प्रतिष्ठित हुए।

निर्गुण-निराकारवादी भक्तो की रचनाओ में भी ईश्वर का यह पक्षपाती रूप दृष्टिगत होता है किन्तु उतना नहीं जितना सगुण भक्तों की रचनाओं में और जितना है भी वह भी अवतारवादी प्रभाव के कारण[1] अन्यथा निराकार ईश्वर के शत्रु-मित्र होने का प्रश्न ही नही उठता।

पूर्ववर्ती सिख गुरुओं की रचनाओ मे ईश्वर के निरपेक्ष-सापेक्ष सभी गुणों की चर्चा हुई है। गुरु ग्रन्थ साहब मे परमात्मा को 'निरवैर' कहा गया है और उसके इस गुण का उल्लेख अनेक स्थानो पर हुआ है। अर्थात् परमात्मा अपने भक्तों की सहायता करता है, उनपर सभी प्रकार से अपनी कृपा और करुणा की वर्षा करता है परन्तु उसे साथ ही किसी का विनाश करने की आवश्यकता नहीं पडती।

परन्तु गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओ में ईश्वर के इस 'निरवैर' गुण की तत्वतः मान्यता होते हुए भी उसके पक्षपाती गुण की विशद् चर्चा हुई है। यह भी कहा जा सकता है कि ईश्वर के जितने पक्षपाती रूप की प्रतिष्ठा उन्होंने अपनी रचनाओ में की है उतनी किसी भी भक्त कवि ने नही की।

इस अध्याय के प्रारम्भ मे यह बात कही गई है कि गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग उनका तत्कालीन अन्यायी शासन के विरुद्ध उभरते हुए जनान्दोलन का नेता होना भी है। एक निरीह भक्त का संसार मे कोई मित्र-शत्रु नहीं होता। स्वभावतः उसे अपने इष्ट के गुणों मे किसी पक्षपाती अश की स्थापना की आवश्यकता नही पड़ती। परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह जैसे योद्धा पुरुष के मित्र भी थे शत्रु भी थे। मित्र कम थे, असगठित थे, दुर्बल थे, पददलित थे, और शत्रु शक्तिशाली थे और पीड़क थे। ऐसी स्थिति मे भगवान का ही सहारा होता है। उसी के भरोसे आत्मविश्वास उत्पन्न होता है और बढ़ता है।

यह बात इसके पूर्व भी अनेक बार कही गई है कि गुरु गोबिन्दसिंह का हिन्दू पौराणिक साहित्य में इतनी रुचि लेना उद्देश्य प्रेरित है। सभी अवतारों के जन्म लेने का एक ही उद्देश्य है—सन्तो की रक्षा और दुष्टो का विनाश। सभी अवतार देवताओ के पक्ष में और असुरो के विपक्ष में युद्ध करते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह ने इस सिद्धान्त को पौराणिक कथाओं की सीमा से बाहर निकालकर समसामयिक जीवन के यथार्थ पर भी घटित किया है। उन्होंने मुगल शासन से अपने सघर्ष को देवासुर-सग्राम की पृष्ठभूमि में देखा। उन्होंने अपने आप को अवतार न कहकर परम पुरुष का दास ही कहा है और परम पुरुष ने उन्हें भी उसी उद्देश्य के लिए भेजा जिस निमित्त अवतार जन्म ग्रहण करते रहे हैं।

---

१. हरनाक्स दुस्ट हरि मारिआ, प्रहलाद तराया राम राजे।

(गुरु ग्रंथ साहब)

इसलिए ईश्वर के मित्र के सहायक और शत्रुओं के नाशक गुणों की चर्चा उनकी सभी रचनाओं में उपलब्ध है। अपनी विशुद्ध भक्ति-रचना 'जापु' में भी उन्होंने इस रूप का बखान किया है—

अरि बर अगंज। हरि नर प्रभंज ॥१६०॥ (द० ग्र० पृ० ६)
करुणालय हैं अरिघालय हैं ॥१७०॥ (द० ग्र० पृ० ६)
अरि गंजन हैं। रिपु तापन हैं ॥१८१॥ (द० ग्र० पृ० १०)
गनीमुल सिकस्ते। गरीबुल परस्ते ॥१२१॥ (द० ग्र० पृ० ७)

अकाल स्तुति में भी उन्होंने कहा है—

कि सत्रन के मूल हो कि मित्रन के प्राण हो।

(द० ग्र० पृ० १३)

\+ \+ \+

दुष्ट गंजन सत्र भंजन परम पुरख प्रमाथ।
दुस्ट हरता सृष्टि करता जगत में जिह गाथ।

(द० ग्र०, पृ० २६)

मित्र पालक सत्र घालक दीन दयाल मुकुन्द।

(द० ग्र० पृ० २६)

इन रचनाओं में ईश्वर 'मित्र पालक शत्रु घातक' गुण की चर्चा सिद्धान्त रूप में ही दिखाई देती है। ईश्वर का इतना पक्षपाती रूप भारतीय साहित्य में नया नहीं है। परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह ने ईश्वर में आरोपित पक्षपात को और गहरा रूप दिया जो हिन्दी साहित्य में सर्वथा अद्वितीय है।

तुलसीदास के राम और सूरदास के कृष्ण असाधु शत्रुओं के नाशक और साधु मित्रों के पालक हैं अवश्य, परन्तु तुलसी या सूर ने कभी अपने व्यक्तिगत शत्रुओं के विनाश की प्रार्थना उनसे नहीं की। गुरु गोबिन्दसिंह ने यह किया है। उन्होंने अपने इष्टदेव 'काल' से अपने शत्रुओं के विनाश और अपने परिवार, सेवकों, सिखों के संरक्षण की प्रार्थना की है।[1]

---

१. हमारी करो हाथ दै रच्छा ॥ पूरन होइ चित्त की इच्छा ॥
तव चरनन मन रहै हमारा ॥ अपना जान करो प्रतिपारा ॥३७७॥
हमरे दुस्ट सभै तुम घावहु ॥ आपु हाथ दै मोहि बचावहु ॥
सुखी बसै मेरो परिवारा ॥ सेवक सिख्य सभै करतारा ॥३७८॥
मो रच्छा निजु कर दै करियै ॥ सभ बैरिन को आज संघरियै ॥
पूरन होइ हमारी आसा ॥ तोहि भजन की रहै पियासा ॥३७९॥
तुमहि छाडि कोई अवर न ध्याऊं ॥ जो बर चाहों सो तुमते पाऊं ॥
सेवक सिख्य हमारे तारियहि ॥ चुनि चुनि सत्र हमारे मारियहि ॥३८०॥
आपु हाथ दै मोहि उबरियै ॥ मरन काल का त्रास निवरियै ॥
हूजो सदा हमारे पच्छा ॥ श्री असिधुज जू करियहु रच्छा ॥३८१॥

(द० ग्र० पृ० १३८६)

धर्मयुद्ध में जूझ मरने का वरदान वे भगवती शिवा से अवश्य मांगते हैं किन्तु इसके साथ ही वे शत्रु पर अपनी विजय का वरदान भी मांगते हैं।[१]

कारण स्पष्ट है। सूर, तुलसी, कबीर, नानक सभी भक्त हैं किन्तु गुरु गोबिन्दसिंह योद्धा भक्त हैं। योद्धा रण मे जाते समय अपने पक्ष की विजय और विपक्ष की पराजय की कामना अपने इष्ट से करते ही आए हैं। गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व में योद्धा, भक्त और कवि का सम्मिलन है। मानो शिवाजी, समर्थ रामदास और भूषण एक साथ उनके व्यक्तित्व मे आ समाए हैं।

भक्ति का महत्त्व

भक्ति के महत्त्व को गुरु गोबिन्दसिंह ने न केवल असंदिग्ध रूप से स्वीकार ही किया है वरन् सभी प्रकार से उसे पुष्ट किया है। उनकी दृष्टि मे कोई भी व्यक्ति अपने अन्यान्य गुणों के कारण कितना भी महान क्यों न हो, परमात्मा के सम्मुख उसकी स्वीकृति केवल भक्ति के आधार पर ही होती है। कोटियों ही इन्द्र, अनेक ब्रह्मा और विष्णु, अनेक राम कृष्ण और रसूल, बिना भक्ति के वह किसी को स्वीकार नहीं करता—

जिह कोट इन्द्र नृपार ॥ कई ब्रह्म बिसन बिचार ॥
कई राम कृष्ण रसूल ॥ बिन भगत को न कबूल ॥

(द० ग्र० पृ० १५)

व्यक्ति लाख होम करे, यज्ञ करे, दान करे किन्तु बिना भक्ति की शक्ति के वह (परमेश्वर) हाथ नहीं आता। एकचित्त होकर (परमात्मा के) नाम में लीन हुए बिना सभी धर्म फोकट हैं—

बिन भगत सकत नहीं परत पान ॥
बहु करत होम अर जज्ञ दान ॥
बिन एक नाम इक चित्त लीन ॥
फोकटो सरब धरमा बिहीन ॥

(द० ग्र० पृ० २४)

परन्तु भक्ति मार्ग मे पाखण्डियो का अभाव नहीं। कुछ लोग केवल अपने बाह्याडम्बरों के भरोसे ही लोगों को अपनी भक्ति का विश्वास दिलाते रहते हैं। क्या हुआ जो दोनो आंखें बन्द कर बगुले की तरह ध्यान लगाकर बैठ गए। क्या हुआ जो सातो समुद्रों की यात्रा करते फिरे, इससे लोक भी गँवाया और परलोक भी। जीवनभर विषयो के बीच ही अपना निवास रखा। सच तो यह है कि जिसने प्रेम किया, उसी को प्रभु की प्राप्ति हुई।[२] कोई पत्थर को

१. देह सिवा बर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहू न टरौं ॥
न डरौं अरि सौ जब जाइ लरौं निसचै कर अपनी जीत करौं ॥
अरु सिख हो आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरौं ॥
जब आवकी अउध निदान बने अत ही रन मै तब जूझ मरौं ॥२३१॥

(द० ग्र० पृ० ६६)

२. कहा भयो दोऊ लोचन मूंद के बैठ रहयो बक धिआन लगाइड ॥
न्हात फिरिउ लीए सात समुन्द्रन लोक गइउ परलोक गवाइउ ॥
बास कीउ बिखिआन सो बैठके ऐसे ही ऐस सुबैस बिताइउ ॥
साचु कहौ सुन लेहु सभै जिन प्रेम कीउ तिनही प्रभु पाइउ ॥

(द० ग्र० पृ० ४१)

लेकर पूजता है, कोई लिंग गले में लटकाता है। कोई ईश्वर को पूर्व मे देखता है, कोई पश्चिम में। कोई बुतों को पूजता है, कोई कबरों को पूजता है। सभी इन झूठी क्रियाओं में उलझे हुए हैं, भगवान का भेद इन्हें प्राप्त नहीं होता।[1]

ससार मे ऐसे पाखण्डियों का भी प्रभाव नहीं जो अपने नेत्रो मे तेल डालकर झूठे आंसू पैदा कर लेते हैं। अपने किसी धनवान सेवक को देखकर उसे अच्छा भोजन कराते हैं और यदि धनहीन को देखा तो उसकी ओर मुंह भी नही करते। इस प्रकार ऐसे पशु अपने पाखण्डो द्वारा लोगों को (धर्म के नाम पर) लूटते रहते है, कभी परमेश्वर के गुण नही गाते।[2]

इसलिए गुरु गोबिन्दसिंह कहते हैं, सब बाह्य कर्मों को मिथ्या समझो, सभी धर्मों को निष्फल मानो, बिना एक परमेश्वर के नाम के सभी कर्मों को भ्रम मात्र ही समझो—

सब करम फोकट जान ॥ सभ धरम निहफल मान ॥
बिन एक नाम अधार ॥ सब करम भरम विचार ॥

(द० ग्र० पृ० १६)

और वही लोग इस भवसागर से तरकर जीवन मरण के चक्कर से मुक्त होंगे जो इस प्रकार बाह्याचार के धर्मों का त्याग करके एकचित्त होकर कृपानिधि का जाप करेंगे—

जिह फोकट धरम सबै तजिहैं ॥
इक चित्त कृपा निधि को जपहैं ॥
तेंउ या भव सागर को तरहैं ॥
भव भूल न देह पुनर धरहै ॥

(द० ग्र० पृ० २६)

साधन

भक्ति के लिए विभिन्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है। साधक अपने साध्य की प्राप्ति के लिए इन साधनों का आश्रय ग्रहण करता है।

नाम का महत्त्व

सब साधनों में प्रमुख साधन है 'नाम जपना'। सिख मत में 'नाम जप' का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरु अर्जुन ने 'सुखमनी' मे कहा है—अनेक प्रकार के कठिन व्रत और साधन

---

१. काहू लै पाहन पूज धरो अरु काहू लै लिंग गरे लटकाइउ ॥
काहू लखिउ हरि अवाची दिसा महि, काहू पछांह को सीस निवाइउ ॥
कोऊ बुतान को पूजत है पसु कोऊ मृतान को पूजन धाइउ ॥
कूर क्रिया उरझिउ सभही जगु स्री भगवान को भेदु न पाइउ ॥

(द० ग्र० पृ० १५)

२. आखन भीतरि तेल कौ डार सु लोगन नीरु बहाइ दिखावै ॥
जो धनवानु लखे निज सेवक ताही परोसि प्रसादि जिमावै ॥
जो धनहीन लखे तिह देत न मागत जात मुखो न दिखावै ॥
लूटत है पसु लोगन को कबहूं न परमेसुर के गुन गावै ॥

(द० ग्र० पृ० ७१६)

नाम की समानता नहीं कर सकते।[1] गुरु गोबिन्दसिंह ने इसी बात को 'अकाल स्तुति' में कहा है—

इक नाम बिना नहि कोटि व्रती।

(द० ग्र० पृ० २६)

नाम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए वे 'ज्ञान प्रबोध' में कहते हैं—अनन्त यज्ञ कर्म, हाथी-दान आदि धर्म, अनेक देशों का भ्रमण, एक नाम के समान नहीं है।[2] एकान्तवास, करोड़ों वनों का भ्रमण, तन्त्र के उच्चारण आदि कर्म करो चाहे अनन्त पाठ करो, बहुत से ठाठ बनाओ, चाहे सारी सृष्टि में घूमो, एक नाम के बराबर कुछ भी नहीं है।[3]

बाह्याचार का त्याग

परमेश्वर की प्राप्ति में साधक का मार्ग भ्रष्ट करने के लिए अनेकानेक व्याधियां आ उपस्थित होती हैं। कर्म काण्ड भी एक बड़ी बाधा है जो साधक की दृष्टि को परमेश्वर प्राप्ति के सहज मार्ग से हटाकर विभिन्न प्रपचों में फसा देती है। गुरु गोबिन्दसिंह कहते हैं—अनन्त तीर्थ-स्नान, योग, वैराग्य, सन्यास, सयम, व्रत, नियम आदि परमेश्वर के सत्य नाम के अभाव में भ्रम मात्र ही हैं।[4] इसलिए वे उस अनादि परमेश्वर के अतिरिक्त सभी प्रकार के जन्त्र, तन्त्र, मन्त्र, को भ्रम वेश ही मानते हैं—

अनादि अगाध बिआधि आदि को मानीऐ ॥
अगज अभज अरंज अगज गज कउ धिआइऐ ॥
अलेख अभेख अद्वेख अरेख अरेख कउ पछानीऐ ॥
न मूल जन्त्र तन्त्र मन्त्र भरम भेख ठानीऐ ॥

(द० ग्र० पृ० २४)

कामनाओं का त्याग

कामना अधीन सदा दामना प्रबीन
एक भावना बिहीन कैसे पावे जगदीस को ॥

(द० ग्र० पृ० १८)

---

१. सरीरु कटाइ होमै करे राती ॥ बरत नेम करै बहु भाती ॥
नहीं तुलि राम नाम बीचार ॥ नानक गुरमुखि नाम जपीऐ इक वार ॥

(गुरु ग्रथ साहब, पृ० २६५)

२. अनन्त जग्य करमणं ॥ गजादि आदि धरमणं ॥
अनेक देस भरमणं ॥ न एक नाम के समं ॥

(द० ग्र० पृ० १३५)

३. अनेक पाठ पाठनं ॥ अनन्त ठाठ ठाटनं ॥
न एक नाम के समं ॥ समस्त स्रिस्ट के भ्रमं ॥

(द० ग्र० पृ० १३५)

४. अनन्त तीरथ आदि आसनादि नारद आसनं ॥
बैराग अउ सनिआस अउ अनादि जोग आसन ॥
अनादि तीरथ संजमादि बरत नेम पेखिऐ ॥
अनादि अगाधि के बिना समस्त भरम लेखीऐ ॥

(द० ग्र० पृ० १३६)

भावना विहीन और कामनाओं के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के योग, व्रत, यज्ञ आदि साधन करना व्यर्थ है। ऐसे लोग भला जगदीश को कैसे प्राप्त होंगे।

विषयों का त्याग

काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, हठ, मोह आदि साधक के सबसे बड़े शत्रु हैं। ये आत्म-विनाश की सीढ़ियां हैं। जो इन विषयों में फंस जाता है, उसे आत्मतत्व के दर्शन नहीं होते—

काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावै ॥
तबही आतम तत्त को दरसे परम पुरख कह पावै ॥

(द० ग्र० पृ० ७०६)

मानव मात्र की समता में विश्वास

संसार में कोई मुंडी संन्यासी है, कोई योगी है, कोई ब्रह्मचारी है, कोई यति है, कोई तुर्क है, कोई शिया है, कोई सुन्नी है परन्तु ये सब मनुष्य हैं। अपने इन भेदों के कारण न कोई छोटा है न बड़ा है—

कोऊ भयो मुंडिया सनिआसी कोउ जोगी भइउ,
कोई ब्रह्मचारी कोउ जती अनुमानबो ॥
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम शाफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानबो ॥

(द० ग्र० पृ० १६)

विभिन्न मतों में विभिन्न नामों से पूजित एक ईश्वर में विश्वास

करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो ॥
एक ही की सेव सभ ही को गुरुदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोति जानबो ॥

(द० ग्र० पृ० १६)

विभिन्न साधनों के उद्देश्य की एकता में विश्वास

देहरा मसीत सोई पूजा और निवाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है ॥

(द० ग्र० पृ० १६)

योग

गुरु गोबिन्दसिंह कहते हैं, हे मन ! इस प्रकार का योग करो कि जिसमें बाह्य साधनों या दिखावे के कर्मों की आवश्यकता न हो।

रे मन इह विधि जोगु कमाउ ॥
सिंगी साच अकपट कंठला धिआन बिभूत चड़ाउ ॥१॥ रहाउ ॥
ताती गहु आतम बसि करि की भिच्छा नाम अधार ॥
बाजे परम तारतत्तु हरिको उपजे राग रसारं ॥१॥
उघटे तान तरंग रंगि अति गिआन गीत बंधानं ॥
चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि ब्योम बिवानं ॥

आतम उपदेस भेसु सजम को जाप सु अजपा जापे ॥
सदा रहै कचन सी काया काल न कबहूं ब्यापे ॥

(द० ग्र०, पृ० ७१०)

सन्यास

वे ऐसा ही संन्यास ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं जिसमें घर ही वन बन जाय, बाह्य रूप से नहीं तो मन से व्यक्ति उदासी हो जाय, ज्ञान गुरु द्वारा आत्मा का उपदेश हो और नाम की विभूति लगे—

रे मन ऐसो करि सनिआसा ॥
बन से सदन सबै करि समझहु मन ही माहि उदासा ॥१॥ रहाउ ॥
जतकी जटा जोग को मज्जनु नेम को नखन बढाउ ॥
गिआन गुरु आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाउ ॥१॥
अलप अहार सुलपसी निद्रा दया छिमा तन प्रीति ॥
सील सन्तोख सदा निरबाहिबो ह्वैबो त्रिगुण अतीत ॥
काम क्रोध हकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावै ॥
तबही आतम तत्त को दरसे परम पुरख कह पावै ॥३॥१॥

(द० ग्र० पृ० ७०६)

भगवत्कृपा

भगवान की कृपा तो साधक का जीवनाधार है। उसकी कृपा से कुछ संभव है। गूंगा भी शास्त्र पढ़ सकता है, अपाहिज पहाड़ चढ़ जाता है, अन्धा देखने लगता है और बहरा सुनने लगता है—

मूक उचरै सास्त्र खटि पिंग गिरन चढ़ि जाइ ॥
अंध लखै बधरो सुनै जो काल कृपा कराइ ॥

(द० ग्र० पृ० ४७)

अपनी असमर्थता की अनुभूति

साधक को परमेश्वर के सम्मुख अपनी तुच्छता की अनुभूति सदा बनी रहती है। गुरु गोबिन्दसिंह कहते हैं, मेरी बुद्धि तो तुच्छ है वह तुम्हारी महिमा का वर्णन किस प्रकार कर सकती है—

कहा बुद्धि प्रभ तुच्छ हमारी ॥
बरनि सकै महिमा जु तिहारी ॥

(द० ग्र० पृ० ४७)

प्रभु की उदारता

अपनी असमर्थता और तुच्छता के साथ ही उन्हें प्रभु की उदारता में भी विश्वास है—

हौं मतिमद चरन सरनागति,
कर गहि लेहु उबारी ॥

(द० ग्र० पृ० ७१०)

गुरु गोबिन्दसिंह की प्रेमा भक्ति

इस अध्याय के प्रारम्भ मे यह बात कही गयी है कि सिख गुरु सदैव प्रेमा भक्ति के ही समर्थक रहे हैं। समस्त विधि विधानों को उन्होने ईश्वर प्राप्ति के मार्ग मे निस्सार ही नहीं माना, उन्हें बाधक भी माना है। गुरु गोबिन्दसिंह की भक्तिपूर्ण रचनाओं में भागवत् पुराण में वर्णित भक्ति के नौ अंगों, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन के कुछेक उदाहरण ढूंढ लेना कठिन नहीं है परन्तु अपनी भावाभिव्यक्ति करते समय उनकी दृष्टि कभी इस विधि की ओर नहीं रही। विधि के परिणामस्वरूप उत्पन्न पाखण्ड का वे सदैव खण्डन करते रहे—

"क्या हुआ जो दोनों नेत्र बन्द करके बगुले की तरह ध्यान लगाकर बैठ गए, सातों समुद्रों की यात्रा कर ली। (परन्तु इन सब विधि क्रियाओं से प्रेम तो उत्पन्न नहीं हुआ, परिणामस्वरूप) विषयों के बीच ही जीवन नष्ट हो गया।"

इसलिए मानो वे सनाद घोषणा करते हैं—

"साच कहो सुन लेहु सबै,
जिन प्रेम कीयो तिन ही प्रभ पायो ॥६॥२६॥

भक्ति में प्रेम के महत्व को सभी भक्तों ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। गुरु अर्जुन कहते हैं—प्रभु ने बड़ी कृपा करके अपनी कृपा भरी दृष्टि डाली और अपने चरणों से मुझे लगा लिया। साधु-संग और प्रेम-भक्ति से यह सुख प्राप्त हुआ।[1]

कबीर को ऐसे व्यक्तियों का संसार में उत्पन्न होना व्यर्थ जान पड़ता है जिनके हृदय में प्रेम और रसना मे राम नाम नहीं है।[2]

सूरदास कहते हैं—प्रेम प्रेम से ही उत्पन्न होता है। प्रेम से ही मानव भवसागर पार हो सकता है। प्रेम से ही परमार्थ प्राप्त होता है। प्रेम के मधुर पाश से ही सारा संसार बंधा हुआ है। प्रेम का एक निश्चय ही सरस जीवन मुक्ति है क्योंकि उसी से भगवान प्राप्त होते हैं।[3]

तुलसीदास कहते हैं—प्रेमा भक्ति रूपी जल ही साधक के अभ्यंतर मल को धो सकता है।[4] गुरु गोबिन्दसिंह कहते हैं—उस (परमेश्वर ने) विविध प्रकार के जीव जन्तु भूत में

---

१. करि किरपा प्रभु नदरि अविलोकनु आपणै चरणि लगाई ॥
प्रेम भगत नानक सुखु पाइआ साधू संगि समाई ॥
(गु० ग्र० सा० आसा म० ५, पृ० ३८४)

२. जिहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहीं राम ॥
ते नर इस संसार में, उपजि भए बेकाम ॥
(कबीर ग्रंथावली, पृ० ६, दोहा १७)

३. प्रेम प्रेम तै होइ प्रेम तै पारहि पैये ॥
प्रेम बन्ध्यो संसार प्रेम परमारथ लहिये ॥
एकै निश्चय प्रेम को जीवन मुक्ति रसाल ॥
साचौ निश्चय प्रेम को जेहि रे मिले गोपाल ॥४७१३॥

४. राम चरन अनुराग नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥
(विनय पत्रिका ८२)

बनाए हैं, अब भी बना रहा है, भविष्य में भी बनाएगा। असंख्य देव और अदेव अपने बड़प्पन की अहम्मन्यता मे ही समाप्त हो गए उसका भेद नहीं पा सके। वेद और पुराण, कतेब और कुरान उसका वर्णन करते-करते थक गए किन्तु वह हाथ न आया। (बताओ) पूर्ण प्रेम के प्रभाव बिना आज तक भगवान किसे प्राप्त हुए हैं ?[1]

आज के सभी मनोवैज्ञानिक एक स्वर से स्वीकार करते है कि भाव कर्म का सद्यः पूर्ववर्ती है। वचन भी कर्म का ही एक अंग है। जब भाव उद्दीप्त होता है,तो उसकी लपेट मे वचन और कर्म अपने आप प्रकट होने लगते हैं। अतएव हरि भक्ति जब भक्तिपूर्वक की जाएगी तो वाणी और क्रिया स्वयमेव उसका साथ देंगी। इस प्रकार मन, वचन और कर्म की एकता संपादित होगी।[2] गुरु गोबिन्दसिंह ने उन वचनो और कर्मों की निस्सारता स्थान-स्थान पर स्पष्ट की हैं जो भावना विहीन है। वे कहते हैं—यदि सिजदा करने से परमेश्वर मिलता हो तो तोपची (तोप मे पलीता लगाते समय) सिजदा ही किया करता है और अफ़ीमची भी अपनी पीनक मे न जाने कितनी बार सिर झुकाता है। और यदि अष्टांग दण्डवत् से ईश्वर मिले तो एक पहलवान डंड निकालता ही रहता है। ऊर्ध्वमुखी होकर निहारने का ही महत्त्व हो तो रोगी का मुख भी ऊर्ध्वमुखी हो रहता है। सच बात तो यह है कि ऐसे बाह्याचारी लोग धन के चक्कर मे फंसे, कामनाओ के अधीन हैं। ऐसे भावनाविहीन लोग ईश्वर को कैसे प्राप्त करेंगे ?[3]

प्रपत्ति मार्ग

वैष्णव आचार्यों ने प्रपत्ति अथवा शरणागति को सर्वश्रेष्ठ मार्ग कहा है। भक्त इसमे प्रभु के आगे सर्वात्मना अपने आपको समर्पित कर देता है। प्रपत्ति के छः प्रकार कहे गए हैं। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं मे इनके पर्याप्त उदाहरण विद्यमान हैं। क्रमशः कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अनुकूल का संकल्प

तुमहि छाड़ि कोई अवर न ध्याऊं॥
जो बर चाहौं सु तुमते पाऊं॥

(द० ग्र० पृ० १३८६)

---

१. कीट पतंग कुरंग भुजंगम भूत, भविख भवान बनाए॥
देव अदेव खपे अहमेव न भेव लख्यो भ्रम सिउ भरमाए॥
वेद पुरान कतेब कुरान हसेब थके कर हाथ न आए॥
पूरन प्रेम प्रभाउ बिना मति सिउ किन श्री पदमापति पाए॥

(द० ग्र० पृ० ३४)

२. भक्ति का विकास, पृ० ४७३।

३. सिजदे करै अनेक तोपची कपट भेस पोसती अनेकदा निवावत है सीस को॥
कहा भइउ मल्ल जो पै काढ़त अनेक डंड सो तौन कहौत अस्टांग अथतीस को॥
कहा भइउ रोगी जो पै डार्यो रहयो ऊरध मुख मन ते न मूंड निहरायो आदईस को॥
कामना अधीन सदा दामना प्रबीन एक भावना विहीन कैसे पावे जगदीस को॥

(द० ग्र० पृ० १८)

प्रतिकूल का त्याग

इक बिन दूसर सो न चिनार ॥
भोजन घड़न समरथ सदा प्रभु जानत है करतार ॥रहाउ॥
कहा भइउ जो अति हित चितकर बहुबिध सिला पुजाई ॥
पान थकिउ पाहिन कुह परसत कछु कर सिद्ध न आई ॥१॥
अच्छत धूप दीप अरपत है पाहन कछू न खैहै ॥
ता मैं कहा सिद्ध है रे जड़ तोहि कछू बर देहै ॥२॥
जो जिय होत तो देत कछू तुहि मन बच करम बिचार ॥
केवल एक सरण सुआमी बिन यों नहिं कतहि उधार ॥३॥

(द० ग्र० पृ० ७११)

गोप्तृत्वरण

दीनन की प्रतिपाल करे नित संत उबार गनीमन गारै ॥
पच्छ पसू नग नाग नराधप सरब समय सबको प्रतिपारै ॥
पोखत है जल में थल में पल मे कलि के नहीं करम बिचारै ॥
दीन दयाल दयानिधि दोखन देखत है पर देत न हारै ॥

(द० ग्र० पृ० ३४)

रक्षा का विश्वास

सुभ निसुभ से कोट निसाचर जाहि छिनेक बिखै हन डारे ॥
धूमर लोचन चंड अउ मुंड से माहख से पल बीच निवारे ॥
चामर से रण चिच्छुर से रकतिच्छण से झट दे झझकारे ॥
ऐसो सु साहिबु पाइ कहा परवाह रही जिह दास तिहारे ॥

(द० ग्र० पृ० ४५)

आत्मनिक्षेप

प्रभु जू तोकहु लाज हमारी ॥
नील कण्ठ नरहरि नाराइण नील बसन बनवारी ॥१॥रहाउ॥
परम पुरख परमेसर सुआमी पावन पउन अहारी ॥
माधव महाजोति मध मरदन मान मुकुन्द मुरारी ॥१॥
निरबिकार निरजुर निद्रा बिनु निरबिख नरक निवारी ॥
कृपासिंध काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी ॥२॥
धनर पान धृतमान धराधर अनि बिकार असिधारी ॥
हौं मतिमंद चरन सरनागति कर गहि लेहु उबारी ॥३॥

(द० ग्र० पृ० ७१०)

कार्पण्य

अब रच्छा मेरी तुम करो ॥
सिख्य उबारि असिख्य संघरो ॥
दुस्ट जिते उठवत उतपाता ॥
सकल मलेच्छ करो रणघाता ॥

(द० ग्र० पृ० १३८७)

सवगकेत में सरनि तिहारी ॥
आपु हाथ दे लेहु उबारी ॥
सरब ठौर मो होहु सहाई ॥
दुस्ट दोख ते लेहु बचाई ॥४०१॥

(द० ग्र० पृ० १३८८)

नानक-मार्गीय भक्ति और गुरु गोबिन्दसिंह

गुरु गोबिन्दसिंह की भक्ति भावना का अध्ययन करते समय हमने देखा कि गुरु गोबिन्दसिंह तथा उनके पूर्ववर्ती नौ गुरुओं द्वारा निरूपित भक्ति प्रणाली में कोई मौलिक या तात्विक अन्तर नहीं है। फिर भी कुछेक ऐसे पक्ष हैं जिन पर गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं में कुछ बाह्य परिवर्तन हुए हैं, या उन पर पूर्व गुरुओं की अपेक्षा अधिक आग्रह किया गया है। उदाहरणस्वरूप पूर्ववर्ती गुरुओं का इष्टदेव 'अकाल पुरुष' वैष्णव सन्तों के भगवान के ही समान करुणा प्रधान, भक्तवत्सल, कृपालु, सुन्दर, सर्वपालक और सर्वव्यापक है। गुरु गोबिन्दसिंह के इष्टदेव 'काल पुरुष' में 'अकाल पुरुष' के सभी गुण विद्यमान हैं परन्तु उनका अधिक आग्रह उसके वीर और रौद्र रूप पर है। वह शस्त्रमय है, शत्रुओं के लिए महाभयावह है और क्रूरकर्मा है।

इष्ट के प्रति भावाभिव्यक्ति में भी थोड़ा अन्तर दिखाई देता है। गुरु नानक तथा अन्य गुरुओं ने ईश्वर को गुण-प्रधान देखा है जबकि गुरु गोबिन्दसिंह का अधिक आग्रह उसके रूप पर है। पूर्ववर्ती सिख गुरु उसके गुणों की विविध प्रकार की चर्चा करते नहीं अघाते साथ ही रूप चर्चा भी करते हैं परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह की अभिव्यक्ति रूप-प्रधान रही है। वे अपने इष्टदेव के विविध रूपों की चर्चा करते हुए अनुप्रासों की झड़ी लगा देते हैं। विभिन्न स्थानों, देशों, अवस्थाओं और अन्यान्य रूपों में उसकी विविधता के वर्णन करते हुए वे उसे 'एक' बना देते हैं।[1]

आत्मनिवेदन के पक्ष में भी थोड़ा सा अंतर है। पूर्ववर्ती गुरु इष्ट के सम्मुख सभी प्रकार से दीन होकर अपनी विनम्रता प्रकट करते हैं।[2] उनकी सतत प्रीति उसके चरणों में लगी रहे, इसके वे आकांक्षी हैं और प्रेम के आदर्श हैं जल और कमल, मछली-नीर, जल-दूध, चकोर-चन्द्रमा आदि।[3] वे अपने इष्ट से चाहते क्या हैं? न राज-पाट, न मुक्ति, बस प्रीति,

---

१. अजीत हैं ॥ अभीत हैं ॥ अबाह हैं ॥ अगाह हैं ॥४२॥
अपान हैं ॥ निधान हैं ॥ अनेक हैं ॥ फिरेक हैं ॥४३॥

(द० ग्र० पृ० ३)

२. जैता समुन्दु सागरु नीरि भरिआ तेते अवगण हमारे ॥
दइआ करहु किछु मिहर उपावहु डुबदे पथर तारे ॥

(गउड़ी महला १)

३. रे मन ऐसी हरि सिउं प्रीति कर जैसी जल कमलहि।
लहिरी नाल पछाड़ीऐ, भी विगसे असनेहि।
रे मन ऐसी हरि सिउं प्रीति कर जैसी मछुली नीर।
बिनु जल घड़ी ना जीवई, प्रभु जाणै अभ पीर।
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति कर, जैसी जल दुध होय।
आवट्टणु आपे खवै, दुध कउ खपणि नां देहि।
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति कर जैसी चकवी सूर।
खिनु पलु नींद ना सोवई, जाणै दूरि हजूरि।

(गुरु ग्रंथ साहब, म० १)

उसके चरणों में सदा लगी रहने वाली प्रीति ।[1] गुरु गोबिन्दसिंह की भावाभिव्यक्ति में दीनता और याचना का स्वर उस रूप में नहीं है। पहिली बात तो वे अधिक दीनता प्रगट ही नहीं करते। ऐसे स्थल उनकी रचनाओं में बहुत कम हैं और जहां हैं भी वहां उन्हें 'भारी भुजाओं का भारी भरोसा' है।[2] उनकी याचना का स्वर भी भिन्न है। वे भी राजपाट नहीं चाहते, मोक्ष नहीं चाहते, वैयक्तिक भक्ति भी नहीं चाहते। वे चाहते हैं शस्त्रों से सज्जित होकर धर्मयुद्ध में भाग लेना और समय आने पर रणभूमि में ही जूझ मरना।[3]

गुरु गोबिन्दसिंह की भक्ति भावना में गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा बहुत कम हुआ है। गुरु की महत्ता पर समग्र भारतीय साहित्य में बहुत कुछ कहा गया है। मध्यकालीन भक्तों ने भी बड़ी तन्मयता और श्रद्धा से गुरु की प्रशस्ति का गायन किया है। सिख मत में तो गुरु का महत्त्व शायद सर्वाधिक है। प्रथम पांच गुरुओं की वाणी में गुरु की महिमा का गायन एक स्वर और श्रद्धा से हुआ है। किन्तु गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं में गुरु का उल्लेख नाम मात्र को ही है। 'अकाल स्तुति' में एक स्थान पर वे कहते हैं—संसार में सभी का एक गुरु है और वह है परमेश्वर।[4] एक स्थान पर वह कहते हैं—आदि अंत करतार को ही मेरा गुरु समझो।[5] गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन उनकी भक्ति-प्रधान रचनाओं में शायद एक बार भी नहीं हुआ जबकि आदि ग्रन्थ में गुरु के महत्त्व का श्रद्धापूर्ण वर्णन असंख्य बार हुआ है।

आदि ग्रंथ और दशम ग्रंथ की भक्ति पद्धति का यह सामान्य सा अन्तर समझने के लिए हमें पुनः तत्कालीन परिस्थितियों का सहारा लेना पड़ेगा।

दशम ग्रंथ के 'काल पुरुष' का रौद्ररूपी होना एक सामयिक आवश्यकता है। गुरु गोबिन्दसिंह योद्धा-भक्त थे, मुगल शासन के विरुद्ध संगठित होती हुई सशस्त्र क्रान्ति के

---

१. राज न चाहौं, मुकति न चाहौं।
मन प्रीत कमल चरण रे।

२. मेर करो त्रिण ते मुहि जाहि गरीब निवाज न दूसर तोसों।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन भूलन हार कहा कोउ मोसो॥
सेव करी तुमरी तिन के गृह देखी अत दरब भरोसों॥
या कल में सभ काल कृपान के भारी भुजान को भारी भरोसों॥ (द० ग्र० पृ० ४५)

३. जब आव की अउध निदान बने अति ही रन में तब जूझ मरों। (द० ग्र० पृ० ६६)

सस्त्रन सिउ अति ही रन भीतर जूझ मरो कही साच पतीजै॥ (द० ग्र० पृ० ४६१)

जूझ मरो रन मै तजि भै तुम ते प्रभु स्याम इहै बरु पावै। (द० ग्र० पृ० ४६५)

४. एक ही को सेव सभ ही को गुरदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोति जानबो॥ (द० ग्र० पृ० २१)

५. आदि अंत एकै अवतारा,
सोई गुरु समझेउ हमारा। (द० ग्र० पृ०)

संयोजक थे। वे लोगों में भक्तिभाव के साथ ही युद्धभाव को उत्पन्न करना चाहते थे। कदाचित भक्तिभाव की अपेक्षा युद्धभाव को उत्पन्न करने का महत्त्व उनके सम्मुख अधिक था। 'काल पुरुष' का वीररूपी और रौद्र होना इसी भाव से प्रेरित था।

गुरु गोबिन्दसिंह और पूर्व गुरुओं की याचना का अन्तर भी इसी कारण से है। एक भक्त की चरम आकांक्षा इष्ट की सतत भक्ति ही है परन्तु योद्धा के लिए इतनी अनन्य भक्ति निष्क्रियता ही बन जाएगी। योद्धा की इसके अतिरिक्त और क्या आकांक्षा हो सकती है कि वह युद्धभूमि में अपने शत्रुओं का संहार करे और यदि आवश्यकता पड़े, तो स्वय भी जूझ जाए परन्तु अपने पक्ष के विजय की अभिलाषा ही सदैव उसके मन में, विचारों में और जिह्वा पर हो।

गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं में गुरु-महात्म्य का प्रतिपादन जो इतना कम हुआ है उसका कारण पथ-गत है। गुरु सिख सम्प्रदाय की सिद्धान्तगत व्यवस्था का अंग तो था ही साथ ही पथगत व्यवस्था का भी अग था। 'गुरु' ही सम्पूर्ण पथ का सर्वोच्च मार्गदर्शक होता था। उसी को केन्द्र मानकर पंथ की सभी गतिविधियों का संचालन होता था। धीरे-धीरे गुरु का स्थान पथ मे आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही दृष्टियों से आकर्षणयुक्त होता गया। जैसे-जैसे सिख मत का प्रभाव बढ़ा, गुरु-गद्दी के प्रति दावेदारों की सख्या भी बढ़ती गई। चतुर्थ गुरु, गुरु रामदास जी के पश्चात् गुरु-गद्दी पैतृक बन चुकी थी। परन्तु एक गुरु अपने उत्तराधिकारी का चयन करते समय उसकी ज्येष्ठता की अपेक्षा उसकी योग्यता पर अधिक ध्यान देता था। पंचम गुरु, गुरु अर्जुन अपने पिता, चतुर्थ गुरु के सबसे कनिष्ठ पुत्र थे। इसी प्रकार षष्ठ गुरु हरिगोविन्द ने अपने कनिष्ठ पौत्र हरिराय को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। गुरु हरिराय ने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र रामराय की अपेक्षा कनिष्ठ पुत्र हरिकृष्ण को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। इस सबका परिणाम यह हुआ था कि जब गुरु-गद्दी एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाती तो कुछ ऐसे व्यक्ति रुष्ट हो जाते जो अपने आप को गुरु-गद्दी का अधिकारी समझते थे। वे अपने आप को अलग से गुरु घोषित कर देते थे। फलतः सिख-मत की एक प्रामाणिक गुरु-संस्था के समानान्तर एक से अधिक अप्रामाणिक गुरु-संस्थाएं एवं गुरु परिवार भी उठ खड़े हुए थे। गुरु वाणी की नकल में गुरु नानक के नाम से सम्बन्धित अप्रामाणिक वाणी का प्रचलन भी इन प्रामाणिक गुरुओं द्वारा हुआ। यह स्मरणीय है कि गुरु का स्तवन भले-बुरे, सद्गुरु और पाखण्डी गुरु सभी को समान रूप से लाभ पहुचाता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने गुरु-परम्परा में बढ़ते हुए वैमनस्य और पाखण्डी गुरुओं द्वारा भ्रष्ट होती हुई जनता की स्थिति देखकर ही अपने साथ इस परम्परा को समाप्त कर दिया था। गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं मे गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन जो अधिक नहीं हुआ, उसे इसी सदर्भ में देखा जा सकता है।

काव्य-सौष्ठव

६

रस-व्यंजना

वीर रस

गुरु गोविन्दसिंह के काव्य मे वीर रस की व्यंजना कदाचित उनके काव्य की *सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। साहित्य में जितने रस गिनाए गये हैं उनमे शृंगार* को छोड़कर और सब रसो से वीर रस की व्याप्ति बहुत अधिक है। शृंगार रस का 'रति' भाव जिस प्रकार सृष्टि के चराचर सब जीवों में पाया जाता है, उसी प्रकार वीर रस का 'उत्साह' भी सर्वत्र व्याप्त दिखाई देता है। शृ गार रस हृदय की कोमल भावनाओं को तृप्त करता है, उसमें कर्मनिष्ठता मूलभूत नहो है। वीर रस मे हृदय की भावनाओ की तृप्ति के साथ कर्मनिष्ठता मूलरूप से विद्यमान है। तात्पर्य यह है कि *शृंगार रस जहाँ केवल सहृदय के आभ्यन्तर पक्ष को तृप्त करके छोड़ देता है, वीर रस वहाँ* आभ्यन्तर की तृप्ति के साथ-साथ कर्मनिष्ठता भी जागृत करता है। शृ गार रस वस्तुतः व्यक्तिगत भावनाओं को, ऐसी भावनाओं को जिन्हें समाज के अन्य पुरुषों के समक्ष व्यक्त करने की विशेष आवश्यकता नहीं होती, तृप्त करता है। किन्तु वीर रस कर्म-प्रधान होता है और कर्म समाज का पोषक है। वीर रस ऐसा रस है जो हृदय को तो प्रभावित करता ही है, अपनी तेजी से सहृदय के रक्त मे भी गतिशीलता और गरमी उत्पन्न कर देता है।[1]

वीरत्व लौकिक गुण है। समाज के उद्भव के साथ ही इसका भी आविर्भाव हुआ है। इससे उपेत महापुरुषों का यश अनादि काल से गाया गया है। इसे लौकिक कहने का तात्पर्य यही है कि लोक के सम्पर्क में आने पर ही इसका उदात्त रूप व्यक्त होता है। आत्म-रक्षा के निमित्त अपने शरीर की पुष्टि करने वाला प्रशंसनीय हो सकता है, परन्तु उसके द्वारा वीरत्व का आलम्बन नहीं खड़ा हो सकता। जब अत्याचार के दमन, दुष्टों के निर्दलन और पीड़ितो के रक्षण की ओर वीरत्व उन्मुख होता है, तभी उसका सच्चा रूप निखरता है।[2]

वीरत्व या वीर रस का पोषक भाव 'उत्साह' है। उत्साह हमें कर्म अथवा संघर्ष की ओर प्रवृत्त करता है। रीति ग्रन्थों में दयावीर, दानवीर, धर्मवीर, सत्यवीर, क्षमावीर आदि अनेक वीर माने गये हैं, परन्तु शास्त्रकारों ने सब प्रकार के वीरों में युद्धवीर को ही प्रधान

---

१. भटेकृष्ण—वीर रस का शास्त्रीय विवेचन—पृ० १७-१८।

२. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र—हिन्दी साहित्य का अतीत—भाग २, पृ० ६६५।

माना है। दयावीर को दयापात्र की रक्षा के लिए, धर्मवीर को धर्म की सुरक्षा के हेतु कभी-कभी अनिवार्य रूप से युद्ध करना पड़ता है। दान और कर्म में भी युद्ध की संभावना रहती ही है, इसी से युद्धवीरता प्रधान मानी गयी है।

डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने हिन्दी मे वीर काव्य के द्वितीय उत्थान (संवत् १७०० से १६०० तक) में पांच प्रकार की पद्धतियाँ लिखी हैं[1]—(१) शुद्ध वीर काव्य, (२) रासो पद्धति का शृंगार मिश्रित वीर काव्य, (३) वीर-देव-काव्य या भक्तिभावित वीर काव्य (४) अनूदित वीर काव्य (महाभारत ऐसे वीर काव्यों के अनुवाद), (५) दरबारी कवियों का प्रकीर्ण वीर काव्य।

उक्त वर्णित पांच प्रकार की पद्धतियों के आधार पर यदि गुरु गोबिन्दसिंह के वीर काव्य का मूल्यांकन किया जाय तो प्रथम (शुद्ध वीर काव्य) तृतीय (वीर-देव काव्य या भक्ति-भावित वीर काव्य) और चतुर्थ (अनूदित वीर काव्य) प्रकार की पद्धतियाँ हमें दृष्टिगत होंगी। वस्तुतः गुरु गोबिन्दसिंह के अधिकांश वीर काव्य को हमे प्रथम पद्धति में ही रखना पड़ेगा। चंडी चरित्र, कृष्णावतार और रामावतार आदि अवतार कथाओं मे वर्णित युद्ध-प्रसगों को तृतीय और चतुर्थ पद्धति के अन्तर्गत रखा जा सकता है, परन्तु इन्हें विशुद्ध भक्ति-भावित[2] अथवा अनूदित वीर काव्य कहना उपयुक्त नहीं होगा। वीरदेव काव्य और अनूदित काव्य पद्धति पर रचित कृतियों मे भी, विशेष रूप से युद्ध वर्णन के प्रसगों मे, गुरु गोबिन्दसिंह ने बहुत स्वतन्त्रता से काम लिया है। इसलिए गुरु गोबिन्दसिंह का सम्पूर्ण वीर काव्य शुद्ध वीर काव्य की श्रेणी मे रखा जाना चाहिए।

यहाँ एक बात और द्रष्टव्य है कि गुरु गोबिन्दसिंह का अपना युद्ध-कर्म उनके भक्ति-कर्म का ही एक अंग है। युद्ध-कर्म वे भगवान की आज्ञा पालन करने के रूप मे ही कर रहे हैं। युद्ध मे जब कभी वे शस्त्र-प्रहार करते हैं, वे हमें ईश्वरीय *आज्ञा* का *स्मरण* कराते हैं—

> लसै साह संग्राम जुज्झे जुझारं।
> तबं कोट बाण कमाणं सभारं।

(द० ग्र०, पृ० ६१)

उनकी भक्ति के आलम्बन महाकाल और कालिका रण-क्षेत्र मे भी उपस्थित रहते हैं—

> कृपासिंधु काली गरज्जी कृपालं।

(द० ग्र० पृ० ६१)

युद्ध-चित्रण

गुरु गोबिन्दसिंह के युद्ध चित्रण मे दो प्रकार की शैलियाँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती हैं—

१. छंद प्रधान शैली
२. अलंकार प्रधान शैली

---

१. हिन्दी साहित्य का अतीत—भाग २ पृ० ७००।
२. 'भक्ति भावना' शीर्षक अध्याय में इस पर पृथक चर्चा की गई है।

छंद प्रधान शैली में गुरु गोबिन्दसिंह ने युद्ध-चित्रण का प्रत्यक्ष वर्णन किया है। इसमें कवि अप्रस्तुत-विधान की योजना की ओर अधिक सचेष्ट नहीं है। दशम ग्रन्थ की रचनाओं में विचित्र नाटक, चंडी चरित्र (द्वितीय) रामावतार, निहकलकी अवतार आदि में इस प्रकार की शैली अपनायी गयी है। ये सभी रचनाएं युद्ध के गतिशील एवं सध्वनि चित्र उपस्थित करती हैं। युद्ध की अल्पद्रुत, द्रुत और अतिद्रुत गतियों को प्रस्तुत करने के लिए कवि ने छंद वैविध्य और शीघ्र छंद परिवर्तन का आश्रय लिया है।

दूसरी शैली का मुख्य साधन अलंकार, विशेषरूप से सादृश्यमूलक अलंकार—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा—हैं। इस शैली मे अलंकारों की सहायता से अंकित समानान्तर चित्रों का विशेष महत्त्व है। चंडी चरित्र (प्रथम), कृष्णावतार और चरित्रोपाख्यान के युद्ध वर्णनों में इस शैली का प्रयोग हुआ है। चंडी चरित्र (प्रथम) इस शैली का आदर्श उदाहरण है। इसमें २३३ छंद हैं और सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग लगभग २०० बार हुआ है। सवैया इस रचना का मुख्य छंद है। गुरु गोबिन्दसिंह ने सामान्यतः सवैये की प्रथम तीन पंक्तियों में एक दृश्य चित्रित किया है और चतुर्थ पंक्ति में सादृश्यमूलक अलंकार की सहायता से एक समानान्तर दृश्य उपस्थित करके उस दृश्य में तीव्रता उत्पन्न की है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

> साग संभार करं बसु धारकै चंड दई रिपु भाल मैं ऐसे ॥
> जोरकै फोर गई सिरत्रान को पार भई पट फार अनैसे ॥
> स्रउन की धार चली पथ ऊरध सो उपमा सु भई कहु कैसे ॥
> मानो महेस के तीसरे नैन की जोत उदोत भई खुल तैसे ॥

(द० ग्र० पृ० ६४)

छंद-प्रधान-शैली में युद्ध-चित्रण

इस शैली में गुरु गोबिन्दसिंह के युद्ध-चित्रण की दो प्रमुख विशेषताएं हैं—

१. गति २. ध्वनि

प्रथम विशेषता (गति) विषय और अभिव्यक्ति दोनों में ही प्राप्य है। योद्धा और उनके अस्त्र-शस्त्र हमें गुरु गोबिन्दसिंह के युद्ध-चित्रण में सदा गतिशील दिखाई देते हैं। म्यान में पड़ी या कमर में लटकती तलवार, हाथ में पकड़ा हुआ भाला, कन्धे पर रखा हुआ धनुष या तूणीर में पड़े हुए बाणों का इस चित्रण में कोई स्थान नहीं है। योद्धाओं और अस्त्र-शस्त्रों का अनवरत रूप से क्रियाशील रहना इस चित्रण की विशेषता है। उदाहरणस्वरूप विचित्र नाटक का यह दृश्य प्रस्तुत है—

> जगियो जंग जालम सु जोधं जुझारं ॥
> बहे बाण बांके बरच्छी दुधारं ॥
> मिले बीर बीरं महा धीर धके ॥
> धकाधक्क सैथं कृपाणं भनक्के ॥४६॥

(द० ग्र० पृ० ६८)

> तहां खां हुसैनी रहिओ एक ढाढं ॥
> मनो जुद्ध खंभं रण भूम गाडं ॥

जिसे कोप कै कै हठी बाण मारियो ॥
तिसं छेद कै पैल पारे पधारियो ॥५१॥

(द० ग्र० पृ० ६८)

सहे बाण सूर सभै आण ढूकै ॥
चहू ओर ते मार ही मार कूकै ॥
भली-भांति सो अस्त्र अउर शस्त्र झारे ॥
गिरे भिस्त को खा हुसैनी सिधारे ॥५२॥

(द० ग्र० पृ० ६८)

अभिव्यक्ति सम्बन्धी गतिमयता उन्होंने लघु छन्दो, प्रवाहमयी भाषा और अनुप्रासो के प्रयोग से उत्पन्न की है। युद्ध-चित्रण के अनुकूल भुजग प्रयात, रसावल, मधुभार और नराज आदि छन्दो द्वारा उन्होने गतिमयता का निर्माण किया है। उदाहरणस्वरूप यह छद प्रस्तुत हैं—

भुजग-प्रयात छंद

हलब्बी जुनब्बी सरोही दुधारी ॥
बही कोपकाती कृपाण कटारी ॥
कहूं सैहथीयं कहूं सुद्ध सैल ॥
कहूं सैल साग भई रेल पेलं ॥६॥

(द० ग्र० पृ० ५२)

रसावल छंद

गजे बीर गाजी ॥ तुरे तुंद ताजी ॥
महिखुआस करखे ॥ सरधार बरखे ॥५॥१२७॥

(द० ग्र० पृ० २३१)

दोहरा छंद

बणणण बाजी ॥ तिणणण ताजी ॥
जणणण जूझे ॥ सणणण सूझे ॥१३५॥

(द० ग्र० पृ० २३१)

ध्वनि

गति और ध्वनि का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। युद्ध कर्म को सजीव बनाने के लिए वातावरण प्रधान ध्वनिमूलक शब्दों का आश्रय लिया जाता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने ध्वनि का निर्माण निम्नलिखित चार साधनों द्वारा किया है—

१ अनुप्रासो की सहायता से।
२. अनुकरणात्मक शब्दो की सहायता से।
३. लघु छन्दों को सहायता से।
४. अनुनासिकों की सहायता से।

इन चार के अतिरिक्त गुरु गोबिन्दसिंह ने एक और साधन भी अपनाया है। उन्होंने ऐसे ध्वन्यात्मक संगीत शब्दों का प्रयोग किया जिनसे अर्थ का नहीं केवल अनुभव और

वातावरण का बोध होता है। अनेक छन्दों में उन्होंने यह ध्वनि प्रणाली अपनाई है और उस विशिष्ट छंद के साथ उन्होंने 'संगीत' विशेषण जोड़ दिया है। इस प्रकार के संगीत भुजग प्रयात छद का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

सागड़दग सूरं कागड़दग कोपं ॥
पागड़दग परम रणपाव रोपं ॥
सागड़दंग सस्त्र झागड़दग झारे ॥
बागड़दग वीरं डागड़दग डकारं ॥३६॥६६३॥

(द० ग्र० पृ० १०८)

युद्ध वर्णन में अनुप्रासों का प्रयोग सभी कवि करते आये हैं। गुरु गोबिन्दसिंह ने बड़ी कुशलतापूर्वक इनका प्रयोग किया है। कई बार तो प्रकृत विषय मूक होने पर भी वे अनुप्रासों के द्वारा वह ध्वनि उत्पन्न कर देते हैं। उदाहरणस्वरूप—

कर बाम चाप्यं कृपाणं कराल ॥
महातेज तेज विराजै बिसाल ॥
महादाढ़ दाढ़ सु सोहं अपार ॥
जिनै चरबीयं जीव जग्यं हजारं ॥१८॥
डमा डम्म डमरू सिता सेत छत्र ॥
हहा हूह हास झमाझम्म अत्रं ॥
महाघोर सबदं बजे सख ऐसं ॥
प्रलैकाल के काल की ज्वाल जैसं ॥१६॥

(द० ग्र० पृ० ४०)

अनुकरणात्मक शब्दों की सहायता से भी कवि ने युद्ध-चित्र को सजीव बनाने का सफल प्रयास किया है—

१. हा हा हूह हासं। (द० ग्र० पृ० ४०)
२. घन घुंघर घंट सुरं धमकं। (द० ग्र० पृ० ४०)
३. तह हड़ हड़ाय हस्से मकान। (द० ग्र० पृ० ६८)
४. टका टुक टोपं ढका ढुक ढाढं। (द० ग्र० पृ० ६८)
५. बबकंत बीरं भभकत घायं। (द० ग्र० पृ० ७२)

लघु छन्दों की सहायता से गुरु गोबिन्दसिंह ने युद्ध का दृश्य किस प्रकार उपस्थित किया, इसके कुछ उदाहरण इसके पूर्व भी दिये जा चुके हैं। इस कार्य के लिए वे लघु छन्दों का प्रयोग तो करते ही हैं, कई बार दीर्घ छन्दों को भी इस प्रकार खडों मे विभक्त कर देते हैं कि उसमें तीव्र गति उत्पन्न हो जाती है। उदाहरणस्वरूप निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

कुपियो कृपालं, सज्जि मराल, बाहु बिसालं, धरि ढालं।
धाए सब सूरं, रूप करूरं, चमकत नूरं, मुख लालं।
ले ले सु कृपाणं, बाण कमाणं, सजे जुआनं, तन तत्तं।
रणि रंग कलोलं, मार ही बोलं, जन गज डोलं, बन मत्तं।

(द० ग्र० पृ० ६७)

भड़धुमा और त्रिड़का जैसे लघु छन्दों द्वारा यह दृश्य बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है—

गिरतत मगं। कटंतंत जगं।
चलतत तीरं। भटकंत भीरं ॥१६४॥
जुझंतत वीरं। भजतत भीरं।
करंतत क्रोह। भरतत रोह ॥१६५॥
तुटंतंत चरसं। कटंतत बरमं।
गिरतत भूमी। उठतत धूमी ॥२१३॥

(द० ग्र० पृ० ५८५-८६)

तररड़ तेग। जणघण वेगं।
चररण चमकै॥ झड़रड़ झमकै ॥४१५॥
चररड़ चोषं॥ तिररड़ त्रोषं ॥
जड़रड़ जूझै॥ लड़ रड़ लूझै ॥४१६॥

(द० ग्र० पृ० ५९८)

अनुनासिकों की सहायता तो गुरु गोबिन्दसिंह ने सर्वत्र ली है। ऊपर दिये हुए सभी उदाहरणों में अनुनासिकों का निरन्तर प्रयोग देखा जा सकता है।

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने युद्ध-चित्रों में सभी प्रकार की ध्वनियों का बड़ा प्रभावशाली प्रयोग किया है। ये ध्वनियां शूरवीरों की हुंकार[1], उनकी गति[2], अस्त्र-शस्त्र की टकराहट[3], रणवाद्यों[4] और डाकिनी तथा भैरवी के तुमुल नाद से[5] सम्बन्ध रखती हैं।

अलंकार-प्रधान शैली

इस शैली का मुख्य साधन अलकार है। अलकारों के प्रायः तीन उद्देश्य होते हैं—

१. भाव व्यंजना में सहायता देना।
२. दृश्यों का चित्रण करना, तथा
३. चमत्कार की सृष्टि करना।

---

१. बजी भेर भुंकार धुक्के नगारे ॥
दुहू ओर ते बीर बंकं बकारे ॥१८॥

(द० ग्र० पृ० ६१)

२. छके लोक छक॥ मुखं मार बकं ॥
मुऐ मुच्छ बंकं॥ भिरे छाड संकं ॥२५॥

(द० ग्र० पृ० ५१)

३. तुप्पक तड़ाक॥ कैबरकड़ाक ॥
सैहथी सड़ाक॥ छौही धड़ाक ॥२०॥ (द० ग्र० पृ० ६६)

४. बजे ढंक डमरू उठे नाद सखं ॥ (द० ग्र० पृ० ५२)

५. चबी चावडी डाकनी डाक मारैं ॥
कहू भैरवी भूत भैरों बकारैं ॥
कहू बीर बैताल बंके बिहारं ॥
कहू भूत प्रेतं हसै मास हारं ॥५॥

(द० ग्र० पृ० ५०)

अलंकार विधान का प्रमुख उद्देश्य प्रथम ही है, अर्थात् भाव व्यंजना मे सहायक होना। यह कार्य साम्य पर निर्भर अलंकारों के द्वारा भली-भाँति सिद्ध हो सकता है। साम्य पर निर्भर अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, प्रतीप, व्यतिरेक, भ्रम, सन्देह आदि हैं। इस कार्य के लिए प्रायः कवियो ने उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारो को ही प्रश्रय दिया है। अलंकार-प्रधान शैली के युद्ध-चित्रण मे गुरु गोबिन्दसिंह ने सादृश्यमूलक अलंकारो का प्रचुर प्रयोग किया है। भाव को तीव्र करने के लिए कवि ने हमारे सम्मुख जहाँ एक ओर भयावह, वीभत्स युद्ध दृश्य और उनसे भी अधिक भयोत्पादक समानान्तर चित्र रखे हैं, वहाँ दूसरी ओर उन्हीं भयावह, वीभत्स और क्रूर युद्ध दृश्यो के समानान्तर उसी भाव को पुष्ट करने के लिए युद्ध-क्षेत्र से बहुत दूर के कोमल, सुखद और सुन्दर दृश्य भी प्रस्तुत किये हैं।

समानान्तर वीभत्स और भयावह दृश्यों में—

दोनो पक्षो के हाथी इस प्रकार टकराते हैं जैसे प्रलय के तीव्र वायु वेग के कारण दो पहाड़ आपस में टकरा रहे हो।[1]

कटी हुई बाहें ऐसी लगती हैं जैसे आपस में लड़कर दो सर्पणियाँ पहाड़ से आ गिरी हों।[2]

काली और सिंह को साथ लेकर चंडी ने दैत्यों को इस प्रकार घेर लिया जैसे दावाग्नि वन को घेर लेती है।[3]

चंडी के बाणों के तीव्र दाह से दैत्य इस प्रकार जल रहे हैं जैसे अलाव में ईंटें जलती हैं।[4]

शत्रु के मुंह मे बरछी लगी और रक्त बह निकला, मानो हृदय मे बढ़ी हुई क्रोधाग्नि फूटकर मुंह के मार्ग से बाहर निकल आई हो।[5]

आदि अनेक समानान्तर दृश्य हैं जो युद्ध की विकरालता को और विकराल बना देते हैं। परन्तु इस प्रकार का अप्रस्तुत विधान एक प्रकार की एकरसता का निर्माण भी कर देता है जिसमे पाठक की रुचि कम होने लग जाती है। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने युद्ध-वर्णन में जिन कोमल और सुन्दर समानान्तर दृश्यों की व्यंजना की है वह अपने आपमे बहुत महत्त्वपूर्ण

---

१. लै करि बियाल सो बियाल बजावत सो उपमा कवि यो मन धारे ॥
मानो महा प्रलै बहे पउण सो आपसि मैं भिरहैं गिर भारे॥
(द० ग्र० पृ० ८८)

२. बांह कटी अध बीच ते मुंड सी सो उपमा कवि ने बरनी है ॥
आपसि मै लरके सु मनो गिरते गिरी सरपकी दुई धरनी है ॥
(द० ग्र० पृ० ८८)

३. काली अउ केहरि संगि लै चडि सु घेरे सबै बन जैसे दवा पै ॥
(द० ग्र० पृ० ९१)

४. चंडके बानन तेज प्रभाव ते दैत जरे वैसे ईंट अवा पै ॥
(द० ग्र० पृ० ४०१)

५. लाग गई तिहके मुख मै बहि स्रउन चल्यो उपमा ठहराई ॥
कोप की आग महा बढि कै दढकै हियको मनो बाहर आई ॥
(द० ग्र० पृ० ४०१)

और अद्वितीय हैं। युद्ध के महा भयानक दृश्यों में ये समानान्तर चित्र पाठक की एकरसता को नष्ट करते हैं और वर्ण्य-विषय में उसकी रुचि को निश्चित ही तीव्र करते हैं।

ऐसे कुछेक चित्र यहां प्रस्तुत हैं—

युद्ध भूमि में कटा हुआ मांस देखकर गिद्ध इस तरह बोल रहे हैं जैसे पाठशाला में विद्यार्थी अपना पाठ स्मरण कर रहे हों।[1]

चण्डी ने दैत्य की गर्दन पकड़कर उसे इस तरह धरती पर पटक दिया जैसे नदी किनारे धोबी पत्थर की शिला पर कपड़े पछाड़ता है।[2]

चण्डी का छोड़ा हुआ चक्र शत्रुओं के शिरों को इस प्रकार काटता हुआ निकलता चला जा रहा है जैसे नदी किनारे किसी लड़के द्वारा फेंकी हुई ककड़ी पानी पर से फिसलती हुई निकल जाती है।[3]

चण्डी को दैत्यों ने चारों ओर से घेर लिया। उनके बीच से मनसे भी तीव्र गति से वह इस प्रकार निकलती जा रही जैसे काले बादलों के बीच से बिजली।[4]

शत्रुओं के वक्ष में घुसे हुए इन्द्र के बाणों का पृष्ठभाग ऐसा लग रहा है जैसे पहाड़ की खोह में किसी पक्षी के बच्चे अपनी चोंच फैला रहे हों।[5]

दैत्य ने चण्डी के सिंह को घायल कर दिया। सिंह के शरीर से रक्त की धार इस तरह बह निकली जैसे गेरु के पहाड़ पर वर्षा हुई हो और धरती पर उसका रंग फैल गया हो।[6]

सहस्रों दैत्य 'मारो मारो' की पुकार करते हुए चण्डी की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। चण्डी उन्हें असंख्य रूपों में दिखाई दे रही है, मानो शीश महल में एक ही मूर्ति अनेक रूप होकर दिखाई दे रही है।[7]

---

१. मास निहारकै गृज्झ रहे चटसार पढ़े जिमु बारक संघा ॥ (द० ग्र० पृ० ७५)

२. चंड सँभार तबै बलुधार लइउ गहि नारि धरा पर मारिउ ।
जिउ धुबीआ सरता तट जाइकै लै पटको पट साथ पछारिउ ॥ (द० ग्र० पृ० ७७)

३. सिर सत्रुन के पर चक्र परिउ छुट ऐसे बहिउ करि कै बरका ॥
जनु खेलन को सरिता तट जाइ चलावत है छिछली लरका ॥ (द० ग्र० पृ० ७८)

४. तब घेरि लई चहुँ ओर ते दैतन इउ उपमा उपजी मन मै ।
मनतें उन तेजु चलिउ जगमात को दामन जान चलै घन मै ॥ (द० ग्र० पृ० ७८)

५. सक्र कमान के बान लगे सर फोक लसै अरिके उर ऐसे ॥
मानो पहार करार मै चोंच पसार रहे सिसु सारक जैसे ॥ (द० ग्र० पृ० ८०)

६. घाइल कै तन केहरि ते बहि स्रउन समूह धरान परिउ है ॥
सो उपमा कवि ते बरनी मन की हरजी तिह नाउ धरउ है ॥
गेरु नग पर कै बरखा धरनी परि मानहु रंग ढरिउ है ॥ (द० ग्र० पृ० ८६)

७. मारहो मार पुकार हकार कै चढि प्रचंडि कै सामुहि धाई ॥
मानहु सीस महल के बीच सु मूरति एक अनेक सी भाई ॥ (द० ग्र० पृ० ६०)

दैत्य की बरछी चण्डी के मुंह मे लगी और रक्त की धारा बह निकली मानो सिंहल द्वीप की नारी के गले से पान की पीक निकल रही हो ।[1]

राम के वाणों की वर्षा से घोड़े, हाथी और रथ इस प्रकार गिर रहे हैं मानो फागुन मे प्रचण्ड वायु के कारण पेड़ों के सूखे पत्ते टूट कर गिर रहे हो ।[2]

रक्त से ओतप्रोत रणभूमि के गिरे हुए सैनिक मानो लाल वस्त्र धरती पर डालकर सो रहे हों ।[3]

युद्ध क्षेत्र मे वीरो के सिर कट जाते हैं, परन्तु धड़ खड़े रहते हैं। धड़ों से रक्त के फौहारे फूट पड़ते हैं, मानो वीरो के बागो मे अनेक फोहारे फूटे हो ।[4]

सागरूपक के बहुविध प्रयोग द्वारा कवि ने युद्ध को अनेक रूपो मे चित्रित किया है। रणभूमि, रणभूमि न रहकर हमे जीवन की सुरम्यमयी क्रीड़ास्थली सी दिखायी देती है। देखिए भयानक युद्ध होली का दृश्य किस प्रकार उपस्थित करता है—

> बान चले तेई कुंकम मानहु मूठ गुलाल की साग प्रहारी ॥
> ढाल मनो डफ भाल बनी हथ नाल बदूक छुटे पिचकारी ॥
> स्रउन भरे पट बीरन के उपमा जन घोर कै केसर डारी ॥
> खेलत फाग कि बीर लरै नवला सी लिये करवार कटारी ॥

(द० ग्र० पृ० ४३५)

कुछ योद्धाओं के लिए युद्ध होली खेलने के समान है तो कुछ के लिए वह नृत्यालय है—

> मार ही मार अलाप उचारत दुंदभ ढोल मृदग अपारा ॥
> सत्रुन के सिर अस्त्र तराक लगै तिहि तालन को ठनकारा ॥
> जूझि गिरे धरि रीझ कै देत हैं प्रानन दान बड़े रिझवारा ॥
> निरत करै नट, कोप लरै भट, जुद्ध को ठउर कि निरत अखारा ॥

(द० ग्र०, पृष्ठ ४३९)

युद्धप्रेमी रसिकों के लिए रणभूमि एक रगशाला है और युद्ध की सभी क्रियाए उस रंगभूमि की क्रियाओं जैसी ही हैं—

---

१. जाइ लगी तिहके मुख मै बहि स्रउन परिउ अति ही छबि कोनो ।
मानहु सिंगलदीप को नार गरै मे तंबोल को पीक नवीनी ॥
(द० ग्र० पृ० ६४)

२. श्री रघुराज सरासन लै रिस ठान घनो रन बान प्रहारे ॥
बीरन मार दुसार गए सर अंबर ते बरसे जन भारे ॥
बाज गजी रथ साज गिरे धर पत्र अनेक सु कउन गनावै ॥
फागन पउन प्रचंड बहे बन पत्रन ते जन पत्र उड़ानै ॥
(द० ग्र० पृ० २१७)

३. घाइल गिरे सु मानो मद्य मतवारे हैं के,
सोह रह्यो तले लाल डार के मनल मैं ॥
(द० ग्र० पृ० ४१४)

४. सीस कटे भट ठाढ़े रहे, इक स्रोण उठ्यो छबि स्याम उचारे ।
बीरन को मनो बाग विखै जन छूटत है ए अनेक फुहारे ।
(द० ग्र० पृ० ५४५)

रनभूमि भई रंगभूमि मनो धुन दुंदभ बाजे मृदंग हीयो ॥
सिर सघुन के पर ग्रस्त्र लगे ततकार तराकन ताल लीयो ॥
ग्रस लागत भूम गिरे मरिकै भट प्रानन मानहु दान दीयो ॥
बर निरत करें किलकें नट ज्यों नृप मार ही मार सु राग कीयो ॥

(द० ग्र० पृ० ४३६)

और कहीं युद्ध क्षेत्र मदिरालय के रूप में परिवर्तित हो जाता है—

जग भयो जिह ठउर निसग सु छूटत भे दोहू ग्रोर ते भाले ॥
घायल लाग भजे भट यो मनो खाइ चले ग्रह के सु निवाले ॥
बीर फिरे प्रति घूमति ही सु मनो ग्रति पी मदरा मतवाले ॥
बासन ते घन ग्रउर निपग फिरे रन बीच सतग पियाले ॥

(द० ग्र० पृ० ५४४)

ग्रभ्यान्तर जगत का युद्ध

दशम ग्रंथ का ग्रधिकांश युद्ध चित्रण बाह्य जगत के युद्ध से ही सम्बन्ध रखता है, परन्तु इस ग्रंथकी 'निहकलकी ग्रवतार' रचना के एक ग्रश में यह युद्ध ग्रन्तर जगत के युद्ध में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ दैत्य, दानव, मुगल, पठान ग्रादि लोग शत्रु और चण्डी, ग्रन्य ग्रवतार ग्रथवा स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह, मित्र-पक्ष नहीं हैं। यहां सबसे बड़ा शत्रु है, ग्रविवेक और उसके सहायक हैं, काम और उसकी सेना बसंत, हुलास, ग्रानन्द, भ्रम, कलह, वैर, ग्रालस्य, ग्रभिमान, परनिन्दा, चरित्रहीनता, लोभ, मोह, क्रोध ग्रौर ग्रहंकार ग्रादि।

दूसरी ग्रोर है विवेक। उसके सहायक हैं—धैर्य, व्रत, सयम, नियम, विज्ञान, निवृत्ति-भावना, योग, ग्रर्चना, पूजा ग्रविकार, विद्या, सुकृति ग्रौर भक्ति ग्रादि।

ग्रविवेक की शक्ति का वर्णन करता हुग्रा कवि कहता है—

बलि महीप जिन छल्यो बह्म बावन बस किन्नो ॥
किसन बिसन जिन हरे दड रघुपत ते लिन्नो ॥
दस ग्रीवहि जिन हरा सुभट सुम्भासुर खड्यो ॥
महखासुर मरदीया मान मधकीट बिहंड्यो ॥
सोउ मदन राज राजा नृपति नृप ग्रविवेकी मंत्री कीयो ॥
जिह देव दईत गंधर्ब मुन जीत ग्रडंड डडहि लीयो ॥

(द० ग्र० पृ० ६८८)

युद्ध को मन के क्षेत्र में उतारकर कवि ने ग्रविवेक के सहायकों का वर्णन किया है साथ ही सात्विक पक्ष, विवेक ग्रौर उसके सहायकों का भी चित्रण किया है। विवेक का वर्णन करता हुग्रा कवि कहता है—

सेत छत्र सिर धरे सेत बाजी रथ राजत ॥
सेत सस्त्र तन सजे निरखि सुर नर भ्रमि भाजत ॥
चन्द्र चकित ह्वै रहत भान भवता लखि भुल्लत ॥
भ्रमर प्रभा लखि भ्रमत ग्रसुर सुर नर डग डिल्लत ॥

इह छबि विवेक राजा नृपति प्रति बलिस्ट तिह मानीऐ ॥
मुन गन महीप बदत सकल तीन लोक महि जानीऐ ॥

(द० ग्र० पृ० ६६७)

अन्य रसों में वीर

यह बात अन्यत्र कही गयी है कि गुरु गोबिन्दसिंह के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर उनका योद्धा रूप छाया हुआ है। वे ऐसा कोई भी अवसर अपने हाथ से नहीं जाने देते जहां वे युद्ध-भाव की चर्चा कर सकते हों। उनकी भक्ति भावना भी युद्ध भावना से किस प्रकार समन्वित है इसकी चर्चा 'भक्ति भावना' अध्याय में की गयी है। शान्त रस की अनुभूति भी वे युद्ध करते हुए करना चाहते हैं और उसी का जीवन धन्य मानते हैं जो सदैव मुख से हरि और चित्त से युद्ध की बात सोचा करता है।[1] इस प्रकार शान्त के अतिरिक्त शृंगार, वात्सल्य, करुण आदि रसों से सम्बन्धित रचनाओं में भी उन्होंने वीर रस प्रधान मूर्त-विधान की योजना की है। उदाहरणस्वरूप—

शृंगार—

संयोग

सिया पेख राम। बिधी बाण काम ॥
गिरी झूमि भूमं। मदी जाणु घूमं ॥
उठी चेत ऐसे। महा बीर जैसे ॥
रही नैन जोरी। ससं ज्यो चकोरी ॥
रहे मोह दोनों। टरे नाहि कोनो ॥
रहे ठाढ ऐसे। रणं बीर जैसे ॥

(द० ग्र० पृ० १६६)

विप्रलम्भ

उठ ठाढि भये फिरि भूम गिरे।
पहरेकक लउ फिर प्रान फिरे ॥
तन चेत सुचेत उठे हरि यों।
रणमंडल मद्धि गिरयो भट ज्यों ॥

(द० ग्र० पृ० २७७)

वात्सल्य

मोहन जाल सभन सिर डारा ॥
चेटक बान चक्रित ह्वै मारा ॥
जह तह मोहि सकल नरि गिरे ॥
जान सुभट सामुहि रण भिरे ॥

(द० ग्र० पृ० ६७०)

---

१. धन्य जियो तिहको जग मै मुख ते हरि चित्त मैं जुद्ध बिचारै ॥
देह अनित्य न नित्य रहै जसु नाव चढ़ै भव सागर तारै ॥
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक जिउ उजीआरै ॥
गिआनहि की बढ़नी मनहु हाथ लै कातरता कुत वात बुहारै ॥

(द० ग्र० पृ० ५७०)

करुण

तरफरात पृथ्वी परयो सुनि बन राम उचार ।
पलन प्राण त्यागे तजत मछि सफरि सर बार ।
राम नाम स्रवनन सुन्यो उठ थिर भए अचेत ।
रण सुभट गिर्‌यो उठ्‌यो गहि असि निडर सुचेत ।

(द० ग्र० पृ० २०६)

चरित्र-चित्रण

वीर काव्य के अधिकांश रचयिताओं ने चरित्र चित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। वीर-काव्य मुख्य रूप से ऐतिहासिक काव्य है इसीलिए अधिकांश कविगण इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण करके ऐतिहासिक घटनावली, पात्रों, स्थानों तथा अन्य सामग्री की सूची का उल्लेख भर कर देते हैं।

जहां कहीं भी चरित्र चित्रण का अवसर आया है, अधिकांश कवियों ने नायक और उसके पक्ष के पात्रों के गुणों को बहुत बढ़ा चढ़ाकर अंकित किया है। प्रतिपक्षियों को प्रायः अधिक ऊंचा उठाने का प्रयास नहीं किया गया। ऐसे बहुत कम कवि हैं जिन्होंने प्रतिनायक की वीरता, गौरव और वैभव का उदारतापूर्वक वर्णन किया है।

गुरु गोबिन्दसिंह के युद्ध-प्रसंगों में चरित्र-चित्रण की दृष्टि से स्वपक्ष में दो प्रकार के पात्र हैं। 'विचित्र नाटक' के वे स्वयं ही प्रमुख नायक हैं और उनके सहायक हैं संगोशाह, जीतमल, गुलाब, माहरीचंद, गंगाराम, लालचन्द, दयाराम, कृपालदास, मामा कृपाल, साहब चन्द आदि। प्रतिपक्ष में हैं, राजा हरीचन्द, केसरीचन्द, मधुकरशाह, राजा चन्देल, हयात खान, निजाबत खान, हुसैनी, भीखम खान आदि।

उनकी अन्य रचनाओं, चण्डी चरित्र तथा अन्य अवतार कथाओं में, स्वपक्ष में चण्डी, काली, चण्डी का वाहन—सिंह, राम, कृष्ण, शिव, इन्द्र, बलराम और निहकलंकी अवतार आदि तथा प्रतिपक्ष में मधु-कैटभ, शुंभ-निशुंभ, रक्तबीज, महिषासुर, रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद, कंस, जरासंध, कालयवन, शिशुपाल, खड्‌गसिंह आदि वीरों का चित्रण हुआ है।

योद्धाओं के गुणों की प्रशंसा करने में गुरु गोबिन्दसिंह ने संकीर्णता से काम नहीं लिया है। उनके युद्ध वर्णन में दोनों पक्षों के योद्धा बड़ी वीरता से युद्ध करते हैं। वे वीरों की प्रशंसा करते हैं, कायरों की निन्दा करते हैं, चाहे वे किसी भी पक्ष के क्यों न हों, विचित्र नाटक में अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा हरीचन्द की धनुर्विद्या की प्रशंसा करते हैं—

दुय बान खैंचे इक बार मारे ॥
बली बीर बाजी न ताजी बिचारे ॥
जिसैं बान लागें रहे न सभारं ॥
तनं बेधि कै ताहि पार सिधारं ॥

(द० ग्र० पृ० ६२)

इसी प्रकार प्रतिपक्ष के हुसैनी खान के वीर रूप का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

तहा खा हुसैनी रहियो एक ठाढं ॥
मनो जुद्धखंभ रणभूम गाडं ॥

जिसैं कोप कै कै हठी बाण मारियो ॥
तिसैं छेदके पैल पारे पधारियो ॥५१॥

(द० ग्र० पृ० ६२)

भेरी का प्रोत्साहित करनेवाला नाद सुनकर दोनो ओर के वीरो का गर्जन प्रारम्भ हो जाता है—

बजी भेर भुंकार धुक्के नगारे।
दुहू ओर ते वीर बके बकारे ॥

(द० ग्र० पृ० ६१)

कायरों की निन्दा भी वे समान रूप से करते हैं।

स्वपक्ष में

इह विधि सो बध भयो जुझारा ॥ आन बसे तब धाम लुझारा ॥
तब ओरंग मन माहि रिसावा ॥ मद्र देस को पूत पठावा ॥
तिह आवत सम लोग डराने ॥ बड़े बड़े गिर हेर लुकाने ॥
हमहूं लोगन अधिक डरायो ॥ काल करम को मरम न पायो ॥
कितक लोग तजि संगि सिधारे ॥ आइ बसे गिरवर जह भारे ॥
चित मुजीयन को अधिक डराना ॥ तिनें उबार न अपना जाना ॥

(द० ग्र० पृ० ७१)

शत्रुपक्ष में

नदीयं लख्यों काल रात्रं समान ॥ करे सूरमा सीत पिंगं प्रमान ॥
इते बीर गज्जे भए नाद भारे ॥ भजे खान खूनी बिना सस्त्र झारे ॥
निलज्ज खान भज्जियो ॥ किनी न सस्त्र सज्जियो ॥
सुत्याग खेत को चले ॥ सुबीर बीर हा भले ॥
चले तुरे तुराइकै ॥ सकै न सस्त्र उठाइकै ॥
न लै हथियार गज्जहीं ॥ निहार नारि लज्जहीं ॥

(द० ग्र० पृ० ६५)

पौराणिक युद्ध प्रसंगों मे गुरु गोविन्दसिंह ने चंडी, राम, कृष्ण, शिव आदि के पौराणिक महत्त्व की रक्षा करते हुए भी उन्हें अपराजेय दिखाकर अमानवीय स्तर पर उन्हें प्रतिष्ठित नहीं किया है। ये पौराणिक पुरुष युद्ध अपनी चामत्कारिक शक्ति से नहीं जीतते वरन् अपनी मानव स्तरीय वीरता, रणकुशलता और साहस से जीतते हैं। अपने प्रतिपक्षियों की भांति वे भी घायल होते हैं, मूर्छित होते हैं और कभी-कभी पराजित भी होते हैं। और पराजित होने के पश्चात् उन्हें सर्वसाधारण की भांति आत्मग्लानि भी होती है।

चंडी चरित्र (प्रथम) में चंडी को युद्ध-भूमि में अनेक घाव लगते हैं—

घाउ लगे तन चंड अनेक सु स्रउण चलिउ बहि कै सरताने ॥
मानहु फार पहार को सुत तच्छक कै निकसे करवाने ॥

(द० ग्र० पृ० ८६)

युद्ध-भूमि में इन्द्रजीत के प्रहारों से राम मूर्छित हो जाते हैं—

सब सस्त्र ग्रस्त्र बिदिम्रा प्रबीन ।।
सर धार बरख सरदार चीन ।।
रघुराज ग्रादि मोहे सु बीर।।
दल सहित भूमि डिग्गे ग्रधीर ।।

(द० ग्र० पृ० २२७)

जरासंध के सेनापति खड्गसिंह ने युद्ध-भूमि में प्रलयंकारी शिव की भी दुर्दशा कर दी। खड्गसिंह के प्रबल प्रहार से शिव कहीं गिरे, मुडमाला कहीं गिरी, बैल कहीं गिरा और शूल कहीं गिरा—

घाउ कै सभु कै गात बिखे इम बोलि उठ्यो हसि सिंघ जरा जे ।।
रुद्र गिर्यो सिरमाल कहूं, कहूं बैल गिर्यो गिर्यो, सूल कहीं ह्वै ।।

(द० ग्र० पृ० ४५१)

खड्गसिंह ने अब गणेश को ललकारा, तो वे रणभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए—

पुन गनेस को नृप ललकारिउ ॥
त्रसत भयो तज जुद्ध पधारिउ ॥

(द० ग्र० पृ० ४५१)

युद्ध-भूमि में मूर्छित पड़े शिव को जब कुछ चेतना आई तब वे अपने गणों सहित रण-भूमि छोड़कर भाग निकले। भला ऐसे वीर (खड्गसिंह) के सामने कौन खड़ा हो ?

जब सिवजू कछु संग्या पाई ।।
भाजि गयो तज दई लराई ॥
ग्रउर सगल डरकै गन भागे ।।
ऐसे को भट ग्रावै ग्रागे ।।

(द० ग्र० पृ० ४५१)

और जिस कृष्ण की पूजा ब्रह्मा, इन्द्र, सनकादि, सूर्य, शशि, देवता, नारद, शारदा, सिद्ध, महामुनी, व्यास, पराशर आदि करते हैं, उसे खड्गसिंह ने केशों से पकड़कर शक्तिहीन कर दिया है—

जा प्रभु को नित ब्रह्म सचीपति सी सनाकादिक हू जपु कीनो।
सूर ससी सुर नारद सारद ताही के ध्यान बिखै मनु दीनो ।।
खोजत हैं जिह सिद्ध महामुन ब्यास परासुर भेद न चीनो ।।
सो खड्गेस ग्रयोधन मै कर मोहित केसन ते गहि लीनो ।।

(द० ग्र० पृ० ४५२)

अपनी पराजय से कृष्ण को आत्मग्लानि भी होती है—

श्री जदुबीर के भाजत ही छुट धीर गयो बरबीरन को ।।
ग्रति ब्याकुल बुद्ध निराकुल ह्वै लख लागे है घाइ सरीरन को ।।
सुधवाइ कै स्यन्दन भाज चले डर मान मनो ग्ररि तीरन को।
मन ग्रापने को समझावत स्याम तैं कीनो है काम ग्रहीरन को ।।

(द० ग्र० पृ० ४५२)

युद्ध—अनिर्वचनीय आनन्द का साधन

दशम ग्रंथ के विशाल भाग में वर्णित युद्ध प्रसंगों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि गुरु गोबिन्दसिंह को दृष्टि में युद्ध एक पवित्र कर्म है। पवित्र कर्म करते समय मनुष्य के मन में एक तीव्र उल्लास होता है और उसमें से उसे अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति भी होती है। अपनी रचनाओं में सर्वत्र गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने इष्टदेव से युद्ध और युद्ध में वीरगति प्राप्त करने का वरदान ही मांगा है। सचमुच युद्धकाल योद्धाओं के लिए सदा अनिर्वचनीय आनन्द का क्षण उपस्थित करता है। यह आन्तरिक उल्लास, उनकी युद्ध-भावना का प्रमुख प्रेरणास्रोत है। युद्ध के बिना जैसे उनका मन ही नहीं लगता। एक शक्तिशाली वीर अपने चारों ओर अपने ही समान प्रतिपक्षी का अभाव देखकर शिव से इस प्रकार का वर मांगता है—

> सीस निवाइकै प्रेम बढ़ाइकै यो नृप रुद्र सो बैन सुनावै।
> *जात हो हुउ जिह सत्रु पै रुद्र जु कोउ न आगे ते हाथ उठावै।।*
> ताते अयोधन कउ हमारो कवि स्याम कहे मनुआ ललचावै।।
> चाहत हो तुमते बरु आज कोउ हमरे संग जुद्ध मचावै।।

(द० ग्र० पृ० ३३१)

युद्ध की इस आनन्दमयी अनुभूति के कारण ही इन्हें युद्धप्रेरक वाद्य यन्त्र सुहावने लगते हैं—

> मारू सबदु सुहावन जे।।
> जे जे हुते सुभाट रण र गह गह आयुध गाजे।।

तथा—

> दैरे दैरे दीह दमामा।।
> कर ही रुड मुंड बसुधा पर लखत स्वर्ग की बामा।।
> *झुकि झुकि परहि धरण भारी भट वीर बैताल रजाउ।।*
> भूत पिसाच डाकणी जोगण काकण रुहर पिवाउ।।

(द० ग्र० पृ० ६८०)

यह युद्धोल्लास ही है जिसके कारण मुंडहीन रुंड ही युद्धरत रहता है—

> मुंड बिना तब रुड सु भूपति को चित्त में अति कोप करायो।।
> द्वादस मान जु ठाढे हुतै कवि स्याम कहै तिह ऊपर आयो।।

(द० ग्र० पृ० ४७१)

और अब ऐसे योद्धाओं को अप्सराएं विमान पर चढ़ाकर स्वर्ग ले जाना चाहती हैं तो युद्ध-प्रेम से प्रेरित होकर उस विमान से कूद पड़ते हैं और शस्त्र लेकर युद्ध-भूमि में आ उपस्थित होते हैं—

> देव बधू मिलिके सबहू इह भूप कबध बिवान चढ़ायो।।
> कूद परयो न बिवान चढ़यो पुनि सस्त्र लिए रन भूमहि आयो।।

(द० ग्र० पृ० ४७२)

गर्वोक्तियाँ

वीर रस के सजीव वातावरण का निर्माण करने के लिए दोनों पक्षों के योद्धाओं की गर्वोक्तियों का कवि सजीव वर्णन करते आए हैं। गर्वोक्तियाँ यदि केवल अर्थहीन वाचालता का ही स्थान ले लें तो वीर रस की अपेक्षा हास्य रस के निर्माण मे वे अधिक सहायक होती हैं। गुरु गोबिन्दसिंह के योद्धा कोरे वाचाल नही हैं। सामान्यतया वे कहने की अपेक्षा करने में अधिक विश्वास करते हैं। इसीलिए दशम ग्रन्थ के युद्ध प्रसगों मे गर्वोक्तियो को अधिक महत्त्व प्राप्त नही हुआ है। पौराणिक प्रसगों में कुछ स्थानों पर पक्ष और प्रतिपक्ष के योद्धा गर्वोक्तियाँ करते हैं। ये गर्वोक्तियाँ वीर रस के अनुभाव-विधान के रूप मे आई हैं—

'रामावतार' मे परशुराम राम से कहते हैं—

जेतक बैन कहे सुकहे जु पै फेरि कहे तु पै जीत न जैहो ॥
हाथि हथियार गहे सु गहे जु पै फेरि गहे तु पै फेरि न लैहो ॥
राम रिसे रण मैं रघुबीर कहो भजिकै कत प्रान बचैहो ॥
तोर सरासन सकर को हरि सीय चले घरि जान न पैहो ॥

(द० ग्र० पृ० १९८)

परशुराम की इस गर्वोक्ति का उत्तर राम कही अधिक कठोर शब्दों में देते हैं—

बोल कहे सु सहे द्विज जू जुपै फेरि कहे तुपै प्रान खवैहो ॥
बोलत ऐंठ कहा सठ जिउ सभ दात तुराइ अबै घरि जैहो ॥
धीरत बैलहि है तुम कउ जद भीर परी इक तीर चलै हो ॥
बात संभार कहो मुखि ते इन बातन को अब ही फलि पैहो ॥

(द० ग्र० पृ० १९९)

इसी प्रकार कृष्णावतार मे जरासध कृष्ण से कहता है—

का भयो मघवा जो बलवड है आज हउ ताही सो जुद्ध मचैहों ॥
मान प्रचड कहावत है हनि ताही को हउ जम धाम पठैहो ॥
अउ जु कहा सिव मै बलु है मरि है पल मै जब कोप बढैहों ॥
पउरख राखत हउ इतनो कहा भूप ह्वै गूजर ते भजि जैहो ॥

(द० ग्र० पृ० ४८६)

जरासध की इस गर्वोक्ति के उत्तर मे कृष्ण कहते हैं—

छत्री कहावत आपन को भजिहो तबही जब जुद्ध मचैहो ॥
धीर तबै लखि हौं तुमको जब भीर परै इक तीर चलैहों ॥
मूरछ ह्वै अबही छित मै गिरहो नहि सयंदन मै ठहरैहों ॥
एकह बान लगे हमरो नभमडल पै अब ही उड जैहो ॥

(द० ग्र० पृ० ४८६)

शृंगार रस

दशम ग्रन्थ मे रस वीर और शान्त के पश्चात् शृंगार रस का वर्णन सर्वाधिक है। चंडी चरित्र, रामावतार, कृष्णावतार, मोहिनी अवतार और चरित्रोपाख्यान आदि रचनाओं में शृंगार चित्रण के पर्याप्त अवसर आए हैं। दशम ग्रन्थ के शृंगार चित्रण मे अधिकांशतः परम्परा का ही निर्वाह किया गया है। दशम ग्रन्थ की रचना जिस युग में हुई उसमे शृंगार

चित्रण की एक रूढ़ परम्परा बन चुकी थी और अधिकांश शृंगारिक कवि उसी परम्परा पर चलते हुए अपने काव्य कौशल का प्रदर्शन कर रहे थे। गुरु गोबिन्दसिंह मुख्यतः वीर रस के कवि थे, उसके पश्चात् शान्त रस के कवि थे। इन्हीं दो रसों के चित्रण में उन्हें विशेष रुचि थी और इन्हीं में उनकी प्रतिभा और मौलिकता हमें व्यापक रूप से दिखाई देती है। कृष्णावतार और चरित्रोपाख्यान आदि रचनाओं में यद्यपि शृंगार का पर्याप्त चित्रण हुआ है परन्तु इसमें कवि की विशिष्ट मौलिकता के दर्शन नहीं होते।

परम्परा निर्वाह की दृष्टि से शृंगार की सभी अवस्थाओं के चित्र दशम ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। शृंगार को दो भागों में विभाजित किया गया है—संयोग एवं विप्रलम्भ।

संयोग शृंगार

दशम ग्रन्थ के कृष्णावतार के बाल लीला और रास मंडल खंड में संयोग शृंगार का विशेष वर्णन है। नायकों के रूप वर्णन में विशेष आग्रह तो उनके वीर रूप पर रहा है परन्तु शृंगार प्रसंगों में कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण भी किया गया है। यह रूप चित्रण साधारणतः रूढ़ उपमाओं की सहायता से किया गया है। यथा—

> कोमल कंज से फूल रहे दृग मोर को पंख सिर ऊपर सोहै।
> है बरनी सरसी भरुटे धन आनन पै ससि कोटिक कोहै॥
> मित्र की बात कहा कहीए जिह को रिपु कै रिप को मन मोहै॥
> मानहु लै सिवके रिपु आप दयो बिधना रस याहि निचोहै॥
>
> (द० ग्र० पृ० २६४)

इस रूप में यह बात द्रष्टव्य है कि मित्र की बात तो अलग उस रूप को देखकर शत्रुओं का मन भी मोह जाता है।

नीचे के छन्द में सौन्दर्य में सभी उपमान काव्य-क्षेत्र के जाने पहचाने हैं—

> दृग जाहि मृगीपति की सम है मुख जाहि निसा पति सी छबि पाई॥
> जाहि कुरंगन के रिपु सी कट कंचन सी तन मैं छबि छाई॥
> पाट बनें कदली दल द्वै जघा पर तीरन सी दुत गाई॥
> अंग प्रतंग सु सुन्दर स्याम कछू उपमा कहीऐ नहीं जाई॥
>
> (द० ग्र० पृ० ३११)

दशम ग्रन्थ में नारी के रूप-वर्णन की गुंजाइश बहुत कम है। चरित्रोपाख्यान में नारियों के सौन्दर्य का जो भी वर्णन है वह अधिकांशतः उल्लेखमात्र ही है। रामावतार में सीता और कृष्णावतार में राधा के रूप वर्णन के कतिपय उदाहरण प्राप्त होते हैं—

सीता का रूप-वर्णन

> बिधु बाक बैणी॥ मृगी राज नैणी॥
> कट छीन देसी॥ परी पदमनी सी॥
> सुने कूक को कोकला कोप कीने मुखं देख कै चंद दारे रसाई॥
> लखे नैन बाके मनै मीन मोहै लखै जात के सूर की जोति छाई॥
> मनो फूल फूले लगे नैन भूले लखे लोग भूले बने जोर ऐसे॥
> लखे नैन प्यारे बिधे राम प्यारे रगे रंग साराब मुहाब जैसे॥
>
> (द० ग्र० पृ० २११)

राधा का रूप वर्णन

सेत धरे सारी ब्रिखभान की कुमारी,
जस ही को मनो बारी ऐसी रची है न को दई।
रंभा उरबसी अउर सची से मदोदरी पैं,
ऐसी प्रभा काकी जग बीच न कहू भई॥
मोतिन के हार गरे डार रुच सो सुधार,
कान्हजू पै चली कवि स्याम रस कै लई॥
सेतें साज साज चली सांवरे के प्रीत काज,
चांदनी में राधा मानो चांदनी सी ह्वै गई॥

(द० ग्र० पृ० ३२५)

नख शिख वर्णन की ओर कवि ने अधिक ध्यान नहीं दिया है। इस प्रकार के उदाहरण दशम ग्रन्थ में स्वल्प ही मिलते हैं—

लोचन है मृग के कटि केहरि नाक कियो सुक सो तिह को है॥
ग्रीव कपोत सी है तिहको अधरा पीय से हरि मूरत जो है॥
कोकिल अउ पिक से बचनामृत स्याम कहै कवि सुन्दर सो है॥
पैं इहते लजकै अब बोलत मूरत लैन करे सग रो है॥

(द० ग्र० पृ० २८३)

सयोग शृंगार में षटऋतु वर्णन की भी परम्परा है। 'कृष्णावतार' में ऋतु वर्णन सयोग और वियोग, दोनों अवस्थाओं में किया गया है। ऋतु वर्णन के कुछ उदाहरण 'कृष्णावतार' का परिचय देते हुए दिये गये हैं। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

अंत भए रुत ग्रीखम की रुत पावस आइ गई सुखदाई॥
कान्ह फिरैं बन बीथन मैं सगि लै बछरे तिनकी अरु भाई॥
बैठ तबै फिर मद्ध गुफा गिर गावत गीत सभै मनु भाई॥
ता छबि को अति ही उपमा कवि ने मुख इम भाख सुनाई॥

(द० ग्र० पृ० २८२)

क्रीडा विलास का चित्रण सयोग शृंगार की प्रमुख विशेषता है। 'कृष्णावतार' में कृष्ण और गोप-गोपियों की क्रीडा, नृत्य, गान, चीर हरण, जलविहार आदि का वर्णन पर्याप्त विस्तार से किया गया है।

कृष्ण गोपियों के साथ लुका-छिपी का खेल खेल रहे हैं—

कान्ह छुह्यो चहै ग्वारनि को सोउ भाग चलैं नहि देत छुहाई॥
जिउ मृगनी अपने पति को रति केल समै नहीं देत मिलाई॥
कुंजन भीतर तीर नदी ब्रिखभान सुता सु फिरै तह धाई॥
ठउर तहा कवि स्याम कहै इह भात सो स्यामजु खेल मचाई॥

(द० ग्र० पृ० ३४०)

इन लुका छिपी की क्रीडाओं के साथ ही प्रेम-क्रीडा भी प्रारम्भ हो जाती है। खेल खेल में कृष्ण राधा को कहीं एकान्त में पकड़ लेते है। राधा घबड़ाती है, कृष्ण को अन्य सखियों का भय दिखाकर छोड़ देने की प्रार्थना करती है—

सम अमृत की हंसि के त्रिया यो बतीयां हरि के सग है अखीआ ॥
हरि छाड़िकैं मोहि कह्यो हम को सुनि हेरत हैं सभ ही सखीआ ॥
(द० ग्र० पृ० ३४१)

पर भला कृष्ण कहा छोड़ने वाले ? वे किसी की परवाह नही करते । राधा बहाना बनाती है—यह तो चांदनी रात है, अंधेरी रात आने दो—

सुनिकै जदुराइ की बात त्रिया बतीआं हरिके इम सग उचारी ॥
चांदनी रात रही छकि कै दिजीऐ हरि होवन रैन अधियारी ॥
(द० ग्र० पृ० ३४१)

कृष्ण कोई बहाना नहीं मानते । भूख लगी हो तो भूखा भोजन नही छोड़ता, विरही को प्रेम मिले तो नही छोड़ता, ठग को अवसर मिले तो किसी घर को नही छोड़ता । अब कृष्ण रूपी सिंह के हाथ राधा रूपी मृगी आ गई है । भला वे छोड़ते हैं—

भूख लगे सुनिऐ सजनी लगरा कहूं छोरत जात बगी को ।
तात की स्याम सुनी है कथा बिरही नहि छोरत प्रीत लगी को ॥
छोरत है सु नही कुटवार किघो ग्रहकै पुर हू की ठगी को ॥
ताते न छोरत इउ तुमको कि सुन्यो कहूं छोरत सिंह मृगी को ॥
(द० ग्र० पृ० ३४१)

चीरहरण के प्रसंग का वर्णन भी सयोग शृंगार का ही अंग है । नहाती हुई गोपियो के वस्त्र कृष्ण उठा ले जाते हैं । गोपियों को यह शिकायत बड़ी वाजिब है कि कृष्ण हाथों से साड़ी और नेत्रों से उनका रूप चुराते हैं—

नावन लागि जबै गुपिआ तब लै पटकान चढ्यो तरु ऊपं ॥
तउ मुसकयात लगी मथ आपन कोइ पुकार करे हरि जू पै ॥
चीर हरे हमरे छल सों तुम सो कग नाहि कियो कोउ भू पै ॥
हाथन साथ सु सारी हरी हग साथ हरो हमरो तुम रूपै ॥
(द० ग्र० पृ० २८५)

चीर हरण के इस प्रसग में पर्याप्त अश्लीलता आ गयी है । कृष्ण गोपियो को किसी भी प्रकार वस्त्र वापिस नही करते, और नग्नावस्था में ही जल से बाहर आने को कहते हैं ।[1] गोपियां सभी प्रकार से चिरौरियां करती हैं, परन्तु कृष्ण कहते हैं कि जल से बाहर निकल कर हाथ जोड़कर मुझे प्रणाम करो तभी मैं वस्त्र वापस दूंगा ।[2] बाध्य होकर गोपियों को कृष्ण की बात माननी पड़ती है । अपने हाथों से किसी प्रकार अग ढकती हुई वे बाहर आती हैं । और कृष्ण अवसर का लाभ उठाकर सबके सन्मुख चुम्बन और कुच-मर्दन की शर्त रखते हैं—

कान्ह कही इह बात तिनै कहि है हम जो तुम सो मन हो ॥
सम ही मुख चूमन देहु कह्यो छुम है हम हू तुमहू गनि हो ॥

---

१. देउ बिना निकरैं नहि चीर कह्यो हसि कान्ह गुनो तुम प्यारी ॥
सीत सहो जल में तुम नाहिक बाहरि आवहु गोरी अउ कारी ॥
(द० ग्र० पृ० २८६)

२. जोर प्रनाम करो हमको कर बाहर ह्वै जल ते ततकाला ॥
कान्ह कही हसिकै तुखि ते करहो नहि छोरत देउ पट हाला ॥ (वही, पृ० १८०)

प्रछ तोरन देहु कह्यो सभ ही कुछ ना तर हउ तुमको हनि हो ॥
लउ ही पट देउ सभै तुमरे इह झूठ नहीं सत कै जनि हो ॥
(द० ग्र० पृ० २८७)

सयोग श्रृंगार की इस रस लीला मे यद्यपि नायक अधिक सक्रिय दिखायी देता है, परन्तु इसका अर्थ यह नही कि नायिका या नायिकाए इस रस लीला को नहीं चाहती। नारी सुलभ लज्जा और बाहरी नकार का आश्रय वह अवश्य लेती हैं, परन्तु इस प्रेम-क्रीड़ा मे उन्हे भी आनन्द आता है—

कान्ह तबै कर केल तिनो सगि पै पट दे करि छोर दई है ॥
होइ इकत्र तबै गुपीआ सभ चड सराहत धाम गई है ॥
आनन्दप्रति सु बढ्यो तिनके जियसो उपमा कवि चीनलई है ॥
जिउ अत मेघ परै घर पै घर ज्यों सब ही सुभ रग भई है ॥
(द० ग्र० पृ० २८६)

और इसका कारण भी स्पष्ट है। कृष्ण गोपियो से प्रेम करते हैं और गोपियां कृष्ण से प्रेम करती हैं। दोनों को ही मिले बिना चैन नहीं पड़ता।

नेह लग्यो इनको हरि सौं अरु नेह लग्यो हरि को इन नारे ॥
चैन परै दुहू को नहि द्वै पल नावन जावत होत सवारे ॥
(द० ग्र० पृ० २६१)

इसलिए गोपिया भी कभी-कभी कृष्ण के सम्मुख काम-प्रस्ताव रखते हुए भी नहीं लजातीं—

सोउ ग्वारन बोल उठो हरि सो बचना जिनके सम मुद्ध अमी ॥
तिह साथ लगी चरचा करने हरता मन साधन मुद्ध गमी ॥
तजकै अपने भरता हमरी मति कान्ह जू ऊपर तोहि रमी ॥
अति ही तन काम करा उपजो तुमको पिखए नहि जात छमी ॥
(द० ग्र० पृ० ३१४)

और अन्त मे सयोग (या सभोग) श्रृंगार अपनी पूर्ण तृप्ति (सभोग) में परिणत होकर चरम आनन्द की स्थिति को प्राप्त होता है। कृष्ण गोपियों का प्रस्ताव स्वीकार कर लेते हैं—

भगवान लखी अपने मन मैं इह ग्वारन मो पिख मैन भरी ॥
तब ही तज सक सभै मन की तिनकै संग मानुख केल करी ॥
हरिजी करि खेल किधो इन सो जनु काम जरी इह कौन जरी ॥
कवि स्याम कहै पिख वो तुम कौतुक कान्ह हर्यो कि हरी सुहरी ॥
(द० ग्र० पृ० ३१५)

विप्रलम्भ श्रृंगार

श्रृंगार मे सयोग की अपेक्षा विप्रलम्भ का महत्त्व अधिक स्वीकार किया गया है। साहित्य दर्पण के रचयिता विश्वनाथ[1] ने इस महत्त्व की पुष्टि करते हुए कहा ही है कि

१. न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टि मुश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयानरागो विवर्धतः। (साहित्य दर्पण)

बिना वियोग के संयोग शृंगार परिपुष्ट नहीं होता। कषायित वस्त्र पर ही अच्छा रंग चढ़ता है। प्रखर सूर्य की किरणों से तप्त होने के पश्चात् ही वृक्ष की शीतल छाया के वास्तविक सुख का अनुभव प्राप्त होता है। सूरदास ने विरहणी ब्रजागनाओं द्वारा इसी बात की पुष्टि कराई है।[1] कालिदास ने मेघदूत में यक्ष द्वारा कहलाया है कि वियोगावस्था में प्रेम का भोग नहीं होता इसलिए वह राशिभूत हो जाता है।[2]

रीतिकालीन कवि परम्पराभुक्त ऊहा एवं अतिशयोक्ति के द्वारा ही विरह चित्रण करते रहे हैं। आ० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार आधिक्य या न्यूनता सूचित करने के लिए ऊहात्मक या वस्तु-व्यंजनात्मक शैली का विधान कवियों में तीन प्रकार का देखा जाता है—

(१) ऊहा की आधारभूत वस्तु असत्य अर्थात् कवि-प्रौढ़ोक्ति सिद्ध है।

(२) ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप सत्य या स्वतः संभवी है और किसी प्रकार की कल्पना नहीं की गई है।

(३) ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप तो सत्य है पर उसके हेतु की कल्पना की गई।[3]

दशम ग्रन्थ में भी, वियोग शृंगार के चित्रण मे कवि ने ऊहा का आश्रय लेकर विरह स्थिति की उग्रता एवं तीव्रता को व्यक्त किया है। परन्तु यह चित्रण प्रथम प्रकार की असिद्ध विषया ऊहा का चित्रण ही कहा जाएगा जो अधिक प्रभावशाली नहीं है। 'रामावतार' में सीता के वियोग में राम की दशा इस प्रकार की हो गई है—

उठ कै पुन प्रात इसनान गए ॥
जल जन्त सबै जरि छार भए ॥
बिरही जिह ओर सु दिस्टि धरैं ॥
फल फूल पलास प्रकास जरैं ॥
कर सो धर जउन छुअत भई ॥
कच बासन ज्यों पक फूट गई ॥
जिह भूमि थली पर राम फिरे ॥
दव ज्यों जल पात पलास गिरे ॥
टुट आसू आरण नैन झरी ॥
मनो तात तवा पर बूंद परी ॥
तन राघव भेंट समीर जरी ॥
तज धीर सरोवर माझ दुरी ॥

---

१. ऊधो, बिरहौ प्रेम करै,
ज्यों बिन पुट पट गहै न रंगहि, पुट गहि रसहि परै।
जो आवो घट दहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै। (भ्रमरगीत सार)

२. स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा—
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेम राशि भवन्ति। (मेघदूत)

३. जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३७।

नहि तत्र थलो सतपत्र रहे ॥
जलजत परत्रण पत्र दहे ॥

(द० ग्रं० पृ० २१७)

गुरु गोबिन्दसिंह ने विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत परम्पराजनित पूर्व राग, मान, प्रवास, करुण, पत्र दूती, बारहमासा आदि सभी का चित्रण किया है।

पूर्व राग

पूर्व राग की अवस्था नायक या नायिका के गुण-श्रवण अथवा सौन्दर्य-दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की विरह-अवस्था के अनेक उदाहरण चरित्रोपाख्यान में उपलब्ध हैं। 'रामावतार' में सीता और राम की प्रथम भेंट के, साहित्य जगत में पूर्व राग के चिर परिचित प्रसंग का उल्लेख किया गया है—

सिया पेख राम ॥ बिधी बाण कामं ॥
गिरी भूम भूम ॥ नदी जाणु घूम ॥
उठी चेत ऐसे ॥ महावीर जैसे ॥
रही नैन जोरी ॥ सस जिउ चकोरी ॥
रहे मोह दोनो ॥ टरे नाहि कोनो ॥
रहे ठाढ़ ऐसे ॥ रण वीर जैसे ॥

(द० ग्रं० पृ० १६६)

मान

प्रिय अपराध जनित प्रेमयुक्त कोप को 'मान' कहते हैं। शास्त्रकारों ने इसके दो भेद किये हैं—

१. प्रणयमान—नायक-नायिका में भरपूर प्रेम होने पर भी जो कोप होता है उसे प्रणयमान कहते हैं। इसमें प्रेम की वृद्धि करना ही इष्ट होता है।

२. ईर्ष्यामान—नायक को परस्त्री पर प्रेम करते देख या सुनकर ईर्ष्या से जो कोप होता है, उसे ईर्ष्यामान कहते हैं।

दशम ग्रन्थ के 'कृष्णावतार' खंड में ईर्ष्यामान का व्यापक वर्णन किया गया है। रासलीला के मध्य नाचते-नाचते कृष्ण एक अन्य गोपी चन्द्रमा की ओर हंसकर देख लेते हैं। उत्तर में वह भी हंस देती है। राधा यह दृश्य सहन नहीं कर पाती हैं—

हरि नाचत नाचत ग्वारन मैं हसि चन्द्रप्रभा हुकी ओर निहार्यो ॥
सोउ हंसी इत ते इह से जदुरा तिह मो बचना है उचार्यो ॥
मेरे महा हित है तुम सो ब्रिषभान सुता इह हेर बिचार्यो ॥
आन त्रिया संग हेत कर्यो हम ऊपरि ते हरि हेत बिसार्यो ॥

(द० ग्रं० पृ० ३४२)

राधा का मान

इह भांत चली कहिकै सु त्रिया कवि स्याम कहै सोउ कुंज गली है ॥
चंद मुखी तन कंचन से सभ ग्वारन ते जोउ खूब भली है ॥
माने कियो निसरी तिन ते मृगनी सी मनो सु बिना ही मली है ॥
यो उपजी उपमा मन मै पति सो रति मानहु रूठ चली है ॥

(द० ग्रं० पृ० ३४२)

राधा को मनाने के लिए कृष्ण द्वारा दूती का प्रयोग—

विज्जछटा जिह नाम सखी को है सोउ सखी जदुराइ बुलाई ॥
मग प्रभा जिह कंचन सी जिहते मुख चंद छटा छबि पाई ॥
ता संग ऐसे कह्यो हरि जू सुन तू बिषभान सुता पहि जाई ॥
पाइन पै बिनती अन कै अत हेत के भाव सो लिआउ मनाई ॥

(द० ग्र० पृ० ३४३)

दूती का राधा के पास जाकर उसे समझाना

सजनी नंदलाल बुलावत है अपने मन मे हठ रंच न कीजै ॥
आई हो हउ चलिकै तुम पै तिह ते सु कह्यो अब मान ही लीजै ॥
वेग चलो जदुराइ के पास कछू तुमरो इह ते नहि छीजै ॥
ताही ते बात कहो तुम सो सुख आपन लै सुख अउरन दीजै ॥

(द० ग्र० पृ० ३४३)

राधा का हठ

जैहउ न हउ सुन री सजनी तुहि सी हरि ग्वारनि कोट पठावै ॥
बंसी बजावै तहा तु कहा अरु आप कहा भयो मगल गावै ॥
मै न चलो तिह ठउर बिखै ब्रह्मा हमको कह्यो आन सुनावै ॥
अउर सखी की कहा गिनतो नहीं जाउं री जो हरि आपन आवै ॥

(द० ग्र० पृ० ३४४)

दूती द्वारा राधा के सम्मुख कृष्ण की अवस्था का चित्रण—

पेखत है नहि अउर त्रिया तुमरोइ सुनो बलि पंथि निहारै ॥
तेरे ही ध्यान बिखै अटके तुमरी ही किधौ बलि बात उचारै ॥
झूम गिरै कबहूं धरनी कर त्वै मधि आपन आप संभारै ॥
ताउन समै सखी तोहि चितारि कै स्याम जु मैन को मान निवारै ॥

(द० ग्र० पृ० ३४८)

अन्त में कृष्ण का स्वयं मनाने के लिए आना—

अउर न ग्वारिन कोउ पठी चलि कै हरि जू तब आप ही आयो ॥
ताही को रूप निहारत ही बिषभान सुता मन मैं सुख पायो ॥
पाइ घनो सुख पै मन मै अति ऊपर मान सो बोल सुनायो ॥
चंद्रभगा हमो केल करो इह ठउर कहा तजि ताजहि आयो ॥

(द० ग्र० पृ० ३५०)

मान के पश्चात् का मिलन

दोउ जउ हसि बातन संग ढरे सु हुलास बिलास बढे सगरे ॥
हसि कंठ लगाइ लई ललना गहि बाहे अनंग ते अंग भरे ॥
तरकी है तनी दर की अंगीया गरमान ते टूट कै माल परे ॥
पिय के मिलए पिय के हिय ते मनो बिरहा गिन कै निकरे ॥

(द० ग्र० पृ० ३५१)

प्रवास

'कृष्णावतार' के गोपी विरह खड मे कृष्ण के प्रवास का प्रभावशाली चित्रण है। कृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनते ही गोपियों की यह अवस्था हो गई—

> जबही चलिबे की सुनी बतिया तब ग्वारन नैन ते नीर ढर्यो ॥
> गिनती तिनके मन बीच भई मन को सब आनन्द दूर कर्यो ॥
> जितनो तिन मे रस जोबन थो दुख की सोई ईंधन माहि जर्यो ॥
> तिनते नहि बोलियो जात कछू मन कान्ह को प्रीत के सग जर्यो ॥
> (द० ग्र० पृ० ३५६)

करुण

जहाँ किसी आधिदैविक तथा अन्य विशेष कारण से सयोग की आशा समाप्त प्रायः हो जाती है, वहाँ करुण-विप्रलम्भ होता है। 'कृष्णावतार' के 'गोपी विरह' खडो मे कृष्ण के मथुरा जाकर वही स्थायी रूप से रह जाने की बात सुनकर गोपियाँ रोदन करती हैं—

> रोदन कै सम ग्वारनीआ मिलि ऐसे कह्यो प्रति होइ बिचारी ॥
> त्याग ब्रिजै मथुरा मैं गए तजि नेह अनेक की बात बिचारी ॥
> एक गिरै धर यों कहि कै इक ऐसे सभार कहै ब्रिजनारी ॥
> री सजनी सुनिए बतिया ब्रिजनार सभै ब्रिजनाथ बिसारी ॥
> (द० ग्र० पृ० ३६६)

ऐसा लगता है कि करुण घटनाओं के चित्रण में गुरु गोबिन्दसिंह की अधिक रुचि नही थी। विचित्र नाटक मे अपने पिता के बलिदान का उल्लेख उन्होने केवल चार पक्तियों में किया है। 'रामावतार' में राम के विरह का वर्णन भी अत्यन्त सक्षिप्त है। 'कृष्णावतार' के गोपी विरह खड मे करुण प्रसगों का वर्णन अपेक्षाकृत विस्तार से हुआ है।

दसम ग्रन्थ के इस अश का विरह चित्रण बड़ा स्वाभाविक और जन-जीवन की सरल सदाशयता से व्याप्त है। विरह वर्णन मे बनावट का कही आभास नहीं होता। गोपियाँ बड़े सरल ढग से अपनी विरह-स्थिति को व्यक्त करती हैं—

१. आप गये मथुरापुर मैं जदुराइ न जानत पीर पराई ॥[1]
२. स्याम सुने ते प्रसन्न भई नहि आए सुने फिरि भी दुखदाई ॥[2]
३. त्याग गए तुमको हमको हमरो तुमरे रस मैं मनु भीनो ॥[3]
४. तौन समैं सुखदायक थी रित स्याम बिना अब भी दुखदाई ॥[4]
५. ऐसे समय तजि ग्यो हमको टसक्यो न हियो कसक्यो न कसाई ॥[5]
६. मै तुमरे संग मान करयो तुम हूं हमरे सग मान कर्यो है ॥[6]
७. ताते तजो मथुरा फिर आवहु हूं सभ गउअनि को रखवारे ॥[7]

१. द० ग्र०, पृ० ३६० ।
२. वही, पृ० ३७४ ।
३. वही ।
४. वही, पृ० ३७७ ।
५. वही ।
६. वही, पृ० ३८० ।
७. वही, पृ० ३८१ ।

दशम ग्रन्थ के इस खंड में 'बारहमासा' का चित्रण किया गया है। इस रचना में दो बारहमासे हैं जिनमे सरल, सयत एव अतिशयोक्ति रहित ढग से विरहिणी की मनोदशा चित्रित हुई है।

बारहमासे मे वर्ष के बारह महीनो का वर्णन विप्रलम्भ शृगार के उद्दीपन की दृष्टि से होता है। प्रेम मे सुख और दु.ख दोनों की अनुभूति की मात्रा जिस प्रकार बढ़ जाती है उसी प्रकार अनुभूति के विषयों का विस्तार भी। सयोग की अवस्था मे जो प्रेम सृष्टि की सब वस्तुओं से आनन्द का सग्रह करता है वही वियोग की दशा मे सब वस्तुओं से दु.ख का सग्रह करने लगता है।[1] इसी दुःखद रूप मे प्रत्येक मास की उन सामान्य प्राकृतिक वस्तुओ और व्यापारों का वर्णन इन बारहमासो में किया गया है।

दोनो बारहमासों में से कतिपय उदाहरण 'कृष्णावतार' का परिचय देते हुए दिये गये हैं। यहा एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा—

फूल रहे सिगरे ब्रिज के तर फूलि लता तिन सो लपटाई ।।
फूलि रहे सरसा रस सुदर सोभ समूह बढ़ी अधिकाई ।।
चैत चढ़यो सुक सु'दर कोकिल वा जुत कन बिना न सुहाई ।।
दासी के सगि रह्यो गहि हो टमिक्यो न हियो कसिक्यो न कसाई ।।

(द० ग्र० पृ० ३७६)

गोपियों के इस विरह चित्रण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि कवि ने इसे विशुद्ध भाव के स्तर पर ही रखा है। सूर, नंददास और रत्नाकर आदि कृष्ण भक्त कवियो की भांति इसके माध्यम से भक्ति की ज्ञान पर श्रेष्ठता स्थापित करने का कोई सोद्देश्य प्रयास इसमें नहीं किया गया। गुरु गोविन्दसिंह की ये गोपिया सूर, नन्ददास और रत्नाकर आदि की गोपियो की भांति वाकपटु और प्रगल्भ स्त्रिया नहीं हैं। वे सामान्य सी ग्रामीण महिलाएँ हैं (जैसी कि वे थी) और विरह की अभिव्यक्ति भी वे उसी सरल ढग से करती हैं।

बीभत्स रस

दशम ग्रन्थ मे स्वतंत्र रूप से बीभत्स रस के प्रसंग के स्थल अधिक नहीं हैं। युद्ध-काल के अन्तर्गत वर्णनो में जुगुप्सा की भावना पैदा करने वाले स्थल आते हैं। ऐसे स्थल चडी चरित्र (प्रथम), रामावतार, कृष्णावतार और चरित्रोपाख्यान मे विशेष रूप से उपलब्ध हैं। कुछ के उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं—

उठें छिच्छ अपारं ।। बहे स्रोण धारं ।।
हुवें मास हारं ।। पिऐ स्रोण स्यारं ।।

(द० ग्र० पृ० २२४)

एक भरे भट स्रोनन सों झभकारत धाइ फिरें रन डोलत ।।
एक परे गिरकै धरनी तिनके तन जबक गीधक ढोलत ।।
एकन के मुखि ऊठन आवत काग मु चोचन सिउ टकटोलत ।।
एकन की उर आवत को कढ जोगन हाथन सिउ झकझोलत ।।

(द० ग्र० पृ० १८०)

---

१. डॉ० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रंथावली, पृ० ४३।

फिरैं दैत कहूं दांत निकारे ॥
बमत स्रोन केते रन मारे ॥
कहूं सिवा सामुहि फिर राही ॥
भूत पिसाच मास कहूं खाही ॥

(द० ग्र० पृ० १३६०)

सभ चमू संग खड़का क्रोध कै जुद्ध अनेकन वार मचिउ है ॥
जंबक जुगन गिज्झ मजूर रकत्र की कीच मै ईस नचिउ है ॥
लुत्थ पै लुत्थ सु भीतं भई सत गूद भउ भेद लै ताहि गचिउ है ॥
भउन रगीन बनाइ मनो करमाबि सचित्र बचित्र रचिउ है ॥

(द० ग्र० पृ० ८७)

इस प्रकार के अनेक स्थल दशम ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। ऐसे स्थलों में अंगों का छिन्न-भिन्न होना, रक्त की नदी का बहना, आंतो आदि का बिखरना आदि आलम्बन हैं। काग, स्यार, गिद्ध आदि का मांस खाना, योगिनियों का पीने के लिए खून से हाथ भरना और भूत-पिशाच आदि का मांस भक्षण आदि उद्दीपन है। युद्धरत वीरों की मृत्यु व्यभिचारी है।

भयानक रस

भयानक रस का परिपाक दशम ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर हुआ है। युद्धभूमि में भयकर वेष वाले दैत्यों, डाकिनी, भैरव, भूत-प्रेत आदि का चित्रण, उनके नृत्य, चीत्कार तथा कबन्धो का दौड़ना इत्यादि के कारण बहुधा भय की उत्पत्ति भी हो जाती है और इस प्रकार भयानक तथा वीभत्स रसो का साहचर्य हो जाता है। भरत मुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में भयानक रस को प्रधान रसो में न परिगणित कर, वीभत्स रस से उत्पन्न बताया है। भयानक के आलम्बन विकराल स्वरूप वाले प्राणी, दैत्य, पिशाचिनी, हिंसक जन्तु आदि होते हैं। दशम ग्रन्थ की 'कृष्णावतार' रचना में मृत पूतना की दशा पर्याप्त भयोत्पादक है—

देहि छि कोस प्रमान भई पुखरा जिम पेट मुखो नलुआरे ॥
डड दुकूल भए तिहके जनु वार सिबाल ते सैख पुआरे ॥
सीस सुमेर को स्रिग भयो तिह आखन मै परगे खदुआरे ॥
ताहके कोट मे तोप लगी बिन गोलन के ह्वै गए गलुआरे ॥

(द० ग्र० पृ० २६४)

इसी रचना के युद्ध-प्रसंग भाग मे एक दैत्य के विकराल रूप का चित्रण इस प्रकार हुआ है—

केस बड़े सिर बेस बुरे अरु देह में रोम बड़े जिनके ॥
मुख सो नर हाडनि चाबत है पुन दात सो दात बजे तिनके ॥
सर सउनत के अखीआ जिनकी सभ कउन भिरै बलु कै इनके ॥
सर चाप चढ़ाइ के रैन फिरै सब काम करै नित पापन के ॥

(द० ग्र० पृ० ४४५)

युद्धभूमि में कृष्ण ने महा पराक्रमी खड्ग सिंह का छल से सिर काट लिया। परन्तु उस वीर का रुंड ही भयानक युद्ध करता रहा। उस भयावह मूर्ति को देखकर सभी देवता

रणभूमि छोड़कर भागने लगे। शिवादि जो भी उसके सामने पड़े, उसने अपनी चपेट में लेकर भूमि पर गिरा दिए—

मुंड बिना तब रुंड सु भूपति को चित मैं अति कोप बढ़ायो ॥
द्वादस भान जु ठाढे हुते कवि स्याम कहैं तिह ऊपर धायो ॥
भाज गए कर त्रास सोउ सिव ठाढे रह्यो तिह ऊपरि आयो ॥
सो नृप बीर महा रनधीर चटाक चपेट दै भूम गिरायो ॥

(द० ग्र० पृ० ४७१)

'रामावतार' में भय पैदा करने वाले रणभूमि के इस दृश्य को देखिए—जहाँ-तहाँ मुंड पड़े हुए हैं, कहीं ढेरों रुंड ही रुंड पड़े हैं, कहीं जाँघें तड़फ रही हैं, कहीं कटे हुए हाथ उछल रहे हैं, कहीं भैरवी अपना खप्पर रक्त से भर रही है, कहीं भूत चीत्कार कर रहे हैं, मसानों से किलकारी उठ रही है, भैरव भभकार रहा है—

कहूं मुंड पिक्खीअहु कहूं भकड्ड परे धर ॥
कितही जाघ तरफंत कहूं उछरत सु छब कर ॥
भरत पत्र खेचरी कहूं चावंड चिकारै ॥
किलकत कतहु मसान कहूं भैरव भभकारै ॥

(द० ग्र० पृ० २१८)

चंडी चरित्र (द्वितीय) में रक्तबीज अपनी सेना सहित चंडी से युद्ध करने के लिए चला। उसके नगारे की आवाज सुनकर भूमि कांपने लगी, आकाश थरथराने लगा और देवताओं सहित देवराज इन्द्र भी भयभीत हो गये—

रक्तबीज दै चल्यौ नगारा ॥
देव लोग लउ सुनी पुकारा ॥
कपी भूम गगन थहराना ॥
देवन जुति दिवराज डराना ॥

(द० ग्र० पृ० १०५)

रौद्र रस

भरत मुनि का कथन है कि रौद्र रस राक्षस, दैत्य और उद्धत मनुष्यों से उत्पन्न होता है तथा युद्ध का हेतु होता है। युद्ध-प्रधान काव्य होने के कारण दशम ग्रन्थ में रौद्र रस खोजने का प्रयत्न करने की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती।

विचित्र नाटक के 'हुसैनी युद्ध' प्रसंग में हुसैनी पक्ष के एक राजा कृपाल के क्रोध का चित्रण इस प्रकार हुआ है—

कुपियो कृपाल सज्जि मरालं बाहु बिसाल धरि ढालं ॥
धाए सब सूरं रूप करूरं चमकत नूरं मुखि लालं ॥
लै लै सु कृपाणं बाण कमाणं सज्जे जुआनं तन तत्तं ॥
रण रंग कलोल मार ही बोलं जनु गज डोलं बन मत्तं ॥

(द० ग्र० पृ० ६७)

यहां गुलेर का राजा गोपाल आलम्बन है। हुसैनी के शिविर से उसका भाग जाना उद्दीपन है। राजा कृपाल का क्रोधित होकर घोड़ा सजाना, विशाल ढाल का धारण करना,

रण भूमि मे किलोल करना और मारो मारो पुकारना आदि अनुभाव हैं, मद और उग्रता संचारी हैं।

'रामावतार' मे रावण सीता का हरण करने के लिए मारीच को स्वर्ण मृग का रूप धारण करने को कहता है। मारीच रावण को समझाता हुआ कहता है कि राम को मनुष्य न समझो, वे तो पूर्ण-अवतार हैं। यह सुनकर रावण क्रोध से भर जाता है—

रोस भर्यो सब अंग जर्यो मुख रत्त कर्यो जुग नैन तपाए ॥
तैं न लगै हमरे सठ बोलन मानस दुऐ अवतार गनाए ॥
मात की एक ही बात कहे तज तात घृणा बनवास निकारे ॥
ते दोउ दीन अधीन जुगिया कस कै भिरहैं संग प्रान हमारे ॥

(द० ग्र० पृ० २१६)

'कृष्णावतार' मे कृष्ण शिव की सहायता से मिट्टी का एक व्यक्ति बनाकर उसमें प्राण फूकते हैं और उसका नाम अजीत सिंह रखकर खड्गसिंह से उसे युद्ध करने के लिए ले आते हैं। कृष्ण की इस नीति पर रुष्ट होकर खड्गसिंह कृष्ण से कहता है—

किउरे गुमान करै घनस्याम अयं रन ते पुनि तोहि भजैहों ॥
काहे को आन अर्यो सुन रे सिर केसनि ते बहुरे गहि लैहों ॥
ऐ रै अहीर अधीर डरैं नहि तोकहि जीवत जान न दैहो ॥
इंद्र, बिरंच, कुबेर, जलाधिप, कौ ससि को शिव को हत कैहों ॥

(द० ग्र० पृ० ४६७)

यहां कृष्ण आलम्बन है, मिट्टी के निर्मित प्राणी अजीत सिंह को लेकर युद्ध के लिए आना उद्दीपन है। खड्गसिंह का कटु वचनों का प्रयोग करना और ललकारना अनुभाव है और उसकी उग्रता, उद्वेग और स्मृति संचारी है।

वात्सल्य रस

वात्सल्य शब्द वत्स से उत्पन्न और पुत्रादि विषयक रति का पर्याय है। माता पिता का अपने पुत्रादि पर जो नैसर्गिक स्नेह होता है, उसे 'वात्सल्य' कहते हैं। संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने देवादि विषयक रति को केवल 'भाव' ठहराया है तथा वात्सल्य को इसी प्रकार की 'रति' माना है, जो स्थायी भाव के तुल्य, उनकी दृष्टि मे चवर्णीय नहीं है। लेकिन अपत्य-स्नेह की उत्कटता, आस्वादनीयता, पुरुषार्थोपयोगिता इत्यादि गुणो पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वात्सल्य एक स्वतन्त्र प्रधान भाव है, जो स्थायी ही समझा जाना चाहिए।[1]

केशवदास, चिंतामणि, भिखारीदास आदि प्रायः सभी रीतिकालीन काव्याचार्यों ने वात्सल्य रस की उपेक्षा की है। उन्होने इस विषय में 'साहित्यदर्पण' का उदाहरण सामने न रखकर नौ रसों की रूढ़ परम्परा का पालन किया है। परन्तु आधुनिक युग मे भारतेन्दु और हरिऔध ने वात्सल्य रस को अन्य रसों के साथ स्थान दिया है।

'दशम ग्रन्थ' मे वात्सल्य के उदाहरण रामावतार, कृष्णावतार आदि रचनाओं मे उपलब्ध होते हैं। धनुष-भंग कर, सीता से विवाह कर राम अयोध्या में प्रवेश करते हैं और दशरथ वात्सल्य में भर कर उन्हें अंक मे भर लेते हैं—

१. हिन्दी साहित्य कोश—पृ० ७०७।

मेंट भुजा भर अक मलें भरि नैन दोऊ निरखे रघुराई ॥
गुंजत भृग कपोलन ऊपर नाग लवग रहे लिवलाई ॥
कज कुरंग कलानिध केहरि कोकल हेर हिए हहराई ॥
बाल लखें छवि खाट परें नहि बाट चलें निरखे अधिकाई ॥

(द० ग्र० पृ० १६६)

'कृष्णावतार' में वियोग वात्सल्य के कुछ बहुत ही अच्छे चित्र दिए गये हैं। माता यशोदा के विलाप का चित्रण कृष्ण काव्य के सभी कवि बड़े मनोयोग से करते आये हैं, परन्तु पिता नद की मनोदशा का चित्रण स्वल्प ही हुआ है। कृष्णावतार मे नद बाबा की पुत्र-वियोग की स्थिति का परिचय देने वाले छन्द आये हैं जो अभिव्यक्ति की मार्मिकता की दृष्टि से वियोग-वात्सल्य के अनूठे उदाहरण हैं। 'कृष्णावतार' का परिचय देते समय इन छन्दो पर चर्चा की गयी है। यहा एक छन्द देना ही पर्याप्त होगा, जिसमे नद उद्धव से कह रहे हैं —

स्याम गए तजिकैं ब्रिज को ब्रिज लोगन को अति ही दुख दीनो ॥
उद्धव बात सुनो हमरी तिहके बिनु क्यो हमरो पुर दीनो ॥
दै बिधि नै हमरे ग्रह बालक पाप बिना हम तैं फिर छीनो ॥
यो कहि सीस झुकाई रहयो बहु सोक बढ्यो अति रोदन कीनो ॥

(द० ग्र० पृ० ३७३)

यशोदा के विरह-वात्सल्य के अनेक मार्मिक उदाहरण कृष्णावतार में उपलब्ध हैं। कुछेक 'कृष्णावतार' के परिचय मे उद्धृत किये गये हैं। वात्सल्य का एक उत्तम उदाहरण इसी रचना के अन्त मे उपलब्ध है जब कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न सबर दैत्य का वध कर अपनी माता रुक्मिणी से मिलता है—

पेखत ताहि रुकमन के सु पयोधरवा पय सों भरि आए ॥
मोह बढ्यो अति ही चित्त मैं करुनारसु को दुरि बैन सुनाए ॥
ऐसो सखी कहियो मो सुत धो प्रभु दे हमको हम ते जु छिनाए ॥
यो कहि सास उसास लयो कबि स्याम कहै दोउ नैन बहाए ॥

(द० ग्र० पृ० ५१२)

हास्य रस

भरत मुनि ने हास्य रस की उत्पत्ति शृंगार से मानी है। वे इसे शृंगार की अनुकृति कहते हैं—

शृंगारानुकृतिर्या तु स हास्य इति संज्ञितः

भाव के विकास-क्रम अथवा उसके तारतम्य को आधार मानकर हास्य के ६ भेद किये गये हैं—

१. स्मित, २. हसित, ३. विहसित, ४. उपहसित, ५. अपहसित ६. अतिहसित।

पाश्चात्य साहित्य मे हास्य के पाच मुख्य रूप उपलब्ध हैं, १. सैटायर (विकृति) २. कैरीकेचर (विरूप या अतिरंजना), ३. पैरोडी (परिहास), ४. आइरनी (व्यंग्य) ५. विट (वचन-वैदग्ध)

दशम ग्रंथ मे हास्य रस के स्थल अधिक नही है। केवल चरित्रोपाख्यान की विनोद कथाओं मे हास्य के कुछ उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं।

इन कथाओ मे अनेक मूर्ख पात्रो का चित्रण किया गया है। 'हास्य रस' के नियत और प्राचीन आलम्बन मूर्ख हैं। मूर्खों के कार्यों मे विसंगति हुआ करती है। इसी विसगति के कारण वे हंसी के आलम्बन होते हैं। यह विसगति जहा भी होगी, वहा हसी के लिए अवकाश हो जाएगा।[1]

उपर्वर्णित हास्य के ५ रूपो मे इन कथाओ मे से अधिकाश की गणना सैटायर (विकृति) मे होगी।

चरित्रोपाख्यान मे चार ठगो द्वारा एक मूर्ख से बकरा छीनने की कथा है (कथा१०६)

चार यार मिलि मता पकायो ॥
हमको भूखि अधिक सतायो ॥
तात जतन कछू अब करिए ॥
बकरा या मूरख को हरिऐ ॥१॥
कोस कोस लगि ठाढ़े भए ॥
मन मे इहै बिचारत भए ॥
वह जाके आगे ह्वै आयो ॥
तिन तासो इह बात सुनायो ॥२॥
कहा सु एहि काधे पै लयो ॥
का तोरी मति को ह्वै गयो ॥
याको पटकि धरनि पर मारो ॥
सुख रोती निज धाम सिधारो ॥३॥
भलो मनुख पछानि कै तो हम भाखत तोहि ॥
कूकर तैं काधे लयो लाज लगत है मोहि ॥४॥
चारि कोस मूरख जब आयो ॥
चहुंअन यौ बच भाखि सुनायो ॥
साचु समुझि लाजत चित भयो ॥
बकरा स्वान जान तजि दयो ॥५॥
तिन चारो गहि तिह लयो भखियो ताकह जाइ ॥
अज तजि भजि जड़ घर गयो, छल नहि लख्यो बनाइ ॥६॥

(द० ग्र० पृ० ६५४)

चार ठगो द्वारा बकरे को कुत्ता कहकर किसी मूर्ख से बकरा छीनने की कथा भारतीय लोक जीवन की बहु चर्चित लोककथा है और हास्य उत्पन्न करने के लिए सदैव इसका प्रयोग किया जाता रहा है।

---

१. हिन्दी साहित्य का अतीत—पृ० ६६४।

लंबी चौड़ी डींग हाँकने वाले कायर भी हास्य के आलम्बन बनते रहते हैं। एक ऐसे ही गप्पी बनिए की कथा (२६) चरित्रोपाख्यान मे दी हुई है। बनिया जब भी बाहर से व्यापार करके लौटता तो अपनी पत्नी से डींग मारता कि आज मैंने मार्ग मे मिलने वाले बीस चोरों को मार भगाया। आज मैंने तीस चोरो का सहार किया। उसकी पत्नी यह सुनकर चुप रहती और मुह से कुछ न कहती।

एक दिन उसने अपना पुरुष रूप बनाया। सिर पर पगड़ी बाधी और अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो घोड़े पर सवार हुई। जब बनिया व्यापार के लिए जगल के मार्ग से होकर चला तो उसने उसे घेर लिया और उससे ललकारकर कहा, "हे मूर्ख या तो मुझसे युद्ध कर अथवा अपनी पगड़ी और वस्त्र उतार दे।" बिचारा बनिया भय से कांपने लगा। उसने दांतों में घास दबा ली और सभी वस्त्र उतार दिए—

बनिक बचन सुन वस्त्र उतारे ॥
घास दांत गहि राम उचारे ॥
सुन तसकर मैं दास तिहारो ॥
जानि अपनो आजु उबारो ॥

पुरुष वेशधारी पत्नी ने कहा, "यदि तुम अपने नितम्बों पर पक्षी की आकृति गुदवा लो तो बच सकते हो।" भय से कांपते हुए बनिए ने यह शर्त मान ली और पत्नी ने छुरी से उसके नितम्बों पर पक्षी की आकृति खोद दी।

हास्य उत्पन्न करने वाले ऐसे अनेक प्रसग चरित्रोपाख्यान में ढूंढ़े जा सकते हैं।

करुण रस

भरत मुनि ने करुण रस की उत्पत्ति रौद्र रस से मानी है। 'रौद्रात्तु करुणो रस.'

धनजय, विश्वनाथ आदि आगे के सस्कृत आचार्यों ने करुण रस के उत्पादक विविध कारणों को सक्षिप्त करके 'इष्ट नाश' और 'अनिष्ट-प्राप्ति' इन दो सज्ञाओं मे निबद्ध कर दिया है, जिनका आधार भरत मुनि के नाट्यशास्त्र मे मिल जाता है। हिन्दी के काव्याचार्यों ने इन्ही को स्वीकार करते हुए करुण रस का लक्षण रूढ़िगत रूप मे प्रस्तुत किया है।

करुण प्रसंगों के चित्रण में गुरु गोविन्दसिंह की रुचि अधिक नहीं रही है, यह बात इसके पूर्व भी कही गयी है। परन्तु जो थोड़ा-बहुत चित्रण दशम ग्रन्थ मे हुआ है वह अनुभाव-प्रधान होने के कारण मार्मिक है। 'रामावतार' मे केकैयी ने दशरथ से राम को बनवास देने का प्रस्ताव किया, जिसे सुनकर दशरथ की यह स्थिति हुई—

तरफरात पृथ्वी पर्यो सुनि बन राम उचार ॥
पलक प्राण त्यागे तजत मद्धि सफरि सर बार ॥

(द० ग्र० पृ० २०६)

यहां राम-बनवास की बात आलम्बन है। तड़फड़ाकर पृथ्वी पर गिरना और पलकों का प्राण रहित ज्ञात होना अनुभाव है। विह्वलता आदि सचारी हैं।

चंडी चरित्र (प्रथम) में युद्धभूमि मे अपने भाई निशुभ का घाव देखकर शुभ को बड़ा दुःख हुआ। उस दुःख के कारण वह आगे न बढ़ सका, मानो लगड़ा हो गया हो—

बधु कबध परिउ अविलोक कै सोक कै पाइ न आगै धरिउ है ॥
धाइ सकिउ न भइउ भइ भीतह, चौवद्द मानो लग परिउ है ॥

(द० ग्र० पृ० ८६)

अद्भुत रस

भरत मुनि ने वीर रस से अद्भुत की उत्पत्ति बतायी है। अद्भुत रस के स्थायी भाव 'विस्मय' की परिभाषा भोज के अनुसार—किसी अलौकिक पदार्थ के गोचरीकरण से उत्पन्न चित्त का विस्तार विस्मय है।[1] विश्वनाथ ने इस परिभाषा को दुहराते हुए विस्मय को 'चमत्कार' का पर्याय बताया है।[2] दशम ग्रंथ में अलौकिक चमत्कारपूर्ण प्रसंगों का अभाव नहीं है। चंडी चरित्र (द्वितीय) में दैत्य गण जो भी अस्त्र-शस्त्र दुर्गा पर चलाते हैं, वे सब फूलों की माला में परिवर्तित हो जाते हैं। क्रोधित दैत्य यह सब देखकर विस्मय से भर जाते हैं। वे बार बार अपने अस्त्र देवी पर चलाते हैं और मारो मारो पुकारते हुए जूझ रहे हैं—

> शस्त्र अस्त्र लगे जिते सब फूल माल हुऐ गए ॥
> कोप उप बिलोकि अतिभुत दानव बिसमै भए ॥
> दउर दउर अनेक आयुध फेर फेर प्रहारही ॥
> जूझ जूझ गिरे अरेक सुमार मार पुकारहीं ॥ (द० ग्र० पृ० १०४)

युद्धभूमि में वीरों के धनुष की टंकार से पृथ्वी का गूंजना, योद्धाओं की दौड़ धूप से उड़ी धूल का सम्पूर्ण आकाश को घेर लेना, मृत वीरों को देखकर अप्सराओं के हृदय में आनन्द बढ़ना, रोष से भरे हुए वीरों के कारण युद्ध भूमि का सुहावना हो जाना आदि वर्णन विस्मयकारक हैं—

> पूर रही भव भूर धनुर धुनि धूर उडी नभ मंडल छायो ॥
> नूर भरे मुख मार गिरे रण हूरन हेर हियो हुलसायो ॥
> पूरण रोस भरे अरि तूरण पूरि परे रण भूमि सुहायो ॥
> चूर भरे अरि रूरे गिरे भट चूरण आनुक बैद बनायो ॥
> (द० ग्र० पृ० १०७)

'कृष्णावतार' में खड्गसिंह का सिर कट जाता है, परन्तु वह अपने कटे हुए सिर को केशों से पकड़कर कृष्ण की ओर फेंकता है और उसके प्रहार से घोड़े पर चढ़े हुए कृष्ण मूर्छित होकर पृथ्वी पर आ गिरते हैं—

> जदिपि सीस कट्यो न हट्यो गहि केसन तें हरि ओर चलायो ॥
> मानहु प्रान चल्यो दिव आनन काज बिदा ब्रिजराज पै आयो ॥
> सो सिर लाग गयो हरि के उर मूरछ ह्वै पगु ना ठहरायो ॥
> देखहु पउरख भूपके मुंडको स्यदन ते प्रभु भूम गिरायो ॥
> (द० ग्र० पृ० ४७१)

इसी प्रकार खड्गसिंह का कबंध महा भयानक युद्ध करके सबको विस्मय में डाल देता है। देव वधुएं उस कबंध को विमान पर चढ़ाकर स्वर्ग ले जाना चाहती हैं, परन्तु वह विमान से कूद कर फिर युद्धारम्भ कर देता है—

> देव बधू मिलि कै सबहू इह भूप कबन्ध बिवान चढ़ायो ॥
> कूद पर्यो न बिवान चढ्यो पुनि सस्त्र लिए रन भू मधि आयो ॥
> (द० ग्र० पृ० ४७२)

---

१. 'विस्मयश्चित्तविस्तारः पदार्थातिशयादिभिः'—सरस्वतीकंठाभरण।

२. 'चमत्कारश्चित्तविस्ताररूपो विस्मयापरपर्यायः'—साहित्यदर्पण।

अन्त समय जब यमदूत उसे लेने भाए तो उन्हें देखकर उसने उनपर भी बाणों की वर्षा कर दी। उसे देखकर मृत्यु भी कतराने लगी—

अंतक जम जब लैने आवै ॥
लखि तिह को तब बान चलावै ॥
मृत पेख कै दूत उत टरै ॥
मार्‌यो कालहू को नहिं मरै ॥

(द० ग्र० पृ० ४७२)

स्वर्ग विमान से कूद पड़नेवाले, यमदूतों पर भी बाण वर्षा करनेवाले, मृत्यु को भी डरानेवाले और काल से भी न मरनेवाले रूड को देखकर कौन विस्मय से न भर जाएगा ?

विस्मयकारी इन युद्ध प्रसगों में अस्त्र-शस्त्र का फूलों में परिवर्तित हो जाना, धनुष की टंकार, चलते-फिरते कबंध, अप्सराएं, विमान, यमदूत आदि आलम्बन हैं, योद्धाओं का बार बार प्रहार करना, अप्सराओं का उन्हें देखकर प्रसन्न होना, कबंधों का घमासान युद्ध उद्दीपन है। अन्य योद्धाओं द्वारा ये कौतुक अनिमेष देखना अनुभाव हैं तथा तर्क, भ्रान्ति और हर्ष संचारी हैं।

शान्त रस

शान्त रस को साहित्य में अन्तिम रस माना जाता है।[1] श्री कन्हैयालाल पोद्दार के मतानुसार "मोक्ष और आध्यात्म की भावना से जिस रस की उत्पत्ति होती है उसको शान्त रस नाम देना सम्भाव्य है।" विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में शान्त रस की इस प्रकार व्याख्या की है—"शान्त रस की प्रकृति उत्तम, स्थायी भाव शम, कुन्देन्दु वर्ण तथा देवता श्री नारायण हैं। संसार की अनित्यता, वस्तु जगत की निस्सारता और परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान इसके आलम्बन हैं। भगवान के पवित्र आश्रम तीर्थ स्थान, रम्य एकान्त वन तथा महापुरुषों का सत्संग उद्दीपन है। अनुभाव रोमांचादि और संचारियों में निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, उन्माद तथा प्राणियों आदि की गणना की जा सकती है।

गुरु गोबिन्दसिंह मुख्य रूप से वीर रस के कवि हैं और दशम ग्रंथ मुख्य रूप से वीर काव्य है, परन्तु अन्य वीर काव्यों की भांति दशम ग्रंथ में शान्त रस का अभाव नहीं है। कारण स्पष्ट है। गुरु गोबिन्दसिंह एक भक्त परम्परा के उत्तराधिकारी एवं स्वयं भक्त थे। उनमें योद्धा और भक्त का अद्भुत समन्वय था। उनकी भक्ति पद्धति पर इस अध्ययन में एक पृथक अध्याय लिखा गया है। यहां उनकी भक्तिपूर्ण रचनाओं में से कुछेक उदाहरण दिए जा रहे हैं जो शान्त रस की व्यंजना करते हैं—

प्रभु जू तोकहु लाज हमारी ॥
नीलकंठ नरहरि नारायण नील बसन बनवारी ॥१॥ रहाउ ॥
परम पुरख परमेश्वर सुआमी पावन पउन अहारी ॥
माधव महाजोति मधु मरदन मान मुकुन्द मुरारी ॥
निरबिकार निरजुर निद्रा बिनु निरबिख नरक निवारी ॥
कृपा सिंधु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी ॥२॥

---

१. 'शान्तोऽपि नवमो रसः'—
मम्मट—काव्य प्रकाश।

धनुरपान धृतमान धराधर अति बिकार असिधारी ॥
हौ मतिमंद चरन सरनागति करि गहि लेहु उबारी ॥३॥
(द० ग्र० पृ० ७१०)

रे मन ऐसो करि सनिआसा ॥
बन से सदन सबै करि समझहु मन ही माहि उदासा ॥१॥ रहाउ ॥
जत की जटा जोग को मंजनु नेम को नखन बढाउ ॥
गिआन गुरु आतम उपदेसहु नाम बिभूति लगाउ ॥१॥
अलप अहार सुलप सी निद्रा दया छिमा तन प्रीति ॥
सील सतोख सदा निरवाहिबो ह्वै बो त्रिगुण अतीत ॥२॥
काम क्रोध हकार लोभ हठ मोह न सो त्यावै ॥
तब की आतम तत्त को दरसे परम पुरख कह पावै ॥३॥
(द० ग्र० पृ० ७०९)

अलंकार

साहित्य मानव-जीवन की आन्तरिक भावनाओं का प्रतिरूप है। अतः साहित्य के सभी अंगों का मानव जीवन के अभ्यन्तर से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी से अलंकारों का मानव जीवन के अभ्यन्तर से बहुत गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि भावों के अभिव्यंजन का विशेष प्रकार ही अलंकार है।[१]

भारतीय काव्य शास्त्र में अलंकारों की चर्चा रस से भी प्राचीन है। वास्तव में साहित्य विधा को प्राचीन आचार्यों ने अलंकार शास्त्र के नाम से ही अभिहित किया है। आचार्य राजशेखर ने तो अलंकार शास्त्र को वेदांग ही माना है और उसकी उत्पत्ति भगवान शंकर से बताई है। साहित्य में अलंकारों के महत्व को सभी आचार्यों ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। भामह, उद्भट आदि आचार्यों ने अलंकार को काव्य में सर्वप्रमुख स्थान दिया। दंडी ने उन्हें काव्य की शोभा का कारण माना।[२] चन्द्रालोक के रचयिता जयदेव ने तो यहां तक कहा कि यदि कोई काव्य को अलंकार रहित मानता है तो अपने आप को पंडित मानने वाला वह व्यक्ति अग्नि को ऊष्णता रहित क्यों नहीं मानता।[३]

हिन्दी में रीति युग के प्रवर्तक केशवदास ने भी इसी मत का प्रतिपादन करते हुए कहा :—

'भूषन बिनु नहिं राजई कविता वनिता मित्त।'

गुरु गोबिन्दसिंह का कार्य-काल वही था जिसे हम हिन्दी में रीतिकाल नाम से अभिहित करते हैं। रीतिकालीन चमत्कार वृत्ति का प्रभाव उनकी कविता पर स्पष्ट दृष्टिगत होता है। पूर्ववर्ती गुरुओं की वाणी में चमत्कार उत्पन्न करने की कोई प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। वहाँ भावाभिव्यक्ति ही सर्वप्रमुख है। उस भावाभिव्यक्ति में अनायास ही जो अलंकार

१. भूषण—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १।
२. काव्यशोभा करान धर्मानलंकारान प्रचक्षते (काव्यादर्श)
३. अंगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
४. असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती।

आ गये हैं, वहीं दृष्टिगत होते हैं किन्तु गुरु गोबिन्दसिंह का सम्पूर्ण वातावरण युग से पूरी तरह प्रभावित था। उनका रहन-सहन प्रारम्भिक सिख गुरुओं की भांति एक संत का सादा रहन-सहन नहीं था। गुरु गोबिन्दसिंह के पितामह षष्ठ गुरु, गुरु हरगोबिन्द ने दिल्ली सम्राट के समानांतर अपने आप को 'सच्चा पातशाह' घोषित किया था और शिर पर कलगी धारण की थी, कमर में तलवार बांधी थी। गुरु गोबिन्दसिंह के समय तक गुरु गद्दी एक धार्मिक गद्दी ही नहीं रह गयी थी। उसकी प्रतिष्ठा, आर्थिक सम्पन्नता, बाह्य परिवेश आदि सब कुछ राजसी बन चुका था। गुरु-गद्दी का अधिकारी अब केवल आध्यात्मिक उन्नति का मार्गदर्शक ही नहीं था, वह सांसारिक दृष्टि से भी अपने प्रभावान्तर्गत समाज का अगुवा था और उन दिनों सांसारिक अगुवा राजा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जाता था। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी आत्म-कथा में अपनी गद्दीनशीनी को राजसाज प्राप्त होना ही कहा है।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह का सम्पूर्ण परिवेश भी राजाओं जैसा ही था। वे सेना रखते थे, राजाओं जैसे वस्त्र धारण करते थे, प्रजा का पालन करते थे, राज दरबार लगाते थे और जैसी उन दिनों रीति थी, राज दरबार में कवियों को आश्रय देते थे। गुरु गोबिन्दसिंह के राज दरबार में ५२ कवियों का होना प्रसिद्ध है। गुरु गोबिन्दसिंह की अलंकार योजना पर परिस्थितियों का यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

दशम ग्रन्थ में अलंकारों का कोई भी अभाव नहीं है, पंक्ति-पंक्ति में और छंद-छंद में विविध अलंकारों की मनोहारिणी छटा के दर्शन होते हैं। यहां कुछ एक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

शब्दालंकार

शब्दालंकारों में शब्दों के प्रयोग के कारण चमत्कार उपस्थित होता है और उन शब्दों के समानार्थी दूसरे शब्द रख देने से वह चमत्कार समाप्त हो जाता है। शब्दों की योजना द्वारा ही कविता में लय और संगीतात्मकता उत्पन्न की जाती है। गुरु गोबिन्दसिंह का शब्दों पर अनन्य अधिकार है। वैसे तो शब्दालंकार के जितने रूप हैं उन सभी के प्रचुर उदाहरण दशम ग्रन्थ में उपलब्ध हैं, परन्तु इनमें अनुप्रास गुरु गोबिन्दसिंह को विशेष प्रिय है।

अनुप्रास

अनुप्रास की विशिष्टता वर्णों या व्यंजनों की समानता में होती है। अनुप्रास के विभिन्न भेदों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

छेकानुप्रास

जहां पर अनेक वर्णों (प्रायः व्यंजनों की) दो बार आवृत्ति हो वहां छेकानुप्रास होता है। यथा[1] :—

१. राज साज हम पर जब आयो।
जथा सकत तब धरम चलायो॥

(द० ग्र० पृ० ६०)

२. आवृत्ति वर्न अनेक की, दोइ दोइ जब होइ॥
है छेकानुप्रास सो समता, विन हूं सोइ॥११॥

(महाराजा जसवन्तसिंह कृत भाषा भूषण)

बन तन दुरन्त खग मृग महान।
जहं तहं प्रफुल्ल सुन्दर सुजान ॥२।२६८
(अकाल स्तुति)

यहाँ न ग, हं और सु की आवृत्ति द्रष्टव्य है।

साहित्यदर्पणकार स्वरो की आवृत्ति मे चमत्कार नही मानते। उनके मत से छेकानुप्रास वही होता है, जहा किसी वर्णसमूह की एक ही बार आवृत्ति हो और आवृत्ति स्वरूप से और क्रम से, दोनो प्रकार से होनी चाहिए। ऊपर दिए हुए उदाहरण मे चारों वर्णों की आवृत्ति स्वरूप और क्रम दोनो ही प्रकार से है।

वृत्यानुप्रास

जहाँ पर एक ही वर्ण या अनेक वर्णों की क्रमानुसार अनेक बार आवृत्ति या समता हो वहां वृत्यानुप्रास होता है। इस अनुप्रास का नाम वृत्ति के आधार पर पड़ा है। वृत्तिया तीन हैं—उपनागरिका या मधुरा, कोमल और परुषा। उपनागरिका मे मधुर वर्णों, जैसे सानुनासिक, न, म आदि तथा ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर अन्य वर्णों की आवृत्ति होती है। कोमला मे य, र, ल, व वर्णों की आवृत्ति तथा अल्प समास होते हैं तथा परुषा मे ओजपूर्ण वर्णों जैसे—ट, ठ, ड, ढ तथा सयुक्ताक्षरों की आवृत्ति होती है।[1]

दशम् ग्रथ से वृत्यानप्रास के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

उपनागरिका वृत्ति

रूप भरे रागु भरे सुन्दर सुहाग भरे मृग औ मिमोलन की मानो इह खानि है।
मीन हीन कीने छीन लीने है विधुप रूप चित के चुराइबे को चोरन समान है।
लोगों के उजागर है गुनन के गागर है, सुरति के सागर है सोभा के निधान है।
साहिब की सौंरी पड़े चेटक की चोरी भरी मली तेरे नैन रामचन्द्र के से वान है।
(चरित्रोपाख्यान-१२)

कोमलावृत्ति

जीव जीते जल में थल में पल ही पल मै सब थाप थपेंगे ॥
(अकाल स्तुति-२७)
भारी भुजान के भूप भली बिधि निमावत सीस न जात विचारे।
(अकाल स्तुति-२२)

परुषावृत्ति

खग खड बिहंड खल दल खड अति रण मंड बर बंड ॥
भुज दंड अखंड तेज प्रचंड जोति अमड भानु प्रभ ॥
(विचित्र नाटक-२)

कड़क्कै कमाणं ॥ झणक्कं कृपाणं ॥
कड़कार छुट्टैं ॥ झणकार उट्ठें ॥
(विचित्र नाटक-४०)

---

१. काव्य शास्त्र—डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० १६२।

श्रुत्यनुप्रास

यहां एक ही स्थान जैसे—कंठ, तालु, दन्त्य आदि से उच्चरित होने वाले वर्णों की समानता हो, यथा—

घरण घूँघर घंटरण घोर सुर ॥ (विचित्र नाटक-५६)

दिढ़ दाढ़ कराल द्वै सेत उधं ॥
जिह भाजत दुष्ट विलोक जुध ॥ (विचित्र नाटक-५५)

अन्त्यनुप्रास

छद के अन्तिम चरण में स्वर-व्यंजन की समता अन्त्यानुप्रास कहलाती है। इसके भेद सर्वान्त्य, समान्त्य, विषमान्त्य, समान्त्य विषमान्त्य तथा सम विषमान्त्य है जिनमे क्रमश: सभी चरणों में अन्त के वर्णों मे समानता, समचरणों अर्थात् दूसरे चौथे चरणो में अन्त के वर्णों मे समानता, विषम अर्थात् प्रथम, तृतीय आदि चरणो में अन्त के वर्णों मे समानता तथा सम विषमो मे अन्त्य की समानता पायी जाती है।

दशम् ग्रंथ मे सभी प्रकार के अन्त्यानुप्रासों के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध हैं। उदाहरण स्वरूप—

सर्वान्त्यानुप्रास

माते मतग जरे जर सग अनूप उतंग सुरंग सवारे॥
कोट तुरंग कुरग से कूदत पउन के गउन को जात निवारे॥
भारी भुजान के भूपमली विधि निम्रावत सीस न जात विचारे॥
एते भए तो कहा भए भूपित अन्त को नागे ही पाई पधारे॥
(अकाल स्तुति-२२)

समान्त्यनुप्रास

लुत्थ जुत्थ बिथुर रही, रावण राम विरुद्ध॥
हत्यो महोदर देखकर, हर अर फिर्यो सक्रुद्ध॥
(रामावतार)

विषमान्त्यनुप्रास

देवन था पिउ राज मध कैटभ को मारिकै॥
दीनो सकल समाज बैकुंठ गामी हरि भए॥
(चंडी चरित्र, प्रथम-१२)

समविषमान्त्यनुप्रास

जिन जीते सग्राम अनेका। सस्त्र अस्त्र धरि द्याइ न एका॥
महासूर गुनवान महाना। मानत लोक सगल जिह आना॥
(ज्ञानप्रबोध-२४२)

लाटानुप्रास

जहां पर शब्द और अर्थ एक ही रहते हैं, परन्तु अन्य पद के साथ अन्वय करते ही तात्पर्य या अभिप्राय भिन्न रूप से प्रकट होता है। उदाहरण—

अखड खड खड कै अडंड डंड दंड हैं॥
अजीत जीत जीत कै विसेख राज मंड है। (रामावतार-४०)

यमक

जहां पर शब्द की अनेक बार भिन्न अर्थों में आवृत्ति होती है वहा पर यमक अलंकार माना जाता है। यथा—

हरि सो मुख है हरिती दुख है, अलकै हरिहार प्रभा हरनी है ॥
लोचन है हरि से सर से हरि से भरुटे हरि सी बरनी है ॥
केहरि सो करिहा चलबो हरि पै हरि की हरिनी तरनी है ॥
है कर में हरि पै हरि सो हरि रूप किए हरि की धरनी है ॥

(चंडी चरित्र प्रथम-८८)

इस पद मे हरि शब्द का प्रयोग क्रमश: चन्द्रमा, नष्ट करना, शिव, चुराना, कमल, धनुष, बाण, सिंह, हाथी कामदेव, तलवार, सूर्य आदि अनेक अर्थों में हुआ है। इस पद मे भग और अभग दोनो ही प्रकार के यमक के उदाहरण उपस्थित हैं। यमक का दूसरा उदाहरण रामावतार से प्रस्तुत है—

नरेश संग के दए ॥ प्रबीन बीन कै लए ॥
प्रबीन (प्रवीण) और बीन (चुनना)।

श्लेष

श्लेष शब्द और अर्थ दोनों ही प्रकार के अलंकारों में माना जाता है। जहां पर ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनसे एक से अधिक अर्थ निकलते हों, वहा पर श्लेष अलंकार होता है।[1] श्लेष के विविध रूपों के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण दशम् ग्रंथ मे उपलब्ध हैं। यथा—

अभग श्लेष

काछन एक तहां निलगई। सोया चूक पुकारत भई ॥

(दत्तावतार-२०६)

दत्त गुरु की खोज में निकले तो उन्हे एक काछिन पुकारती हुई मिली जो सोआ और चूक की तरकारी बेच रही थी और बार-बार उसे पुकार रही थी। दत्त ने सोया चूक, जो सोया वह चूका, उपदेश के रूप में ग्रहण किया। और उस काछिन को अपना दसवां गुरु बना लिया। यहां सोआ चूक श्लेष है।

सभंग श्लेष

माजार इह ठां इक आयो। तुमको हेरि अधिक डर पायो।

(चरित्रोपाख्यान-११५)

पति की अनुपस्थिति में पत्नी का यार उससे मिलने आया, इतने में पति वापस आ गया। उसे कुछ सन्देह हुआ तो उसने पूछा—'कौन आया था ?' पत्नी ने उत्तर दिया, 'मांजार'।

यहां माजार के दो अर्थ हैं। बिलौटा और (मा-जार) मेरा यार।

वीप्सा

जहा प्रभाव सृष्टि के लिए शब्द दुहराए जायें, वहां वीप्सा अलंकार होता है।

---

१. दोय तीन अरु भांति बहु आनत जाके अर्थ ॥
श्लेष नाम तासो कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ ॥ (केशवदास—कवि प्रिया)

उदाहरण—

मेरो घनो हितु है तुम सो सखी अउर किसो नहि ग्वारिन माही।
तेरे सरे तुहि देखत हों बिन त्वै तुहि मूरत को परछाहीं॥
यों कहि कान्ह गही बहिया चलियें हमसों बन मै सुख पाही॥
हहा चलु मेरी सौं मेरो मौ मेरी सौं तेरी सौं तेरी सौं नाहीं जु नाहीं।

(कृष्णावतार, ७२३)

साज साज के सबै सलाज बीर धावही॥
जूझ जूझ कै मरै अशोक लोक पावही॥
धइ धाइ कै हटी अघाइ घाइ झेलही॥
मछेल पावना चले अरेल बीर ठेलही॥

(नि.कलकी अवतार, १८४)

अर्थालंकार

अर्थालंकार मे किसी शब्द विशेष के कारण चमत्कार नही रहता, वरन् उसके स्थान पर यदि समानार्थी दूसरा शब्द रख दिया जाय, तो भी अलंकार बना रहेगा, क्योंकि यह अलंकार चमत्कारगत होता है। वास्तव मे ये अलंकार भाव या अर्थ प्रकाशन की भिन्न-भिन्न शैलियां हैं। ये अलंकार अनेक हैं, इनकी कोई निश्चित संख्या नहीं मानी जा सकती, विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग संख्याओं को स्वीकार किया है। अलंकार किसी प्रकार के चमत्कार पर आधारित रहते हैं। यह चमत्कार जिन आधारों पर आधारित रहता है वे हैं—साम्य, विरोध, क्रम या शृंखला, न्याय, कारण-कार्य संबंध, निषेध, गूढार्थ, प्रतीति आदि। इन्हीं आधारों पर अलंकारों के विभिन्न वर्ग बनाए जा सकते हैं और इन वर्गों में विभिन्न अलंकार आते हैं।[1]

दशम ग्रन्थ अलंकारों का अक्षय भंडार है। यदि कोई गोता लगा सके तो चाहे जितने अलंकार निकाल सकता है। अर्थालंकारों के सभी वर्गों साम्य मूलक, वैषम्य मूलक, क्रम या शृंखला मूलक, न्याय मूलक, कारण-कार्य संबंध मूलक, निषेध मूलक, गूढार्थ-प्रतीति मूलक आदि के अलंकार अपने भेदों-उपभेदों सहित प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। प्रमुख अर्थालंकारों के कुछेक उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं।

उपमा

उपमा गुरु गोविन्दसिंह का सर्वप्रिय अलंकार है। अलंकारों में उपमा का महत्त्व भी बहुत है।[2] वैसे तो उपमा की छटा उनकी सभी रचनाओं में दिखाई देती है, परन्तु चंडी चरित्र (उक्ति विलास) को पंक्ति-पंक्ति में फड़का देने वाली जिन उपमाओं की योजना की गयी है साहित्य मे सामान्यतः उसके दर्शन नहीं होते। सादृश्यमूलक अलंकारों में अप्रस्तुत योजना के स्रोतों को स्थूल रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—प्राकृतिक, सांसारिक, पौराणिक और आध्यात्मिक। चंडी चरित्र से ही इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

---

१. काव्य दर्पण—डॉ० रामदहिन मिश्र, पृ०१६७।

२. भूषन सब भूषननि में, उपमहि उत्तम चाहि।
याते उपमहि आदि दै, बरनत सकल निबाहि॥ (भूषण)

प्राकृतिक

चंडी ने अपने खंडे से दैत्य का सिर काट दिया जो दैत्य पुरी में इस तरह जा गिरा जैसे आंधी से खजूर के वृक्ष से छुहारा टूटकर गिरता है।[1]

दुर्गा का भयानक रूप देखकर दैत्य इस तरह रण छोड़कर भाग रहे हैं जैसे तेज हवा के चलने से पीपल के पत्ते उड़ जाते हैं।[2]

युद्ध में चंडी का सिंह घायल हो गया। उसके शरीर से रक्त निकल रहा है, मानो गेरु के पहाड़ पर वर्षा हुई है और गेरु मिश्रित जल पृथ्वी पर आ रहा है।[3]

दुर्गा की आज्ञा पाकर सभी शक्तियां उस में इस तरह समा गईं, जैसे सावन की उमगती हुई नदियां समुद्र में समा जाती हैं।[4]

दैत्यों की सेना चंडी पर छा जाने के लिए इस तरह चली जैसे टिड्डी दल सूर्य को ढकने के लिए चलता है।[5]

सांसारिक

चंडी का चक्र शत्रुओं के सिरों को इस प्रकार अदृश्य काटता और धड़ों को छूता जा रहा है जिस तरह नदी के तट पर से किसी लड़के द्वारा फेंकी हुई ककरी पानी को छूती हुई चली जाती है।[6]

चंडी ने दैत्य की ग्रीवा पकड़ कर उसे धरती पर इस प्रकार पटक दिया जैसे धोबी नदी के किनारे कपड़े पटकता है।[7]

चंडी के नेत्रों में क्रोध की ज्वाला बड़वानल की तरह बढ़ रही है, उसमें दानव दल इस प्रकार भस्म हो रहा है जैसे विष की धूनी से मक्खियां नष्ट हो जाती हैं।[8]

चंडी एक है परन्तु दैत्यों को वह सहस्रमुखी दिखाई दे रही है, मानो शीशमहल में एक मूर्ति की परछाई अनेक रूप होकर दिखाई दे रही है।[9]

---

१. हरि चंड लइउ बरि के कर ते अरु मुंड कटिउ असुरं पुरमा ॥
मानो आंधी बहे धरनी पर छूट खजूर ते टूट परिउ खुरमा ॥१४॥

२. माल भयानक देखि भवानी को दानव इउ रन छाड़ पराने ॥
पउन के गउन के तेज प्रताप ते पीपर के जिउ पात उडाने ॥१३४॥

३. गेरु नग पर कै बरखा धरनी परि मानहु रंग ढरिउ है ॥१५६॥

४. आइस पाइ सभै सकती चलि कै तहा चंड प्रचंड पै आई ॥
मानहु सावन मास नदी चलि कै जल रास मै आन समाई ॥१८४॥

५. ऐसे चले दानो रवि मंडल छपाने मानो,
सलभ उडाने पुंज पवन अधार के ॥२१०

६. सिर सत्रनि के पर चक्र परिउ छुट ऐसे बढिउ करिकै बरका ॥
जनु खेलन को सरिता तट जाइ चलावत है छिछली लरका ॥

७. चंड संभार तबै बलुधार लयउ गहि नारि धरा पर मारिउ ॥
जिउ धुबीआ सरता तट जाइकै लै पटको पट साथ पछारिउ ॥२४

८. सतु धार भयउ दलु दानव को जिमु धूम हलाहल की मखीआं ॥२०१

९. मानहु सीस महल के बीच सु मूरति एक अनेक सी भाई ॥१५६

अपने चारो ओर दैत्यो को देखकर चडी के नेत्रो मे क्रोध भर गया, अपने हाथो मे कृपाण लेकर उसने शत्रुओं को गुलाब की पंखुडियो की तरह काट दिया। रक्त की एक बूद चडी के बदन पर पड़ गई, मानो सोने के मन्दिर मे लाल मणि जड़ दी गई हो।[1]

पौराणिक

चंडी के बाण से दैत्य इस तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा जिस तरह भरत के बाण से पर्वत सहित हनुमान पृथ्वी पर गिर पड़े थे।[2]

चंडी का रूप देख कर दैत्य सेना इस तरह भागने लगी जैसे भीम के मुंह को रक्त से भरा देख कर कौरव सेना भागने लगी थी।[3]

दैत्य का मस्तक फाड़कर रक्त की धारा ऊर्ध्वमुखी होकर इस तरह चली मानो शिव के तीसरे नेत्र की ज्योति ऊपर की ओर जा रही हो।[4]

शुंभ को चंडी ने इस प्रकार अपने हाथों पर उठा लिया जैसे कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठा लिया था।[5]

युद्ध भूमि मे रक्त भरा हुआ है, मानो ब्रह्मा ने सात समुद्रों के निर्माण के पश्चात् यह आठवां समुद्र बना दिया है।[6]

आध्यात्मिक

दैत्यों की प्रबल सेना को चडी ने इस प्रकार भगा दिया जैसे हरि जाप पाप-ताप को दूर भगा देता है।[7]

चंडी से युद्ध करने के लिए शुंभ और निशुंभ बड़ी तीव्रता से युद्ध भूमि मे आए। धूल उड़ी और तिनके उनके पैरों मे लगे, मानो अदृश्य ससार को जीतने के लिए तीव्रता की शिक्षा लेने के लिए मन उन तिनकों का रूप धारण करके आया है।[8]

---

१. पेख दसो दिस ते बहु दानव चंड प्रचंड तची अखोआं ॥
 तब लैके कृपान जु काट दए अरि फूल गुलाब की जिउ पखोआं ॥
 स्रउन की बूंद परी तन चंड के सो उपमा कवि ने लखीआ ॥
 जनु कंचन मंदर मै बरीआ जरि लाल मनी जु बना रखीआ ॥१६४॥

२. आवत पेखि कै चंड कुवंड ते बान लगिउ तन मूरछ पारिउ ॥
 राम के भ्रात ने जिउ हनुमान को सैल समेत धरा पर डारिउ ॥१५५

३. भाज गई धुजनी डरि कै कवि कउ कहै तिह को छबि कैसे ॥
 भीम को स्रउन भरिउ मुख देखि कै छाडि चले रन कौरउ जैसे ॥१८०

४. स्रउन की धारा चली पत फारथ सो उपमा सु भई कहु कैसे ॥
 मानो महेस के तीसरे नैन की जोत उदोत भई खुल तैसे ॥१६३

५. चंड लइउ करि सुंभ उठाइ कढिउ कवि ने मुख ते जसु ऐसे ॥
 रच्छक गोधिन के हित कान्ह उठाइ लइउ गिर गोधन जैसे ॥२११

६. स्रउन समूहि परिउ तिह ठउर तहां कवि के जस इउ मन चीनो ॥
 सातहूं सागर को रचिकै बिधि आठवो सिंध करिउ है नवीनो ॥२८६

७. सकल प्रबल दल दैत को चंडी दइउ भजाइ ॥
 पाप-ताप हरि जाप ते जैसे जाति पराइ ॥१४५

८. धूर उडी तब ता छिन मै तिह को कन ता पग सो लपटाए ॥
 ठउर अडोठ के जै करबे कहि तेज मनो मन सीखन आए ॥१७३॥

युद्ध भूमि मे दैत्य इस तरह भाग चले जिस तरह लोभ से अनेक गुण दूर चले जाते हैं।[1]

पूर्णोपमा

उपमा के विभिन्न रूपों के कतिपय उदाहरण—

चड प्रचड कुबंड कर गहि युद्ध करिउ न गने भट आने।
मारदई सभ दैत चमूं तिह स्रउणत जंबुक ग्रिझ्झ अघाने।।
भाल भयानक देखि भवानी को दानव इउ रन छाड पराने।
पउन के गउन के तेज प्रताप ते पीपर के जिउ पात उडाने।।
(चंडी चरित्र प्रथम-२२४)

लुप्तोपमा

घंटा गदा त्रिसूल असि सख सरासन बान।।
चक्र बक्र कर मैं लिए जन ग्रीषम रित भान।।
(चंडी चरित्र प्रथम-३७)

मालोपमा

भान ते जिउ तम पउन ते जिउ घन मोरते जिउ फन तउ सकुचाने
सूर ते कातरु कूरते चातुर सिंह ते सातुर एणि डराने।।
सूमते जिउ जस बिजमते जिउ रस पूत कपूत ते जिउ बसु हाने।।
धरम जिउ क्रद्धते भरम सुबुद्धते चंडके जुद्धते दैत पराने।।
(चंडी चरित्र प्रथम-१४६)

अन्य प्रमुख अर्थालंकारों के कतिपय उदाहरण—

रूपक

रूपक मे प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का आरोप, तद्रूपता और अभेदता, दो प्रकार से होता है। आचार्यों ने इनके अनेक भेद किए हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने साग रूपक का प्रयोग बड़ी सफलता से किया है। निम्न पद में सुंभ और निसुंभ ने रण भूमि को किस प्रकार नदी में परिणित कर दिया है, का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है :—

बार सिवार भए तिह ठउर सुफेन जिउ छत्र फिरै तरता।।
कर अगुल का सफरी तलफै भुज काट भुजंग करे करता।।
हय नक्र धजा द्रम स्रउनत नीर मे चक्र जिउ चक्र फिरै गरता।।
तब सुंभ निसुंभ दुहू मिलि दानव मार करी रन मे सरता।।
(चंडी चरित्र प्रथम-६६)

उस रण सरिता में मृत योद्धाओ के शिरों के बाल जाले हैं, रथों के टूटे हुए छत्र फेन है, कटी हुई अंगुलियाँ मछलियों की तरह तड़प रही हैं, कटी हुई बाहें साप हैं, घोड़े तेंदुए हैं, टूटे हुए ध्वज नदी में बहते हुए टूटे हुए वृक्ष हैं, रक्त-जल में रथों के पहिए जल में पड़ती हुई भवर हैं। इस प्रकार सुंभ और निसुंभ दोनों दैत्यों ने मिल कर रण भूमि को नदी बना दिया है।

१. दैत चले तजि खेत इउ जैसे बडे गुन लोभ ते जात पराई ।।२२४।।

रूपक के इस एक ही उदाहरण में अभेद और तद्रूप रूपक के भेद ढूंढे जा सकते हैं।

उत्प्रेक्षा

सौन्दर्य की अनुभूति की पराकाष्ठा में सीधी सादी भाषा में अभीष्ट प्रभाव की अभिव्यक्ति नहीं होती तो कवि को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है और वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अनेक उपमान खोज लाता है। जब इतने पर भी सतोष नहीं होता तो कल्पना द्वारा प्रस्तुत वस्तु के समान धर्म वाली वस्तुओं की सृष्टि कर उनसे उनका तादात्म्य स्थापित करता है। इस प्रकार उत्प्रेक्षा के अनेक रूप उसकी रचना में आ जाते हैं।

गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में उत्प्रेक्षा के सभी भेदों के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं।

वस्तूत्प्रेक्षा

स्रोणत बिन्दु सो चंड प्रचंड सु जुद्ध करिउ रन मद्धि रुहेली ॥
पैं पल मैं दल मीज दइउ तिल ते जिम तेल निकासत तेली ॥
सउण परिउ धरती पर ज्वैं रंगरेज की रैनी जिउ फुटकै फैली ॥
घाउ लसै तन दैत कियों जनु दीपक मद्धि फनूस की थैली ॥

(चंडी चरित्र प्रथम-१९७)

हेतूत्प्रेक्षा

मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने,
अलि फिरत दिवाने बन डोलै जित तितही ॥
कीर अउ कपोत बिंब कोकला कलापी बन,
लूटे फूटे फिरैं मन चैन हू न कितही ॥
दारम दरक गइउ पेख दसननि पांत,
रूप की ही कांति जग फैल रही सित ही ॥
ऐसो गुन सागर उजागर सु नागर है,
लीनो मन मेरो हरि नैन कोर चित ही ॥

(चंडी चरित्र प्रथम-८६)

फलोत्प्रेक्षा

कोप भई बरचंड महा बहु जुद्ध करिउ रन मैं बल धारी ॥
लै के कृपान महा बलवान पचारकै सुंभ के ऊपरी झारी ॥
सार सो सार की धार बजी झनकार उठी तिहते चिनगारी ॥
मानहु भादव माह की रैन लसै पट बीजन की चमकारी ॥

(चंडी चरित्र प्रथम-२१८)

संदेह

किधौ देव कन्निआं किधौ बासवी है ॥
किधौ जच्छनी किन्नरी नागनी है ॥
किधौ गन्धर्बी दैतजा देवता सी ॥
किधौ सूरजा सुध सोधी सुधासी ॥

(रामावतार-११३)

प्रतीप

भेट भुजा भर अंक भले भरि नैन दोउ निरखे रघुराई ॥
गुंजत भ्रिंग कपोलन ऊपर नाग लवंग रहे लिवलाई ॥
कंज कुरंग कला निध केहरि कोकल हेर हिये हहराई ॥
बाल लखै छबि खाट परै नहि बाट चलै निरखे अधिकाई ॥
(रामावतार-१५४)

उल्लेख

कहूं जटाधारी कहूं कंठी धरे ब्रह्मचारी,
कहू जोग साधी कहू साधना करत हो।
कहू कान फारे कहू डंडी होइ पधारे,
कहूं फूक फूक पावन को पृथी पै धरत हो।
कतहूं सिपाही हुइकै साधत सिलाहन कौ,
कहू छत्री हुइकै अरि मारत मरत हो।
कहू भूम भार को उतारत महाराज,
कहूं भव भूतन की भावना भरत हो ॥ ५ । १५ ॥
(अकालस्तुति)

अतिशयोक्ति

फेर फिरे सम जुद्ध के कारन लै करवारन क्रुद्ध हुइ धाए ॥
एक लै बान कमानन तान कै तूरन तेग तुरंत तुराए ॥
धूर उड़ी खुरर पून ते पथ ऊरध हुइ रवि मंडल छाए ॥
मानहु फेर रचे बिधि लोक धरा खट आठ अकास बनाए ॥
(चंडी चरित्र प्रथम-१४७)

तुल्ययोगिता

हरि पाइन पै तिह ठौर चली कबि स्याम कहै फुन मैन प्रभा ॥
जिह के नहि तुलि मंदोदर है जिह तुल्लि त्रिया नहि इंद्र सभा ।
जिह को मुख सुन्दर राजत है इह भात लसै त्रिया वाकी अभा ॥
मनो चंद कुरंगन केहर कीर प्रभा को सभी धन याहि लभा ॥
(कृष्णावतार-६६६)

दीपक

आज हनै गजराज हने नृपराज हने रणभूमि गिराए ॥
डोल गिरिउ गिरमेर रसातल देव अदेव सबै गहराए ॥
सातेउ सिंध सुकी सरता सब लोक पलोक सबै थहराए ॥
चउक चके दुगपाल सबै किह पै कलको कर कोप रिसाए ॥
(निहकलंकी अवतार-३६३)

दीपकावृत्ति

धाइ भटि माइ रिस खाइ मस भारही ॥
सोर कर जोर सर तोर मर डारही ॥
प्रान तज पैन भजि भूप रन सोभही ॥
पेख छबि देख दुत नार सुर लोभही ॥

(निहकलंकी अवतार-३८२)

प्रतिवस्तूमा

साजे महाजोत ॥ मानं मनो दोतं ॥
जगि सक तज दीन ॥ मिल बंदना कीन ॥

(निहकलंकी अवतार-५६३)

अर्थान्तरन्यास

ताके पास चलैं उठि कै कबि स्याम जोऊ सभ लोगन भोगी ॥
तातें रही हठ बैठ त्रिया उनको कछु जैगो न आपन खोगी ॥
जोबन को जु गुमान करैं तिह जोबन की सु दसा इह होगी ॥
तो तजि कै सोऊ यों रमि है जिम कंध पै डार बघबर जोगी ॥

(कृष्णावतार, पृ० ७०८)

विनोक्ति

मेघ परैं कबहूं उघरैं सखि छाइ लगै द्रुम की सुख दाई ॥
स्याम के संग फिरैं सजनी रंग फूलन के हम वस्त्र बनाई ॥
खेलत क्रीड करैं रस की इह अउसर कउ बरन्यो नहीं जाई ॥
स्याम सुनैं सुखदाइक थी रित स्याम बिना अति भी दुखदाई ॥

(कृष्णावतार, पृ० ८७१)

परिकर

कोऊ बलाइ देरे। चाहो सु मान लै रे॥
जिन दिल हरा हमारा। वह मन हरन कहां है॥

(रामावतार, पृ० ६६०)

जीते बजग जालम ॥ कीने खतग परदा ॥
पुहपक बिमान बैठे ॥ सीता रवन कहां है ॥

(रामावतार, पृ० ६६३)

अप्रस्तुत प्रशंसा

आनन बिंब पर्‌यो बसुधा पर,
फैल रह्यो फिर हाथ न आयो ॥
बीच अकास निवास कियो तिन,
ताहि तें नाम मयंक कहायो ॥

(रामावतार)

विभावना

मूक उचरै शास्त्र खट पिंग गिरन चढि जाइ ॥
अंध लखै बधरो सुनै जो काल कृपा कराइ ॥२॥

(विचित्र नाटक, पृ० २)

विशेषोक्ति

तीरथ न्हान दइग्रा दम दान सु संजम नेम अनेक बिसेखं ॥
बेद पुरान कतेब कुरान जिमीन जमान सबान के पेखे ॥
पउन अहार जतीजत धार सबै सु बिचार हजारक देखे ॥
श्री भगवान भजे बिन भूपति एक रती बिन एक न लेखे ॥

(अकालस्तुति, पृ० २४)

एकावली

कोप भई अरि दल विखै चंडी चक्र संभार ॥
एक मारिकै द्वै कीए द्वै ते कीने चार ॥४२॥

(चंडीचरित्र प्रथम)

विकल्प

धूम्र नैन गिर राज तट ऊचे करी पुकार ॥
कै बर सुभ नृपाल को कै लर चड संभार ॥६५॥

(चडी चरित्र, प्रथम)

सामान्य

सेत धरे सारी ब्रिषभान की कुमारी,
जस ही की मनो बारी ऐसी रची है न कोदई ॥
रंभा उरबसी अउर सची सु मदोदरी पै,
ऐसी प्रभा काकी जग बीच न कछू भई ॥
मोतिन के हार गरे डार रुच सो सुधार,
कान्हजू पै चली कबि स्याम रस के लई ॥
सेत साज चली सावरे की प्रीति काज,
चादनी मै राधा मानो चांदनी सी ह्वै गई ॥

(कृष्णावतार, पृ० ५३८)

भाविक

जिते इन्द्र से चंद्र से होत ग्राए ॥
तिप तिउ काल खापा न ते काल घाए ॥
जिते अउलीआ अम्बीआ गउस ह्वै हैं ॥
सबै काल के ग्रन्त दाड़ा तलै हैं ॥२६॥

(विचित्र नाटक)

प्रत्यनीक

करी है हकीकत मालूम खुद देवी सेती,
लीम्रा महखासुर हमारा छीन धाम है ॥
कीजै सोई बात मात तुम कउ सुहात सभ,
सेवकि कदीम तक म्राए तेरी साम है ॥
दीजै बाज देस हमैं मेटिए कलेस लेस,
कीजिऐ म्रभेस उनै बड़ो यह काम है ॥
कूकर को मारत न कोउ नाम लै कै ताहि,
मारत है ताको लै कै खावन्द को नाम है ॥

(चंडीचरित्र प्रथम, पृ० २२)

तव बल ईहां न पर सकै बरवा हूना रिसाइ ॥
सालिन रस जिम बानीयो रोरन खात बनाइ ॥१०॥

(विचित्र नाटक, म्रध्याय १०)

विवृत्तोक्ति

तो तन त्यागत ही सुन रे जड़ प्रेत बखान त्रिया भजि जै है ॥
पुत्र कलित्र सुमित्र सखा इह बेग निकारहु म्रायस दै है ॥
भौन भंडार धरा गड जेतक छाडत प्रान बिगान कहै है ॥
चेत रे चेत म्रचेत महा पसु म्रत की बार म्रकेलोई जै है ॥

(स्फुट सवैये ३३)

मिथ्याध्यवसित

पसचम सूर चढै कबहूं म्ररु गंग बही उलटी जिय म्रावै ॥
जेठ के मास तुखार परे वन म्रउर बसंत समीर जरावै ॥
लोक हलै म्रम्र को थल को थल हुइ थल को कबहूं जलु जावै ॥
कंचन को नगु पच्छन धारि उडै सडगेस न पीठ दिखावै ॥

(कृष्णावतार, पृ० १६१३)

पूर्वरूप

एक मूरति म्रनेक दरसन कीन रूप म्रनेक ॥
खेल खेल म्रखेल खेलन म्रंत को फिर एक ॥

(जापु, पृ० ८१)

म्रनुज्ञा

दास को भाव धरे रहियो सुत मात सरूप सिया पहिचानो ॥
तात को तुल्लि सियापति कउ करि कै इह बात सही करिमानो ॥
जेतक कानन के दुख है सभ सो सुख कै तन पै म्रनमानो ॥
राम के पाइ गहे रहियो बनकै घर को घर कै बनु जानो ॥

(रामावतार, पृ० २६०)

निरुक्ति

नारायण कच्छ मच्छ तिंदुआ कहत सभ,
कउल नाग कउल जिह ताल में रहतु है ॥
गोपीनाथ गूजर गुपाल सबै धेनचारी,
रिखीकेस नाम कै महत लहिअतु है ॥
माधव भवर औ अटेरु को कन्हैया नाम,
कंस को बधैया जम दूत कहिअतु है ॥
मूढ़ रूढ़ पीटत न गूढ़ता को भेद पावै,
पूजत न ताहि जाके राखे रहिअतु है ॥४॥७४॥

(अकाल स्तुति)

प्रतिज्ञा

यों सुनिकै बतियां तिहकी हरिकोप कह्यो हम युद्ध करैंगे ॥
बान कमान गदा गहिकै दोऊ भ्रात सबै अरि सैन हरैंगे ॥
सूर सिवादिक ते न भजै हनि है तुम कउ नहि जूझ मरैंगे ॥
मेरु हलै सुख है निधि बारत ऊरन की छित ते न टरैंगे ॥

(कृष्णावतार, पृ० ११८७)

उदात्त

सूरबीरा सजे घोर बाजे बजे भाज कता सुणे राम आए ॥
बाल मार्‌यो बली सिंध पाट्यो जिन्है ताहि सो बैरि कैसे रवाए ॥
ब्याध जीत्यो जिनै सभ मार्‌यो उनै राम अउतार सोई सुहाए ॥
दे मिलो जानकी बात है सिआन की चाम के दाम काहे चलाए ॥

(रामावतार, पृ० ३८०)

रत्नावली

भूम को भार उतार बडे बड आछ बडी छबि पावहगे ॥
खनटार जुझार बरिआर हठी घनघोखन जिउ घहरावहगे ॥
कल नारद भूत पिसाच परी जै पत्र घरत्र सुनावहगे ॥
भल भाग भया इह संभल को हरिजू हरि मदर आवहगे ॥

(निहकलंकी अवतार, पृ० १५२)

वक्रोक्ति, प्रश्नोत्तर

बिज्ज छटा जिह नाम सखी को सोऊ ब्रिषभान सुता पहि आई ॥
आइकै सुन्दर ऐसे कह्यो सुन तूं री त्रिया ब्रिजनाथ बुलाई ॥
को ब्रिजनाथ कह्यो ब्रिजनार सु को कन्हीया कह्यो कउन कन्हाई ॥
खेलहु ताहि त्रिया सग लाल री को जिह के सग प्रीति लगाई ॥

(कृष्णावतार, पृ० ६८१)

असंगति

मेरु हलिउ दहलिउ सुरलोक दसो दिस भूधर भाजत भारी ॥
चालि परियो तिहु चउदहिलोक मैं ब्रह्म भइउ मनमैं भ्रमभारी ॥
धिम्रान रहिउ न जटी सुफटी धरयो बलि कैं रन मै किलकारी ॥
दैतन के बधि कारन कौ कर काल सी काली कृपान सभारी ॥

(चंडी चरित्र प्रथम, पृ० १६६)

भ्रान्ति

छोर कै चील को रूप दयो त्रिया को अति सुंदरि रूप बनायो ॥
बाहु उतारि कै कचहिं ते तिहु कच पटंबर पीत धरायो ॥
सोरह हजार त्रिया सभ था जहु ठाढ तिनो इह रूप दिखायो ॥
सो सकुची चित बीच सभै इह भाति लख्यो ब्रिज नाइक आयो ॥

(कृष्णावतार, पृ० २०३२)

विरोधाभास

कहूं देवतान के दिवान में बिराजमान,
कहूं दानवान को गुमान मत देत हो ॥
कहूं इन्द्र राजा को मिलत इन्द्र पदवी सी,
कहूं इन्द्र पदवी छिपाइ छीन लेत हो ॥
कतहूं बिचार अविचार को विचारत हो,
कहूं निज नार पर नार के निकेत हो ॥
कहूं वेद रीति कहूं तासिउं विपरीत,
कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सुरगुन समेत हो ॥३॥१३॥

(अकालस्तुति)

अन्योन्य

इह जग धुमरो धउल हरि किह के आयो काम ॥
रघुबर बिनु सीय ना जिए सीय बिन जिऐ न राम ॥

(रामावतार, पृ० ८४८)

छंद

ऋषियों ने छंद को वेदाग माना है, उसे वेदों का चरण कहा है—

'छद : पादौ तु वेदस्य'

भारतीय छद विधान के मूल है, स्वर और व्यंजन। स्वरों का सम्बन्ध मात्राओं से है और व्यंजनों का भाषा के आधारभूत ध्वनि समूह से। इन्ही के अनुसार उनके मात्रिक और वर्णिक दो भेद किये गये हैं। छद प्रकृति की वाणी है और शायद आदि मानव की आदि अभिव्यक्ति का आदिम माध्यम है। छद का अद्भुत आकर्षण सबके अनुभव की वस्तु है। मानव ही क्या, पशु-पक्षी और सांप तक भी इसकी लय पर मुग्ध हो जाते हैं। छद ही संगीत की योनि है और छंद ही काव्य की जान है। छंद के कलेवर में गुम्फित भाव सहस्रों

श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध सा बना देता है। छंद का यह हृदयग्राही प्रभाव आज से नहीं अति प्राचीन काल से बराबर चला आ रहा है।[1] छंद किस प्रकार भावों को लययुक्त भाषा में व्यक्त करने में सहायक होते हैं, इसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या, डा० नगेन्द्र ने[2] इस प्रकार की है :—

"साधारणत. हमारे रक्त की धारा एक विशेष समगति से बहती रहती है—यह समगति, जो हृदय की धड़कन और श्वास-प्रश्वास से नियमित आरोह-अवरोह में मूर्त होती रहती है, स्वभावत. लययुक्त है, क्योंकि नियमित आरोह-अवरोह ही तो लय है। भावोच्छ्वास की अवस्था में रक्त की गति तीव्र हो जाती है, हृत्कंपन तथा श्वास के आरोह-अवरोह में भी उसी के अनुसार अन्तर पड़ जाता है—और इस प्रकार उस मूलगत समलय में विशिष्टता आ जाती है। वह लय स्थिर और मन्द न रहकर अब अस्थिर और तीव्र बन जाती है। यह विशिष्ट तथा इतनी सशक्त होती है कि इसका हम स्पष्ट अनुभव करते हैं। यही अपने आप शारीरिक क्रियाओं में (जैसे हाथ और पैर उछालना आदि में) व्यक्त हो जाती है—आरम्भ में नृत का जन्म इसी प्रकार हुआ। और इसी प्रकार कुछ दिनों बाद इसी आन्तरिक लय का भाषा पर आरोप कर मनुष्य ने सहज रूप में छंद का भी आविष्कार कर लिया—तभी वास्तविक कविता का जन्म हुआ और तभी छन्द का। साहित्य में जो विशेष रसों और विशेष छन्दों का सम्बन्ध स्थापित किया जाता, उसका भी आधार यही है। हमारे सभी भाव एक ही हृत्कंपन पैदा नहीं करते—प्रत्येक भावोच्छ्वास एक विशेष प्रकार की हृत्कंपन तथा श्वास के आरोह अवरोह को जन्म देता है। दूसरे शब्दों में उसकी अपनी एक विशेष आन्तरिक लय होती है, जो भाषा पर आरोपित होकर एक विशेष लय छंद को जन्म देती है। इसी कारण इस विशेष का छंद विशेष से एक आन्तरिक सम्बन्ध रहता है, यह सम्बन्ध छन्द के बाह्य रूप से न होकर उसकी आन्तरिक लय से होता है।"

लय के विषय में श्री लीलाधर गुप्त ने अपने पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत ग्रंथ में लिखा है—

'लय की उत्पत्ति अन्तर्वेग से है और अन्तर्वेग को उत्तेजित करने की उसमें विशेष क्षमता है। लय हमें हंसा सकती है, लय हमें रुला सकती है, लय हमें आकृष्ट कर सकती है, लय हमें उत्कृष्ट कर सकती है, लय हमें सुला सकती है, लय हमें जगा सकती है, लय हमें शान्त कर सकती है, लय हमें उन्मत्त कर सकती है, लय हमें संसार में अनुरक्त कर सकती है, लय हमें उदासीन कर सकती है, लय हमें हमारा सच्चा रूप दिखा सकती है, लय हमें ब्रह्म प्राप्ति की ओर उन्नत कर सकती है, लय हमारे शरीर में हरकत कर देती है, हम ताल देने लगते हैं, हम नाचने लगते हैं। लय हमारे हृदय, हमारे फेफड़े, हमारी नाड़ियों को प्रभावित कर देती है। लय के प्रभाव हेतु लय का विवेकपूर्ण प्रयोग होना चाहिए। भाव की जहां जैसी गति हो वहां वैसी ही लय होनी चाहिए।[3]

पद्य की लय पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है— 'पद्य की लय में एकरूपता और नियमितता होती है। उसमें लय और पद का ढांचा भी होता है। ऐसा व्यव-

१. हिन्दी छन्द प्रकाश—श्री रघुनन्दन शास्त्री, पृ० २३।
२. देव और उनकी कविता—पृ० २३५।
३. पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त—पृ० २२७।

स्थित और ढाँचेदार पद ही छन्द होता है। छन्द का काव्यात्मक मूल्य और भी अधिक है। छन्द प्रवेक्षण (ऐंटीसीपेशन) की प्रवृत्ति को उत्तेजित करके शब्दो का एक दूसरे से सम्बन्ध घनिष्ट कर देता है। छन्द विस्मय द्वारा चेतना को धीमा करके मोहन निद्रा सी ले आता है और सुविकारता, सूचकता और सवेदनशीलता की वृद्धि करता है। छन्द अपनी गति और ध्वनि से अर्थ प्रकाशन करता है। यदि अन्तर्वेग अति तीव्र हो, तो छन्द उसकी तीव्रता कम कर देता है और यदि अन्तर्वेग अति मन्द हो, तो छन्द उसको उत्कृष्ट कर देता है। छन्द कविता का वातावरण उपस्थित कर देता है, काव्यात्मक अनुभव को छन्द साधारण जीवन के रोगो से पृथक कर देता है। छन्द काव्यात्मक अनुभव की अभिव्यक्ति को स्थिर और परिभाषित कर देता है। छन्द कल्पना को प्रज्वलित कर कवि को ऐसी दृश्यमान और श्रोतव्य प्रतिमाए प्रदान करता है, जिनमे उसके अनुभव की अभिव्यक्ति स्पष्ट और प्रेरक हो जाती है।[1]

गुरु गोबिन्दसिंह की छन्दावली

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी रचनाओं मे मात्रिक और वार्णिक दोनों प्रकार के छन्दो का प्रचुर प्रयोग किया है। गुरु गोबिन्दसिंह के पूर्ववर्ती दो महान कवियों, तुलसी और केशव ने अपनी रचनाओं में विविध छन्दों का प्रयोग किया था। केशव के सबध मे तो यह भी कहा जाता है कि हिन्दी के किसी कवि ने उतने छन्दों का प्रयोग नहीं किया जितना अकेले केशव ने। परन्तु दशम ग्रंथ का अध्ययन इस दिशा मे हमारे सम्मुख उस कवि का उद्घाटन करता है जिसका छन्दों के सम्बन्ध में स्थान, गणना और प्रयोग, दोनो ही दृष्टियो से केशव से भी आगे हो जाता है।

गुरु गोबिन्दसिंह की विभिन्न रचनाओं में जिन छन्दो का प्रयोग हुआ है उनकी नामावलि इस प्रकार है

जापु

मात्रिक—छप्पय, मधुमार।

वर्णिक—एकाक्षरी, चरपट, चाचरी, भगवती, भुजंग-प्रयात, रुआल, रसवाल, हरिबोलमना।

अकाल स्तुति

मात्रिक—चौपाई, तोमर, त्रिभंगी, दोहा (दोहरा) पाधड़ी।

वर्णिक—कवित्त, तोटक, नराज, लघु नराज, भुजंग प्रयात, रुआमल, सवैया।

विचित्र नाटक (आत्मकथा)

मात्रिक—अड़िल्ल, चौपाई, छप्पय, त्रिभगी, दोहा (दोहरा), पाधड़ी, मधुमार।

वर्णिक—तोटक, नराज, भुजंग-प्रयात, रसवाल, सवैया।

चडी चरित्र (उक्ति विलास)

मात्रिक—दोहा, पुनहा, सोरठा।

वर्णिक—कवित्त, तोटक, रेखता, सवैया।

---

[1] पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त—पृ० २०८।

चंडी चरित्र (द्वितीय)

मात्रिक—चौपाई, दोहा, मधुमार, बिजै, सगीत मधुमार, सोरठा।

वर्णिक—तोटका, नराज, नराज वृद्ध, बेली बिद्रम, भुजंग प्रयात, मनोहर, रुआमल, रसावल, सगीत भुजग प्रयात, सगीत पद्धटिका।

ज्ञान प्रबोध

मात्रिक—कलस, चौपाई, छप्पय, तोमर, त्रिभंगी, दोहा, पद्धरी।

वर्णिक—कबित्त, तोटक, नराज, अर्द्ध नराज, नराज वृद्ध, बहिर तवील पस्यमी, भुजग प्रयात, रुग्रामल, रसावल।

रामावतार

मात्रिक—चौपाई, कलस, गीतमालिती, चउबोला, छप्पय, त्रिभगा, पद्धरि, बहड़ा, अमृत गति, मकरा, मोहिनी, बिजै, सिरखंडी, सुखदा, सगीत छप्पय, सोरठा।

वर्णिक—अकरा, अजबा, अनका, अनाद, अनूप नराज, अरुपा, अपूरब, अलका, (कुसुम विचित्र) अड़ूहा, भुजग प्रयात, उगाथा, उगाध, उटकरण, कबित्त, कंठा भूषण, चाचरी, झूलना, झूला, तारका, तिलकड़िया, तिलका, तोटक, त्रिगता, त्रिणरण, दोधक, नागसरुपनी, अर्द्ध नराज, नवनायक, बिराज, भुजगप्रयात, मधुर धुनि, मनोहर, रुआमल, रसावल, समानक, सवैया, सरस्वती, सुन्दरी, सगीत पाधिसटका, दोहा।

कृष्णावतार

मात्रिक—अड़िल, चौपाई, छप्पय, दोहा, पद, सोरठा।

वर्णिक—कबित्त, झूलना, तोटक, सवैया।

नि:कलंकी अवतार

मात्रिक—अतिमालती, आभीर, अड़िल (दूजा), एला, कुंडलिया, गाहड़ (दूजा) गीत मालिती, घत्ता, चतुष्पदी, चौपाई, तिलोकी, दोहा, नव पदी, पदमावती, पद्धरी, मधुमार, माधो, मोहन मारद, सिरखंडी, सुप्रिया, सोरठा, हरिगीता, हीर, हंसा।

वर्णिक—असता, अकवा, अजा, अनहद, अनूप, नराज, उद्भुज, किलका, कुमार ललित, कुलका, कृपानकृत, चाचरी, चामर, चचला, तरनराज, तारक, तोटक, त्रिडका, नागसरूपनी, पाधिष्टका, पाधरी अर्द्ध, पकज वाटिका, बानतुरगम, बिशेषक, बिराज, बिपुप नराज, भगवती, भड़युआ, भुजंग प्रयात, भवानी, मथान, मालती, रमान, रावणवाद, रसावल, समानका, सवैया, सुखदावृद्ध, सोमराजी, सगीत भुजंग प्रयात, हरिबोलमना।

अन्य अवतार

मात्रिक—अड़िल, चौपाई, तोमर, त्रिभगी, दोहा।

वर्णिक—अनुभव, तोटक, दोधक, नराज अरध, बेली बिद्रम, भुजग प्रयात, मधुर धुनि रुग्रामल, रसावल।

ब्रह्मावतार

मात्रिक—चौपाई, तोमर, दोहा, पद्धरी, पाधरीग्रर्द्ध, मोहिनी, संगीत पाघड़ी।

वर्णिक—ग्रसतर, उछला, कवित्त, दोधक, नराज, पाधरी अर्द्ध, भुजंग प्रयात, मेदक, रुग्रामल, सवैया, सजुता, हरिबोलमना।

रुद्रावतार

मात्रिक—चौपाई, छप्पय, तोमर, दोहरा, पद, पद्धरी, मधुभार, मोहन, मोहनी, संगीत, छप्पय।

वर्णिक—अचकडा, ग्रनूप, नराज, कुलका, कृपानकृत, चरपट, तारक, कवित्त, नराज, विचित्र पद, भगवती, भुजगप्रयात, रुणभुरण, रुग्रामल, रसावल, सवैया।

शस्त्रनाममाला

मात्रिक—ग्रडिल, चौपाई, छन्द (तोमर), छन्द बड्डा (हरिगीतिका), दोहा, सोरठा।

वर्णिक—रुग्रामल।

चरित्रोपाख्यान

मात्रिक—ग्रडिल, चौपाई, तोमर, दोहा, विजय, सोरठा।

वर्णिक—कवित्त, तोटक, नराज, भुजंग, भुजंग प्रयात, रुग्रामल, सवैया।

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने ग्रपनी रचनाग्रो मे संस्कृत ग्रौर प्राकृत, वर्णिक ग्रौर मात्रिक सभी प्रकार के एक सौ से ग्रधिक छन्दों का प्रयोग किया। ये सभी छंद उनकी विभिन्न रचनाग्रों मे बिखरे हुए हैं। सम्पूर्ण दशम ग्रंथ मे लगभग ग्रठारह हजार छन्द हैं। इनमें निम्न छन्द प्रमुख हैं जिनका प्रयोग तीन सौ बार से ग्रधिक हुग्रा है—

१. चौपाई····················५५५५
२. दोहा ····················३१४६
३. सवैया····················२२५२
४. ग्रडिल···················· ६६२
५. भुजंग प्रयात············ ६०६
६. रसावल ·················· ३८०
७. भुजग····················· ३१७
८. पद्धरी ··················· ३१२

गुरु गोबिन्दसिंह की कविता में वीरगाथाकालीन ग्रौर रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ग्रद्भुत सयोग है, इसीलिए दशम् ग्रन्थ में वीर काव्य के उपयुक्त चौपाई, दोहा, ग्रडिल, पद्धरी ग्रादि मात्रिक तथा रीतिकाल मे बहुप्रचलित सवैया, भुजग प्रयात, रसावल ग्रादि वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुग्रा है।

छन्दों में गुरु गोबिन्दसिंह की मौलिकता

गुरु गोबिन्दसिंह ग्रपने युग मे प्रचलित हिन्दी की सभी काव्य शैलियो से पूरी तरह परिचित थे। वीरगाथाकालीन पद्धटिका शैली, भक्तिकालीन गेय पद शैली ग्रौर रीतिकालीन सवैया-कवित्त शैली ग्रादि सभी काव्य शैलियो का निर्वाह ग्रद्भुत सफलता से उन्होंने ग्रपनी रचनाग्रों में किया है।

गुरु गोबिन्दसिंह ने छन्द और अलकार के विषय में एक निश्चित नियम अपनाने का यत्न किया है। जहा छन्द वैविध्य है (चडी चरित्र द्वितीय और रामावतार) वहाँ अलकारों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है, जहाँ अलकारो का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है [चडी चरित्र (उक्ति विलास) और कृष्णावतार] वहा छन्द वैविध्य दृष्टिगत नहीं होता।

गुरु गोबिन्दसिंह छद शास्त्र के पडित थे। उन्होंने परम्परागत छदों का प्रयोग तो किया ही साथ ही छद क्षेत्र मे अनेक प्रयोग किए। मकरा छद में उन्होंने फारसी शब्दावली से युक्त कुछ छद रामावतार में लिखे हैं। भाई काहनसिंह ने मकरा छन्द का लक्षण, चार चरण, प्रति चरण १२ मात्राए मानी हैं।[1] यह छन्द भिन्न तुकान्त है और अन्तिम अनुप्रास तीन प्रकार का है—

१. प्रथम तीन चरण समान, चौथा भिन्न।
२. प्रथम दो चरण समान, तीसरा-चौथा भिन्न।
३. चारों चरणो का भिन्न तुकान्त।

रामावतार मे इस प्रकार के १४ छद हैं, जिनमे तीनो उदाहरण उपलब्ध हैं—

१. सिय लै सियेसि आए॥
मगल सुचार गाए॥
आनन्द हिए बढाए॥
शहरो अवध जहा से॥६५५॥

२. कोऊ बताइ दे रे॥
चाहो सु आन ले रे॥
जिन दिल हरा हमारा॥
वह मन हरन कहा है॥६६०॥

३. जीते बजंग जालिम॥
कीने खतंग परा॥
पुहपक बिबान बैठे॥
सीता रमण कहा है॥६६७॥

इसी प्रकार चंडी चरित्र (उक्ति विलास) मे एक कवित्त रेखता[2] में है—

करी है हकीकत मालूम खुद देवी सेती,
लीया महिखासुर हमारा चीन धाम है।
कीजै सोई मात बात तुमको सुहात सब,
सेवक कदीम तक आए तेरी साम है।

---

१. गुरु छंद दिवाकर, पृ० २८२-२८३।

२. शेरानी के अनुसार जहां खुसरु ने ईरानी और भारतीय छंद शास्त्र के समन्वय से अनेक नई चीजें तैयार की वहां उन्होंने रेखता का भी आविष्कार किया, जिसमें फारसी ख्याल हिन्दी के मुताबिक हों और जिसमें दोनों जबानों के शब्द एक राग और एक ताल में बंधे हों उसको रेखता कहते हैं इस प्रकार रेखता छंद या गीत की एक नई शैली थी, जिसमें फारसी और हिन्दी मिसरे ताल और राग के एतबार से छंद होते थे. यथा—

'जहाल मरकी मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाय बतियां' (खुसरु)

दीजै बाज देस हमें मेटिए कलेस लेस,
कीजिए प्रभेस उन्हें बड़ो यह काम है ॥
कूकर को मारत न कोऊ नाम लै कै ताहि,
मारत है ताको लै कै खावन्द को नाम है ॥२२॥

पंजाबी के छन्द सिरखडी, जिसमें गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी पंजाबी रचना 'चंडी दी वार' लिखी, का प्रयोग रामावतार और नि.कलंकी अवतार में एक दो स्थानों पर हुआ है—

जुट्टे वीर जुझारे धग्गां वज्जिया ॥
बज्जे नाद करारे दला मुसाहदा ॥
लुज्झे कारणयारे संवर सूरमे ॥
वुट्ठे जाणु हुरारे घणिअर कैबरी ॥
(रामावतार)

बज्जे नाद सुरंगी धग्गा घोरिया ॥
नच्चे जाण फिरंगी बज्जे घुंघरू ॥
गदा त्रिसूल निखंगी भूलन बैरखा ॥
सावण जाण उमंगी घटा डरावणी ॥
(नि.कलंकी अवतार)

यह माना जाता है कि विशेष छन्द, विशेष भाव या रस में प्रयुक्त होने पर मनोरम प्रतीत होता है। इसीलिए वीर, रौद्र और भयानक रसों के लिए छप्पय, नाराज, भुजंग प्रयात आदि शान्त, करुण, शृंगार रसों के लिए पद, कवित्त, सवैया, मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग उपयुक्त माना गया है।

गुरू गोबिन्दसिंह की छन्द पद्धति में, परम्परा निर्वाह और नवीनता के प्रयोग; दोनों के ही दर्शन होते हैं। उन्होंने रामावतार, चंडीचरित्र (द्वितीय) के युद्ध प्रसंगों में वीरगाथा-कालीन पद्धटिका शैली अपनाई है। और अकालस्तुति, कृष्णावतार के भक्ति-शृंगार आदि स्थलों पर भक्तिकालीन पद और रीतिकालीन कवित्त-सवैया शैली का अनुसरण किया है। इसके साथ ही गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने आप को किसी विशेष शैलीगत परम्परा से बाधा नहीं। रीतिकाल के कवियों का सर्वप्रिय छंद सवैया था। शृंगार चित्रों में इस छंद का प्रयोग उस युग के कवियों ने खूब किया। डा० नगेन्द्र के शब्दों में—"अपनी लोच लचक के कारण यह छंद अनायास ही मधुर रसों का सहज माध्यम बन गया होगा। क्योंकि इसका लचीला स्वरपात भाव माधुर्य में एक निश्चित योग देता है।"[1] गुरु गोबिन्दसिंह ने इस छंद का प्रयोग परम्परागत शृंगार चित्रों के लिए तो किया ही है, साथ ही चंडीचरित्र (उक्ति विलास) और कृष्णावतार में युद्ध चित्रों के लिए इसका प्रचुर प्रयोग किया है। उस युग में केवल गुरु गोबिन्दसिंह ने ही सवैये का प्रयोग युद्ध वर्णन के लिए किया हो ऐसी बात नहीं। उनके पूर्व भूषण ने अपने युद्ध वर्णन के लिए इसका प्रयोग किया था। परन्तु जिस

१. देव और उनकी कविता, पृ० २४०।

विशाल मात्रा में और सफलता के साथ गुरु गोबिन्दसिंह ने सवैये का प्रयोग वीर, रौद्र और भयानक रसो के लिए किया उतना उसके पूर्व एव पश्चात के किसी कवि ने नहीं किया। उन्होने बाईस सौ से अधिक सवैये लिखे जिनमे पन्द्रह सो से अधिक का प्रयोग उक्त रसों को निष्पत्ति में हुआ।

संगीत छन्द

छंद क्षेत्र मे गुरु गोबिन्दसिंह के प्रयोग की मौलिकता संगीत छदों में दिखाई देती है। युद्ध मे उत्साह वृद्धि के लिए विशेष प्रकार की ध्वनियो का बहुत महत्व है। युद्ध मे ढोल, नगाड़ो तथा अन्य वाद्य यन्त्रों से विभिन्न ध्वनियो को उत्पन्न कर सैनिकों को प्रेरित किया जाता रहा है। गुरु गोबिन्दसिंह ने यह ध्वनि प्रयोग अपने युद्ध चित्रों मे खूब किया है। वीर रस के उपयुक्त छदों—छप्पय, नराज, पद्धटिका, पाधड़ी, बहड़, भुजग प्रयात और मधुभार छंदों के उनके लक्षणो के अन्तर्गत उन्होंने सगीत ध्वनियाँ दीं, जो मृदग के बोलों के उपयुक्त थीं। ऐसे छंदो मे प्रयुक्त शब्दावली के अर्थ का नहीं, केवल ध्वनि का ही महत्व होता है।

सगीत छदो के कुछेक उदाहरण देना समीचीन होगा :—

सगीत छप्पय

कागड़दी कुप्यो कपि कटक, बागड़दी बाजन रण बज्जिअा।
तागड़दी तेग झलहली, गागड़दी जोधा गल गज्जिया॥
सागड़दी सूर सामुहे, नागड़दी नारद मुनि नच्चयो।
बागड़दी बीर बैताल बोले, मागड़दी आरुण रग रच्चयो॥
ससागड़दी सुभट नच्चे समर फागड़दी फुंक फनियर करै।
ससागड़दी सभटं सुकड़े फणपति कण फिरि फिरि धरै॥

(रामावतार)

सगीत नराज

कड़ा कड़ी कृपाणय॥ जटा जुटी जुआणय॥
सु बीर जागड़दं जगे॥ लड़ाक लागड़द पगे॥

(चंडी चरित्र, द्वितीय)

सगीत पद्धटिका

रागड़दंग राम सेना सक्रुद्ध। जागड़दग ज्वान जुझन्त जुद्ध॥
नागड़दग निशान नव सेनसाज। मागड़दग मूढ़मकराक्ष गाज॥

(रामावतार)

सगीत पाधड़ी

तागड़दग ताल बाजत मुचग। बीना सुबेण बसी मृदंग।
डफ ताल तुरी सहिनाई राग। बाजत जान उपजत सुहाग॥२०

(ब्रह्मावतार, व्यास-मनुराजा)

संगीत वहड़

सागड़दी साग संग्रहैए, रागड़दी रए तुरी नचावहिं ।
भागड़दी भूम गिर भूमि, सागड़दी सुर पुरहि सिधावहिं ॥
भंगड़दी भंग ह्वै भग, भागड़दी भ्राहव महि डिग्गहिं ।
वागड़दी वीर बिकरार हो, सागड़दी सोएात तन भिग्गहिं ॥
(रामावतार)

संगीत भुजंग प्रयात

चागड़दंग चउवे वागड़दंग वीरं ॥
भागड़दंग मारे तन तिच्छ तीरं ॥
गागड़दंग गज्जे सु वज्जे गहीरं ॥
कागड़दंग कवीयान कत्थे कथीरं ॥
(चंडी चरित्र, द्वितीय)

संगीत मधुभार

नागड़दंग निसाएां । जागड़दंग जुम्राएां ॥
नागड़दी निहंग । पागड़दी पलंग ॥
(चंडीचरित्र, द्वितीय)

भाषा

भाषा की दृष्टि से गुरु गोबिन्दसिंह का काव्य अन्य सिख गुरुओं की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है । भाषा के कलात्मक पक्ष की ओर पूर्ववर्ती सिख गुरुओं ने विशेष ध्यान नहीं दिया था, परन्तु इस दिशा मे गुरु गोबिन्दसिंह की सचेष्टता इसी दृष्टि से सिद्ध है कि अपने समय और वातावरण की तीन प्रमुख भाषाओं पर उनका समान अधिकार था । वे फारसी के विद्वान थे, जो उस युग की राज भाषा थी और राजकीय सदर्भ के सभी काम उस भाषा मे होते थे । पंजाबी उनकी मातृ भाषा थी । उनका अधिकांश शिष्य वर्ग पंजाबी भाषी प्रदेश से ही रहा होगा । परन्तु उनका शिष्य वर्ग अफगानिस्तान से लेकर महाराष्ट्र तक और सिंध से लेकर आसाम तक फैला हुआ था, इसलिए उन्होंने अपनी काव्य-रचना मुख्यतः ब्रजभाषा में की जो उस समय तक भारत के अधिकांश भाग की काव्य-भाषा बन चुकी थी । भक्ति काल तक की रचनाएँ हमें भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में होती दृष्टिगत होती है परन्तु रीतिकाल के आते-आते ब्रजभाषा का प्रभाव राजस्थान से बंगाल तक और पंजाब से केरल तक छा गया था । ब्रज प्रदेश से दूर के अनेक प्रान्तों में ब्रज भाषा की नियमित शिक्षा देने वाली अनेक पाठशालाएँ स्थापित हो गई थीं और वहां के कवि अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के साथ ही साथ ब्रजभाषा में भी रचनाएं करते थे । ब्रज से दूरस्थ क्षेत्रीय कवि ब्रजभूमि में रहकर नहीं, उसके साहित्यिक रूप का अध्ययन करके ही ब्रज भाषा का ज्ञान प्राप्त करते थे, इसकी पुष्टि आचार्य भिखारीदास के 'काव्य निर्णय' से होती है जिस में उन्होंने लिखा था कि ब्रजभाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रजवास की आवश्यकता

नहीं है, केवल उसके कवियों की वाणी का विधिवत अध्ययन कर लेने से ही काम चल सकता है :—

ब्रज भाषा हेतु ब्रज बास हो न अनुमानो,
ऐसे ऐसे कविन्ह को बानी हूं से जानिए ॥

'कृष्णावतार' में गुरु गोविन्दसिंह ने एक स्थान पर लिखा है:—

दसम कथा भागौत की,
भाषा करी बनाइ ।[1]

भागवत् के दशम अध्याय को 'भाषा' में लिखने का स्पष्ट अर्थ है 'जन भाषा' में लिखना। हिन्दी साहित्य के प्रथम दो विकास कालों मे 'ब्रज भाषा' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। संस्कृत से जन भाषा की भिन्नता सूचित करने के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता था। हिन्दी के प्राचीन कवियों ने जब जब भाषा विशेष के अर्थ में इसका प्रयोग किया तब-तब उनका आशय जन-साधारण मे प्रचलित उस बोली या विभाषा से रहा जो साहित्यिक भाषा की विशेषताओं से युक्त हो चुकी थी, जिसमे साहित्य रचना भी होती थी और जो संस्कृत से भिन्न थी। अतएव दसवीं शताब्दी से लेकर आज तक जिस स्थान और जिस समय में जो भाषा जनसाधारण मे प्रचलित थी, उसी के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग किया गया।[2]

भाषा का स्वरूप

गुरु गोविन्दसिंह की भाषा में पूर्ववर्ती भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश) समकालीन देशी भाषाओं (पंजाबी, अवधी, खड़ी बोली) और समकालीन विदेशी भाषाओं (अरबी, फारसी और तुर्की) के शब्दों का बहुविध प्रयोग प्राप्त होता है। हिन्दी में प्रारम्भ से ही मिश्रित सी भाषा लिखने की परम्परा रही है। पृथ्वीराज रासो में उसकी भाषा के लिए यह श्लोक आया है:—

उक्ति धर्मविशालस्य राजनीति नवं रसाः ।
षड् भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया ॥

धर्म, राजनीति, नव रस, पुराण और कुरान की ये उक्तियां षड् भाषा में कही गई हैं। आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'षड्भाषा' पर विचार करते हुए लिखा है[3]—"संस्कृत-प्राकृत के वैयाकरणों ने संस्कृत के साथ अपभ्रंश सहित पाँच प्राकृतों का नाम लिया है। जिनमें से यदि अपभ्रंश को पृथक करदें तो चार प्रसिद्ध प्राकृतें बचती हैं—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची। रासो की रचना भारत के पश्चिमी अंचल मे हुई। अत. 'मागधी' जो पूर्वी अंचल की प्राकृत है, उसमे प्रयुक्त नहीं हो सकती। अतः अपभ्रंश सहित केवल पाँच ही भाषाएँ रह जाती हैं। रासो के छठी भाषा के सम्बन्ध मे अपना मत देते हुए उन्होंने लिखा

१. द० ग्र० पृ० ५७० ।
२. डा० प्रेमनारायण टंडन—सूर की भाषा, पृ० ३१ ।
३. हिन्दी साहित्य का अतीत (प्रथम भाग), पृ० ६५-६६ ।

है कि यह भाषा अरबी, फारसी या यवन भाषा हो सकती है। ऐसे अनुमान का कारण श्लोक का कुरान शब्द भी है।

आ० भिखारीदास ने अपने काव्य निर्णय[1] में इस बात की पुष्टि की है कि ब्रजभाषा में अनेक भाषाओं के शब्द मिल गये थे जिन्हें उसने आत्मसात् कर लिया था।

राजस्थान के कवि ब्रज (पिंगल) के साथ डिंगल का मेल किया करते थे। श्री स्वरूपदास अपनी 'पांडव-यशेंदु-चन्द्रिका' में कहते हैं:—

पिंगल डिंगल संसकृत, सब समझन के काज ॥
मिश्रित सी भाषा कही क्षमा करहु कबिराज ॥

पंजाब में मिश्रित भाषा प्रयुक्त होने के प्रमाण हमें गुरु नानक तथा अन्य गुरुओं की रचनाओं मे उपलब्ध होते हैं। सलोक सहसक्रिति तथा राग तिलग शीर्षकों के अन्तर्गत इस प्रकार की मिश्रित भाषा के कुछ पद 'आदिग्रंथ' में संकलित हैं—

पढि पुस्तक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं ॥
मुखि झूठु बिभूखन सारं। त्रैपाल तिहाल बिचारं ॥
गलि माला तिलक ललाटं। दोइ धोती बसत्र कपाटं ॥
जो जानसि ब्रह्मं करमं। सभ फोकट निसचै करमं ॥
कहु नानक निसचौ ध्यावै। बिनु सतिगुर बाट न पावै ॥१॥

× × ×

जनमंत मरणं हरखंत सोग भोगत रोगं,
ऊचत नीच नान्हा समूचं,
राजत मानं अभिमानत हीनं,
प्रविरति माणं वरतति विनासन ॥

× × ×

यक अरज गुफतम पेसि तो दर गास कुन करतार।
हका कबीर करीम तू बे ऐब परवदगार ॥१॥
दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी।
मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी ॥१॥

गुरु गोबिन्दसिंह का शब्द भंडार

गुरु गोबिन्दसिंह की भाषा उपर्वर्णित मिश्रित भाषा की परम्परा का पालन करती है। उनका शब्द भंडार अनेक भाषाओं से अनायास और सायास लिए हुए शब्दों से मिलकर बना है। गुरु गोबिन्दसिंह का भाव पक्ष इतना प्रबल है कि सर्वत्र उपयुक्त और समर्थ शब्दावली का चयन बड़े स्वाभाविक रूप से किया हुआ ज्ञात होता है।

---

१. भाषा ब्रज भाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोइ।
मिलै ससकृत पारसिहु, पै अति प्रगट जु होइ।
ब्रज मागधी मिलै अमर नाग जमन भाषानि।
सहज पारसीहू मिलै षट विधि कवित बखानि ॥

उन्होंने अपने शब्द भंडार की पूर्ति के लिए बड़ी उदारता से काम लिया और अपनी भाषा को सम्पन्न बनाने के लिए पूर्ववर्ती तथा समकालीन भाषाओं के शब्दों और प्रयोगों को उन्मुक्त रूप से अपनाया।

उनकी शब्दावली पर विभिन्न भाषाओं के प्रभाव की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत है।

संस्कृत के शब्द

गुरु गोबिन्दसिंह की शब्दावली पर संस्कृत का प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया था तथा अपने शिष्यों को भी इस अध्ययन की ओर प्रेरित किया था। उनका अपने कुछ शिष्यों को संस्कृत के अध्ययन के लिए काशी भेजना इतिहास प्रसिद्ध है। संस्कृत के इन अध्येता शिष्यों की तब से एक विशिष्ट परम्परा ही बन गई, जिन्हें 'निर्मले' कहा जाता है। अमृतसर, हरिद्वार और वाराणसी में आज भी उनके केन्द्र हैं, जिनमें संस्कृत का नियमित अध्ययन-अध्यापन होता है।

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी रचनाओं में संस्कृत के तत्सम्, अर्द्धतत्सम् और तद्भव, सभी प्रकार के शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है।

तत्सम् शब्द

दशम ग्रंथ में अनेक छंद ऐसे हैं जिनमें संस्कृत के तत्सम् शब्दों की भरमार है। उदाहरणस्वरूप—

खग खड बिहंड खल दल खडं अति रण मडं बरबंडं ॥
भुज दंड अखंड तेज प्रचडं जोति अमंडं भान प्रभं ॥
सुख संता करणं दुरमति दरणं किल बिख हरणं असि सरणं ॥
जै जै जग कारण सृस्ट उबारण मम प्रति पारण जै तेगं ॥

(द० ग्र० पृ० ३६)

ऐसे तत्सम शब्दों से बहुल छंद उनकी स्तुतिपूर्ण अभिव्यक्तियों में अधिक देखे जाते हैं—

करुणालय हैं ॥ अरिघालय हैं ॥
खल खंडन हैं ॥ महि मंडन हैं ॥

(जापु)

प्रणवो आदि एककारा ॥
जल थल महिअल किउ पसारा ॥

(अकाल स्तुति)

नमो चक्र पाणं ॥ अभूतं भयाणं ॥
नमो उग्र दाढं ॥ महा ग्रिस्ट गाढं ॥

(विचित्र नाटक)

नमो लोक लोकेस्वरं लोक नाथे ॥
सदैवं सदा सरब साथं अनाथे ॥

(ज्ञान प्रबोध)

दीन दयाल कृपाल कृपाकर,
आदि अजोन अजै अबनासी ॥

(स्फुट छंद)

अर्द्ध तत्सम शब्द

अर्द्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग साधारणतः उच्चारण की सुविधा सरलता के लिए किया जाता है। कवि ने जहां कहीं तत्सम शब्दों के उच्चारण मे किसी प्रकार की कठिनता देखी, अथवा जिनकी ध्वनि मे कुछ कर्कशता या कठोरता जान पड़ी, उन्हें सरल रूप देकर काव्य भाषा के लिए उपयुक्त बना दिया। गुरु गोविन्दसिंह के शब्द भंडार मे सबसे अधिक संख्या ऐसे अर्द्ध तत्सम शब्दो की ही है। निम्नलिखित छन्दों में प्रयुक्त शब्द उनकी अर्द्ध तत्सम-रूप निर्माण की प्रवृत्ति का परिचय देते हैं—

तीरथ न्हान दइआ दम दान सु संजम नेम अनेक बिसेखे ॥
बेद पुरान कतेब कुरान जिमीन जमान सबान के पेखे ॥
पउन अहार जती जत धार सबै सुबिचार हजारक देखे ॥
स्रो भगवान भजे बिनु भूपति एक रती बिनु एक न लेखे ॥

(अकाल स्तुति)

इस छंद मे तीरथ (तीर्थ), न्हान (स्नान), संजम (सयम), नेम (नियम), बेद पुरान (वेद पुराण), पउन (पवन), जती (यति), बिचार (विचार), आदि अनेक अर्द्ध तत्सम शब्द *ब्रज भाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप ही प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार निम्न छंदो में—*

बिस्व को भरन हैं कि आपदा को हरन है,
कि सुख को करन हैं कि तेज के प्रकाश हैं॥

(अकाल स्तुति)

दिउस निसा ससि सूर कै दीप सु, स्रसटि रची पंच तत्त प्रकासा ॥

(चंडी चरित्र, प्रथम)

अब मैं गनो बिसन अवतारा ॥
जैसक धर्यो सरूप मुरारा ॥
बिआकल होत धरन जब भारा ॥
काल पुरख पहि करत पुकारा ॥

(विष्णु अवतार)

बिस्व (विश्व), भरन (भरण), आपदा हरन (हरण), करन (करण), प्रकास (प्रकाश), दउस (दिवस), निसा (निशा), ससि (शशि), सूर (सूर्य), स्रसटि (सृष्टि), तत्त (तत्त्व), बिसन (विष्णु), सरूप (स्वरूप), बिआकल (व्याकुल), धरन (धरणि), पुरख (पुरुष), आदि असंख्य अर्द्ध तत्सम शब्द दशम ग्रंथ मे ढूंढे जा सकते हैं।

तद्भव शब्द

तत्सम और अर्द्ध तत्सम शब्दो के अतिरिक्त गुरु गोबिन्दसिंह की भाषा मे तद्भव शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। तद्भव शब्द संस्कृत से चलकर प्राकृत, अपभ्रंश आदि की

क्षत्रिय—खत्री : खुले खग खत्री अभूतं भयाए ।

(विचित्र नाटक)

आयु—आव : जब आव की अउध निदान बने ।

(चंडी चरित्र, प्रथम)

यज्ञ—जग्ग : असुमेध जग्ग कराइ..........।

(ज्ञान प्रबोध)

ज्योति—जोत : जोत घटी मुख की तन को...।

(चंडी चरित्र, प्रथम)

चंद्र—चंद : मानहु चंद के मंडल में...... ।

(चंडी चरित्र, प्रथम)

यश—जस : जसु नाव चढै भवसागर तारै ।

(कृष्णावतार)

हस्त—हत्थ : मिले हत्थ बवखं महातेज तत्ते ।

(विचित्र नाटक)

विद्युत—बिज्ज : बिज्ज छटा जिह नाम सखी को है ।

(कृष्णावतार)

इस प्रकार के अनेक शब्द दशम ग्रंथ मे ढूंढे जा सकते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह पंजाबी थे। पंजाबी भाषा की प्रवृत्ति प्राकृत और अपभ्रंश के रूपों को सुरक्षित रखने की है। आज भी पंजाबी मे हाथ के लिए हत्थ, कर्म के लिए कम्म और जन्मा के लिए जम्मिआ शब्द का प्रयोग होता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने युद्ध वर्णन मे विशेष रूप से प्राकृत और अपभ्रंश के शब्दो का प्रयोग किया है।

अरबी-फारसी के शब्द

गुरु गोबिन्दसिंह फारसी के विद्वान् थे। फारसी की उन्होंने विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी। दशम ग्रंथ में औरंगजेब को लिखा हुआ उनका पत्र 'जफरनामा' तथा 'हिकायतें' जो फारसी भाषा में है, संग्रहीत हैं। अपनी ब्रजभाषा की रचनाओं में भी उन्होंने अरबी-फारसी शब्दों का मनचाहा प्रयोग किया है। स्थूल रूप से इन विदेशी शब्दों के प्रयोग को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. अरबी-फारसी के वे तद्भव शब्द जो मुसलमानी शासन के प्रभाव और सम्पर्क के कारण देशी भाषाओं में आ मिले थे और भाषा के अंगभूत बन गये थे। उदाहरण स्वरूप निम्न छंद मे 'शहंशाह' का देशी रूप 'साहानुसाहु' बड़े स्वाभाविक ढंग से आ गया है—

अनुभउ प्रकास ।। निसदिन अनास ।।
आजानु बाहु ।। साहान साहु ।।८८ (जापु)

निम्न दो छंदों में प्रयुक्त 'सिफत' और 'अरदास' शब्द भी इसी कोटि के हैं—

कहा बुद्धि प्रभु तुच्छ हमारी । बरनि सकै महिमा जु तिहारी ।
हम न सकत करि सिफत तुमारी । आप लेहु तुम कथा सुधारी ।।

(विचित्र नाटक)

सोएत बिंद दैंत इकु गइउ करी अरदास ॥
राज बुलावत सभा मैं बेग चलो तिह पास ॥

(चंडी चरित्र, प्रथम)

२. अरबी-फारसी के वे शब्द जिनका प्रयोग सायास हुआ है। ऐसे स्थलों पर हिन्दी परिवेश में ही इन शब्दों की बहुलता दिखाई देती है। ऐसे उदाहरण जापु, रामावतार, कृष्णावतार, चरित्रोपाख्यान आदि रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं, यथा:—

कि सरबं कलीमैं ॥ कि परम फहीमैं ॥
कि आकल अलामैं ॥ कि साहिब कलामैं ॥१२०॥

(जापु)

चित को चुराइ लीना ॥ जालिम फिराक दीना ॥
जिन दिल हरा हमारा ॥ वह गुल-चिहर कहा है ॥

(रामावतार)

३. तीसरी कोटि में इन शब्दों के प्रयोग की इतनी बहुलता दिखाई देती है कि मात्र छंद की दृष्टि से ही उनका परिवेश हिन्दी का रह जाता है अन्यथा वह फारसी की रचना ज्ञात होती है, यथा—

रोशन जहान खूबी ॥ जाहिर कलीम हफ्तस्त ॥
आलम कुशाए जलवा ॥ वह गुल-चिहर कहा है ॥

(रामावतार)

गनीमुल सिकसते ॥ गरीबुल परसते ॥
बिलदुल मकानें ॥ जिमीकुल जमानें ॥१२२॥ (जापु)

कृष्णावतार में कृष्ण से युद्ध करने जब काल यवन आया तो उसकी तैयारी का वर्णन सवैया छंद और फारसी की शब्दावली में हुआ है—

जग दराइद काल जंमन बगोइद कीम न फौज को खाहम ॥
बा मन जंग बुगो कुनअ्या हरगिज दिल मो न जरा कुनवाहम ॥
रोज मया दुनीआं अफतावम स्याम शबे मदली सब खाहम ॥
कान्ह गुरंजी मकून तू बिआ खुसमा तुक नेम जि जग गुमाहम ॥

(द० ग्र० पृ० ४६७)

फारसी शब्दों को लेकर कवि ने खिलवाड़ भी खूब की है। कवि कहीं फारसी शब्दों के साथ संस्कृत प्रत्यय या अनुस्वार लगा देता है तो कहीं संस्कृत शब्दों के साथ फारसी प्रत्यय जोड़ देता है, यथा—

तेग़ से तेगं[1], आसमान से आसमाणं[2], अनेक से अनेकुल[3], समस्त से समस्तुल[4], सदैव

---

१. जै जै जग कारण सृस्टि उबारण, मम प्रति पारण जै तेगं॥ (बिचित्र नाटक)

२. दिशा बिदिसायं जिमी आसमाणं ॥ (बिचित्र नाटक)

३. अनेकुल तरंग है। (जापु)

४. समस्तुल सलामं है। (जापु)

से सदैवल,[1] सर्व से सरबुल[2], नमस्त से नमस्तुल[3], अगज से अगंजुल[4] आदि ।

पंजाबी का प्रभाव

गुरु गोबिन्दसिंह की मातृ-भाषा पंजाबी थी । उनकी पूर्व परम्परा, चारों ओर का वातावरण, अधिकांश शिष्यगण पंजाबी ही थे और उनके जीवन का अधिकांश भाग पंजाब मे ही व्यतीत हुआ था । पंजाबी भाषा पर उनका कितना अधिकार था, यह उनकी पंजाबी रचनाओं के पढ़ने से ज्ञात हो जाता है । दशम ग्रंथ मे उनकी एक पूर्ण रचना 'चण्डी दी वार' पंजाबी मे है । इसके अतिरिक्त कुछ स्फुट छंद यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं ।

उनकी व्रजभाषा की रचनाओं मे कहीं-कहीं पंजाबी शब्द दिखाई देते हैं और कहीं-कहीं पंजाबी के लोकप्रिय 'सिरखंडी छंद' मे कुछ स्फुट रचनाएँ दिखाई देती हैं । चंडी चरित्र (प्रथम) मे एक स्थान पर पंजाबी शब्द खिलार (फैलाना) का प्रयोग हुआ है—

चक्र चलाइ गिराइ दइउ अरि भाजत दैत बडे बरबंडी ।।
भूत पिशाचनि मास अहार करैं किलकार खिलार कै झंडी ।।११५।।

इसी प्रकार चंडी चरित्र प्रथम के प्रथम छंद मे 'किया' के पंजाबी रूप 'कीता' का अनुस्वार युक्त प्रयोग हुआ है—

महिख दईत सूरयं ।। बधियो सुलोह पूरयं ।।
सु देवराज जीतयं ।। त्रिलोक राज कीतयं ।।१।।

कृष्णावतार में 'हमारा' के लिए पंजाबी शब्द 'साडा' या 'असाडा' का प्रयोग एक स्थान पर हुआ है—

मेघन को पिख रूप भयानक,
बहुत डरै फुन जीउ असाडा ।।३६२।।

ज्ञान प्रबोध के तीन कवित्तों की भाषा मे पंजाबी प्रवृत्ति का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है । इन कवित्तो मे कुनिंदा, दिहंदा, गजंदा, चलिंदा, छलिंदा, मिहिंदा, खंधिदा, अविंदा, कटिंदा, खुनिंदा, गलिंदा, गिरिंदा, सुखिंदा, मलिंदा, पुनिंदा, सुनिंदा आदि अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है ।[5]

रामावतार[6], निहकलकी अवतार[7] और चरित्रोपाख्यान[8] आदि रचनाओं में व्रजभाषा

१. सदैवल अकाम है । (जापु)
२. कि सरबुल गवण है । (जापु)
३. नमस्तुल प्रनामे । (जापु)
४. अगंजुल अनामे । (जापु)

५. दशम ग्रन्थ पृ० १३२-३३ ।

६. जुट्टे वीर जुझारे धग्गा बज्जीआं । बज्जे नाद करारे दला मुसाहदा ।।
जुज्झेकारण वारे संघर सरमे । जुट्ठे जाणु डराने धणीअर कैंवरी ।। ४६७

७. वज्जे नाद सुरंगी धग्गा घोरिआ । नच्चे जाण फिरंगी वज्जे घुंघरू ।
गदा त्रिसूल निखंगी भूलन बैरखां । सावण जाण उमंगी घटा डरावणी ।।

८. छिसता विभूत अदे मेजुलो निमेख संदी, (क्रमशः)

के मध्य कुछ विशुद्ध पंजाबी के छंद भी रख दिये गये हैं।

पंजाबी भाषा की प्रवृत्ति अनेक शब्दों से ह्रस्व स्वर का लोप करने की है। यदि किसी शब्द में दो ह्रस्व स्वर हों तो उनमें से एक का लोप हो जाता है। इसलिए पंजाबी में जाति, शत्रु, प्रभु, रिपु, रितु, भानु, परशुराम, स्तुति आदि शब्दों का उच्चारण जात, सत्र, प्रभ, रिप, रित, भान, परसराम, उसतत के रूप में होता है। गुरु गोबिन्दसिंह के काव्य में जहाँ कहीं भी इन शब्दों का प्रयोग हुआ है वह अधिकतर पंजाबी की प्रवृत्ति के अनुसार ही हुआ है। यथा—

जात पात न तात जाको मंत्र मात न मित्र	(अकाल स्तुति)
जिह सत्र मित्र दोउ एक सार	(अकाल स्तुति)
प्रभजू तो कह लाज हमारी	(स्फुट छंद)
चक्र बक्र कर में लिए जन ग्रीषम रित भान	(चंडी चरित्र, प्रथम)
उसटि पुसटि गिरे कहूं रिप बाचीयं नहि एक	(रुद्रावतार)
निंद उसतत जउन के सभ सत्र मित्र न कोइ	(स्फुट छंद)

इसी प्रकार पंजाबी में 'या' का उच्चारण 'इग्रा' होता है। इस प्रवृत्ति के अनुसार आया, गया, भयानक, माया, दयालु, ज्ञानी, त्याग, सन्यास आदि का पंजाबी उच्चारण आइया, गइग्रा, भइग्रानक, माइग्रा, दइग्रा, दिग्राल, गिग्रानी, सनिग्रास, तिग्राग के रूप में होता है। गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं में इस प्रकार के शब्दों के दोनों प्रकार के रूप उपलब्ध हैं। यथा—

दूख पाप तिन निकट न आइग्रा।	(विचित्र नाटक)
भाल भइग्रानक देखि भवानी को दानव इउ रन छाड पराने।	(चंडी चरित्र, प्रथम)
दीन दइग्राल दइग्रा निधि दोखन देखत है पर देत न हारै।	(अकाल स्तुति)
जेते वडे गिग्रानी तिनो जानी पै बखानी नाहि।	(अकाल स्तुति)
ग्रह भउर जंजार जितो ग्रह के तुहि तिग्राग कहा चित ता मैं धरौ।	(कृष्णावतार)
रे मन ऐसा करि सनिग्रासा।	(स्फुट छंद)

शब्दों का बहुविध प्रयोग

अनेक शब्दों के बहुविध प्रयोग का वैशिष्ट्य दशम ग्रंथ की रचनाओं में सर्वत्र दिखाई

अजंन दी सेली दा सुभाव सुभ भाखणा ॥
भगवा सु भेस साडे नैया दी ललाई सईयो,
यारांदा विग्रानु एहो कंद मूख चाखणा ॥
रोवन दा भेख्यु सु पुरी पत्र गीत गीता,
देखण दी भिच्छ्या ध्यान भूआं वाल राखणा ॥
आली एना गोपियां दिया अक्खीआ दा जोगु सारा,
नन्द दे कुमार नूं जरूर जाइ आखयां ॥ १२ : ६।

देता है। अपने इष्टदेव के लिए गुरु गोबिन्दसिंह ने जितने नये अभिधानों की रचना की, शायद ही किसी भक्त कवि ने की हो। परम्परा से आए हुए लगभग सभी संस्कृत, ब्रज और अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया पर जैसे यह सम्पूर्ण शब्दावली उनके लिए पर्याप्त नहीं थी इसलिए उन्होंने सैंकड़ों नये शब्दों का निर्माण कर डाला अथवा प्रचलित शब्दों को नये अर्थ दे डाले। उदाहरणस्वरूप असि (तलवार) से उन्होंने ईश्वर के लिए चार शब्द बनाए—

१ असिपान[1], २ असिधारी[2], ३. असिधुज[3], ४. असिकेतु[4]।

इसी प्रकार अनेक शस्त्रों के नामों को उन्होंने 'पाणि', 'धारी' या 'केतु' जोड़कर ईश्वर का पर्याय बना दिया, यथा—खड्गपाणि, खड्गधारी, खड्गकेतु, शस्त्रपाणि, अस्त्रपाणि, सर्वलोह, महान्लोह, चक्रपाणि, धनुर्पाणि।

कहीं-कहीं वे एक देशी और एक विदेशी शब्द की संधि स्थापित करते हैं। यथा—

रजूमल निधाने[5]	(सबका आश्रयदाता)
कारन कुनिंद[6]	(साधनों का दाता)
करम करीम[7]	(कर्म में दयालु)
अजब्ब कृत[8]	(विचित्र रूपधारी)

अनुस्वार का प्रयोग

गुरु गोबिन्दसिंह ने शब्दों के साथ अनुस्वार का व्यापक प्रयोग किया है। यह प्रयोग उनकी छंद प्रधान शैली में लिखे युद्ध चित्रण तथा ईश्वर के रूप गुण वर्णन में विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। अनुस्वार का प्रयोग उन्होंने संस्कृत के तत्सम, अर्द्ध तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ तो किया ही है, यह मोह उन्हें इतना अधिक है कि वे इसका प्रयोग अरबी-फारसी और पंजाबी शब्दों के साथ भी करते हैं। उदाहरणस्वरूप—

तत्सम शब्द—अखंड, अमंड, प्रचंड, पाणं, कर्मं, जन्मं, रूपं, धामं, मोहं, कृपालं, दयालं, कृपाणं, ज्वाल, कराल, न्याय आदि।

अर्द्ध तत्सम शब्द—अभेखं, जोग, निरबिकारं, निर्वाणं, थलयं, महेसं, पुरीसं, सरूपं, सूरं, बिसेखं, पुरानं, सातकेशं।

---

१. रामावतार (८६३)
२. स्फुट छन्द (४)
३. वही (४ ५)
४. चरित्रोपाख्यान (४०५)
५. जापु (१२३)
६. वही, (१०६)
७. वही, (११०)
८. वही, (१८०)।

तद्भव शब्द—प्रठामं, प्रजोहं, गेहं, कानं, जसं, मार्फं, मोचनं, झड, भविस्य, सोहीमं, हार्य, धारयं आदि।

अरबी फारसी शब्द—प्रासमाण, उमराय, ख्यालं, खानं, गुलावं, तेगं, तीरं, तुफगं, मुकामं, पातसाह, साहब, हजूरं आदि।

पंजाबी—कीतयं, सूरयं आदि।

शब्दों के साथ अनुस्वार लगाने की यह प्रवृत्ति हिन्दी में बहुत पुरानी है। वीरगाथा-कालीन रचनाओं में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दृष्टिगत होती है। इस प्रवृत्ति पर अपना मत प्रकट करते हुए डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है[1]—

"रासो में अनुस्वार देकर छंदोनिर्वाह की योजना बहुत अधिक मात्रा में है। रजत भूपनं तनं प्रलक्क छुट्टयं मनं। पृ॰ २११२—जैसे छंदों में अकारण अनुस्वार ठूसे गए हैं। एक कारण तो अनुस्वार देने का यह हो सकता है कि भाषा में संस्कृत की गमक आ जाए। परन्तु यह प्रवृत्ति सिर्फ इतने ही उद्देश्य से होती तो इतना विशाल रूप न धारण करती। वस्तुतः अपभ्रंशकाल में दो प्रकार से अनुस्वार जोड़ने के उदाहरण मिल जाते हैं— (१) मूल संस्कृत में उस पद में अनुस्वार रहा हो और छंद की पादपूर्ति के लिए उसकी आवश्यकता अनुभव की गई हो। परवर्ती हिन्दी में 'परब्रह्म'—जैसे शब्दों में यही प्रवृत्ति है। प्राकृत पिंगल सूत्र के उदाहरणों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है—

ठवि सल्ल पहिल्लो चमर हिहिल्लो तल्लजुग्रं पुणु वहू ठिग्रा (पृ॰ २१५) में 'तल्लजुग्र' का अनुस्वार 'सत्ययुग' में आए हुए संस्कृत अनुस्वार का अवशेष है। (२) छंद में एकाध मात्रा की कमी रह गई हो और उसके लिए द्वित्ववाला विधान बहुत अच्छा नहीं दिख रहा हो जैसे 'एाय' (समान)—एाय तुम्हरि सज्जिउ (सं॰ रा॰ ५३), परन्तु यह बात अपभ्रंश कवियों में बहुत अधिक प्रिय नहीं थी। संदेशरासक में 'अमियं झरणी' (३३) जैसे प्रयोगों को बहुत दूर तक नहीं घसीटा जा सकता। ये संस्कृत-ख-प्रत्यय परक शब्दों (शुभकर, प्रियकर) के अनुकरण पर गढ़े गए जान पड़ते हैं। पृ॰ प्र॰ के रासो-छप्पयों में एक जगह 'खयकरं' (अगट्ठ म गहि दाहिमम्रो) देव (रिपुराय खयकरं) प्रयोग है जो इसी प्रवृत्ति का द्योतक है।"

गुरु गोबिन्दसिंह की भाषा में अनुस्वार देने की प्रवृत्ति का कारण भाषा में संस्कृत की गमक देने का ही अधिक मालूम होता है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

मुहावरों, लोकोक्तियों और नीति वाक्यों की दृष्टि से दशम ग्रंथ की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना चरित्रोपाख्यान है। इसका रचना-विधान लौकिक पृष्ठभूमि पर होने के कारण

---

१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ॰ ४५।

मुहावरों, लोकोक्तियों और युग की प्रचलित नीति मान्यताओं को इस रचना में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। अन्य रचनाओं में भी यत्र-तत्र ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं। कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

कुत्ते की मौत मरना—

जो दासी सो प्रेम पुरख उपजावई ॥
हो अन्त स्वानु की मृतु परै पछुतावई ॥

(चरित्रोपाख्यान)

हिरन का शेर के मुंह मे जाना—

आयो है केहरि के मुख में मृग ऐसो कह्यो नृपतो सुनि पायो ॥

(कृष्णावतार)

चमड़े का सिक्का चलाना—

व्याघ जीतयो जिनै जभ मारयो उनै राम अउतार सोई सुहाए ॥
दे मिलो जानकी बात है सिआन की चाम के दाम काहे चलाए ॥

(रामावतार)

कान न देना—

कछू न कान राखही। सुमारि मारि भाखही ॥

(विचित्र नाटक)

नीच का संग—

नीच संग कीजै नहीं सुन हो मीत कुमार ॥
भेड पूछ मादी नदी को गहि उतर्यो पार ॥

(चरित्रोपाख्यान)

न छिपने वाली चीजें—

इसक मुसक खांसी खुरक छिपत छपाए नांहि ॥
अन्त प्रगट ह्वै जग रहहि स्रिस्टि सकल के माहि ॥

(चरित्रोपाख्यान)

धन की महत्ता—

धनि धनि धन को भाखीऐ जा का जगतु गुलाम ॥
सभ निरखत याको फिरै सभ चल करत सलाम ॥

(विचित्र नाटक)

टूटकर न जुड़ने वाली चीजें—

सभ कछु टूटे जुरत है जान लेहु मन मित्त ॥
ए द्वै टूटे ना जुरहिं एकु सीस अरु चित्त ॥

(चरित्रोपाख्यान)

नौकर और स्त्री के लिए एक ही सजा—

चाकर की अरु नारि को एकै बडी सजाइ ॥
जिय ते कबहुं न मारियहि मन ते मिलहि भुलाइ ॥

(चरित्रोपाख्यान)

मछली और बिरहणी के वध का सरल उपाय—

मछरी और बिरहीन के वध को कहा उपाइ ।।
जल पियते बिछुराइयहि तनिक बिखै मरि जाइ ।।

(चरित्रोपाख्यान)

जो पाप से बच नहीं पाते—

एक मदो दूजे तरुन तीजे अति घन धाम ।।
पाप करे बिन क्यों बचे, बचे बचावे राम ।।

(चरित्रोपाख्यान)

जो कभी किसी के मित्र नहीं बनते—

रीति न जानत प्रीति की पैसन की परतीत ।।
बिच्छू, बिसी, अरु बेसया कहो कवन के मीत ।।

(चरित्रोपाख्यान)

स्वभाव की एकता—

सिंघ, साधु, रस, पदुमिनी इनका इहै सुभाउ ।।
ज्यों ज्यों दुख गाढ़ो परै त्यों त्यों आगे पाउ ।।

(चरित्रोपाख्यान)

गुण

गुरु गोबिन्दसिंह की भाषा में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों ही प्रमुख गुण यथा-स्थान प्राप्त होते हैं। वैसे उनकी भाषा का मूल स्वर ओज है, परन्तु माधुर्य और प्रसाद गुणों से युक्त भाषा पर भी उनका उतना ही अधिकार था यह उनकी रचनाओं में बिखरे हुए अनेक उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है।

माधुर्य

माधुर्य का शब्दार्थ है मधुर होने की विशेषता, मिठास, रोचकता। काव्य गुण के प्रसग में माधुर्य शब्द का अर्थ विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूपों में ग्रहण किया है, पर *सभी मतों का विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्द का अर्थ सरसता, शिष्टता एवं* सुसंस्कृतता से ही है। माधुर्य गुण का सम्बन्ध चित्त को द्रवीभूत तथा आह्लादित करने से है, इसलिए उसकी स्थिति श्रृंगार, करुण और शान्त रस में मानी गयी है। साहित्य दर्पणकार के मत से ट ठ ड ढ को छोड़कर क से लेकर म तक के वर्ण तथा मूर्धन्य वर्ण और अन्त्य वर्णों के प्रयोग से माधुर्य गुण का सम्पादन होता है। दशम ग्रंथ में मोहिनी अवतार, कृष्णावतार तथा चरित्रोपाख्यान में माधुर्य गुण के प्रचुर उदाहरण हैं। कृष्णावतार में से बारह मासे का एक *वियोग चित्र प्रस्तुत है*—

बीच शरद रुत के सजनी हम खेलत स्याम सो प्रीत लगाई ।।
आनन्द कै अति ही मन मैं तज कै सभ ही जिय की दुचिताई ।।
नारि सभै ब्रिज कौन बिखै मन को तज कै सभ संक कन्हाई ।।
ता संग सो सुखदाइक थी रित स्याम बिना अब भी दुखदाई ।।८७७।।

चंडी के रूप चित्रण का एक मधुर चित्र 'चंडी चरित्र (प्रथम)' में इस प्रकार है—

मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने,
अलि फिरत दिवाने बन डोलें जित तित ही ॥
कीर अउ कपोत बिंब कोकला कलापी बन,
लूटे फूटे फिरें मन चैन हूं न कित ही ॥
दारम दरक गइयो पेख दसननि पात,
रूप ही कात जग फैल रही सित ही ॥
ऐसी गुन सागर उजागर सुनागर है,
लीनो मन मेरो हरि नैन कोर चित ही ॥८७॥

ओज

ओज का शाब्दिक अर्थ है तेज, प्रताप, दीप्ति। काव्य के अन्तर्गत जो गुण सुनने वाले के मन में उत्साह, वीरता, आवेश आदि जागृत करने की क्षमता रखता हो वह ओज कहलाता है। इसकी स्थिति वीर, वीभत्स और रौद्र रस में क्रमशः अधिक मानी गई है। इसके लिए वर्गों के आद्य और तृतीय वर्णों की संयुक्ताक्षरता, ट ठ ड ढ श ष आदि का प्रयोग, दीर्घ समास और उद्धतपद संघटना आवश्यक होती है। इस प्रकार ओज में उदात्त भाव तथा कर्कश, क्लिष्ट वर्ण संघटन और संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है।

गुरु गोबिन्दसिंह के काव्य का मुख्य स्वर ओज ही है। न्यूनाधिक रूप से उनकी सभी रचनाओं में ओज गुण के उदाहरण प्राप्त होते हैं। विशेष रूप से बिचित्र नाटक, चंडी चरित्र (द्वय), रामावतार, कृष्णावतार और निहकलंकी की अवतार में इसके उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यथा—

तबै बीर कोपं बिडालाच्छ धामं ॥
सजे सस्त्र देहं चलो जुद्ध धामं ॥
सिर सिंघ के आन धाम प्रहारं ॥
बली सिंघ सो हाथ सो मारि डारं ॥२२॥

(चंडी चरित्र, द्वितीय)

जुट्टे बीर। छुट्टे तीर। ढुक्की ढालं। कोहे कालं ॥
थके ढोल। बंके बोलं। कच्छे सस्त्रं। अच्छे अस्त्रं ॥
झुम्मे सूरं। घुम्मे हूर। चक्के चारं। बक्कै मारं ॥
भिड़े बरम। छिच्छे चरमं। तुट्टे खग्गं। उट्ठे अग्ग ॥

(रामावतार)

प्रसाद

प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित हो जाना। भरत के अनुसार जिसमें स्वच्छता, सरलता और सहजग्राह्यता हो, अर्थात् सुनते ही अर्थ समझ में आ जाए, प्रसाद गुण कहलाता है। यह सभी रसों में व्याप्त है।

अकाल स्तुति, बिचित्र नाटक, स्फुट छंद आदि अनेक रचनाओं में यह गुण प्रचुरता से विद्यमान है। यथा—

प्रानी परम पुरख पग लागो ॥
सोवत कहा मोह निद्रा मैं कबहुं सुचित ह्वै जागो ।।१।।रहाउ।।
औरन कहा उपदेशत है पसु तोहि परबोध न लागो ॥
सिंचत कहा परे बिखियन कह कबहू बिखै रस त्यागो ।।१।।
केवल करम भरम से चीनहु धरम करम अनुरागो ।।
संग्रहु करो सदा सिमरन को परम पाप तजि भागो ।।२।।
जाते दूख पाप नहि भेटै काल जाल ते तागो ।।
जौ सुख चाहो सदा सभन को तौ हरि के रस पागो ।।३।।

(द० ग्र० पृ० ७१०)

७

मूल्यांकन

गुरु गोबिन्दसिंह और उनके सम्पूर्ण साहित्य का हिन्दी मे आज तक उचित मूल्यांकन नहीं हुआ। यद्यपि हिन्दी साहित्य के सभी प्रमुख इतिहासकारों ने गुरु गोबिन्दसिंह की साहित्यिक सेवाओं का उल्लेख अपने इतिहास मे किया है, परन्तु दशम ग्रंथ मे संग्रहीत रचनाओं के अध्ययन और संपादन-प्रकाशन की ओर हिन्दी विद्वानों एवं संस्थाओं ने विशेष ध्यान नहीं दिया। यह उपेक्षा केवल दशम ग्रंथ तक ही सीमित नहीं थी। सम्पूर्ण सिख-साहित्य ही इसका शिकार रहा है। परन्तु यह हर्ष और संतोष का विषय है कि गत कुछ वर्षों से हिन्दी में अनेक अनुसंधानकर्ता गुरु ग्रंथ साहब, दशम ग्रंथ तथा सिख-साहित्य के अन्य भागो के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं।

गुरु गोबिन्दसिंह के सम्पूर्ण काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि वे मुख्य रूप से वीर रस के कवि थे, परन्तु आश्चर्य की बात है कि अभी तक हिन्दी मे वीर काव्य पर जितने भी आलोच्य ग्रन्थ निकले हैं उनमें गुरु गोबिन्दसिंह का कहीं उल्लेख नहीं किया गया है।

समकालीन वीर काव्य

जिन कवियों का नाम हिन्दी के वीर काव्य के संदर्भ मे लिया जाता है उनमे से एक-दो को छोड़कर किसी की प्रमुख साहित्यिक अभिरुचि वीर काव्य नहीं थी और न ही उनके वीर काव्य का नायक कोई ऐसा आदर्श पुरुष था जिसके वीरतापूर्ण कार्यों से कोई प्रेरणापूर्ण वातावरण का निर्माण हो पाता। केशव, मतिराम और पद्माकर आदि कवियों की रुचि तो नायिका भेद तथा शृंगार के अन्य हावों-भावों की विवेचना में ही सर्वत्र रही। केवल संयोग और परिपाटीवश उन्होने उन राजाओं की कथित वीरता का ही वर्णन किया जिनसे उन्हें आश्रय प्राप्त हुआ था। इस प्रकार वीर काव्य की अधिकांश रचना लोभ के वशीभूत होकर ही की गई थी। इन वीर काव्यों के नायकों मे से बहुत से तो वीर ही नहीं थे और कुछ यदि वीर थे तो उनकी वीरता में लोक संरक्षण की भावना कम, किसी क्षुद्र कारणवश अपने प्रतिपक्षी से प्रतिकार लेने अथवा जनता को त्रसित करने की भावना ही अधिक होती थी। डा० उदय नारायण तिवारी के शब्दो मे--'लोकमंगल करने वाले वीरों का यशोगान कवि की अखंड-कीर्ति का साधन होता है। किन्तु पद्माकर ने वीर रस के लिए एक ऐसा नायक चुना जिसमे वीरत्व की भावना नाम की ही थी। उन्होने हिम्मत बहादुर को नायक केवल अधिक

धन प्राप्ति की आशा से ही बनाया था।[1]

यही बात श्रीधर के 'जंगनामे' के विषय में भी कही जा सकती है जो उसने फर्रुखसियर की प्रशंसा मे लिखा था। "धन-प्राप्ति के लोभ मे पड़कर फर्रुखसियर को काव्य का चरित्र-नायक चुनने के कारण 'जंगनामा' एक साधारण कोटि की रचना हो गई है।"[2] डा० उदय नारायण तिवारी ने 'राज विलास' के रचयिता मान कवि की भी इसी मनोवृत्ति की ओर संकेत किया है।[3]

वीरकाव्य के रचयिताओं मे चद बरदाई और भूषण का ही नाम प्रमुख रूप से हमारे सामने आता है। आदर्श की दृष्टि से पृथ्वीराज चौहान को भी लोक मगलकारी नायक नहीं माना जा सकता। पृथ्वीराज रासो मे वर्णित अनेक युद्धो की पृष्ठभूमि पर कोई उच्चतर भावना नहीं है। चद बरदाई चारण कवि थे और चारण कवियो द्वारा अपने आश्रयदाताओं के युद्धो का प्रशस्ति और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करना एक प्रकार से स्वामिधर्म का पालन करना था। उस युग के राजाओं के युद्ध पड़ोसी राज्यों का अन्त करने, राज्य विस्तार एवं सुन्दरियों के अपहरण के लिए हुआ करते थे। इनके आश्रित कवि इन युद्धों में दिखलायी गयी वीरता का चित्रण करते थे।[4]

भूषण का महत्त्व इस दृष्टि से सबसे अधिक है। हिन्दी मे वीर रस के अग्रणी कवि के रूप मे उनकी प्रतिष्ठा है। अपने युग के आदर्श पुरुष को उन्होने अपना आश्रयदाता चुना। घोर शृंगार और खुशामदी युग मे वीर रस की अपूर्व कविता का उन्होने सृजन किया। यह सत्य है कि भूषण ने अपने आश्रयदाता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की और उससे पर्याप्त धन भी प्राप्त किया परन्तु उनका आश्रयदाता उस युग का एक नेता था और उसके आदर्श भी लोकमंगलकारी थे, अतः वह प्रशंसा जीवन मे उच्चतर भावों की प्रतिष्ठा करने वाली हुई।

वैशिष्ट्य

परन्तु गुरु गोविन्दसिंह का महत्त्व सभी आश्रय-प्राप्त कवियों से सर्वथा पृथक है। हिन्दी में वीर रस के वे एकमात्र कवि हैं जिनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि पर कोई सांसारिक आकांक्षा नहीं है। जिन्हे किसी आश्रयदाता को प्रसन्न नहीं करना है, जिन्हें अपनी कवित्व शक्ति का प्रयोग जीविकोपार्जन के लिए नहीं करना है। साहित्य-सृजन के लिए उनकी एकमात्र 'वासना' 'धर्मयुद्ध का चाव' है[5]। वे उन कवियों में नहीं हैं जो सुरक्षित स्थानों मे बैठ-

---

१. वीर काव्य, पृ० ४५३।

२. वही, पृ० ३३७।

३. वर्णन की अस्वाभाविकता से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ये कवि के हार्दिक उद्‌गार नहीं, केवल परम्परा का पालन करने तथा जीविकोपार्जन के लिए ही लिखे गये हैं।
(वीर काव्य, पृ० २३६)

४. वीर काव्य कर्त्ताओं में भी कितने ही चरित नायक के अनुपयुक्त चुनाव के कारण छंट जाते हैं। 'रासो' के रचयिताओं की वीर रस की धारा शृंगार रस से मिश्रित है।
(आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कृत भूषण पृ० ६१)

५. दशम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाहि प्रभु धरम जुद्ध को चाइ॥
(दशम ग्रन्थ, पृ० ५७०)

कर वीर रस पूर्ण कृतियों की रचना दूसरों को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए करते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह अपनी कृतियों से दूसरों को प्रेरित करते हैं और उनसे अधिक स्वयं प्रेरित होते हैं और प्रत्येक क्षण—

१. जूझ मरौं रन मैं तजि मैं............

२. सस्त्रन सिउ अति ही रन भीतर जूझ मरों कहि साच पतीजै

३ जब आव की अउध निदान बनै अति ही रन में तब जूझ मरौं

आदि उदात्त वीर भावनाओं का प्रगटीकरण किया करते हैं।

और यही उदात्त भावना, अन्य काव्य गुणों के साथ संयुक्त होकर उन्हें हिन्दी वीर काव्य के उच्चतम स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। गुरु गोबिन्दसिंह हिन्दी के ऐसे एकमात्र कवि हैं, जिनका युद्ध चित्रण स्वानुभूतिपूर्ण है।

महामानव रूप

केवल साहित्यिक दृष्टि से ही गुरु गोबिन्दसिंह का इतना महत्त्व नहीं है, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से भी उनका व्यक्तित्व बड़ा महिमाशाली है। अपने जीवन और साहित्य के माध्यम से उन्होंने सभी सामाजिक विषमताओं का केवल खंडन ही नहीं किया वरन् नये मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की। जहां वे युद्धरत सैनिक हैं वहां वे अपने पक्ष की विजय और परपक्ष की पराजय की कामना करते हैं परन्तु योद्धा से भी ऊपर उठा हुआ उनका मानव रूप है—महामानव रूप—जहां वे शत्रु-मित्र, स्वधर्मी-परधर्मी, स्वदेशी-विदेशी किसी भी भेद को स्वीकार नहीं करते। मानव मात्र की समता और सभी में एक ही ज्योति की प्रतिष्ठा में उनकी दृढ़ आस्था है—

कोऊ भयो मुंडिया सन्यासी कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जति अनुमानबो ॥
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम शाफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानबो ॥
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो ॥
एक ही की सेव सब ही को गुरु देव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जाति जानबो ॥१५॥८५॥

(द० ग्र० पृ० १६)

उनकी दृष्टि में मंदिर और मस्जिद में, पूजा और नमाज में, देव अदेव, यक्ष, गंधर्व, तुर्क और हिन्दू का अंतर भी कोई मौलिक अन्तर नहीं। वह तो जलवायु और किसी देश की अपनी परम्परा का ऊपरी अंतर मात्र है अन्यथा अल्लाह और अभेख तथा पुरान और कुरान में वर्णित सार्वभौम सत्य एक ही है—

देहुरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है ॥

देवता प्रादेव जच्छ गन्धर्व तुरक हिन्दू,
न्यारे न्यारे देसन के भेस को प्रभाउ है ॥
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान,
खाक बाद प्रातश ग्रौ ग्राव को रलाउ है ॥
ग्रल्लाह ग्रभेख सोई पुरान ग्रौ कुरान ग्रोई,
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है ॥

(द० ग्रं० पृ० १९)

ग्रछूत जातियों का युद्ध से तादात्म्य

ग्रछूत कही जाने वाली जातियों को ग्रपने सामाजिक, धार्मिक ग्रौर राजनीतिक संगठन में जो महत्त्वपूर्ण स्थान उन्होंने दिया इसकी चर्चा इस प्रबन्ध में ग्रनेक स्थानो पर की गयी है। इन ग्रछूत जातियों का सहयोग भी उन्हे भरपूर प्राप्त हुग्रा था। 'शीश भेंट' के लिए ग्रपने ग्रापको प्रस्तुत करने वाले पांच व्यक्तियों में चार इन जातियो मे से थे। ग्रपने युद्ध प्रसंगो में गुरु गोबिन्दसिंह ने बहुत से उपमान शूद्र वृत्ति से लिये। उनकी रचनाग्रों में ग्रछूत जातियो के कार्य-कलापों से सबंधित उपमान इतनी प्रचुरता से मिलते हैं कि यह निष्कर्ष बड़ी सरलता से निकाला जा सकता है कि गुरु गोबिन्दसिंह इन निम्न समझे जाने वाले लोगो का तादात्म्य युद्ध कार्यों से स्थापित कर रहे हैं। उदाहरणस्वरूप—

१. चंड के बानन तेज प्रभाव ते दैत जरे जैसे ईट ग्रावा मैं ॥

(द० ग्रं० पृ० ६१)

२. गूद सने सित लोहू मैं लाल कराल परे रन मैं गज कारे ॥
जिउ दरजी जम मृत के सीत मैं बागे ग्रनेक कता करि डारे ॥

(पृ० ७५)

३. चंड समार तबै बलु धारि लयो गहि नारि धारा पर मारयो ॥
ज्यों धुबिग्रा सरता तट जाइ कै लै पटको पट साथ पछारयो ॥

(पृ० ७७)

४. चड प्रचड कुवंड समार सभै रन मद्धि दु टूक करे हैं ॥
मनो महावन मैं बर बृच्छन कटि कै बाढ़ी जु दे कै धरे हैं ॥

(पृ० ६४)

५. चंड के सस्त्र पदा जग दानव रंचक रंचक हुइ तब ग्राए।
मूंगर लाय हुलास मनो तब काछी ने पेंडते तूत गिराए।

(पृ० ६५)

६. चंडी की तलवार निशुंभ को इस तरह चीरती है—
मानहु सार की तार लै हाथ चलाइ है साबन को सुबनीगर.

(पृ० ६५)

७. कान्ह हलो बलि कै तब ही चतुरंग दसो दिस बीज बगाई।
लै किरसान मनो तगुली खल दानन ज्यों नभ बीच उड़ाई॥
(पृ० २७८)

८. मूसल चक्र गदा गहि कै सु हतै करि कोच उठे चिनगारै॥
मानो लुहार लिये घन हाथन लोह करेरे को कामु सवारे॥
(पृ० ४७२)

९. लागत सीस कट्यो तिहको गिर भूमि परयो जसु स्याम उचार्यो॥
तार कुमार लै हाथ बिखै मनो चाक ते कुंभ तुरंत उतार्यो॥
(पृ० ४८०)

अपूर्व सकट काल

गुरु गोबिन्दसिंह जिस युग मे उत्पन्न हुए वह भारतीयता के लिए कदाचित सबसे बड़ा संकट काल था। इस देश पर विदेशी शासन को स्थापित हुए लगभग ६ शताब्दियां व्यतीत हो चुकी थी। स्थानीय हिन्दू पर कभी अत्याचार करते हुए, कभी उससे संघर्ष करते हुए और कभी सद्भावनापूर्ण वातावरण का निर्माण करते हुए यह शासन आगे बढ़ रहा था। धीरे-धीरे मुसलमानों में भी दो वर्ग बन गये। एक की धार्मिक कट्टरता को सूफियों की उदार प्रेम भावना ने सहिष्णुता और सह-अस्तित्व की ओर मोड़ा और अमीर खुसरो, अकबर, रहीम, रसलीन, रसखान और दाराशिकोह आदि उदारचेता मुसलमानों की परम्परा का निर्माण हुआ। निर्गुण सतो के उपदेशो की शीतल छाया मे हिन्दू और मुसलमान तप्त प्राणी समानरूप से मानसिक विश्राम पाने लगे। किन्तु यह परम्परा दृढ़तर न हो सकी। मुसलमानों मे कट्टरपंथी मुल्ला वर्ग का प्रभाव सदा अधिक बना रहा। दोनों वर्गों के सघर्ष में उदार वर्ग पराजित होता रहा। पचम गुरु अर्जुन पर किये गये नृशंस अत्याचारों से सूफी-सत मियाँ मीर का हृदय चीत्कार कर उठा, पर उसकी ओर किसी ने कान न दिया। गुरु गोबिन्दसिंह के दो कनिष्ठ पुत्रों को जीवित दीवार में चिने जाने की क्रूर आज्ञा सुनकर मलेरकोटल के मुसलमान नवाब ने शोक-से सिर धुन लिया, परन्तु वह नक्कारखाने मे तूती की आवाज सिद्ध हुई। अन्ततोगत्वा वह वर्ग विजयी हुआ जो कट्टरपंथी था। इस्लाम का प्रचार और प्रसार जिसके लिए महान पुण्य कार्य था और इसके लिए विधर्मियों को सभी प्रकार से पीड़ित करना जिसके लिए सबाब था।

इन वर्ग को औरंगजेब जैसा कठोर और शक्तिशाली नेता मिला जिसने शताब्दियों में, हिन्दुओं के सहयोग से, अर्जित, सम्पूर्ण मुगल शक्ति को इस देश की संस्कृति, इतिहास और धार्मिक विश्वासो को मिटाने में लगा दिया। कवि दिनकर के शब्दों में—"औरंगजेब ने खदेड़ कर दारा को मार डाला और बाप को कैद करके वह खुद सिंहासन पर बैठ गया। जिस दिन दाराशिकोह मारा गया और औरंगजेब गद्दीनशीन हुआ, सामासिक संस्कृति का कलेजा असल में उसी रोज फटा।"

समन्वय प्रयासों की असफलता

ऐसे अपूर्व संकट काल मे, जब संपूर्ण देश में दमन का भीषण चक्र तीव्र झंझावात की तरह चल रहा था देश की जन-शक्ति को सपूर्ण आलस्य और प्रमाद त्यागकर

जागना पड़ा और पर्वत की दृढ़ता लेकर उसके मध्य खड़ा होना पड़ा। समन्वय-प्रयास असफल हो चुके थे। बाबर और गुरु नानक, अकबर और गुरु रामदास के सम्बन्धों को तिलांजलि दे दी गयी थी और सामने खड़े थे औरंगजेब और गुरु गोबिन्दसिंह। शक्ति का प्रतिरोध शक्ति से किया जाना था। 'अल्लाहो अकबर' के नारे का उत्तर 'सति श्री अकाल' के जयघोष से दिया जाना था।[1]

इस प्रकार की परिस्थितियों में गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने संगठन को उस प्रदेश में खड़ा किया जो मुगल शासन के जबड़ों के मध्य जकड़ा हुआ था। गुरु गोबिन्दसिंह ने सेना एकत्र कर आस-पड़ोस के राज्यों पर आक्रमण कर एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का कभी प्रयास नहीं किया। यह करना उनके लिए कठिन नहीं था। आस-पास के पहाड़ी राजाओं को वे कितनी ही बार पराजित कर चुके थे। परन्तु वे जानते थे कि राज्यों का बनना-बिगड़ना क्षणिक और अस्थायी महत्त्व की बात है। महत्त्व की बात है जनता की मनोवृत्ति में आमूल परिवर्तन लाना। ऐसा परिवर्तन, जो युगों-युगों से उनमें बैठी आत्मविश्वासहीनता और हीन भावना को दूर करके उनमें 'सवा लाख से अकेले लड़ने' का अदम्य उत्साह भर दे। गुरु गोबिन्दसिंह ने यह कार्य किया। गुरु गोबिन्दसिंह ने केवल युद्ध ही नहीं किये युद्ध के संपूर्ण दर्शन का भी विकास किया।[2]

युद्ध-दर्शन का विकास

गुरु गोबिन्दसिंह और उनके आश्रित कवियों का सम्पूर्ण साहित्य इस युद्ध-दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। उन्होंने संपूर्ण प्राचीन, समयोपयोगी, भारतीय साहित्य का भाषानुवाद किया और करवाया। कितना महत्त्वपूर्ण तथा विशाल था यह कार्य! अपने संपूर्ण इतिहास में हमें इस दृष्टि से इतने महत्त्वपूर्ण आयोजन का दूसरा उदाहरण उपलब्ध नहीं होता।

उन्होंने अपने अनुयायी सैनिकों में केवल युद्ध का नहीं, धर्म युद्ध का चाव भरा और उनके अन्दर यह विश्वास उत्पन्न किया कि वे जो कार्य कर रहे हैं, वह सामान्य सांसारिक कार्य नहीं, ईश्वरीय कार्य है। उन्होंने अपने सैनिकों को युद्धोपयोगी गणवेश दिया, जयघोष दिया, नाम दिए और आस्था दी। उसका परिणाम यह हुआ कि उनके देहावसान के पश्चात् कल्पनातीत कष्ट सहते हुए, अपने शिरों के लिए अस्सी अस्सी रुपये का मूल्य बँधवाते हुए जंगलों, पहाड़ों और रेगिस्तानों में भटकते हुए भी उन्होंने आत्मविश्वास और अपनी अंतिम विजय के उस नंदादीप को बुझने नहीं दिया जिसकी ज्योति गुरु गोबिन्दसिंह ने स्वयं जलाई थी।

---

१. 'सति श्री अकाल' 'अल्ला हो अकबर' का जवाब जैसा लगता है और सिखों ने शूकर को मद्य मानकर एक प्रकार से गो-भक्षण की वृत्ति का जवाब निकाला था।
(संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३२०)

२. आत्म रक्षा में लड़ाइयाँ तो राणा प्रताप और शिवाजी ने भी लड़ीं, किन्तु वे युद्ध का दर्शन नहीं निकाल सके। सिखों ने दर्शन भी निकाला और खिलाफत जैसा एक संगठन भी जिसमें एक ही व्यक्ति सारे सम्प्रदाय का राजा और गुरु, दोनों होता था।
(संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३१६)

तत्कालीन परिस्थिति—अतीत के प्रकाश में

यहाँ यह बात ध्यान मे रखने की है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने अपना युद्धाक्रोश मुसलमानो के विरुद्ध नहीं तुर्कों के विरुद्ध प्रदर्शित किया है, जिन्हें उन्होने मलेच्छ कहकर भी पुकारा है। यही विशेषता हमें भूषण मे भी दिखाई देती है। उनका विरोध भी मुसलमानो से न होकर तुर्कों से है। वस्तुतः उस युग मे 'मुसलमान' शब्द जहाँ धार्मिक विश्वासों की महत्ता रखता था, वहाँ 'तुर्क' शब्द उस राजनीतिक शक्ति का परिचायक था जिसके विरुद्ध गुरु गोबिन्दसिंह और शिवाजी को युद्ध करना पड़ रहा था। अनेक मुसलमान गुरु गोबिन्दसिंह के मित्र और स्नेही थे। सिढोरा के पीर बुद्ध शाह का भगाणी के युद्ध में उनकी सहायता करना इतिहास-प्रसिद्ध ही है। घोर सकट काल मे उनकी सहायता करने वाले नबीखान, ग़नीखान, काजो पोर मुहम्मद और राय काल्हा आदि सज्जन मुसलमान ही थे।

तुर्क जाति के लोगो ने किस प्रकार मुसलमान-संसार पर अपना प्रभाव स्थापित कर अरबी और इरानी जाति के लोगों को नेतृत्वहीन कर दिया, इसका विवेचन दिनकरजी ने 'संस्कृति के चार अध्याय' मे किया है (पृष्ठ २२६-२७)। उन्हीं के शब्दों में—"अतएव समझना चाहिए कि जिस मुसलमान (महमूद गजनवी) के कारण इस्लाम भारत में उतना बदनाम हुआ वह आर्य कम, तुर्क या हूण अधिक था और अरबी तथा ईरानी संस्कृतियों की उदारता उसमे नही थी।" गुरु गोबिन्दसिंह ने तत्कालीन हिन्दू-तुर्क संघर्ष को भारत के प्राचीन देवासुर संग्राम की परम्परा का ही एक अग माना। अन्य अवतारों के साथ ही जहाँ उन्होंने अपने आपको भी उसी अवतार परम्परा की एक कड़ी मानकर अपने जीवन का उद्देश्य:—

धरम चलावन संत उबारन,
दुस्ट सभन को मूल उपारन।

रखा वहाँ दूसरी ओर उन्होंने पठानों, मुग़लों, सैयद और शेखों को उसी आसुरी परम्परा का अनुवर्ती माना जिसके साथ इस देश की राष्ट्रीय शक्ति का संघर्ष युगों-युगों से चला आ रहा था। 'चरित्रोपाख्यान' के अन्त मे लगभग चार सौ छंदों में 'दीर्घदाढ़' नामक असुर से महाकाल के युद्ध का वर्णन किया गया है। महाकाल जब सभी असुरों का संहार कर देते हैं तो वह निशाचर (दीर्घदाढ़) अपनी क्रोधाग्नि से पठानो, मुग़लों और सैयद-शेखों का निर्माण करता है—

इह बिधि भए सस्त्र जब लीना ॥
असुरन कोप अमित तब कीना ॥
कांपत अधिक चित्त मो गए ॥
सस्त्र अस्त्र लै धावत भए ॥१९७॥
ज्वाल तजी करि कोप निसाचर ॥
तिन ते भए पठान धनुख धर ॥
पुनि मुख ते उलका जे काढे ॥
ताते मुगल उपजि भे ठाढे ॥१९८॥

पुनि रिसि तन तिन स्वास निकारे ॥
संयद सेख भए रिस वारे ॥
धाए शस्त्र अस्त्र कर लैके ॥
तमकि तेजरए तुरी नचैके ॥१६६॥
खान पठान बुके रिस कै कै ॥
कोपि कृपान नगर कर लैकै ॥
महाकाल को करत प्रहारा ॥
एकन ऊपर तरोम उपारा ॥२००॥

(द० ग्र० पृ० १३७३)

और इस प्रकार भागे के २०० छन्दों में महाकाल का युद्ध पठानों और मुग़लों से ही होता है।

महाकाल के इस युद्ध का उद्देश्य बस एक ही है, दुष्टों का संहार और संतो की रक्षा—

इह विधि कोप काल जब भरा ॥
दुस्टन को छिन मैं बधु करा ॥
आपु हाथ दै साध उबारे ॥
सत्र अनेक छिनक मो टारे ॥२७६॥

(द० ग्र० पृष्ठ १३७६)

गुरु गोबिन्दसिंह का संघर्ष भी तो इन्हीं मुगलों-पठानों से ही था। पहले उन्होंने महाकाल से इनका संहार करवाया, फिर उसी काल से उन्होंने अपनी रक्षा और अपने शत्रुओं के संहार की भी प्रार्थना की—

हमरी करो हाथ दै रच्छा ॥
पूरन होइ चित्त की इच्छा ॥
× × ×
हमरे दुस्ट सभै तुम घावहु ॥
आपु हाथ दै मोहि बचावहु ॥
× × ×
सेवक सिक्ख हमारे तरियहि ॥
चुनि चुनि सत्र हमारे मरियहि ॥
× × ×
दूजो सदा हमारे पच्छा ॥
स्री असि धुज जू करियहु रच्छा ॥

(द० ग्र० पृ० १३८६)

हिन्दू शक्तियों का समन्वय

इस ऐतिहासिक संघर्ष की तैयारी के लिए गुरु गोबिन्दसिंह ने सभी हिन्दू-शक्तियों का समन्वय किया। शैवों, शक्तों, वैष्णवों द्वारा समादृत साहित्य का श्रद्धापूर्वक भाषानुवाद

करना तथा करवाना इस समन्वय प्रयास का सबसे बड़ा प्रमाण है। गुरु गोबिन्दसिंह जैसी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्तित्व हमें तत्कालीन भारतीय इतिहास में दूसरा नहीं दिखाई देता। डा० नगेन्द्र का यह मत उचित नहीं ज्ञात होता कि उस युग में उत्तरी भारत ने औरंगजेब को छोड़ कोई भी प्रथम श्रेणी का व्यक्तित्व नहीं उत्पन्न किया।[१] औरंगजेब के व्यक्तित्व को प्रथम श्रेणी का व्यक्तित्व कहना इतिहास का उपहास करना है। जिस व्यक्ति ने अपनी अदूरदर्शिता एवं धार्मिक उन्माद में आकर पाँच पीढ़ियों से जमे सुदृढ़ साम्राज्य के लिए पग-पग पर शत्रु उत्पन्न कर लिए और अंत में मुग़ल साम्राज्य के विनाश का कारण बना, जिसने न जीवनभर स्वयं किसी पर विश्वास किया और न किसी को भली प्रकार अपने विश्वास में ले सका, जिसके कुंठित व्यक्तित्व का निर्माण पिता (शाहजहाँ), भाई (दारा और मुराद) तथा पुत्र (मुहम्मद अकबर) के विनाश पर हुआ, उसके व्यक्तित्व को प्रथम श्रेणी का व्यक्तित्व कैसे कहा जा सकता है? स्वयं डा० नगेन्द्र ने उसी पृष्ठ पर उसके व्यक्तित्व की अपूर्णता की ओर संकेत किया है—'स्वयं औरंगजेब भी सफल राजनीतिज्ञ नहीं था। अकबर और उसके सचिव भगवान दास, टोडरमल आदि की राजनीतिक योग्यता की इस युग में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।"

गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व के मूल्यांकन की ओर आलोचकों का ध्यान नहीं गया, यह बहुत स्वाभाविक है। उनके व्यक्तित्व-प्रदर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन उनका सम्पूर्ण साहित्य अभी तक अंधकार के गर्त में पड़ा रहा है। अब, जब उनके साहित्य का मूल्यांकन हो रहा है, उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का समुचित मूल्यांकन भी संभव बन पड़ेगा।

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृष्ठ ८।

परिशिष्ट—१

गुरु गोबिन्दसिंह के दरबारी कवि

गुरु गोबिन्दसिंह के दरबार में ५२ कवियों का होना प्रसिद्ध है, इन सभी कवियों का परिचय और कृतियां तो आज उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु जो कुछ प्राप्त है उससे इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने चारों ओर किस प्रकार के साहित्यिक वातावरण का निर्माण किया था। 'गुरु शोभा' के रचयिता सेनापति ने गुरु गोबिन्दसिंह की सभा में परम सुजान लेखकों की उपस्थिति की पुष्टि की है—

गुरु गोबिन्द की सभा महि, लेखक परम सुजान।

कहते हैं कि उनकी राज्य सभा में आश्रित कवियों द्वारा जो ग्रन्थ तैयार करवाए गये थे, उनका वजन नौ मन था और उस विशाल संग्रह को 'विद्या सागर' या 'विद्याधर' कह कर पुकारा जाता था। परन्तु आनन्दपुर के अंतिम युद्ध के पश्चात, जिसमें गुरु गोबिन्दसिंह को परिस्थितियों से बाध्य होकर नगर त्यागना पड़ा था, मुगल सेनाओं की लूट में उस विशाल साहित्य संग्रह का अधिकांश भाग इधर-उधर बिखर गया या नष्ट हो गया। भाई संतोष सिंह ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'सूरज प्रकाश' में इस बात का उल्लेख किया है—

बावन कवी हजूर गुर रहति सदा ही पास।
आवें जाहिं अनेक ही कहि जस, लें धन रास।
तिन कवियन वाणी रची लिख कागद तुलवाय।
नौ मण होए तोल महिं सुखम लिखत लिखाइ।
विद्याधर तिस ग्रन्थ को नाम धर्‌यो करि प्रीत।
नाना विध कविता रची रस-रस नौ रस रीत।
मच्यो जग गुरु संग बड़ रह्यो ग्रन्थ सो बीच।
निकसे आनन्दपुर तज्यो लूट्यो पुन मिल नीच।
प्रियक-प्रियक पन्ने हुते लुट्यो सु ग्रंथ बिखेर।
इक थल रह्यो न इम गयो जिसते मिल्यो न फेर।

(रुत ६ अनु ५२)

गुरु गोबिन्दसिंह के देहावसान के पश्चात् उनकी रचनाओं की खोज प्रारंभ हुई। इस प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में भाई मनी सिंह द्वारा गुरु-पत्नी, माता सुन्दरी को लिखे गये एक पत्र का उल्लेख है जिसमें उन रचनाओं के खोज की चर्चा की गयी है। यह स्वाभाविक ही है कि गुरु गोबिन्दसिंह की रचनाओं को उनके शिष्यों ने अधिक लगन एवं तत्परता से ढूंढा एवं संग्रहीत किया होगा। उनके आश्रित कवियों की अधिकांश रचनाएँ या तो नष्ट हो गयीं या अंधकार के गर्त में पड़ी रहीं। भाई संतोख सिंह ने 'गुरु प्रताप सूर्य' ग्रंथ में लिखा था कि

आनदपुर की लूट के पश्चात् बासठ पृष्ठ शेष बच गये थे[1]।

लगभग तीस वर्ष पूर्व पंजाबी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार भाई वीर सिंह जी ने अमृतसर के खालसा समाचार में 'श्री गुरु गोबिन्दसिंह जी का विद्या दरबार शीर्षक' से एक लेख प्रकाशित किया था जो बाद में पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुआ। इस लेख में कुछेक कवियों और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया था।

गुरु गोबिन्दसिंह के कुछेक कवियों का उपलब्ध परिचय यहां इस आशा से दिया जा रहा है कि इस दिशा में व्यापक शोध की संभावनाओं की कुछ पृष्ठभूमि तैयार हो सके।

सेनापति

गुरु गोबिन्दसिंह के आश्रित कवियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान सेनापति का है। गुरु दरबार का कदाचित यही एक मात्र कवि है जिसकी गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन पर रचित रचना 'गुरु शोभा' पूरी की पूरी उपलब्ध है। इस अध्ययन में 'गुरु शोभा' की चर्चा अनेक स्थानों पर की गयी है। कवि का आत्म परिचय उपलब्ध नहीं है, परन्तु उनकी रचना 'गुरु शोभा' जहाँ एक ओर ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है वहाँ काव्य गुणों की दृष्टि से भी उसका पर्याप्त महत्त्व है।

'गुरु शोभा' के अतिरिक्त सेनापति ने चाणक्य नीति का भाषानुवाद भी किया था। इसका उल्लेख उसने स्वयं इन शब्दों में किया है—

गुरु गोबिन्द की सभा महि लेखक परम सुजान
चाणाकै भाषा करी कवि सेनापति नाम

'गुरु शोभा' में गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है—

कलि में करनहार निरकार कलाधार,
जगत के उधारबे को गोबिन्दसिंह आयो है।
असुर संघारबे को दुरजन के मारबे को,
सकट निवारबे को खालसा बनायो है।
निंदक को निंद दई सिख दई सिखन को,
ताके महातम ते रेन दिवस ध्यायो है।
खालसे के सिखन की निंदकु जो निंद करै,
जान बूझि नरक परै ऐसो बतायो है।

गुरु गोबिन्दसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अजीत सिंह के चमकौर के युद्ध मे प्रदर्शित रण-कौशल की चर्चा कवि इस प्रकार करता है—

टूटकै सांग दुई मूंड परी गही तरवार दल बहुत मारे।
एकके सीस धरि दुहटूकरे करि दुहके सीस धरि करत चारे॥
भात इह पूर परवार दीने कई रकत दरीआउ मैं परे सारे।
गिरे बिकराल बेहाल सुध कछु नहीं परे रण माहि सब कुछ बिसारे॥

---

१. बासठ पने कहूँ ते रहो आनन्दपुरि माहि।
तिन ते लिखे कवित्त इह गुर जस बरन्यो जाहि॥

अणीराय

अणीराय की रचना 'जंगनामा श्री गुरु गोबिन्दसिंह' भी पूर्ण रूप से उपलब्ध है। अपने जंगनामे में कवि ने उल्लेख किया है कि गुरु गोबिन्दसिंह ने इनका स्वागत नग, कचन, आभूषण और हुक्मनामा देकर किया था—

अणीराय गुरु से मिले, दीनी ताहि असीस।
आउ कह्यो मुख आपने, बहुर करी बखसीस ॥१॥
नग कंचन भूषन बहुर,दीने सतिगुर एह।
नामा हुकम लिखायकै, दीनो सरस सनेह ॥२॥

इस रचना मे कवि ने गुरु गोबिन्दसिंह और मुगल सेनापति अजीमखाँ के मध्य हुए युद्ध का वर्णन किया है। गुरु गोबिन्दसिंह के शौर्य की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है—

तेग बली स्री गोबिन्दसिंघ, चढ़े रण को मन को जु हुलासा।
'राइ' रहै ठहिराइ सु को नर, लाखन मैं भुज को भरवासा।
लोह के तेज तैं कोद मजेज तैं, धाइ परैं अरि को मघवासा।
सूकत यौं मुख सूरन के, घन घोर को सोर सुनै जु जवासा ॥

अणीराय कई स्थानों पर गुरु गोबिन्दसिंह के हिन्दु-रक्षक रूप की ओर संकेत करता है, लगभग उसी तरह जैसे भूषण ने शिवा जी के लिए किया है—

धनुष चक्र खण्डा धरें, हिन्दू पति सुलतान।
सोढ वंश अवतार हो, गोबिन्दसिंह बलवान ॥
और मृत्त अमृत मतंग ब्रिद बल बाह के।
को कवि सकें सराहि, हिंदूपति नाह के ॥
हिंदू पति गुरु आप सिंघ गोबिंद हैं।
जन मघवा चढ्यो गुराक सूर संग ब्रिन्द हैं ॥

हंसराज

हंसराज ने गुरु गोबिन्दसिंह की आज्ञानुसार महाभारत के कर्णपर्व का अनुवाद किया था। यह कार्य उसने मार्ग शीर्ष बदी दूज सवत १७५२ को प्रारम्भ किया था, जिसका वर्णन कवि ने स्वयं किया है—

सवत सत्रा से बरस बावन बीतनहार।
मारग बदि तिथि दूज को ता दिन मंगलवार।
हसराम ता दिन करयो करन परब आरम्भ।

जब वह यह कार्य सम्पन्न कर चुका तो उसे गुरु गोबिन्दसिंह ने पर्याप्त धन देकर पुरस्कृत किया। कवि ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

प्रिथम कृपा करि राख कर गुरु गोबिन्द उदार।
टका करे बखसीस तब मोको साठ हजार।
ताको आयसु पाइके करण परब मैं कीन
भासा भरथ विचित्र कर सुने सुकवि परवीन

गुरु गोबिन्द सिंह की प्रशंसा करता हुआ कवि एक स्थान पर कहता है—

चारो चक्र सेवें गुरु गोविन्द तिहारे पाइ, मेरे जाने आज तू ही दूजो करतार है।
प्रबल प्रचंड खंड-खंड महि मंडल मे, साचो पतिशाह जाको सिर भार है॥
कामना के दान दान जाको हंसराम कहै, परम धरम देखे बिविध विचार है।
परम उदार पर पीर को हरनहार, कौन जाने कौने भात लीनो अवतार है॥

गुरु गोबिन्द सिंह के सैन्यदल की चढाई का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

हुल्लति अमर नरेस पति हरयहि हल्लै।
सूखत साइर सलल सक धुम्र धाम न चल्लै।
खलक खैल खलभलति भंल भगहि तिलोक महि।
पलक पैल गढ लेत हेत हुंकति सुजग महि।
कहि हंसराम सति सिमरके सकच रहित दिगपाल तबि।
धसमसत धरन दल भार ते सो बिरचराइ गोबिन्द जबि॥

अमृतराय

भाई वीरसिंह जी ने लिखा है कि अमृतराय लाहौर का रहने वाला था और इसने महाभारत के सभा पर्व का भाषानुवाद किया था। यह अनुवाद पटियाला के राजकीय पुस्तकालय में है। गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व में नव रसों का आरोप करता हुआ कवि कहता है—

प्रिया प्रेम रो सिंगारी हास्य सो विनोद भारी,
दीनन मे करुण अनुसारी सुख दीनो है।
कीनो अरि रुडं मुंड रुद्र रस भर्यो झडु,
फौजन गुधारन मे बीररस कीनो है॥
डक सुन लक भयभीत शत्रु वाम निंदा,
विक्रम प्रबल अद्भुत रस लीनो है।
ब्रह्म ज्ञान सम रस अमृत बिराजै सदा,
श्री गुरु गोबिन्द राय नवोरस भीनो है॥

गुरु गोबिन्दसिंह की उदारता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जाही उर जाऊं अति आदर तहा ते पाऊं,
तेरे गुन गन कउ मगाऊ गनै सेस जू।
हीर चीर मुक्ता जे देति दिन प्रतिदान,
तिनैं देख देख अभिलाखत धनेस जू।
गुनन मैं गुनी कवि अमृत पढ़ैया मेरी,
जब इनै हेरो प्यार की जैं अमरेस जू।
श्री गुरु गोबिन्दसिंह छीरनिध पार भई,
कीरत तिहारी तुमैं कहिके सदेस जू॥

मंगल

मगल कवि को गुरु गोबिन्दसिंह ने महाभारत के शल्य पर्व के भाषानुवाद का कार्य

सौंप दिया था। इस पर्व का अनुवाद उसने संवत १७५३ वि० में किया। इसे भी गुरु गोबिन्द-सिंह से कार्य के पारिश्रमिक के रूप में प्रतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। इस बात का उल्लेख कवि ने स्वयं किया है—

गुरु गोबिन्द मन हरख ह्वै मंगल लियो बुलाई।
सल्य परब प्राज्ञा करी लीजै तुरत बनाइ॥
संवत सत्रह सै बरख श्रेपन बीतन हार।
माधव रितु तिथि त्रोदसी ता दिन मंगलवार॥
सल्य परब भाषा भयो गुरु गोबिन्द के राज।
प्ररब खरब बहु दरब दै करि कवि जन को काज॥
जौ लौ धरन प्रकास गिरि-चद सूर सुर इद।
तौ लौ चिरजीवें जगत साहिब गुरु गोबिन्द॥

मगल तो गुरु गोबिन्दसिंह को पूर्ण ईश्वरावतार ही समझता था। उनके व्यक्तित्व के महत्त्व का वर्णन करता हुआ वह कहता है—

पूरन पुरख प्रवतार प्रान लीन प्राप,
जाके दरबार मन चितवे सो पाइए।
घटि घटि वासी प्रबिनासी नाम जाको जग,
करता करनहार सोई दिखराइए॥
नौमो गुरु नन्द जग बंद, तेग त्याग पूरे,
मंगल सुकवि कहि मगल सुनाइए।
प्रानन्द को दाता गुरु साहिब गोबिन्द राइ,
चाहै जो प्रानन्द तौ प्रनन्दपुर प्राइए॥

सुदामा

भाई वीरसिंह जी के मतानुसार सुदामा नामक कवि बुन्देलखंड का निवासी था। निर्धनता के प्रकोप से पीड़ित हो प्रपने दुर्दिन व्यतीत कर रहा था, उसने गुरु गोबिन्दसिंह का यश सुना। सुदामा गोबिन्द से मिलने आ गया मानो महाभारतकालीन सुदामा और गोबिन्द का वह पुनर्मिलन हो। गुरु गोबिन्दसिंह को सुदामा ने प्रपने निम्न कवित्त से उसी प्रसंग का स्मरण कराया—

एक संग पढ़े प्रवंतका सदीपन के,
सोई सुध प्राई तो बुलाइ बूझी बामा मैं।
पुंगीफल होत तो प्रसीस देतो नाथ जी को,
तंदुल लै दीजे बाथ लीजे फटे जामा मैं।
दीन दुप्रार सुनि कै दयाल दरबार मिले,
एतो कछु दीनो पाई प्रगनत सामा मैं॥
प्रीति करि जानैं गुरु गोबिन्दसिंह कै माने,
तातें पढ़े तू गोबिन्द पढ़े बामन सुदामा मैं॥

कुवरेश

'गुरु प्रताप सूर्य' के रचयिता महाकवि भाई सतोष सिंह ने लिखा है कि कुवरेश हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि केशव दास का पुत्र था। कहते हैं कि औरगजेब के शासनकाल में इसके बलात धर्म परिवर्तन का प्रयास किया गया, परन्तु कुवरेश किसी प्रकार वहाँ से भाग निकला और गुरु गोबिन्दसिंह के आश्रय मे पहुँचा। इस बात का उल्लेख उसने अपनी निम्नलिखित रचना मे किया है—

सुना नियावन को तुम थान।
सदा निमानन के बड़ मान॥
अहो निताणन के तुम त्राण।
अप्र शोभा को कथै जहान॥
तुरक तेजते बिन बल हिन्दू।
धर्म बिनासत मेलत बिन्दु॥
महात्रास ते मैं चलि आयो।
चहित आपनो धरम बचायो॥

कुवरेश के आचार्य केशव दास के पुत्र या पौत्र होने मे पर्याप्त सदेह है। डा०विजय-पाल सिंह ने अपने शोध ग्रंथ 'केशव और उनका साहित्य' मे केशव का जो वंश वृक्ष दिया है, उसमे कुवरेश नाम का कही उल्लेख नही है।

कुवरेश गगा यमुना के मध्य बरीग्राम का निवासी था। इस बात का उल्लेख उसने स्वय किया है—

गुरु गोबिन्दसिंह नरिन्द है तेग बहादुर नद,
जिनते जीवत है सकल भूतल कवि बुध ब्रिन्द।
नदी सतुद्रव तीरहिं शुभ अनन्दपुर नाम,
गुरुगोबिन्द नरिन्द के राजत सुभग सुधाम॥
गंगा यमुना बीच मे बरीग्राम को नाम,
तहा सुकवि कुवरेश को वास करै को धाम॥

गुरु गोबिन्दसिंह ने कुवरेश को महाभारत के द्रोणपर्व का भाषानुवाद करने का कार्य सौंपा था। कवि ने संवत् १७५२ वि० में यह कार्य प्रारम्भ किया—

सवत सत्रह सै अधिक बावन बीते और।
ता मै कवि कुवरेश यह कियो ग्रंथ को ठौर॥

हीर कवि

हीर कवि की रचनाओं के जो उदाहरण उपलब्ध हैं, उनसे लगता है कि गुरु गोबिन्द-सिंह की भाव-भूमि को इस कवि ने अन्य कवियों को अपेक्षा अधिक गहराई से समझा था। इसकी रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुरु गोबिन्दसिंह की सैन्य तैयारी तथा उनके युद्धों को इसने ध्यानपूर्वक देखा और उसमें गहरी रुचि ली थी। इस कवि की अधिकांश कविता कोरी प्रशस्ति मात्र नहीं है, वरन् उसमे युद्ध और युद्ध से सबधित उपकरणों का ही अधिक वर्णन है।

गुरु गोबिन्दसिंह के नगाड़ों की चोट का वर्णन करता हुआ कवि कहता है —

कल नहि परत विकल देस वगस को,
पलक न लागै पल रूम साम सामनो ।
गोलकुंड कंपित नगारनि की धुन सुनि,
बीजापुर बन्दर बसत वन जामनी ॥
आसमान दहल दहल गिर्‌यो लकहीर,
दरी में दबत फिरै दसन जिउ दामनी ।
तेरे डर गोबिन्द मृगन्द गुरु अरिनि की,
टोला टोला जाइ सो खटोला मागै भामिनो ॥

दुष्टों का दलन करने वाली तलवार का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

नाहर समान झुकि झरि गुबिन्दसिंह,
खग गहि खड कीनो खलन की खोपरी ।
हने घने घोर घमसान के घमंड कीनो,
धाइन घुमति घाइलन की धराधरी ॥
रुद्रके कुंडते निकस कालो कुल ठाढो,
उपमा बढ़ी है हीर अभिपति ते खरी ।
दल दस माथ रघुनाथ को मनाई मन,
मानो सीस सौंह दै हुतासन ते निस्सरी ॥

गुरु गोबिन्दसिंह की सेना के सामर्थ्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

उडत गरद डर भान मान भूपत न गहन मन ।
नीर क्षीर नए इवक करक टुट्‌टत उपबन वन ॥
मथन कहत फिर सिंध बिष दहलत चलत डर ।
थिमिट रकुच रह्यो नाग कमठ को धमक बिकट भर ॥
मन हीर चढ़त हिंदवान हद दिगपाल कप थानरी हलत ।
गोबिन्दसिंह दल चढ़त जब अतल बितल भूतल तलत ॥

सुन्दर

इस कवि विशेष का परिचय और काव्य कृतियो का पर्याप्त ज्ञान अभी उपलब्ध नहीं है । गुरु गोबिन्दसिंह की प्रशस्ति मे लिखे निम्नलिखित दो छंद प्राप्य हैं—

साधन के सिद्ध सारणागत समर सिधु,
सुधाधर सुंदर सरस पद पायो है ।
कुल को कलस कवि कामना को काम तरु,
कोप कीए काल कबियन गुन गायो है ।
देवन मे दानव मैं मानव मुनिनि हू मैं,
जाको जस जाहर जहान घनि गायो है ।
तेग साचो देग साचो सूरमा सरन साचो,
साचो पातिसाहु गुरु गोबिन्द कहायो है ॥

× × ×

वेदन महि साम सुनो सिंधु मिरजाद मेरु,
मडल मही में गुरिआई गुन गाए हो।
सरम के सागर सपूतन के सिरमौर,
सुंदर सुधाधर ते सुन्दर गनाए हो॥
रचन मे दान मानि बानी हरीचद कीसी,
विदत विनय बड़े बस चलि आए हो॥
तेज को तरनि तरवार को परसराम,
गुरनि महि ऐसे गुरु गोविन्द कहाए हो॥

इन उल्लिखित कवियो के अतिरिक्त भी कुछेक कवियों की स्फुट रचनाए प्राप्त होती हैं, जिनका गुरु गोबिन्दसिंह के दरबार मे सम्बन्ध था। भाई वीरसिंह जी ने अपनी पुस्तिका 'गुरु गोबिन्दसिंह जी दा विद्या दरबार' मे इन कवियों के अतिरिक्त आसासिंह, मुतसद्दी, चंदन, धन्नासिंह, आलम, शारदा, सैंण, रोशनसिंह, भाई नन्दलाल (फारसी कवि) और टहिकण आदि कवियों का उल्लेख किया है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

ग्रन्थ	लेखक
१. आचार्य केशवदास	डा० हीरालाल दीक्षित, स० २०११ वि०
२. आचार्य भिखारीदास	डा० नारायण दास खन्ना, स० २०१२ वि०
३. उत्तर भारत की संत परम्परा	पं० परशुराम चतुर्वेदी, स० २००८ वि०
४. कविवर बिहारी	श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर, स० १९५३ ई०
५. कबीर	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, स० १९५२ ई०
६. कबीर साहित्य की परख	पं० परशुराम चतुर्वेदी, सं० २०११ वि०
७. केशव की काव्यकला	पं० कृष्ण शंकर शुक्ल, संवत् २००६ वि०
८. केशव और उनका साहित्य	ड० विजयपाल सिंह, स० १९६० ई०
९. गुरुकुल	श्री मैथिलीशरण गुप्त सं० २००४ वि०
१०. गुरु ग्रंथसाहब	शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर
११. गुरु ग्रंथ दर्शन	डा० जयराममिश्र, स० १९६३ ई०
१२. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य	डा० हरिभजनसिंह, स० १९६३ ई०
१३. चंदवरदाई और उनका काव्य	डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, स० १९५२ ई०
१४. छंद प्रभाकर	श्री जगन्नाथदास भानु, स० १९५२ ई०
१५. तसव्वुफ अथवा सूफ़ीमत	आ० चन्द्रबली पाण्डेय, स० १९४५ ई०
१६. तुलसीदास और उनका युग	डा० राजपति दीक्षित, स० २००२ वि०
१७. देव और उनकी कविता	डा० नगेन्द्र, स० १९४२ ई०
१८. पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त	श्री लीलाधर गुप्त
१९. प्रथम जा	डा० मुन्शीराम शर्मा, स० १९६० ई०
२०. बिहारी	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, स० २०१६ वि०
२१. भूषण	पं० विश्वप्रसाद मिश्र, सं० २०१० वि०
२२. भारतीय संस्कृति का इतिहास	श्री हरिदत्त वेदालंकार
२३. भक्ति का विकास	डा० मुंशीराम शर्मा, स० १९६०ई०
२४. भाषाभूषण	महाराज जसवन्तसिंह, टीका पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२५. भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास की देन	बलदेवप्रसाद मिश्र
२६. भारतवर्ष में जाति भेद	आ० क्षितिज मोहन सेन
२७. मानस की रामकथा	प० परशुराम चतुर्वेदी, स० १९५४ ई०
२८. रामचरित मानस	गो० तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
२९. राम कथा	फा० कामिल बुल्के
३०. रीतिकाव्य की भूमिका	डा० नगेन्द्र, स० १९४९ ई०

ग्रंथ	लेखक / प्रकाशन
३१. रामायणकालीन समाज	श्री शा० ना० व्यास, सन् १९५८ ई०
३२. रामायणकालीन संस्कृति	श्री शा० ना० व्यास, सन् १९५८ ई०
३३. वीर रस का शास्त्रीय विवेचन	श्री बटेकृष्ण
३४. वीर काव्य	डा० उदयनारायण तिवारी, सं० २००५ वि०
३५. वीर वैरागी	भाई परमानन्द
३६. शिवाजी	डा० जदुनाथ सरकार
३७. श्री प्रेम सुधा-सागर	गीता प्रेस, गोरखपुर
३८. संस्कृति के चार अध्याय	श्री रामधारीसिंह दिनकर
३९. संतसाहित्य	डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया
४०. सूर और उनका साहित्य	डा० हरिवंशलाल शर्मा, सं० २०१५ वि०
४१. सूर साहित्य और भारतीय साधना	डा० मुंशीराम शर्मा
४२. संस्कृत साहित्य का इतिहास	श्री कन्हैयालाल पोद्दार
४३. सूर की भाषा	डा० प्रेमनारायण टंडन
४४. हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० रामचन्द्र शुक्ल, सं० २०१५ वि०
४५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा
४६. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग)	डा० नगेन्द्र
४७. हिन्दी साहित्य कोश	डा० धीरेन्द्र वर्मा, सं० २०१५ वि०
४८. हिन्दी साहित्य का अतीत (दो भाग)	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
४९. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास	डा० भगीरथ मिश्र
५०. हिन्दी नवरत्न	मिश्र बन्धु
५१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
५२. हिन्दुत्व	श्री रामदास गौड़, सं० १९९५ वि०
५३. हिन्दी छंद प्रकाश	श्री रघुनन्दन शास्त्री
५४. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
५५. हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि	डा० गोबिन्द त्रिगुणायत, सन् १९६१ ई०

पंजाबी

ग्रंथ	लेखक / प्रकाशन
१. कोश दशम ग्रंथ	ज्ञानी लालसिंह, १९४६ ई०
२. गुरु शोभा	सेनापति, १९८२ वि० का प्रकाशित संस्करण
३. गुरु शबद अलंकार	भाई काहन सिंह, १९२४ ई०
४. गुरु छंद दिवाकर	भाई काहन सिंह, १९२४ ई०
५. गुरु शबद रत्नाकर	महान कोश चार भाग, भाई काहन सिंह, १९३० ई०
६. जीवन कथा गुरुगोबिन्दसिंह	प्रो० कर्तारसिंह, १९४६ ई०

७. गुरुमत निरणं — भाई जोध सिंह, १९४५ ई०
८. गुरुबाणी सिद्धांत सग्रह — ज्ञानी लाल सिंह
९. गुरुमत लैक्चर — ज्ञानी लाल सिंह
१०. गुरु विलास — भाई सुक्खा सिंह
११. गुरुमत दरशन — डा० शेरसिंह
१२. गुरुमुखी लिपि का जनम ते विकास — श्री जी० बी० सिंह, १९५५ ई०
१३. गुरुप्रतापसूरज ग्रंथ — भाई संतोष सिंह, १९५५ ई०
१४. दसमगुरु वाणीप्रकाश — स० गुरमुख सिंह परदेसी, १९५६ ई०
१५. दसवेंपातिसाहदे ग्रंथदा इतिहास — भाई रणधीर सिंह, २०१२ वि०
१६. दसम ग्रंथ—गुरु गोविन्दसिंह — सं० २०१३ वि० का प्रकाशित संस्करण
१७. दसम ग्रंथ सटीक — प० नरेश सिंह, १९४० ई०
१८. दसम ग्रंथ निरणे — डा० रणसिंह, १९८५ वि०
१९. पंजाबी साहित दा इतिहास — डा० गोपाल सिंह, १९५२ ई०
२०. पजाब दा इतिहास — प्रो० सतिबीर सिंह, १९६० ई०
२१. पंजाबी हथ लिखता दी सूची — १९६१ ई०
२२. प्राचीन बीड़ा बारे — भाई जोध सिंह
२३. प्राचीन पंथ प्रकाश — रतन सिंह भंगू
२४. प्राचीन जगनामे — श्री शमशेर सिंह ग्रशोक, १९५० ई०
२५. श्री गुरु गोबिन्द सिंह दा विदिया दरबार — भाई वीर सिंह
२६. सिख इतिहास बारे — डा० गंडा सिंह

संस्कृत

१. अध्यात्म रामायण, — गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २०१५ वि०
२. ईशावास्योपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
३. काव्यादर्श — आचार्य दंडी, रंगाचार्य शास्त्री, १९३८ ई०
४. दुर्गा सप्तशती — गीता प्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करण
५. नाट्य शास्त्र — भरत मुनि, गायकवाड़ संस्करण, १९३४ ई०
६. मार्कण्डेय पुराण — श्याम काशी प्रेस, स० १९४१ ई०
७. शतपथ ब्राह्मण — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, प्रथम संस्करण
८. विष्णु पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २०१४ वि०
९. श्रीमदभगवद्गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर षष्ठ, संस्करण
१०. श्रीमद्भागवत पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर
११. साहित्य दर्पण — आ० विश्वनाथ, टीका० शालिग्राम
१२. काव्यालंकार — आ० भामह, श्रीनिवास प्रेस, स० १९३४ ई०
१३. चन्द्रालोक — जयदेव, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
१४. वाल्मीकि रामायणम् — अनु० पांडेय रामतेज शास्त्री, सं० १९५१ ई०

हस्तलिखित प्रतियां

१. सिख रेफेरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर
२. भाषा विभाग पुस्तकालय, पटियाला
३. सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला
४. निजी पुस्तकालय महाराजा पटियाला
५. पंजाब आर्काइव्ज लाइब्रेरी पटियाला में सुरक्षित अनेक हस्तलिखित ग्रंथ

English

1. Adi Granth — Dr. Ernest Trumpp, 1877
2. An Introduction to Punjabi Literature — Dr. Mohan Singh, 1951
3. A Critical Study of Adi Granth — Dr. S.S. Kohli, 1960
4. A Short History of Sikhs — Teja Singh Ganda Singh, 1950
5. A Short History of Aurangzeb — Sir J.N. Sarkar
6. A Classical Dictionary of Hindu Mythology — John—Dowsan, 1953
7. Evolution of Khalsa (2 vols.) — Dr. Indu Bhushan Banerjee, 1947
8. History of the Punjab — Dr. Mohammad Latif, 1891
9. History of the Sikhs — J.D. Cunningham, 1849
10. Poetry of Dasm Granth — Dr. D.P. Ashta, 1957
11. Sketch of Sikhs — John Malcom, 1812
12. Studies in Epics & Puranas of India — Dr. A.D. Pusalker, 1955
13. The Sikh Religion (6 Volumes) — M.A. Macauliffe, 1909
14. Transformation of Sikhism — Dr. G.C. Narang, 1950
15. The Legends of the Punjab — Capt. Temple, 1884-86